UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182228

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H85 C92B Accession No. H641

Author

Title ಅಕ್ಷರ ಕ್ರಾಂತಿ

This book should be returned on or before the date last marked below.

वक्तव्य

सरल साहित्य में उपन्यास का आसन सर्वोपरि है। उपन्यास केवल दो घड़ी मन बहलाने की सामग्री ही नहीं हैं; चतुर, सिद्ध-हस्त लेखक अपनी प्रतिभा के सम्मिश्रण से उनकी उपयोगिता को बेहद बढ़ा सकता है। अगर लेखक प्रकृति-पर्यवेक्षण में प्रवीण है, उसने अंतर्दृष्टि से मानव-समाज के आंतरिक द्वंद्वों का अच्छा अनुशीलन किया है, तो वह स्वाभाविक चरित्र-चित्रण में कमाल दिखा सकता है, उच्च आदर्श आगे उपस्थित करके पाठकों को उनका अनुगामी बनने के लिये उत्साहित कर सकता है, पात्रों के परिणाम दिखाकर राक्षस को मनुष्य और मनुष्य को देवता बना सकता है। परंतु यह सब तभी हो सकता है, जब लेखक में स्वाभाविक प्रतिभा का प्राचुर्य हो, पर्यवेक्षण-शक्ति हो, और अध्ययन का अध्यवसाय हो।

बहुत लोग अब भी ऐसे मिलेंगे, जो उपन्यास के—ख़ासकर हिंदी-उपन्यासों के—नाम से चिढ़ते हैं; जिनका विचार है कि उपन्यास पढ़कर आदमी ख़राब हो जाता है, ये झूठे क़िस्से मनुष्य को वास्तव-जगत् से हटाकर कल्पना के कानन में भटकाते हैं। हम ऐसे विचार के लोगों को दोष न देंगे। कारण, हिंदी में, आरंभिक काल में, जो उपन्यास (उपन्यास ही कहना पड़ता है) निकले, उनमें अधिकांश ऐसे ही कूड़ा-कर्कट थे। कुछ ऐयारी-तिलिस्म के थे। जासूसी उपन्यासों की संख्या भी यथेष्ट थी। उसके बाद शृंगार-प्रधान उपन्यासों का नंबर है। किंतु उत्कृष्ट श्रेणी के सामाजिक उपन्यासों की संख्या पूरी एक दर्जन भी न होगी। इस समय हिंदी में जो अच्छे उपन्यास हैं, उनमें अधिकांश अनुवाद है। प्रेमचंदजी के उपन्यासों को छोड़-

कर जो कुछ दस-बीस मौलिक उपन्यास निकले हैं, उन्हें उपन्यास न कहकर बड़ी कहानी (गल्प) कहना ही ठीक होगा। बंकिम बाबू के, रवींद्र बाबू के, शरत् बाबू के जैसे उपन्यास (बँगला) हैं, वैसे उपन्यासों का जन्म ही अभी हिंदी-साहित्य में नहीं हो पाया। मतलब यह कि जब तक वैसे प्रथम श्रेणी के मौलिक लेखक नहीं निकलते, तब तक हमें अन्य भाषाओं के अच्छे उपन्यासों के हिंदी-रूपांतर ही से अपना भांडार भरना पड़ेगा। परंतु खेद तो यह है कि अनुवाद करनेवाले लोग आँख मूँदकर जो पाते हैं, उसी का अनुवाद कर डालते हैं। उपयोगिता की ओर ध्यान ही नहीं देते।

हमने भी शांति-कुटीर (अविनाश बाबू का), आँख की किरकिरी (रवींद्र बाबू का), दुरंगी दुनिया (चारु बाबू का), गोरा (प्रकाशित होनेवाला है), घर और बाहर (अप्रकाशित) आदि कई अच्छे औपन्यासिकों के उपन्यासों को हिंदी-रूप दिया है, और हिंदी-संसार ने उनका अच्छा आदर किया है। आज हम यह और एक उत्कृष्ट उपन्यास लेकर सेवा में उपस्थित होते हैं। इस उपन्यास के लेखक श्रीचारुचंद्र बनर्जी एक उत्कृष्ट औपन्यासिक हैं। आपने २० के लगभग उपन्यास और गल्प-ग्रंथ लिखे हैं। आप बी० ए० हैं, और बहुत दिनों से बँगला के सुप्रसिद्ध, सर्वोत्कृष्ट मासिक पत्र प्रवासी के संपादकीय विभाग में रहकर योग्यता से काम कर रहे हैं। आपने हमको बिलकुल निःस्वार्थ भाव से, मुफ़्त ही, अपने सब ग्रंथों का हिंदी-अनुवाद करने की आज्ञा देकर अपनी उदारता का परिचय दिया है। हम आपके हृदय से कृतज्ञ हैं। आपके एक उपन्यास 'परगाछा' का अनुवाद 'दुरंगी दुनिया' के नाम से निकल चुका है। वह भी गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय से मिल सकता है।

चारु बाबू में ख़ूबी यह है कि आपका प्लॉट कौतूहल-वर्द्धक होता है, साथ ही स्वाभाविक भी। आपके पात्र एकदम स्वर्गीय आदर्श

मे गढ़े हुए अलौकिक नहीं होते। उनमें भी हम आपके समान ही बुरे और भले भावों का उत्थान-पतन और द्वंद्व होता है। तात्पर्य यह कि उनके कल्पित चरित्र मनुष्य ही होते हैं। परंतु परिणाम में उनके सात्विक भावों की ही विजय दिखाई जाती है; मगर स्वाभाविक रूप से ही। आपकी और एक खूबी भाषा की है। आपकी भाषा गद्य-काव्य की-सी होती है, और इसके प्रमाण इसी पुस्तक में पाठकों को स्थान-स्थान पर देखने को मिलेंगे। मतलब यह कि भाषा पर आपका पूरा अधिकार है।

आपने इस उपन्यास में विधवा का विवाह कराया है। संभव है, हमारे बहुत-से कृपालु पाठक इस प्रथा के विरोधी हों, और इसीलिये हमपे भी क्रुद्ध हो बैठें। इसलिये यहाँ पर इस विषय में अपना वक्तव्य कह देना हम उचित समझते हैं। इस उपन्यास की नायिका मालती एक बाल-विधवा है। छोटी अवस्था में उसका ब्याह कर दिया गया था। उसकी सुसराल के लोगों ने उसको आश्रय नहीं दिया। मायके में मा-बाप कोई नहीं रहा। केवल एक मौसी थी। उसी के पास आश्रय के लिये वह आती है। मगर मौसी भी अपने कुचक्री जेठ के हाथों संपत्ति-हीन होकर उन्हीं के आश्रय में दासी-सी रहती है। इसी कारण यहाँ भी मालती को उपयुक्त आश्रय नहीं मिलता। ऐसी अक्षत-योनि बाल-विधवा, जिसके मार्ग में पतन के लिये पग-पग पर गढ़े हैं, अगर पुनर्विवाह कर ले, तो हमारी राय में धर्म-भ्रष्ट होने से वह लाख दर्जे अच्छा है। ऐसी बाल-विधवा का पुनर्विवाह न कर देने से जो अनर्थ होता है, वह इसी उपन्यास में कालीतारा की जीवनी में स्पष्ट दिखा दिया गया है। कालीतारा की-सी दशा आज भारत में हज़ारों बाल-विधवाओं की हो रही है। हम विधवा-विवाह को अवैध कहकर चिल्लाते-भर हैं। ऐसी बाल-विधवाओं के लिये, जो कि अक्षत-

योनि होने के साथ ही निराश्रय हैं, आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकतीं, तथा इसी कारण जिनके पतन की पूर्ण संभावना है, उनके लिये कोई उपाय नहीं करते। इसका फल हिंदू-समाज के लिये, धर्म के लिये कैसा घातक हो रहा है, यह देखकर भी हम नहीं देखते! हम साधारणतः विधवा-विवाह के अवश्य विरुद्ध हैं; किंतु मालती-सरीखी बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह हमारी राय में अवश्य होना चाहिए। इसी समस्या को समाज के सामने स्पष्ट रूप से रखना भी इस उपन्यास का हिंदी-रूपांतर करने का अन्यतम कारण है। हम चाहते हैं कि इस विषय पर खूब विचार हो, और एक निर्णय कर दिया जाय। कारण, इस समय ऐसी बाल-विधवाओं की संख्या यथेष्ट है, और उनके मा-बाप उनका पुनर्विवाह कर देने के लिये लालायित होकर भी समाज के उद्यत दंड के भय से चुप हैं—भीतर-ही-भीतर जलते हैं; पर समाज से कुछ नहीं कह सकते।

अब हम इस उपन्यास के पात्रों पर एक दृष्टि डालकर अपना वक्तव्य समाप्त करते हैं। इस उपन्यास में निवारण, हरिविहारी (ज़मींदार), विपिन (उनका लड़का), नवकिशोर, नवकिशोर के पिता और प्रेमानंद, ये प्रधान पुरुष-पात्र हैं। पुरखिन (ज़मींदार की स्त्री), हरिमोहिनी, मालती, कालीतारा, रोहिणी तथा जया आदि कई स्त्री-पात्र भी हैं।

निवारण एक विघ्न-संतोषी कुटिल मनुष्य है। छिपे तौर से अनाचार करता, और प्रकट में बड़ा सदाचारी, धार्मिक बनता है। उसका असली रूप जाननेवाले नवकिशोर, विपिन आदि उसके चक्षु-शूल हैं। वह सर्वदा उनकी हानि करने को उद्यत रहता है। यहाँ तक कि वह बेचारी निरपराध कालीतारा की भी दुर्दशा समाज के नाम पर कराता है। उसी के कारण दो-दो जीवों का प्राणांत होता है! आज हमारे समाज में ऐसे सैकड़ों निवारण मौजूद हैं।

हरिविहारी एक आहार-विहार को ही संसार का सार समझनेवाले ज़मींदार हैं। वह अपनी भावज का सर्वस्व हड़प लेने और विपिन के ज़ोर देने पर बड़ी मुश्किल से उन्हें घर में रखते हैं! जया से उनका अवैध संबध था, और वह उसे अपने अंतःपुर में रक्खे हुए थे। वह अपने पुत्र से कहते हैं—एक बार ब्याह कर ले, फिर चाहे जो कर; अर्थात् चाहे जितनी प्रणयिनी रख। वह मालती से विपिन का ब्याह नहीं पसंद करते, मगर प्रणयिनी के रूप में उसे रखने की आज्ञा देते हैं! ऐसे स्थूल-बुद्धि, आचार-भ्रष्ट ज़मींदार भी असंख्य देख पड़ेंगे। उनके भाई की कीर्ति, कालीतारा के साथ अनुचित व्यवहार, भी इसका प्रमाण है कि उस परिवार के आचरण ही ऐसे थे।

नवकिशोर अपने पिता के ही अनुरूप दृढ़-प्रतिज्ञ, आडंबर से चिढ़नेवाला, समाज-सुधार में अग्रगामी, सच्चा ब्राह्मण है। वह तेजस्वी है। उसके सामने निवारण और गोबरा के समान धूर्त काँपने लगते हैं। वह ऐसा कर्तव्य-परायण है कि मालती को निराश्रय देखकर दयार्द्र हो उठता है, और उसे विपिन के घर में उसकी मौसी के पास ले आने में नहीं हिचकता; मगर साथ ही ऐसी सुंदरी को, पिता की अनुमति पाकर भी, स्वयं ग्रहण नहीं करता, बल्कि, समाज और देश का अधिक उपकार हो सकने की संभावना से, अपने मित्र विपिन को उसके साथ ब्याह करने के लिये उद्यत करता है। वह कर्म-निष्ठ है, जितेंद्रिय है, आडंबर-द्वेषी है। तात्पर्य यह कि सच्चे ब्राह्मण में जो बातें होनी चाहिए, वे सब उसमें हैं।

नवकिशोर के पिता भी आदर्श ब्राह्मण हैं। वह वृद्ध होकर भी जवानों के समान संस्कार के पक्षपाती और उत्साही हैं। वह अपने पुत्र को कर्तव्य-पालन के लिये विधवा-विवाह की आज्ञा देते हैं, सबके विरोध को अग्राह्य करके अँगरेज़ी पढ़ाते हैं, पतिता कालीतारा के

शव को कंधा देते हैं। मतलब यह कि वह स्वतंत्र विचार के, कर्तव्य-निष्ठ, उदार ब्राह्मण हैं।

प्रेमानंद एक राजसी गुरु हैं। गुरुडम के उपासक प्रेमानंद राजसी ठाट से रहते हैं। विपिन उनकी विद्वत्ता और बातचीत पर लट्टू होकर उनका चेला बन जाता है। पर वह मालती के रूप की आग में पतंग की तरह फाँद पड़ते हैं। अंत को शिक्षिता, तेजस्विनी मालती से हारकर उन्हें लज्जित होना पड़ता है, और उनके हृदय की रजो-गुण की धूल धुल जाती है। ऐसे संस्कृत-अँगरेज़ी आदि भाषाओं के ज्ञाता और राजसी ठाट से रहनेवाले गुरुओं का अच्छा चित्र इसमें अंकित किया गया है। हमने एक ऐसे ही गुरुडम के उपासक महोदय को प्रत्यक्ष देखा है, और वह अपनी नेकनामी या बदनामी के लिये भारत के धर्म-संसार में स्वयं सुप्रसिद्ध हैं। उनकी यात्रा सदा सेकेंड क्लास में होती है। भोजन-वस्त्र का ठाट भी राजसी है। अनेक राजे-महाराजे उनके मुरीद हैं। इस उपन्यास में प्रेमानंद का चरित्र पढ़कर पाठक लोग ऐसे धूर्त गुरुओं के संबंध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त करेंगे।

विपिन एक धनी का पुत्र है। उसमें सत्प्रवृत्तियों का स्फुरण नवकिशोर के संसर्ग से होता है। नवकिशोर उसे ज़मींदार-गृह की विषैली वायु से बचाकर मनुष्य बनाता है। मगर विपिन अंत तक परमुखापेक्षी रहता है। वह बतलाने पर कर्तव्य का पालन करता है; लेकिन उसमें स्वयं अपना कर्तव्य सोचकर उसका पालन करने की योग्यता नहीं है। इसी कारण वह नवकिशोर के पास न रहने पर प्रेमानंद के फेर में पड़ जाता है। स्थिर-मति और स्वावलंबी न होने के कारण वह प्रेमानंद के आश्रम में आश्रय लेता है, और वहाँ अपने को चाहनेवाली, अपने लिये बदनामी बरदाश्त करने-वाली मालती को भी छोड़ देने के लिये उद्यत हो जाता है, मालती के प्रति अपना कर्तव्य ठीक नहीं कर सकता। विपिन के

चरित्र से बहुत कुछ शिक्षा मिलती है । पाठकगण स्वयं समझ लेंगे ।

ये तो हुए पुरुष-पात्र, अब स्त्री-पात्रों को देखिए । पुरखिन एक अपना प्राधान्य चाहनेवाली, कानों की कच्ची, कुसंस्कार-ग्रस्त स्त्री हैं । मगर उनका पुत्र-प्रेम का आदर्श बहुत ऊँचा है । वह अपनी सौत के बेटे विपिन को अपने लड़के से बढ़कर चाहती हैं, उसके विद्रोह को हँस-हँसकर टालती हैं । साथ ही अपनी देवरानी और आश्रित, किंतु तेजस्विनी, स्वतंत्र प्रकृतिवाली मालती पर खड्ग-हस्त रहती हैं । शिक्षा के अभाव में उनका हृदय इतना अनुदार है कि वह आश्रित के साथ कुव्यवहार करने में कुछ भी नहीं हिचकतीं । इस प्रकृति की स्त्रियों का अभाव किसी देश में न होगा ।

हरिमोहिनी अपनी जिठानी के अत्याचार तो चुपचाप सह लेती हैं, मगर आश्रित, असहाय मालती पर अत्याचार करने में ज़रा नहीं चूकतीं ! उनके साथ जो कठोरता की जाती है, उसे मय सूद के मालती से चुका लेती हैं । जिठानी के सामने तो वह आश्रित अबला के रूप में रहती हैं; किंतु मालती के आगे वही पहले की हुकूमत दिखलाती हैं । पर यह उनका दोष नहीं, प्रकृति का दोष है ।

रोहिणी चरित्र-हीन दासी है । जैसे वायु-मंडल में रहती है, वैसा ही उसका व्यवहार है । वह असहाय मालती को ताने मारकर सताती है—रुलाती है, छिपकर उसकी बातें सुनती है, मालकिन से जाकर एक की दस लगाती है । मालती को दुखी देखकर उसे मज़ा आता है । एक तो नीच जाति, दूसरे अशिक्षित, फिर हीन आचरणवाली स्त्रियों के पास रहना !

जया आदि स्त्रियों के चरित्र में लेखक ने यह दिखलाया है कि अशिक्षित स्त्रियाँ गंदे वातावरण में रहकर कितना नीचे गिर जाती हैं । यहाँ तक कि उनमें स्त्री-सुलभ दया, सहानुभूति, कोमलता

आदि प्रवृत्तियों का भी अभाव हो जाता है। वे अपने से अच्छी पढ़ी-लिखी किसी स्त्री को पाती हैं, तो उससे विद्वेष रखती हैं, उसको यथाशक्ति बदनाम करने में भी कुछ उठा नहीं रखती।

इस उपन्यास में मालती का चरित्र-चित्र बहुत सहृदयता और योग्यता के साथ अंकित हुआ है। लेखक की योग्यता, कल्पना, प्रतिभा और अंतर्दृष्टि का वह एक बढ़िया नमूना है। मालती पढ़ी-लिखी शौक़ीन महिला होने पर भी स्वावलंबिनी, तेजस्विनी और धर्म-निष्ठ है। आपत्ति आने पर घबराना उसका स्वभाव नहीं है। सुसरालवालों ने नहीं रक्खा, बाप मर गया, माता भी चल बसी; पर वह घबराई नहीं। किंतु जब उसने कुछ गुंडों की कुदृष्टि पड़ते देखी, तब धर्म की रक्षा के लिये मौसी को पत्र लिखा। पत्र का उत्तर न पाकर भी वह घबराई नहीं। नवकिशोर ने जाकर जब मौसी की परवशता जताई, तब वह स्वावलंबिनी नारी स्वावलंब पर उद्यत हो गई। उसने कहा—मैं किसी कन्या-पाठशाला में पढ़ाकर, या कुछ शिल्प करके अपना गुज़र कर लूँगी, मौसी को दिक़ करने न जाऊँगी। वह ज़मींदार के घर आकर भी अत्याचार के आगे सिर नहीं नवाती। मौसी की डाँट-डपट भी उसे जया आदि के साथ मिलने-जुलने के लिये विवश नहीं कर पाती। वह विनय पर मुग्ध होकर भी पहले ब्याह के लिये विनय का पैग़ाम इस-लिये मंज़ूर नहीं करती कि उसके यहाँ उसके कारण अशांति न हो। पर विपिन को गृह-त्याग के लिये उद्यत देखकर, और उसका कारण अपनी अस्वीकृति ही को जानकर, वह कर्तव्य-पालन पर उद्यत हो जाती है, स्वयं जाकर आत्मसमर्पण कर देती है। काली-तारा और उसके बच्चे से जब सब लोग घृणा करते हैं, तब अपना कर्तव्य जानकर वही उन्हें अपने आश्रय में लेती है। मतलब यह कि उसे जो कर्तव्य जान पड़ता है, उसके पालन में वह

किसी के विरोध या अपनी होनेवाली निंदा की कुछ परवा नहीं करती।

विपिन के साथ जाने में वह कितना बड़ा साहस करती है, यह पाठक पुस्तक पढ़कर स्वयं समझ सकेंगे। तारक के यहाँ उसका जेठ आकर जब उसे बदचलन बतलाता है, और सपत्नीक तारक उसे वेश्या कहने में संकोच नहीं करता, तब तेजस्विनी मालती, निराश्रय होने पर भी, विपिन को वहाँ क्षण-भर नहीं ठहरने देती। प्रेमानंद के फेर में एम्० ए०-पास विपिन इतनी जल्दी आ जाता है; पर मालती अपने सवाल-जवाब से प्रेमानंद के भी छक्के छुड़ा देती है। उसकी योग्यता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण होगा? प्रेमानंद उसके रूप पर रीझकर जब उसे अपने हाथ में नहीं कर पाते, तब किस-किस नीचता पर उतारू हो जाते हैं! मगर मालती अपनी पद-मर्यादा पर ही स्थिर रहती है। वह उनकी कुप्रवृत्ति का भंडा-फोड़ करके नीचता का आश्रय नहीं लेती। अंत को उसके चरित्र की दृढ़ता विजय पाती है—प्रेमानंद सिर झुकाते हैं, विपिन की आँखें खुल जाती हैं, विपिन की मा खुद आकर बहू के रूप में सादर उसे ग्रहण करती हैं।

स्थानाभाव के कारण हम स्थान-स्थान से उद्धरण उद्धृत करके अपनी इस आलोचना को अधिक स्पष्ट नहीं कर सके। विद्वान् पाठक इस संकेत-मात्र से ही सब समझ लेंगे। अंत को हम इसके मूल-लेखक चारु बाबू को धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझते हैं, जिनकी उदारता से हमें यह सुंदर पुस्तक हिंदी-भाषा-भाषियों के आगे उपस्थित करने का अवसर प्राप्त हुआ। हमने मूल का रस अनुवाद में भी रखने की चेष्टा की है; कह नहीं सकते, कहाँ तक कृत-कार्य हो सके हैं।

१। ५। २३ रूपनारायण पांडेय

द्वितीय संस्करण का वक्तव्य

हिंदी-संसार ने इस उपन्यास का जैसा उदारता-पूर्ण आदर किया है, उसके लिये हम उसके कृतज्ञ हैं। साल-भर के भीतर ही इसका द्वितीय संस्करण होना इस पुस्तक के लिये गौरव की और गंगा-पुस्तकमाला के लिये गर्व की बात है। पाठकों की कृपा से उत्साहित होकर इस बार इसमें कई चित्र भी दे दिए गए हैं, जिनमें तिरंगे भी है। चित्रों से इस संस्करण की शोभा और भी बढ़ गई। आशा है, इस संस्करण का भी यथेष्ट आदर होगा।

रानीकटरा
लखनऊ
१६।१।२५

रूपनारायण पांडेय

बहता हुआ फूल

पहला परिच्छेद

मथुरापुर के दस आना हिस्से के मालिक ज़मींदार बाबू हरि-विहारी के महल की ड्योढ़ी पर एक भिक्षुक खँजड़ी बजाकर आगमनी ❀ का गान गा रहा था—

'पुरवासी बोले, रानी तोर हारा तारा एलो ऐ।
अमनि पागलिनी - प्राय एलोकेशे धाय
बोले, कै आमार उमा कै ?' †

उसी समय महल की छत के ऊपर एक विधवा अकेली बैठी पिट्ठी को 'बड़ियाँ' देती हुई यह गान सुन रही थीं।

विधवा की अवस्था पैंतीस वर्ष से अधिक नहीं है। इकहरा, दुबला, लंबा, सुंदर चेहरा है। उनके मुख की श्री में, दुःख और

❀ देवी के आगमन के विषय का वर्णन जिनमें होता है, वे आगमनी-गान कहाते हैं। क्वाँर के महीने में, दुर्गा-पूजा के समय में, बंगाल में, ये गान बहुत गाए जाते हैं।

† इसका अर्थ है—"पुरवासी लोग कहते हैं—रानी, तेरी खोई हुई तारा (तारा देवी का नाम है) वह आ गई। (पार्वती की माता) यह सुनते ही पागल-सी बाल खोले दौड़ती है, और कहती है—कहाँ, मेरी उमा कहाँ है ?"

असंतोष की मलिन विषादमयी कठोरता के बीच, ब्रह्मचर्य की एक ज्योति कृष्ण-पक्ष की चाँदनी की तरह झलक रही है।

शरद्-ऋतु का प्रातःकाल है। शारदा की अभ्यर्थना करने के लिये ही जैसे वह गोरे रंग की विधवा नहाकर पवित्रता-पूर्वक नई सफ़ेद रेशमी धोती पहने, धूप की ओर पीठ किए, चाँदी की थाली में पिसी हुई उर्द की दाल सामने रक्खे, शारद लक्ष्मी की पूजा की बड़ियाँ दे रही थीं। चारो ओर सब शुभ्र और शुचि था। विधवा गोरे हाथों से फुर्ती के साथ पिसी दाल को फेंट रही थीं, और समुद्र-फेन की तरह वह दाल और भी श्वेत-वर्ण होकर फूल रही थी। वह विधवा नई धुली हुई चटाई के ऊपर सफ़ेद चूने की अस्तरकारीवाले मठ-मंदिर के समान सुडौल बड़ियाँ क़तार-की-क़तार चुआती चली जाती थीं।

वहीं पर सोने के समान चमकीली, मक्खन के समान कोमल और कमल-नाल के समान गोल, सुडौल हाथ-पैरोंवाली तीन-चार बरस की एक छोटी लड़की, कुछ सोने के गहने पहने, पैर फैलाए बैठी हुई, एक गुड़िया को गोद में लिए, उसके साथ लगातार तरह-तरह की बातें करके मानो आगे चलकर होनेवाले अपने बच्चों को दुलराने-खिलाने और प्यार करने का अभ्यास कर रही थी।

वह लड़की न-जाने क्या सोचकर विधवा का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिये एकाएक आप-ही-आप कहने लगी—"ताती-अम्मा बलियाँ देगी, और बिनी खायगी! ताती-अम्मा बलियाँ देगी, और बिनी कुल-कुल कलके खायगी!—क्यों ताती-अम्मा?"

विधवा ने उसकी ओर स्नेह-पूर्ण दृष्टि से देखकर स्नेह-गद्गद स्वर में कहा—"ना बिनू, यह न कहना चाहिए। ये बड़ियाँ दुर्गा माता की हैं। पहले दुर्गा-माई का भोग लगेगा, फिर बिनी प्रसाद खायगी। क्यों?"

यह सुनकर बिनी ने स्वीकार-सूचक भाव से गर्दन टेढ़ी करके कहा—"पहले दुलगा-माई का भोग लगेगा, फिर बिनी पछाद खायगी। क्यों ताती-अम्मा ?"

विधवा ने कहा—"हाँ, बिनी मेरी रानी बेटी है। मैं बढ़ियाँ देती हूँ, तुम चुपचाप बैठकर देखो, बोलना नहीं। क्यों ?"

बिनी ने फिर गर्दन टेढ़ी करके इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। उसके बाद वह अपनी संतान के प्रति शिशु-जननी के निष्कपट स्नेह से पूर्ण संपूर्ण मन को लगाकर, उसे, गोद में लिटाकर, हिला-हिलाकर, गाने के स्वर में लोरी कहकर, सुलाने लगी—

आ जा ली निंदिया आ जा,
ललला को मेले छुला जा ;
आ जा ले चंदा, आ जा ले चंदा,
ललला को मेले छुला जा।

इस शिशु-जननी के मातृभाव के अभिनय को देखकर और भिक्षुक के मुख से आगमनी-गान सुनकर चाची-अम्मा (इनका नाम उमा था, लेकिन सब लोग चाची-अम्मा कहते थे, इसी से हम भी प्रायः चाची-अम्मा ही लिखेंगे) के हृदय का निष्फल, निराश्रय मातृस्नेह रह-रहकर उमड़ रहा था। उनका वह अतृप्त स्नेह कोई अवलंब पाने के लिये व्याकुल होकर, आँसुओं के रूप में प्रकट होकर, पलकों में झलक आता था, और वह चटपट उन आँसुओं को आँचल से पोंछ डालती थीं।

इसी समय नीचे के खंड में एक शोर-सा सुन पड़ा। कई आवाज़ें एक साथ आग्रह और उत्सुकता के साथ पूछ रही थीं—"रोहिणी, रोहिणी, ओ रोहिणी, यह किसकी चिट्ठी है री ?"

ज़मींदार के ज़नाने में साधारणतः चिट्ठी सात ड्योढ़ियाँ लाँघकर भीतर जाने का साहस नहीं करती। अगर शायद कभी ज़मींदार की

स्त्री के नाम की एक-आध चिट्ठी हिम्मत करके अंतःपुर में पहुँच जाती है, तो उसकी दुर्दशा की हद नहीं। यह बात कठिन समस्या हो उठती है कि कौन वह चिट्ठी पढ़कर, जटिल अक्षर-जाल के भीतर से उसका कुंठित अर्थ निकालकर सुनावेगा। चिट्ठी आने पर भुवनेश्वर मुंशी तलब किए जाते हैं। वह इत्तिला कराकर, खँखारते हुए भीतर आकर दरवाज़े की आड़ में खड़ी हुई चिट्ठी की मालकिन को उसका मतलब सुना जाते हैं।

इसी कारण रोहिणी दासी के हाथ में चिट्ठी देखते ही महल के भीतर की सब स्त्रियाँ चंचल भाव से यह जानने के लिये उत्सुक हो उठी थीं कि वह किसकी चिट्ठी है ?

रोहिणी ने गंभीर भाव धारण करके कहा—"यह चिट्ठी चाची-अम्मा की है।"

चाची एकाग्र मन से बड़ियाँ दे रही थीं; इस घटना से उनकी वह एकाग्रता नष्ट हो गई। उन्होंने उठकर, छत की छोटी भीतरी दीवार पर झुककर, एक बार झाँककर नीचे देखा। उसके बाद लौटकर वैसे ही एकाग्र भाव से बड़ियाँ देने लगीं; जैसे उनके चंचल होने का कोई कारण नहीं है। इसका कारण यही था कि ज़मींदार के अंतःपुर में जिस दिन से कोई स्त्री आश्रय पाती है, उसी दिन से उसे बाहर का संबंध छोड़ देना पड़ता है। बाहर का ख़बर पाने के लिये व्याकुल सब होती हैं; लेकिन वह ख़बर पाने के लिये यत्न करने का अधिकार किसी को नहीं होता।

इसी से नीचे की ओर झाँककर वह तो चुप हो गईं, लेकिन नीचे की अन्य स्त्रियों का आग्रह एकदम बढ़ उठा। एक स्त्री ने कहा—"चाची-अम्मा को किसने चिट्ठी भेजी ? चाची-अम्मा के तो तीनो कुलों में कोई नहीं है, चिट्ठी कौन भेजेगा ?"

रोहिणी ने भौंहें सिकोड़कर, ओठ मटकाकर, कहा—"मैं कैसे जान

सकती हूँ कि चाची-अम्मा के कोई है या नहीं ? मैं न चाची-अम्मा का साथिन हूँ, और न जोतिस ही जानती हूँ ।"

रोहिणी का ढंग देखकर प्रश्न करनेवाली चुप हो गई । और किसी को कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ ।

इसी समय किसी ने पुरखिन की-सी भारी आवाज़ से कहा—"यह चिट्ठी शायद मेरे विपिन ने भेजी होगी । इसके सिवा और कौन छोटी बहू को चिट्ठी भेजेगा ?"

तब फिर शोर-गुल होने लगा—"दे रोहिणी, चिट्ठी दे—चाची-अम्मा को दे आऊँ ।"

छोटे-छोटे बालक-बालिका तक रोहिणी को घेरे खड़े थे, और उसके हाथ से चिट्ठी छीनने के लिये उछलते और चिल्लाते थे । वे कह रहे थे—"रोहिणी, रोहिणी, मुझे दे । ओ रोहिणी, मुझे दे । उसे न देना, मुझे दे ।"

रोहिणी बाएँ हाथ में चिट्ठी लिए, उसे सिर से ऊँचा किए, दाहने हाथ से भीड़ हटाते-हटाते, झनककर कहने लगी—"हटो-हटो, कचहरी के फाटक से यहाँ तक ले आई हूँ, तो चाची-अम्मा के पास तक भी ले जाऊँगी । ओ चाची-अम्मा, तुम कहाँ हो जी ?"

रोहिणी ने चाची-अम्मा को ज़ोर से पुकारा ।

चाची-अम्मा ने चटपट उठकर, छत की मुड़ेर के पास खड़े होकर, कहा—"क्या है रोहिणी ? मैं इस छत में बड़ियाँ दे रही हूँ ।"

रोहिणी ने वह चिट्ठी ऊपर उठाकर चाची-अम्मा को दिखाकर कहा—"तुम्हारी चिट्ठी आई है ।"

चाची-अम्मा ने कुछ भी व्यग्रता न दिखाकर कहा—"कौए बड़ियों में मुँह डाल देंगे; तू यहीं आकर दे न जा ।"

रोहिणी छत पर गई । वह ज़मींदार के घर की दासियों में सर्वोपरि है । ख़ुद ज़मींदार बाबू भी एक समय उसके ताबे में थे ।

ज़मींदार बाबू के ऊपर रोहिणी का प्रभाव अभी तक थोड़ा-बहुत होने के संदेह से नौकर-चाकर, दासी, आश्रित स्वजन, सब रोहिणी को कुछ-कुछ दबते हैं—उसकी ख़ातिर करते हैं। उसका भरा हुआ, लंबा चेहरा और गेहुआँ रंग पॉलिश किए हुए बादामी जूते की तरह चमचमाया करता है। स्वच्छंद और निश्चित होकर सुख में रहने के कारण, पचीस-तीस वर्ष की अवस्था होने पर भी, वह सोलह-सत्रह साल की जान पड़ती है। दोनो गालों में गुदने की बहार है। नित्य मिस्सी मलने के कारण दाँत शरीफ़े के बीज-से हो गए हैं। हाथों में सोने के मोटे, ठोस अनंत पहने है। कलाइयों में कुछ नहीं है। कारण, वह विधवा है। गले में सोने की मोटी हँसली और चंपकली है। कानों में सोने की बालियाँ हैं। कमर में सोने की मोटी एक लड़ महीन धोती के भीतर से—बादल में बिजली की तरह—चमका करती है। इसे उसने कुछ शौक़ के लिये नहीं पहन रक्खा है। वह विधवा ठहरी; उसे बहार दरकार नहीं। तालियों का गुच्छा दिन-भर में पचास दफ़े खो जाता है; इसी से उसने कमर में सूत का 'करगदा' न पहनकर एक सोने की लड़ डाल ली है। उसमें कुंजियों का गुच्छा रहता है। इसके सिवा आदमी के शरीर का क्या ठीक? बीमार पड़ने पर, या और किसी ज़रूरत पर, वही सोना काम आवेगा! छोटे-छोटे बालों को लपेटकर जूड़ा बाँध लिया है। दोनो हाथ खोलकर, धोती का आँचल कंधे पर जनेऊ की तरह डालकर कमर से लपेट रक्खा है। उसकी छोटी-छोटी दोनो आँखों से दंभ बरस रहा है। वह जैसे किसी की ओर आँख डालना ही नहीं चाहती। लेकिन जिसके ऊपर एक बार उसकी शुभ दृष्टि पड़ जाती है, तो उसे शनि की दृष्टि भी उससे अच्छी जान पड़ती है।

रोहिणी के साथ-साथ अनेक लड़के-लड़की, बहू-बेटी, दासी-टहलुई आदि भी छत पर आकर कौतुक के साथ चाची-अम्मा की

ओर देखने लगीं। आज इस असाधारण घटना के कारण जैसे अंतःपुर की स्त्रियों की दृष्टि में चाची-अम्मा एक बिलकुल नई—कौतूहल की चीज़—हो गई थीं।

बालक विनोद ने अपने साथी पाँचू से चुपके-चुपके पूछा—"हाँ भाई पाँचू, औरतों की चिट्ठी भी आती है?"

पाँचू ने अपनी दस बरस की लंबी आयु इसी अंतःपुर में बिताई है। उसकी इतने दिनों की अभिज्ञता में ऐसी घटना आज यह पहली ही थी। वह प्रश्न करनेवाले अपने साथी को साहस करके कुछ उत्तर न दे सका। पाँचू ख़ूब गंभीर भाव से सोचने लगा—हूँ! बेशक आश्चर्य की बात है। औरतों की भी चिट्ठी आती है?

चाची-अम्मा ने बाएँ हाथ में चिट्ठी लेकर सरसरी तौर से देख लिया कि यह किसके हाथ की लिखावट है। यह लिखावट उनकी परिचित नहीं है। उसके बाद जैसे बिलकुल लाचारी के स्वर से कहा—"मुझे किसने चिट्ठी लिखी है? किससे पढ़वाऊँ? बेटा पाँचू, तू पढ़ सकेगा?"

चाची-अम्मा थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना जानती थीं। उनके स्वामी इस युग के शिक्षित पुरुष थे—आज़ाद ख़याल के आदमी थे। वह अपनी स्त्री को लिखना-पढ़ना सिखा रहे थे। लेकिन अचानक मर गए, और स्त्री का लिखना-पढ़ना भी समाप्त हो गया। चाची-अम्मा ज़मींदार हरिविहारी बाबू की रिश्ते में भावज होती हैं। उन्हें असहाय और संतान-हीन देखकर दया के मारे हरिविहारी बाबू उनके अभिभावक हुए! कुछ ही दिन बाद चाची-अम्मा की सारी ज़मींदारी, यहाँ तक कि पुरखों के रहने का घर तक, जब न-जाने किस तरह हरिविहारी के हाथ बिक गया, तब चाची-अम्मा को विवश होकर उन्हीं के घर में आश्रय लेना पड़ा। इस ज़मींदार के घर में आकर जब उन्होंने देखा, यहाँ स्त्री-जाति का

लिखी-पढ़ी होना घोर निंदा की बात है, यहाँ की स्त्रियों की धारणा है कि लिखने-पढ़ने से स्त्री विधवा, यहाँ तक कि दुराचारिणी होती है, गृह-लक्ष्मियों को माता सरस्वती की सेवा करते देखकर लक्ष्मीदेवी चंचल होती हैं, तभी से चाची-अम्मा ने अपना वह वर्ण-परिचय-मात्र की स्वल्प विद्या भी भूलने की चेष्टा शुरू कर दी। वह यत्न-पूर्वक सबके आगे अपने अक्षर-ज्ञान की बात छिपाए रहती थीं। यह चिट्ठी पाकर यद्यपि उन्हें कौतूहल हो रहा था कि चटपट लिफ़ाफ़ा फाड़कर देखें, किसने अकस्मात् उन्हें चिट्ठी लिखी है, तो भी उन्होंने उस कौतूहल को दबाकर, अत्यंत निरुपाय-सी होकर, वहाँ उपस्थित मर्दों में सबसे बड़े और ज्ञान में श्रेष्ठ पाँचू की शरण ग्रहण की।

पाँचू दस बरस का लड़का है। सौर से ही वह दुबला है। भगवान् के मंदिर में धरना देकर, शृंगार और उत्सव कराने की मानता मानकर, पाँचू की मा ने यह पुत्र-रत्न पाया है। सैकड़ों 'मानता' मानकर, पचासों कवच-गंडे-तावीज़ पहनाकर, 'शत्रुओं की आँखों में राई-नोन भटकटैया के काँटे' कह-कहकर, पाल-पोसकर, माता ने पुत्र को इतना बड़ा किया है। पाँचू ने अब दसवें वर्ष में पैर रक्खा है। उसका सिर बड़ा और शरीर दुबला-पतला है। पेट हवा से फूला हुआ फ़ुटबाल हो रहा है। गले में, एक मैले काले ठर्रे में, अनेकों तावीज़ हैं। किसी की सूरत मृदंग-सी, किसी की ढोल-सी, किसी की हड़-सी और किसी की चौपहल ईंट-सी है। कोई ताँबे का, कोई लोहे का, कोई चाँदी का, कोई सोने का और कोई अष्ट-धातु का है। तावीज़ों के बीच में एक सुवर्ण-मंडित आँवले की गुठली और एक घिसा-फूटा पैसा भी पड़ा हुआ है। तावीज़ों के हर पहलू में पाँचू के घिसे दाँतों के अत्याचार-चिह्न अंकित हैं। पाँचू के सिर पर मानता के बड़े-बड़े बाल हैं। जगह-जगह पर लटें बन गई हैं, और वे इमली के पेड़ में इमलियों की तरह इधर-उधर लटक रही हैं। उसके

दाहने हाथ में काला धागा, पैर में लोहे का पतला कड़ा और नाक में छोटी-सी सोने की बाली है। इस तरह इधर-उधर रस्सा-रस्सी कसकर, सब अंगों में लंगर बाँधकर, किसी तरह वह बेचारा संसार-समुद्र के तूफ़ान से बचाकर रक्खा गया है। लेकिन यमराज की दृष्टि के प्रबल आकर्षण से पाँचू को बचाने और इस लोक में रखने के लिये ऐसे तरह-तरह के बंधन भी पाँचू की मा को यथेष्ट नहीं जान पड़ते थे।

चाची-अम्मा ने इतने लोगों के बीच पाँचू को ही चिट्ठी पढ़ने के योग्य जाना, यह देखकर पाँचू ने अपने को गौरवशाली समझा।

उसने उत्साह-पूर्वक ज़ोर से सिर हिलाकर कहा—"पढ़ सकूँगा चाची-अम्मा।"

सबने अवाक् होकर आश्चर्य के साथ पाँचू के मुँह की ओर देखा। पाँचू के इस अत्यंत अद्भुत साहस को देखकर सबने मन-ही-मन उसका अभिनंदन किया। न-जाने कहाँ किसने काग़ज़ के ऊपर स्याही से जो जी चाहा, सो लिखा है, और पाँचू यहाँ से उन्हीं लकीरों को देखकर उसके मन की बात ठीक-ठीक बता देगा! बड़े अचरज की बात है! यह तो बापूदेव शास्त्री ज्यातिषी की करामात से कम नहीं है! आहा, लड़का जीता रहेगा, तो अवश्य किसी समय एक अंतर्यामी हाकिम होगा, और लोगों के हृदय का हाल जानकर ऐसा न्याय करेगा कि वह दूध-का-दूध और पानी-का-पानी होगा! वहाँ पर जितनी औरतें खड़ी थीं, उन्हें इस बारे में रत्ती-भर संदेह नहीं रहा। सबके मुख और आँखों में प्रशंसा का भाव देखकर पाँचू की मा का हृदय भी, पाँचू के हृदय की तरह, आनंद-मिश्रित अहंकार से परिपूर्ण हो उठा। वह भी अपने लड़के की ओर स्नेह-गर्व-कौतुक-पूर्ण दृष्टि से ताकने लगी।

पाँचू ने किसी बड़े विज्ञ पुरुष की तरह गंभीर भाव से चिट्ठी

हाथ में ले ली। लेकिन उसके बाद वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। लिफ़ाफ़े से चिट्ठी बाहर निकालने का ढंग उसे नहीं मालूम! वह किस राह से व्यूह-भेद करके लिफ़ाफ़े के भीतर क़ैद चिट्ठी को बाहर निकाल सकता है, यही निश्चय करने के लिये उसने दो-चार बार लिफ़ाफ़े को उलट-पलटकर देखा।

पुत्र की विपत्ति समझकर पाँचू की मा ने कहा—"दे, मैं खोल दूँ।"

माता की इस सहायता से पाँचू की मुश्किल टल गई। लेकिन इतने आदमियों के सामने अपनी अक्षमता प्रकट हो जाने से वह कुछ लज्जित और कुंठित भी हुआ। माता के ऊपर कुछ कुपित होकर पाँचू ने अपने मन में सोचा—उसकी मा ने क्यों इतनी जल्दी उसके हाथ से चिट्ठी छीन ली! और कुछ देर सोचने का अवकाश मिलता, तो ज़रूर वह इस तरह लिफ़ाफ़ा फाड़े बिना ही चिट्ठी बाहर निकालने का उपाय ढूँढ़ निकालता! लिफ़ाफ़ा फाड़कर कौन नहीं चिट्ठी निकाल सकता? अगर यों ही चिट्ठी निकालनी थी, तो उसकी मा को चाहिए था कि उससे कह देती। वह फ़ौरन् लिफ़ाफ़ा फाड़ डालता, और चिट्ठी निकाल लेता!

मा ने चिट्ठी निकालकर बेटे के हाथ में दी। पाँचू ने चिट्ठी को तह खोलकर देखा, चिट्ठी के अक्षरों की शकल उसके वर्ण-परिचय के अक्षरों से तनिक भी नहीं मिलती। उसे उन अक्षरों की पंक्ति काली लकीरों की गुत्थी-सी जान पड़ी। वह बार-बार तले से ऊपर तक आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा। उसे जान पड़ा, इन छोटे-छोटे, टेढ़े-मेढ़े अक्षरों की गुत्थी सुलझाना साधारण काम नहीं है। इन अक्षरों से अच्छे, बड़े और साफ़ अक्षर तो वह ख़ुद तख़्ती पर लिखा करता है। पाँचू पत्र-पाठ में परास्त होकर, अत्यंत अवज्ञा के साथ चिट्ठी फेककर, मुँह बनाकर कहने लगा—"बहुत ख़राब लिखावट है। ये छोटे-छोटे लिपे-पुते अक्षर कोई नहीं पढ़ सकता।"

यह देख-सुनकर सब औरतें एक साथ हा-हा-हा करके हँस पड़ीं। पाँचू लज्जित होकर वहाँ से लंबा हुआ।

सब औरतें अपने मन में सोचने लगीं— लड़का किसी काम का नहीं है! जैसा मूर्ख बाप है, वैसा ही बेटा भी। वही मसल है— "ओनामासी धम, न बाप पढ़े न हम।"

पुत्र चिट्ठी नहीं पढ़ सका, इससे उसकी मा अप्रतिभ होकर, सिर नीचा करके पैर के अँगूठे से धरती खोदने लगी। उसका काला चेहरा लज्जा के मारे और काला हो गया।

चाची-अम्मा फिर मुश्किल में पड़ गईं!

रोहिणी ने कहा—"चाची-अम्मा, ठाकुरजी के मंदिर में भट्टाचार्य-जी पूजा कर रहे हैं। जाओ, उनसे चिट्ठी पढ़वा लो।"

यह प्रस्ताव सबको ठीक जँचा। सबने कहा—"हाँ-हाँ, ख़ूब सोचा रोहिणी!"

इतने लोगों के बीच अपनी बुद्धि की श्रेष्ठता के गौरव से रोहिणी मन-ही-मन बहुत ख़ुश हुई। लेकिन प्रकट में विनय के भाव से मुस्किराकर उसने गंभीर भाव धारण कर लिया, जैसे इस प्रशंसा से उसका कुछ बना-बिगड़ा नहीं—ऐसी बुद्धि का परिचय वह सदा दिया करती है, और ऐसी प्रशंसा भी उसे नित्य-निरंतर मिला करती है। मगर उसकी बिल्ली की-सी दोनों गोल-गोल, छोटी-छोटी आँखें उज्ज्वल हो उठीं, और सबके मुखों पर घूम-घूमकर प्रशंसा की दृष्टि की भीख माँगने लगीं।

रोहिणी की सलाह सुनकर चाची-अम्मा ने आई हुई स्त्रियों में से एक की ओर देखकर अनुरोध के स्वर से कहा—"बिंदो, थोड़ी-सी बड़ियाँ देना बाक़ी है, तू तब तक बड़ियाँ दे बहन, मैं चटपट जाकर चिट्ठी पढ़वा लूँ। पिट्ठी का फेना बैठा जाता है।"

सब चिट्ठी का हाल सुनने जायँगी, और उसे अकेले घाम में बैठ-

कर बड़ियाँ देना होगा, यह सोचकर बिंदो अपने मन में कुछ उदास हो गई। उसने कहा—"चाची-अम्मा, फेना बैठ जाने दो, मैं अभी लौटकर फिर पिट्ठी फेंट दूँगी। पिट्ठी की थाली चटाई से मूँद दो, नहीं तो कौए आकर मुँह डाल देंगे।"

चाची-अम्मा ने और कुछ न कहकर थाली के किनारे में यथा-संभव हाथ की पिट्ठी पोंछकर उसे ढक दिया, और बाएँ हाथ में चिट्ठी लिए भट्टाचार्य के पास चलीं।

ज़मींदार हरिविहारी के गृह-देवता लक्ष्मी-जनार्दन थे। एक शालग्राम-शिला का ही नाम लक्ष्मी-जनार्दन था। पंडित नंदकिशोर स्मृतिरत्न ज़मींदार के कुल-पुरोहित थे। उनसे कोई स्त्री परदा नहीं करती थीं। वह नित्य अंतःपुर में आकर गृह-देवता की पूजा कर जाते थे। स्मृतिरत्न का शरीर गोरा और लंबा-चौड़ा था। सुंदर, बलिष्ठ नंदकिशोर की अवस्था पचास से ऊपर थी। उनकी चँदिया पर एक भी बाल न था, केवल दोनों कानों के पास से पीछे तक घने बाल थे। चोटी न थी। कारण, उस जगह बाल ही न थे।

भट्टाचार्य मोटे ऊनी आसन पर सरल, उन्नत आसन से बैठे पूजा कर रहे थे। रेशमी धोती पहने और रेशमी उपरना ओढ़े हुए थे। रेशमी पीतांबर का रंग उनके शरीर की कांति से मिल गया था। शरीर पर श्वेत यज्ञोपवीत अपूर्व शोभा दे रहा था। उनके पास ही संगमरमर के फ़र्श पर धोया हुआ सफ़ेद तौलिया तह किया रक्खा था। मतलब यह कि पुजारी की तरह पूजा का स्थान और सब सामग्री साफ़ और सुथरा थी। पूजा की कोठरी धूप, गूगल, चंदन, फूल और कपूर की मनोहर सुगंध से महक रहा था।

चाची-अम्मा ने वहाँ पहुँचकर भक्ति-पूर्वक पहले भगवान् को और फिर भट्टाचार्य को साष्टांग प्रणाम किया। फिर उठकर एक किनारे खड़ी हो गईं। अन्य स्त्रियाँ और लड़के-बाले भी कुछ दूर पर खड़े हो गए।

स्मृतिरत्न ने इतनी औरतों को एक साथ आकर खड़े होते देखकर पूछा—"क्या है माजी ?"

चाची-अम्मा ने उलटे हाथ से माथे पर और घूँघट बढ़ाकर, धीमे स्वर से, कहा—"यह चिट्ठी तो देखिए, किसने भेजी है ?"

स्मृतिरत्न पंडित से ज़मींदार के घर की सभी स्त्रियाँ बोलती-चालती थीं। पंडितजी इस घर के बालक, बूढ़े, जवान, मर्द और औरत सबके हित-चिंतक थे। सब लोग निष्कपट-रूप से अपना दुख दर्द पंडितजी को सुनाते थे; कुछ भी संकोच न करते थे। पंडितजी भी उन सबको सांत्वना देकर, धीरज बँधाकर, उपदेश देकर, अपनी सलाह से यथाशक्ति उनका उपकार करने की चेष्टा करते थे। वह स्नेहमय, सच्चरित्र, सौम्य-मूर्ति, मधुरभाषी, सरल ब्राह्मण इसी कारण सबको प्रिय थे; सब उन्हें अपना आत्मीय समझते थे।

चाची-अम्मा ने आगे बढ़कर वह चिट्ठी स्मृतिरत्नजी के आगे रख दी, और कहा—"पहले देखिए, चिट्ठी लिखी किसने है ?"

चिट्ठी में क्या लिखा है, इसकी अपेक्षा चिट्ठी किसने लिखी है, यही जानने का कौतूहल चाची-अम्मा के मन में प्रबल हो उठा था।

भट्टाचार्य ने चिट्ठी खोलकर देखा, और नीचे के दस्तख़त पढ़े—"अभागिन मालती।"

चाची-अम्मा ने कहा—"ओह ! मालती ! मालती मेरी बहन की बेटी है। आहा, लड़की जनम की दुखिया है—अभागिन ही है ! ब्याह होने के बाद ही विधवा हो गई ; ससुराल में एक दिन भी नहीं रही। लौटकर आते ही उसका बाप मर गया। अब केवल मेरी बहन और वह है। मेरे बाप के नाते में अब केवल वे ही मा-बेटी है।"

सबेरे फ़क़ीर के आगमनी-गीत को सुनकर चाची-अम्मा का हृदय स्नेह-परिपूर्ण और शोक से आकुल हो उठा था। इस समय दूर रहनेवाली अपनी बहन की लड़की के दुःख को स्मरण करके उनका

हृदय एकदम स्नेह और ममता से परिपूर्ण हो उठा। उन्होंने मालती को कभी देखा नहीं, फिर भी उनका हृदय उसके लिये पागल-सा हो उठा। इस पराए घर में, क़ैदी की-सी दशा में, दूर रहनेवाले अपने आदमी की याद से उन्हें जैसे अमृत पीने की-सी तृप्ति प्राप्त हुई। उनके हृदय में निष्फल, निराश्रय मातृस्नेह आज अकस्मात् मालती की ख़बर पाकर, भूके मनुष्य की तरह दोनो हाथ बढ़ाकर, मालती को पाने के लिये छटपटाने लगा। चाची-अम्मा ने धोती के आँचल से अपनी आँखों के आँसू पोछे।

भट्टाचार्यजी हाथ फैलाकर, प्रकाश की ओर चिट्ठी करके, आँखें फैलाकर चिट्ठी पढ़ने लगे। उन्हें आँखों से कुछ कम देख पड़ता था। भट्टाचार्य ने पढ़ना शुरू किया—

"श्रीचरणकमलों में—

मौसी, मैं अभागिन हूँ। जो एक सहारा बाक़ी था, वह भी जाता रहा। मेरी स्नेहमयी मा—"

भट्टाचार्य ने चिट्ठी पढ़ना बंद करके करुण दृष्टि से चाची-अम्मा की ओर देखकर कहा—"माजी, यहाँ मेरे पास चश्मा नहीं है; अच्छी तरह सूझता नहीं। तीसरे पहर आकर पढ़ दूँगा। चिट्ठी को तब तक मेरे ही पास रहने दो।"

चाची-अम्मा ने आँचल से आँसू पोछते-पोछते कहा—"पंडितजी, मैं सब समझ गई, मेरी दीदी का पीछा हो गया है। मैं पत्थर की हूँ, सब सह लूँगी; आप चिट्ठी पढ़िए।"

भट्टाचार्य ने आँसुओं से रुँधे हुए गले को साफ़ करके पढ़ना शुरू किया—

"मेरी स्नेहमयी मा मुझे मँझधार में छोड़कर गत कार्तिक-बदी दूज को स्वर्ग सिधार गईं। मौसी, अब तुम्हारे पास आने के सिवा मेरे लिये और कहीं खड़े होने की जगह नहीं है। तुम मुझे



भट्टाचार्य ने पढ़ना शुरू किया।

अपने पास बुलाने का उपाय जल्द करो। यहाँ अकेले रहते मुझे बड़ा डर लगता है। एक-एक दिन एक-एक युग के बराबर बीतता है। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे बुला लो; देर न करना। अधिक क्या लिखूँ।

अभागिन मालती"

दम-भर रोकर चाची-अम्मा ने भर्राई हुई आवाज़ से कहा—"मैं स्त्री की जाति और पराधीन ठहरी। आप ही पराई दया के आसरे यहाँ पड़ी हूँ; उसे लाकर कहाँ रक्खूँगी? राक्षसी ने सबको खा लिया, अब मेरा आश्रय खोजती है!"

रोहिणी ने सहानुभूति दिखाकर कहा—"हाँ चाची-अम्मा, ठीक तो है! वही मसल है, अपने लिये पड़ रहने की जगह नहीं, परोसी कहे—मैं भी आऊँ!"

दासी की यह बात चाची-अम्मा के मर्मस्थल में ज़हर-बुझी सेल की तरह जाकर लगी। तो भी आश्रयदाता की मुँह-लगी दासी को कुछ कहने का साहस करना उनके लिये असंभव था। चाची-अम्मा ने रोहिणी की इस कठोर बात का विष कुछ कम करने के इरादे से अपने ही भाग्य को धिक्कार देकर कहा—"सच तो है। मैं आप ही और के लिये गलग्रह होकर दिन काट रही हूँ; दूसरे को आश्रय क्या दूँगी? उसके भाग्य में जो लिखा होगा, वही होगा। उसके लिये मैं क्या करूँगी? अभागिन ने चिट्ठी भेजकर मेरी यंत्रणा और बढ़ा दी!"

रोहिणी ने कहा—"सच तो कहती हैं! लड़की की कैसी अक्किल है! तुम तो फिर भी अपने बाप-दादे के घर में पड़ी हो; चाची-अम्मा के तो अपना एक घर भी नहीं है! उन्हें तो दूसरे के घर और दूसरे की रोटियों का ही सहारा है।"

स्मृतिरत्न ने विषाद-पूर्ण दृष्टि से रोहिणी की ओर देखकर कहा—

"रोहिणी, तू चुप रह। देखो माजी, तुम बड़ी बहू के पास जाकर उनसे सब हाल कहो। वह दयामयी हैं—माता पृथ्वी की तरह इतने आदमियों का बोझ अपने सिर उठाए हुए हैं। जहाँ इतने आदमी उनके आश्रय में रहकर खाते-पीते हैं, वहाँ और एक आदमी बढ़ जायगा। मुझे विश्वास है, वह एक निराश्रय आत्मीय कन्या को अवश्य प्रसन्नता के साथ अपने घर में स्थान देंगी। जाओ माजी, विपत्ति के समय धीरज न छोड़ना चाहिए। स्थिर होकर, समझ-बूझकर काम करने से विपत्ति अधिक समय तक नहीं ठहरती। माजी, नारायण के चरणों में भक्ति रक्खो, उन्हीं का भरोसा करो। जिसके कोई नहीं है, उसकी सहायता नारायण करते हैं। जाओ, बड़ी बहू से कहो, मैं भी हरिविहारी बाबू से समझाकर कहूँगा।"

बड़ी बहू की दया के संबंध में चाची-अम्मा को यथेष्ट संदेह होने पर भी इतने लोगों के सामने भट्टाचार्य की हाँ में हाँ मिलाने के सिवा और कोई उपाय न था। चाची-अम्मा ने आँखों के आँसू पोंछकर कहा—"ज़रूर दीदी के मन में बड़ी दया है। वह राज़ी हो जायँगी। लेकिन उस अभागिन को कलकत्ते से यहाँ कौन ले आवेगा? सयानी लड़की है; ऐसे-वैसे आदमी के साथ उसका यहाँ आना ठीक नहीं।"

भट्टाचार्य महाशय ने कहा—"उसके लिये कुछ चिंता न करो माजी! मैं नवकिशोर (अपने लड़के) को लिख दूँगा; वही तुम्हारी बहन की लड़की को यहाँ पहुँचा जायगा। अब तुम जाओ, बड़ी बहू को जाकर राज़ी करो।

चाची-अम्मा हृदय के भीतर आशा-आशंका और लज्जा-संकोच के द्वंद्व को दबाकर वहाँ से बड़ी बहू की खोज में चलीं।

दूसरा परिच्छेद

बड़ी बहू महल के भीतर के तालाब पर, संगमरमर के छोटे चबूतरे के ऊपर, एक बढ़िया मुलायम बिछौने से शोभित चटाई पर बैठी तेल की मालिश करा रही थीं। दो दासियाँ आँचल कमर से लपेटे बड़ी बहू के स्थूल शरीर में मालिश कर रही थीं।

बड़ी बहू का डील लंबाई और चौड़ाई में एक-सा है। रंग पक्का गेहुआँ है। अत्यंत अधिक साबुन मल-मलकर स्नान, उबटन और सजावट की सहायता से वह चाँदनी रात के बादल के रंग से मिलता-जुलता है। कसकर जूड़ा बाँधते-बाँधते माँग एक अंगुल चौड़ी हो गई है; मस्तक भी अधिक चौड़ा देख पड़ता है। बाल कुछ आगे के और आस-पास के गिर गए हैं, और उससे माथा और भी चौड़ा जँचता है। जान पड़ता है, जैसे नाक और आँखें अपनी जगह से बहुत ऊपर चली आई हैं। मस्तक के लंबे टीके ने जैसे बंसी में नाक को फँसाकर मस्तक-सागर में डूब जाने से बचा रक्खा है। उनके गले में बहुत मोटी सोने की हँसली है; कलाइयों में मोटे शेरदहाँ पेचदार कड़े और जड़ाऊ चूड़ियाँ हैं; हाथों में मोटे नक्काशीदार अनंत हैं; पैरों में कड़े और बल पड़े हैं; नाक में सुदर्शन चक्र के समान मोटी नथ है, जिसे मोतियों की लड़ में फँसाकर बालों में अटका रक्खा है; कानों में जड़ाऊ बालियाँ हैं; कमर में चार अंगुल चौड़ी करधनी है। बड़ी बहू की अवस्था उतनी अधिक नहीं, चालीस के लगभग होगी। उनके गर्भ से तीन बच्चे पैदा हो चुके हैं, दो पुत्र—पुलिनविहारी और विनोदविहारी, एक कन्या—विनोदिनी। पुलिन पैदायशी रोगी था। वह बारह वर्ष तक जिया, लेकिन एक दिन भी आरोग्य नहीं रहा। उसकी मृत्यु से मा के मन में एक गहरी वेदना की छाप-सी पड़ गई है। विनोद की अवस्था इस समय

आठ-नव बरस की है, और विनोदिनी तीन साल की है। लेकिन अपने गर्भ के बच्चे छोटे होने से क्या होता है, मृत बड़ी रानी का पुत्र विपिन अब सयाना हो चुका है। विपिन को सौंर में ही असहाय अवस्था में छोड़कर जब उसकी मा इस लोक से चल बसीं, तब छोटी रानी की अवस्था बहुत थोड़ी थी। उस समय भी उनके कोई बच्चा नहीं हुआ था। तब भी उन्होंने अपनी इच्छा से मातृहीन सौत के लड़के को पालने-पोसने का भार अपने ऊपर लिया। दुष्ट लोगों ने यद्यपि उस समय सोचा था कि यह भी सौत के लड़के को न जीने देने की चाल है, डाइन की माया है, लेकिन असल में विपिन ने ही पहले उनके हृदय में मातृस्नेह के अमृत-फुहारे की सहस्र विचित्र धाराएँ खोल दी थीं। विपिन उनका पहले मिला हुआ स्नेह का धन है। वह छोटी रानी की गोद में ही पलकर इतना बड़ा हुआ है। अब छोटी रानी की यही इच्छा है कि किसी तरह विपिन को ब्याहकर बहू का मुँह देखें। छोटी रानी अर्थात् बड़ी बहू की बड़ी अभिलाषा थी कि थोड़ी ही अवस्था में विपिन का ब्याह करके, किशोर-किशोरी की प्रणय-लीला देखकर, अपना जन्म सार्थक करें; लेकिन विपिन ठहरा हठी लड़का, वह पढ़ना समाप्त किए बिना किसी तरह ब्याह न करने का प्रण कर बैठा है। इसी अगहन के महीने में विपिन एम्० ए० की परीक्षा देगा। माह या फागुन के महीने में उसका ब्याह करने की बड़ी बहू ने अपने मन में ठान ली है। बहू जब घर में आ जायगी, तब तो बड़ी बहू का बहुत सज-धज और सिंगार करना देखने में अच्छा नहीं लगेगा। इसी से अभी वह सदा-सर्वदा तरह-तरह के गहने-कपड़े पहने रहकर इस जन्म की साध मिटाए लेती हैं।

वामा दासी हाथ में तेल मलते-मलते कह रही थी—"बहू रानी, यह अनंत तो बहुत कस गया है। इसे तुड़वाकर और बड़ा करवा लो।"

दूसरी दासी हाबा की मा वैसे ही कह उठी—"अरे मर, तेरी भी बातें ऐसी ही होती हैं ! बहू रानी की देह तो दिन-दिन दुबली होती जाती है। इससे बड़ा अनंत होगा, तो हाथ से गिर-गिर पड़ेगा ! यही देख, इतना ढीला है ! मगर बहू रानी, तुम्हारी देह में पुराना गहना अच्छा नहीं लगता। बड़े आदमियों को तो नित नए ढंग के गहने गढ़वाते रहना चाहिए। लेकिन नया बनवाने के लिये पुरानी अदत तुड़वाने की क्या ज़रूरत है ? तुम भी क्या कोई ग़रीब की बहू-बेटी हो ? हम लोग ग़रीब आदमी हैं—बड़ी कठिनाई से कहीं एक-दो चीज़ें बनवाकर पहन पाती हैं। बीमार होने पर चाहे ढीला होकर गिरने लगे, और चाहे मोटे होने पर मास में घुस जाय, वही पहनना पड़ेगा। तुम लोग हो राजा-रजवाड़े ; पुराने गहने-कपड़े नौकर-चाकरों को हाथ उठाकर दे दोगी, तुम्हारा नाम होगा, और हम लोगों के दरिद्र दूर हो जायँगे।"

बड़ी बहू चाची-अम्मा की चिट्ठी की ख़बर जानने के लिये उत्सुक और अनमनी हो रही थीं। वह पुरखिन ठहरीं, देखने के लिये दौड़े जाना उन्हें सोहता नहीं। वह चिट्ठी के भीतर का वृत्तांत जानने के लिये किसी तरह की व्यग्रता प्रकट नहीं कर सकती थीं ; लेकिन हरएक मिनट उन्हें पहाड़ हो रहा था। वह यही सोच रही थीं कि अब रोहिणी आती है—अब रोहिणी आती है, आकर सब हाल सुनाती है। दासियाँ जिस समय उनके दोनो मोटे अनंतों पर नज़र लगाकर उन्हें नौकर-चाकरों को पुराने गहने-कपड़े देकर नाम कमाने की सलाह दे रही थीं, उस समय उनका ध्यान दासियों की बातों पर नहीं था। बड़ी बहू ने अन्यमनस्क भाव से कहा—"ये सब गहने अब मैं और कितने दिन पहनूँगी ? विपिन की बहू के आते ही उसे दे दूँगी।"

वैसे ही दासियों ने बड़े उल्लास के साथ कहना शुरू किया—"हाँ

बहू रानी, बड़े बबुआ का ब्याह कब है ? मगर देखो, हम पहले ही से कहे रखती हैं, ख़ूब अच्छी तरह इनाम लेंगी। रेशमी धोती-जोड़ा, सोने की कंठी और कड़े देने होंगे।"

बड़ी बहू ने कहा—"मेरा तो मन है कि इसी माह या फागुन में विपिन का ब्याह कर दूँ ! देखूँ, घर आने पर वह क्या कहता है। सयाने और लायक़ लड़के की सलाह लिए बिना तो कुछ किया नहीं जा सकता।"

हाबा की मा ने कहा—"ठीक तो कहती हो बहू रानी ! बड़े बबुआ के न-जाने कैसे ढंग हैं ! ब्याह करना ही नहीं चाहते। कलकत्ते में रहकर चाल-चलन कुछ बिगाड़ तो नहीं बैठे।"

बड़ी बहू ने कहा—"ना-ना, मेरा विपिन वैसा लड़का नहीं है, वह हज़ार-दो हज़ार में एक लड़का है। उसके चाल-चलन में रत्ती-भर दोष नहीं है। लिखने-पढ़ने ही में मगन रहता है, इसी से ब्याह की ओर ध्यान नहीं देता। अब की पढ़ाई ख़तम हो जायगी; अब क्यों न ब्याह के लिये राज़ी होगा ?"

वैसे ही बहू रानी के स्वर में स्वर मिलाकर वामा बोल उठी—"बड़े बबुआ का चाल-चलन तो ऐसा अच्छा है कि वैसा किसी भी लड़के का न होगा। लेकिन लिखने-पढ़ने की ऐसी धुन सवार रहती है कि और किसी तरफ़ ध्यान ही नहीं देते ! दिन-रात पढ़ने में ही लगे रहते हैं ! यह नहीं सोचते कि क्या नौकरी करके पेट पालना है, या भट्टाचार्य भैया की तरह पाठशाला खोलकर लड़कों को पढ़ाना है ? देखो, छोटे राजा के मँझले भाई तो हमारे बड़े बबुआ की ही हमजोली हैं; उन्होंने इतनी ही उमर में तीन-तीन ब्याह कर लिए हैं। उसके ऊपर दीवान रघुनाथ की विधवा भावज काली-तारा को भी बुलाकर घर में रख लिया है। हाँ बहू रानी, मैंने सुना है, वह उसके साथ ब्याह भी करेंगे ! तुम्हीं बताओ बहू रानी, विधवा

का भी कहीं ब्याह होता है ? मगर हाँ, यह कहो कि बड़े आदमियों की बात दूसरी है। वे मन पर धरें, तो क्या नहीं कर सकते ? इसी को ज़मींदारी चाल कहते हैं। उधर हमारे बड़े बबुआ को देखो, किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते, किसी से अच्छी तरह बात भी नहीं करते, दिन-रात किताब लिए रहते हैं। दिन-रात अगर लिखते-पढ़ते ही रहे, तो मुहर्रिर-गुमाश्ते और ज़मींदार में फ़र्क़ ही क्या रहा ?"

हाबा की मा ने कहा—"हमारे बड़े बबुआ की चाल तो भट्टाचार्य भैया (नंदकिशोर स्मृतिरत्न का बेटा) ने ही बिगाड़ दी है। बड़े बबुआ उन्हीं के कहने से उठते हैं, उन्हीं के कहने से बैठते हैं; जो वह कहते हैं, वही करते हैं। मैंने अपने कान से सुना है, भट्टाचार्य भैया बड़े बबुआ को सलाह देते थे कि लड़के-लड़कियों का ब्याह थोड़ी उमर में न करना चाहिए ; विधवा का ब्याह करना चाहिए ; ऐश-आराम, हँसी-दिल्लगी करना वाहियात बात है ! सुन लिया बहू रानी ! राजा के बेटे को फ़क़ीरी की सलाह ! बहू रानी, तुम बड़े बबुआ को भट्टाचार्य भैया के पास अब बहुत न उठने-बैठने दिया करो।"

बड़ी बहू ने कहा—"विपिन तो किसी की सुनेगा नहीं। वह नव-किशोर को एकदम अपने सगे बड़े भाई के बराबर समझता है। ज्ञान-बुद्धि होने पर आप समझकर सँभल जायगा। बाघ का बच्चा बाघ ही होगा।"

मित्रों को जुदा करने की चेष्टा में अकृतकार्य होकर हाबा की मा ने कुंठित मन से पूछा—"क्यों बहू रानी, बड़े बबुआ वग़ैरह कब आवेंगे ?"

बड़ी बहू ने मातृ-गर्व से उत्फुल्ल होकर कहा—"अब की यही विपिन का आख़िरी इम्तिहान है। अगहन में इम्तिहान देकर घर आवेगा।"

हाबा की मा ने कहा—"ऐं ! तो क्या अब की दुर्गा-पूजा के दिनों में बड़े बबुआ घर न आवेंगे ? तो फिर अभी भट्टाचार्य भैया किस तरह आवेंगे ?"

बहू रानी ने कहा—"ना, नवकिशोर भी विपिन ही के साथ आवेगा; अभी नहीं।"

हाबा की मा ने कहा—"नहीं बहू रानी, भट्टाचार्य भैया अभी आवेंगे। बड़े भट्टाचार्य कह रहे थे। तेल लेकर लौटते बखत मैं अपने कान से सुन आई हूँ।"

बहू रानी ने उत्सुक होकर पूछा—"बड़े भट्टाचार्य क्या कह रहे थे ?"

हाबा की मा ने कहा—"चाची-अम्मा की बहन की लड़की यहाँ आनेवाली है कि नहीं ! चाची-अम्मा सोच रही थीं कि उसे कलकत्ते से यहाँ कौन ले आवेगा। बड़े भट्टाचार्य ने कहा, उसके लिये क्या चिंता है, नवकिशोर अपने साथ लेता आवेगा।"

बहू रानी ने विस्मित होकर कहा—"छोटी बहू की बहन की लड़की ? वह शायद यहाँ आवेगी ?"

इतनी बड़ी एक नई ख़बर सबसे पहले मालकिन को सुनाने का सुयोग पाकर हाबा की मा आनंद और गौरव से फूल उठी। बोली—"ऐं ! सब सुन चुके, तुमने ही नहीं सुना बहू रानी ? चाची-अम्मा की बहन का पीछा हो गया है ! अब वहाँ अकेली उनकी बहन की लड़की रह गई है। वह लड़की विधवा है। उसी ने चाची-अम्मा को चिट्ठी भेजी है, और यहाँ आने के लिये लिखा है। चाची-अम्मा की भी सब बातें निराली ही होती हैं। सबको यह ख़बर जनाई, और जिनके घर में बहन की लड़की को बुलाकर रक्खेंगी, उन्हीं को नहीं जनाई। और, तुमसे बिना पूछे ही बुलाने का ठीक-ठाक भी कर लिया ! चाची-अम्मा की भी अच्छी अक्किल है ! वाह !"

दासी के इस इशारे से बहू रानी का मन भारी हो उठा। उन्होंने

समझा, छोटी बहू ने मुझे कुछ समझा ही नहीं ! मुझसे बिना पूछे ही बहन की लड़की को अपने पास बुलाने की व्यवस्था कर रही हैं !"

बड़ी बहू को चुप देखकर हाबा की मा कहने लगी—"रोहिणी ठीक ही कह रही थी कि अपने पड़ रहने की जगह नहीं, पड़ोसिन से कहें, तुम भी आओ ! रोहिणी में यह ऐब ज़रूर है कि वह मुझसे लड़ा-झगड़ा करती है, लेकिन ईमान की बात तो यह है कि बात पते की कहती है, और सबसे समझदार भी है।"

बड़ी बहू असल में बहुत सीधे स्वभाव की स्त्री हैं। केवल इस अहंकार ने कि वह बहुत बड़े घराने की बहू-बेटी हैं, एक भारी ज़मींदार के परिवार की पुरखिन हैं, उन्हें हद से ज़्यादा प्रभुत्व-प्रिय और ख़ुशामदख़ोर बना रक्खा है। वह रानी होने के कारण घर में रहनेवाली अन्य स्त्रियों के पास उठ-बैठ नहीं सकती थीं, बाहर की, पास-पड़ोस की औरतों में भी उनके समकक्ष या उनकी साथिन होने के लायक़ कोई नहीं थीं। इस कारण उन्हें सदा दासियों की ही संगति में दिन बिताने पड़ते थे। नीच जाति की दासियों के संसर्ग में रहने के कारण उनका मन भलाई-बुराई मिलाकर जटिल हो गया था। किसी एक बड़े मामले में वह क्यों उदारता का परिचय देती हैं, और किसी मामूली मामले में क्यों एकदम संकीर्ण-हृदय बन जाती हैं, यह समझ में नहीं आता था। उनके परिवार में किसी तरह का संबंध रखनेवाली और किसी तरह का भी संबंध न रखनेवाली आश्रित स्त्रियों की संख्या कम नहीं थी। कोई स्त्री आकर आश्रय माँगते ही उनके परिवार में जगह पा जाती थी, और वह राजसी ठाट तथा सुख से रहती थी ! लेकिन चाची-अम्मा के मुख से प्रार्थना सुनने के पहले ही दासी के मुँह से चाची-अम्मा की अनाथ, निराश्रय बहन की बेटी के आने की ख़बर विकृत भाव से सुनकर उनका मन उस ओर से विमुख हो गया।

इसका एक विशेष कारण यह भी था कि बड़ी बहू किसी तरह कभी यह बात नहीं भूलती थीं कि एक समय चाची-अम्मा उन्हीं के समकक्ष और ज़मींदारी में भी हिस्सेदार थीं। इसी से बड़ी बहू पग-पग पर चाची-अम्मा के साधारण काम में भी अहंकार का परिचय पाती थीं, और उनके किसी काम को सहज दृष्टि से नहीं देखती थीं। अन्य आश्रित स्त्रियों की जिस त्रुटि पर वह ध्यान भी नहीं देती थीं, चाची-अम्मा की वही त्रुटि कल्पना करके वह उनके ख़िलाफ़ हो जाती थीं।

आँखों में आँसू भरे और मालती की चिट्ठी हाथ में लिए चाची-अम्मा जब अपनी जिठानी अर्थात् बड़ी बहू के पास पहुँचीं, तब उन्होंने देखा, बड़ी बहू मुँह फुलाए, गंभीर भाव धारण किए बैठी हैं, और दासियाँ एकाग्र मन से उनकी मालिश कर रही हैं। चाची-अम्मा के साथ-साथ गर्व-भरी रोहिणी और तमाशा देखनेवाली और स्त्रियाँ भी बड़ी बहू के पास तक आई थीं। छोटे-छोटे लड़की-लड़के भी अज्ञात उत्सुकता के मारे खेलना भूलकर इस भीड़ के साथ-साथ फिर रहे थे। वे स्त्रियाँ मालकिन के मुँह का भाव देखकर दूर ही पर ठिठक रहीं। उधर छोटी बहू (चाची-अम्मा) की बहन की लड़की के मामले ने घर में एक हलचल मचा दी है, यह देखकर बड़ी बहू का मुख और भी अधिक अप्रसन्न हो उठा।

जो कुछ मामला था, सो फ़ौरन् चाची-अम्मा समझ गईं। भिक्षुक के मन में जो दीनता और लज्जा होती है, वह उनके हृदय में सेल के समान चोट पहुँचाने लगी। उनके मुँह से एक भी बात नहीं निकली; केवल आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। आज उनके शोक की अपेक्षा उनकी भिक्षा या प्रार्थना की बात ही सबकी दृष्टि में बड़ी हो उठी है, इस लज्जा के मारे उनकी मर्म-वेदना अत्यंत तीव्र हो उठी थी। उसी के साथ उन्हें जान पड़ता था कि सदा तो

उनका ऐसा समय नहीं था। एक दिन था, जब वह बड़ी बहू के ही समकक्ष थीं। उनके भी ऐसा ही ऐश्वर्य, विलास-सामग्री और दास-दासियाँ थीं। उनकी प्रसन्नता और कृपा को भिक्षा माँगते हुए ख़ुशामदी लोग इसी तरह दिन-रात उनके आगे ख़ुशामद की बातें किया करते थे। उसके बाद वह कैसा दुर्दिन आया, जिस दिन वह अकस्मात् विधवा होकर असहाय, अनाथ हो गईं, और हरिविहारी बाबू के कुचक्र से निराश्रय, सर्वस्व-हीन होकर उन्हें उन्हीं के परिवार में आश्रय पाने की भीख माँगने के लिये लाचार होना पड़ा। हरिविहारी बाबू और उनकी स्त्री ने तो उन्हें सूखा जवाब देकर एकदम रास्ते में ही बिठाना चाहा था, केवल विपिन ही की ज़िद से वह बात नहीं हो सकी। विपिन की भक्ति और यत्न से वह पराधीनता की सब ग्लानि एक तरह से भूल गई थीं। मगर आज फिर जिस 'राक्षसी' लड़की के लिये उन्हें दुबारा भिक्षा की ग्लानि स्वीकार करनी पड़ रही है, उसकी ओर से चाची-अम्मा का मन एकदम विमुख हो उठा। ऐसा होना ठीक भी था। वह दीनता और लज्जा के कारण दुविधा में पड़कर कुछ ठीक नहीं कर पाती थीं कि इस समय उन्हें क्या करना चाहिए। भिक्षा माँगने की तरह बहन की लड़की के लिये आश्रय की प्रार्थना करने में उन्हें सिर कटने का-सा कष्ट हो रहा था; उधर भिक्षा माँगने आकर ऐसे ही लौट जाना भी न सोहनेवाला अहंकार-सा जान पड़ता था।

चाची-अम्मा को चुपचाप खड़े देखकर रोहिणी से नहीं रहा गया। वह बोल उठी—"क्या हुआ जो चाची-अम्मा, बहू रानी से कहो न जी, चुपचाप खड़े-खड़े रोने से बहू रानी किस तरह जानेंगी? बहू रानी, चाची-अम्मा कहने आई हैं कि—"

चाची-अम्मा के कहने की अपेक्षा न करके रोहिणी जब चाची-अम्मा की प्रार्थना बड़ी बहू से कहने के लिये उद्यत हुई, तब चाची-

अम्मा से चुपचाप खड़े नहीं रहा गया। मालूम नहीं, रोहिणी किस ढंग से यह प्रसंग उठावे। उसकी अपेक्षा अपनी बात आप ही कहना अच्छा समझकर चाची-अम्मा चटपट रोहिणी की बात का उपसंहार करके कह उठीं—"जीजी, मेरी दीदी का स्वर्ग-वास हो गया!"

बड़ी बहू वैसे ही अप्रसन्न मुख से बैठी रहीं। उन्होंने सांत्वना की एक बात भी अपने मुँह से नहीं निकाली।

हाबा की मा बोल उठी—"सो बहू रानी सब हाल पहले ही सुन चुकी हैं। तुम्हारी बहन की लड़की के यहाँ आने की बात भी सुनने को बाक़ी नहीं है।"

चाची-अम्मा समझ गईं, उनकी भिक्षा की ख़बर उनके कहने से पहले ही बड़ी बहू के कानों तक पहुँच गई है, और इसी कारण वह ऐसी वज्र-गंभीर मूर्ति धारण किए बैठी हैं। बड़ी बहू की इस निष्ठुर नीरवता और दासियों की ढिठाई के बीच अपनी बहन की बेटी के लिये आश्रय की प्रार्थना उनके मुँह से बाहर नहीं निकल सकी। चाची-अम्मा तीक्ष्ण दृष्टि से बड़ी बहू के मुँह की ओर ताकती हुई उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा में चुपचाप, काठ की तरह, खड़ी रहीं।

चाची-अम्मा को इस तरह चुपचाप स्तब्ध-भाव से खड़े देखकर बड़ी बहू ने कुछ रूखे स्वर से कहा—"इसकी आशा मत करो छोटी बहू! तुम्हारी बहन की बेटी के यहाँ आने की सुविधा नहीं होगी।"

चाची-अम्मा—"तुमने मुझे जगह दी है जीजी, तो उसे भी जगह देने की कृपा करो। वह मेरी बहुत सगी है, और मेरे सिवा उसके और कोई है भी नहीं।"

बड़ी बहू ने मुँह टेढ़ा करके कहा—"तुम्हें जगह दी है, तो क्या ऐसा अपराध किया है कि सभी को जगह देनी पड़ेगी? मेरा घर

सराय है, या होटल कि जो कोई आवेगा, उसी को जगह देनी होगी !"

चाची-अम्मा ने बिनती के स्वर में कहा—"जीजी, न-जाने कितने आदमी तुम्हारे आश्रय में पड़े पल रहे हैं। और एक निराश्रय लड़की को आश्रय देना क्या तुम्हारे लिये ऐसा बड़ा बोझ है ?"

बड़ी बहू ने मुँह फेरकर कहा—"लोगों के डाह में जलते ही तुम्हारा जनम बीता ! और लोगों को क्यों न आश्रय दूँ ? उनके साथ सलूक करने से देश-विदेश में मेरा नाम होगा। लेकिन तुम लोगों के साथ सलूक करने से क्या फ़ायदा ? वह तो राख में घी डालने की तरह बिलकुल बेकार है।"

चाची-अम्मा की कुछ सहायता करना उन पर दया करना नहीं है, बल्कि उनका न्याय-संगत लहना चुकाना है, यह ज्ञान बड़ी बहू के मन में, बहुत ही स्पष्ट रूप से, विराजमान था, और वह उन्हें पीड़ा पहुँचाता था—उनके प्रभुत्व को संकुचित करता था। इसी कारण वह चाची-अम्मा को देख नहीं सकती थीं; उन्हें किसी तरह की सहायता पहुँचाने में वह आनंद का अनुभव नहीं कर पाती थीं। चाची-अम्मा का स्वभाव ऐसा था कि वह सहज ही हीनता नहीं स्वीकार कर सकती थीं; झूठी ख़ुशामद की बातें उनके मुँह से नहीं निकलती थीं। बड़ी बहू की बात सुनकर चाची-अम्मा का वाक्य-स्रोत फिर बंद हो गया, वह चुप होकर खड़ी रहीं।

रोहिणी बोल उठी—"सो चाची-अम्मा, तुम्हारी बहन की लड़की भी तो कम हियाव की औरत नहीं है। अपना घर रहते दूसरे के घर आने की इतनी साध क्यों है ?"

चाची-अम्मा का उत्तर सुनने के लिये बड़ी बहू ने उनके मुँह की ओर देखा।

चाची-अम्मा ने व्यथित होकर, बड़ी बहू की ओर देखकर कहा—

"सयानी लड़की है, अकेली कैसे रहे, इसी से मेरे पास आना चाहती है।"

रोहिणी ने कहा—"तो फिर तुम्हीं अपनी बहन की बेटी के पास जाकर क्यों न रहो ?"

दासी की हिम्मत देखकर चाची-अम्मा के सिर से पैरों तक आग-सी लग गई, मुँह और आँखें लाल हो उठीं—चिनगारियाँ-सी निकलने लगीं। चाची-अम्मा ने रोहिणी की ओर तीव्र दृष्टि से देखकर, कठोर स्वर से कहा—"देख रोहिणी, तू दासी है, दासी की तरह रह। मैं तुझसे प्रार्थना करने नहीं आई हूँ।"

चाची-अम्मा की इस डाँट से रोहिणी अप्रतिभ और संकुचित हो उठी। लेकिन बड़ी बहू ने उसका साहस बढ़ाकर खीझ के स्वर में कहा—"तो रोहिणी ने ऐसी बुरी बात क्या कही ? तुम वहाँ जाकर अपनी बहन की बेटी की देख-रेख करो न !"

चाची-अम्मा ने दर्प के साथ कहा—"जो लोग विधवा का सर्वनाश करते हैं, उन्हीं के मुँह में ऐसा ताना सोहता है। जेठजी अगर मेरे लिये मुट्ठी-भर अन्न का ठिकाना रखते, तो इस घर में मेरा एक घड़ी भी ठहरना उचित नहीं, यह किसी को कह देना न पड़ता। जीजी, निश्चय करके कह दो कि मेरी बहन की बेटी को अपने यहाँ आश्रय दोगी या नहीं ?"

चाची-अम्मा उत्तर की प्रत्याशा से, दर्प के साथ, बड़ी बहू के मुँह की ओर ताकने लगीं। उनकी उस तीव्र ज्वालामयी दृष्टि के सामने बड़ी बहू की दृष्टि संकुचित होकर झुक गई। वह चुपचाप अपने हाथ का कड़ा दूसरे हाथ मे फिराते-फिराते सोचने लगीं—विपिन अगर किसी तरह कुछ भी यह ख़बर पा जायगा, तो वह उनके ऊपर तो नाराज़ होगा ही, इसके सिवा शायद किसी के मर्त की अपेक्षा न करके मालती को लाकर हाज़िर कर देगा। इसलिये मालती को आश्रय

देना मंज़ूर करना ही अच्छा है। लेकिन इतनी आपत्ति करने के बाद किस तरह यह बात एकाएक स्वीकार कर लें, उसी का उपाय वह सोचने लगीं।

उत्तर मिलने में देर देखकर चाची-अम्मा समझीं, मालकिन की राय नहीं है। चाची-अम्मा को लौट जाने के लिये उद्यत देखकर बड़ी बहू चटपट कह उठीं—"छोटी बहू, मैं देखती हूँ, तुम तनिक-सी बात में ही नाराज़ हो जाती हो। उन(हरिविहारी)से एक बार कहकर देखूँ, वह क्या कहते हैं।"

चाची-अम्मा बड़ी बहू की प्रकृति को अच्छी तरह जानती थीं। उन्हें कुछ नरम होते देखकर चाची-अम्मा ने भी नरम स्वर से कहा—"जीजी, तुम्हीं तो सब करती-धरती हो। तुम जो हुकुम दोगी, उसके बारे में जेठजी कभी 'ना' नहीं करेंगे। तुम्हारी दया होने से ही सब ठीक हो जायगा।"

चाची-अम्मा की इस बात से प्रसन्न होकर पुरखिन ने कहा—"तो भी एक दफ़ा उनसे कहना तो उचित ही है। हज़ार हो, एक मालिक जब मौजूद हैं—ख़ैर, तुम जाओ, तीसरे पहर जो होगा, सो होगा।"

चाची-अम्मा—"जो होगा नहीं जीजी, उस लड़की को तुम्हें अपने पैरों में आश्रय देना ही होगा। वह अभागिन लड़की एक तो सयानी है, दूसरे रूप भी फट पड़ा है। तुम आश्रय न दोगी, तो उसके लिये धर्म की रक्षा करना कठिन हो जायगा। समाज में बदनामी होना भले आदमी के लिये मौत से बढ़कर होता है, यह तुम जानती ही हो। जीजी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।"

इतना कहकर चाची-अम्मा ने बड़ी बहू के पैर पकड़ लिए।

पुरखिन एकदम गल गईं। उन्होंने गद्‌गद होकर कहा—"आः, यह क्या करती हो छोटी बहू, तुम्हारी बहन की बेटी और मेरी

बहन की बेटी में क्या कुछ फ़र्क़ है ? तुम कुछ फ़िक्र मत करो, जाओ।"

चाची-अम्मा वहाँ से चल दीं। किसी के मुँह की ओर आँख उठाकर देखते भी उन्हें अत्यंत लज्जा मालूम पड़ती थी। उन्हें जान पड़ रहा था, जैसे सबकी दृष्टि उनकी उघरी हुई हीन दीनता का उपहास कर रही है। अपनी दीनता की लज्जा उन्हें जितनी तीव्र मालूम पड रही थी, उतना ही उनका मन मालती के ऊपर अप्रसन्न होता जा रहा था। उसी सर्वनाशी के लिये तो उन्हें इतनी लांछना, इतना अपमान सहना पड़ा। धारणा प्रबल होकर, स्नेह को भी नाँघकर, उनके मन पर अधिकार करने लगी।

तीसरा परिच्छेद

संध्या के समय स्मृतिरत्नजी लक्ष्मी-जनार्दन की आरती करने और भोग लगाकर उन्हें शयन कराने के लिये आए। ठाकुरद्वारे में घंटा बजने का शब्द सुनकर चाची-अम्मा भगवान् के दर्शन करने के लिये आईं। उन्हें देखकर भट्टाचार्य ने पूछा—"बहू रानी से क्या कहा था माजी ?"

चाची-अम्मा ने कहा—"हाँ, कहा था। वह तो राज़ी ही नहीं होती थीं; बहुत कहने-सुनने से अंत को बोलीं, जेठजी से कहकर जो निश्चय होगा, वह करेंगी।"

भट्टाचार्य ने कहा—"मैंने हरिविहारी से कहा था। वह बिलकुल सहज ही में राज़ी हो गए। लेकिन इससे मैं असमंजस में पड़ गया हूँ—किसी अच्छे काम में तो वह कभी उत्साह नहीं दिखाते। तुम्हारी बहन की लड़की इस घर में टिक सकेगी या नहीं, यही सोच रहा हूँ !"

चाची-अम्मा ने कातर स्वर से कहा—"भट्टाचार्यजी, इस घर में मैं भी अधिक दिन तक नहीं टिकने पाऊँगी। इसका परिचय भी मुझे यथेष्ट मिल रहा है।"

भट्टाचार्य ने सांत्वना के स्वर से कहा—"तो डर क्या है माजी, और दो महीने बाक़ी हैं, विपिन घर आ जायगा। तब उसके डर से तुम्हारे ऊपर कोई किसी तरह का अत्याचार नहीं कर सकेगा।"

चाची-अम्मा ने कहा—"सो ठीक है, मगर मालकिन का मिज़ाज तो कुछ समझ में ही नहीं आता। तनिक-तनिक-सी बात में बिगड़ उठती हैं। एक दफ़े वह बिगड़ बैठती हैं, तो फिर उन्हें राह पर लाना कठिन हो जाता है।"

इसी समय बाहर से पुरखिन ने क्रोध-कंपित कर्कश स्वर से कहा—"छोटी बहू!"

चाची-अम्मा का मुँह सूख गया, हृदय धड़कने लगा! पुरखिन ने अगर आड़ में खड़े होकर सब बातें सुन लीं, तो सर्वनाश हो गया! पुरखिन की आवाज़ सुनकर ठाकुरजी का प्रसाद चढ़ाने की 'मानता' करती हुई चाची-अम्मा मंदिर से बाहर निकलीं, और बोलीं—"क्यों जीजी?"

चाची-अम्मा ने देखा कि पुरखिन मंदिर की ओर ही आ रही हैं। इससे चाची-अम्मा को निश्चय हो गया कि पुरखिन ने उनकी बातें नहीं सुनीं। इससे एक ओर जैसे उनका जी ठिकाने हुआ, वैसे ही दूसरी ओर एक नई अज्ञात आशंका से वह व्याकुल हो उठीं।

बड़ी बहू ने ठाकुरद्वारे के द्वार के पास आकर गरजकर कहा—"बहन की बेटी की बात जब आप ही उनसे कहनी थी, तब ढोंग रचकर मेरे पास जाने की क्या ज़रूरत थी? सुनती हो छोटी मालकिन, बाबूजी का हुकुम हो गया! अब ले आओ अपनी सुंदरी बहन की बेटी को, तुम्हारे सब कष्ट दूर हो जायँगे!"

इस बात के भीतर जो व्यंग्य छिपा हुआ था, उसकी चोट चाची-अम्मा के मर्म-स्थल में जाकर लगी। उन्होंने भी क्रोध से गरज-कर कहा—"जीजी!"

बड़ी बहू चाची-अम्मा के तेजस्वी स्वभाव को अच्छी तरह पहचानती थीं। चाची अम्मा के इस एक ही शब्द से संक्षिप्त प्रतिवाद की उग्रता का अनुभव करके बड़ी बहू चटपट वहाँ से चल दीं।

तब चाची-अम्मा ने ऊँचे स्वर से बड़ी बहू को सुनाकर कहा—"इस ठाकुरद्वारे में खड़े होकर कहती हूँ, मैं अगर मालती को इस घर में बुलाऊँ, तो—"

स्मृतिरत्नजी ने चटपट द्वार के पास आकर कहा—"छी! माजी, क़सम कभी न खानी चाहिए। ठहरो-ठहरो, व्यर्थ क्रोध करके एक निराश्रय विधवा का सर्वनाश न करो माजी!"

करुणा और स्नेह के स्पर्श से चाची-अम्मा का क्रोध न-जाने कहाँ उड़ गया; आँसू बह चले। उन्होंने रोते-रोते कहा—"मैं अब उस लड़की का नाम भी नहीं लूँगी भट्टाचार्यजी! उस अभागिन के नसीब में जो बदा होगा, सो होगा। रामजी! कब तक और मुझे ऐसी यंत्रणा भोग करनी होगी!"

भट्टाचार्य ने कहा—"माजी, मृत्यु की कामना करना भगवान की इच्छा के विरुद्ध काम करना है, महापाप है। नारायण में भक्ति रक्खो माजी, सब भला ही होगा। तुम मालकिन का स्वभाव तो अच्छी तरह जानती ही हो। मनुष्य में जो गुण-दोष होते हैं, सो उनमें भी हैं। उनसे और एक दफ़े तुम कहोगी, तो उनका सारा क्रोध शांत हो जायगा।"

चाची-अम्मा ने आँसू पोंछकर दर्प-पूर्ण दृढ़ स्वर से कहा—"भट्टाचार्यजी, मालती को बुलाने के मामले में मैं नहीं पड़ने की।

मुँह से कहने पर भी मन में तो क़सम खा ही चुकी हूँ। उसके नसीब में जो लिखा होगा, सो होगा।"

भट्टाचार्य ने आँखें मूँदकर, लंबी साँस लेकर कहा—"नारायण!"

चाची-अम्मा ने नारायण की मूर्ति को मत्था टेककर प्रणाम किया। उसके बाद हृदय की रुँधी हुई वेदना के उमड़े हुए आँसुओं को बहाने के लिये अपनी एकांत कोठरी की ओर वह चल दीं।

साथ-ही-साथ सब वृत्तांत अतिरंजित होकर बड़ी बहू के कानों तक पहुँच गया।

चौथा परिच्छेद

कलकत्ते के दर्जीपाड़ा-मुहल्ले में ज़मींदार हरिविहारी बाबू का एक घर था। उसी घर में रहकर उनका बड़ा बेटा विपिनविहारी और उनके कुल-पुरोहित नंदकिशोर स्मृतिरत्न का इकलौता लड़का नवकिशोर, दोनो कॉलेज में पढ़ते थे।

स्मृतिरत्नजी ने जब नवकिशोर को अपनी पाठशाला में संस्कृत न पढ़ाकर अँगरेज़ी पढ़ाने का इरादा किया था, तब उनके यजमानों ने भारी आपत्ति उठाई थी। लेकिन प्रबल प्रकृति के स्मृतिरत्नजी जो उचित समझते थे, वही करते थे; किसी के डर या ख़ातिर से अपने मत के विपरीत काम नहीं करते थे।

हरिविहारी ने जब उन्हें बुलवाकर पूछा था कि भट्टाचार्यजी, ज़मींदार के घर के होनेवाले पुरोहित को आप अँगरेज़ी क्यों पढ़ाते हैं?, तब भट्टाचार्यजी ने हँसकर उत्तर दिया था कि आजकल का शास्त्र भी बहुत-कुछ अँगरेज़ी होता जा रहा है। इसीलिये शिष्य को अगर यजमान के निकट सम्मान पाने के योग्य बनने की इच्छा हो, तो गुरु या पुरोहित के लिये संस्कृत और अँगरेज़ी दोनो भाषाओं के सब शास्त्रों का ज्ञान होना ज़रूरी है।

हरिविहारी को बहस करने की आदत नहीं थी। वह भट्टाचार्यजी के साथ बहस न करके इतने ही में चुप हो रहे।

मगर उस गाँव के मुखिया निवारण मुखर्जी और प्रकृति के आदमी थे। उन्होंने भट्टाचार्य को बुद्धि भ्रष्ट होते देखकर उनके साथ तर्क-युद्ध छेड़ दिया। उन्होंने कहा—"नंदकिशोर स्मृतिरत्न का लड़का भी क्या वही विद्या सीखेगा, जिसे आजकल धुनिए-जुलाहे या नीच कौमों के लड़के पढ़ते हैं?"

भट्टाचार्य ने हँसकर कहा—"क्यों नहीं पढ़ेगा? ज्ञान के भी क्या जाति-भेद है?"

निवारण ने सीधे होकर, ज़ोर देकर, कहा—"ज्ञान के जाति-भेद है क्यों नहीं? तुम मुसलमान को वेद पढ़ा सकते हो?"

भट्टाचार्य ने वैसे ही हँसते-हँसते कहा—"क्यों न पढ़ा सकूँगा? ज़रूर पढ़ा सकता हूँ। वैसा निष्ठा-पूर्ण विद्यार्थी अगर पाऊँ, तो मुझे जितनी विद्या मालूम है, वह सब बड़े आनंद के साथ उसे सिखा सकता हूँ।"

निवारण के सिर पर जैसे एकदम वज्रपात हो गया! उन्हें और कोई युक्ति ढूँढ़े नहीं मिली, तो भट्टाचार्य को भय दिखाने के भाव से उन्होंने कहा—"ना-ना-ना, कहता हूँ, यह सब अनाचार ठीक नहीं। लड़के को नष्ट-भ्रष्ट मत करना। म्लेच्छ पुरोहित से हम लोगों का काम नहीं चलेगा। अंत को हमें क्या कुल-पुरोहित छोड़ देना पड़ेगा?"

भट्टाचार्य ने वैसे ही हँसते-हँसते कहा—"कुछ न करना होगा भाई! सब ठीक मेल खा जायगा। म्लेच्छ का जूठा खानेवाले यजमान को जब पुरोहित नहीं छोड़ते, तब केवल मुख से म्लेच्छ-भाषा का उच्चारण करने के कारण पुरोहित को भी यजमान नहीं छोड़ सकते। वह कुछ वैसा भारी अनाचार नहीं है।"

भट्टाचार्य के इस कथन के भीतर कुछ व्यंग्य का इशारा था।

निवारण ने बचपन से तरह-तरह के अनाचार करके जवानी में कमसरियट में नौकरी कर ली थी। लोग कहते हैं, वह गोरे सिपाहियों का जूठा भोजन खाकर अपना पेट भरते थे। वही अपवाद ढकने के लिये निवारण ने इस समय गाँव के हिंदूपन की रक्षा का भार अपने ऊपर ले रक्खा था। भट्टाचार्यजी ने, उनके ज़ाहिरा हिंदूपन के आडंबर का आवरण रहते भी, दुष्ट लोगों के मुँह की बात को ही जब व्यंग्य का खोंचा देकर उभाड़ा, तब निवारण के मन में द्वितीय रिपु (क्रोध) छेड़ी हुई भिड़ों की तरह भनभना उठा। किंतु निवारण ने यथाशक्ति अपना डंक छिपाकर हताश, नम्र, करुण स्वर से कहा—"तुम्हारी जो इच्छा हो, वही करो भाई! तुम एक तो ठहरे पंडित, उस पर ज़मींदार के घर के पुरोहित भी हो! तुम हम-ऐसे ग़रीब मूर्ख लोगों की बात क्यों सुनने लगे? लेकिन देखो भाई, एक समय वह आवेगा, जब मेरी ये बातें याद आवेंगी, और तुम्हें पछताना पड़ेगा! रामजी, तुम्हारी मर्ज़ी!"

मुँह से यह कहकर निवारण ने अपने मन में कहा—"क्या! इतनी मजाल! निवारण की बात टाल दी! इसका बदला मैं लूँगा, लूँगा, लूँगा! न लूँ, तो—"

इसके बाद नवकिशोर ने बिना किसी विवाद के गाँव के स्कूल से माइनर-परीक्षा पास करके वृत्ति पाई। अब उसने पढ़ने के लिये कलकत्ते जाने का इरादा किया। गाँव में फिर हलचल मच गई। मनु के अमल के बाद से अब तक किसी के कभी केवल लिखने-पढ़ने के लिये गाँव छोड़कर बाहर पैर निकालने की बात नहीं सुनी जाती। इतिहास तो इस बारे में एकदम चुप है। नवकिशोर ने इस सनातन नियम को तोड़ने के लिये उद्यत होकर सभी को घोर चिंता में डाल दिया। सबने सोचा, नवकिशोर छोकरा अब की एकदम म्लेच्छ होकर घर लौटेगा! नवकिशोर की ऐसी

निष्ठा, आचार-विचार, छुआछूत का इतना ख़याल, यह सब शायद अब नहीं टिकने का! केवल नवकिशोर के किशोर अवस्थावाले साथी और मित्र उसे भाग्यशाली समझकर ईर्षा की दृष्टि से देखने लगे। सबसे अधिक विपिन कुंठित हुआ। वह ज़मींदार का लड़का था, इसी कारण सर्वथा यत्न करके बाहर के संसर्ग से दूर ही रक्खा जाता था। नवकिशोर ही इस पिंजड़े के पक्षी को बाहर के विपुल विस्तार की मनोमोहनी ख़बरें बीच-बीच में सुनाया करता था। उसी एकमात्र बंधु का वियोग विपिन को बहुत ही दुःखदायक जान पड़ा।

नवकिशोर भी कलकत्ते में आकर पहलेपहल कुछ मुश्किल में पड़ गया था। उसने देखा, गाँव में रहते समय वह जिन आचारों का पालन करता था, कलकत्ते में आकर उनकी रक्षा करना अत्यंत कठिन है। इस कलियुग के शहर में मनु के ज़माने के नियमों का पालन करना एक तरह से असंभव है। कलकत्ता जैसे मनु की व्यवस्था को मिटाने के लिये ही कमर कसे बैठा है। पग-पग पर बाधा पाकर नवकिशोर का मन अपने आचार-अनुष्ठान की ओर से सचेत हो उठने लगा। वह ठगा-ठगाकर समझने लगा कि इस तरह न करके ऐसा करने पर भी ज़िंदगी ख़ूब स्वच्छंदता के साथ बीत सकती है। फिर जगत् के लाखों-करोड़ों नर-नारियों के बीच किन्हीं दो जनों का आचार-व्यवहार ठीक एक तरह का नहीं देख पड़ता। उसके संस्कृत-कॉलेज के अध्यापकों में सभी अत्यंत निष्ठावान् हिंदू थे। लेकिन मराठे अध्यापक के आचार के साथ यू० पी० के अध्यापक का आचार नहीं मिलता, और बंगाली अध्यापक का आचार उन दोनो अध्यापकों के आचार-अनुष्ठान से बिलकुल जुदा है। ख़ासकर नवकिशोर के एक अध्यापक का चरित्र बिलकुल ही देवतों का-सा था; लेकिन उधर वह एकदम अनाचारी थे। इन साधु-चरित्र अध्यापक के स्नेह-

युक्त मधुर व्यवहार के कारण नवकिशोर उनका अत्यंत अनुगत हो पड़ा था। उनके दृष्टांत और उपदेश को देख-सुनकर आचार-पालन के संबंध में नवकिशोर का वह अत्यंत आग्रह धीरे-धीरे शिथिल हो पड़ने लगा। कलकत्ते में रहकर पढ़ते-पढ़ते भीतर-ही-भीतर नवकिशोर जितना परिवर्तित होने लगा, उतना ही वह स्पष्ट समझने लगा कि आचार जिसे कहते हैं, वह बिलकुल बाहर की चीज़ है; प्रयोजन के अनुसार कभी उसका पालन करना होता है, कभी उसमें परिवर्तन करना होता है, और कभी उसे एकदम छोड़ देने की ज़रूरत होती है। जो आदमी अवस्था के साथ-साथ आचार-व्यवहार में परिवर्तन नहीं कर सकता, वह आचार और संस्कार के नाग-पाश में ख़ुद अपने हाथ-पैर जकड़कर जड़ या पंगु हो जाता है। कट्टरपन और मूर्खता, दोनों का अर्थ लगभग एक ही है।

नवकिशोर के चरित्र के बीच एक प्रकार की सतेज बलिष्ठता थी। वह उसका भारी, लंबा-तड़ंगा डील-डौल, गोरा रंग, लंबी-ऊँची नासिका और बड़ी-बड़ी आँखें देखने से ही मालूम पड़ जाती थी। नवकिशोर में ज्ञान की स्वच्छता, मन का तेज, चरित्र की दृढ़ता, निष्ठा की एकाग्रता और हृदय की सरलता आदि सद्गुणों का सामंजस्य देख पड़ता था। यह बात उसकी बातों और व्यवहार से सदा प्रकट हुआ करती थी। उसकी दम-दम-भर पर उच्छ्वास-पूर्ण, उच्च, उदार हँसी में उसके निर्मल, मुक्त हृदय की झलक सहज ही दिखाई पड़ती थी। वह जो कहता और करता था, सो सब सावधानी के साथ विचार कर। लेकिन बीच राह में रुकना नहीं जानता था। वह मन के प्रबल वेग से चलकर हर बात के अंत में पहुँचकर तब रुक सकता था। इसलिये उसे एकाएक देखने से वह बिलकुल हठी और कट्टर जान पड़ता था। वह मन के भीतर सब युक्तियों और तर्कों को इस तेज़ी के साथ तय करके शीघ्र उपसंहार की ओर पहुँच सकता था कि

लोग समझते थे, वह केवल ग्रामप्रयाली या उत्तेजना के कारण ही हरएक काम कर डालता है। मतलब यह कि वह ऐसे बलिष्ठ चरित्र का आदमी था कि जब जो कुछ सच समझकर ग्रहण करता था, तब उसके संबंध में किसी तरह की दुविधा नहीं रखता था।

इस तरह की प्रकृति के आदमी को सब लोग मानते हैं, आदर दिखाते हैं, ख़ातिर करते हैं, यहाँ तक कि मन-ही-मन कुछ डरते भी हैं; मगर उसके साथ को प्रार्थनीय नहीं समझते। अतएव कलकत्ते में उसका कोई बंधु या सार्थी नहीं था। वह मोटी धोती पहनता है, मोटी मारकीन की चादर ओढ़ता है, पैरों में स्लीपर पहने रहता है। इस कारण कलकत्ते के बाबू-दल में वह खप नहीं सकता था। और, बाहर के सादृश्य से जिनके साथ मेल खाता था, वे संस्कृत-कॉलेज के भट्टाचार्जी ढंग के विद्यार्थी उसके मत की सृष्टिनाशक निराली उग्रता देखकर उसके पास नहीं फटकते थे।

नवकिशोर जिस समय त्रिशंकु की तरह बीच मार्ग में निरवलंब लटका हुआ था, उस समय उसे बाबू और भट्टाचार्य-दल के मध्यवर्ती एक आदमी आकर मिल गया। उसका नाम था तारक। वह नवकिशोर का सहपाठी था। उसका चेहरा बहुत शीर्ण था। जान पड़ता था, जैसे अस्थि-कंकाल के ऊपर केवल एक पतला, नरम चमड़ा मढ़ा हुआ है। उसकी गढ़े में घुसी हुई बड़ी-बड़ी, गोल-गोल दोनो आँखें एक अर्थ-हीन हँसी से सदा उज्वल रहती थीं। बड़े-बड़े दाँत सदा खुले और खिले रहते थे। उसके दोनो गाल चिप्पक होने के कारण ठोढ़ी और चौंह के हाड़ अत्यंत ऊँचे और चौड़े देख पड़ते थे। वह मोटी मारकीन की धोती, गरमी में लंकलाट का और जाड़ों में अलपाके का चायना-कोट पहनता था। उसके ऊपर रेशमी चादर रस्सी की तरह उमेठकर माला की तरह गले में डाले रहता था। पैरों में पेनलर-जूते रहते थे। सिर में सामने माँग और पीछे

चोटी थी। गले में तुलसी की माला थी, जो अक्सर कोट के नीचे ढकी रहती थी। उसकी तर्जनी उँगली में अष्टधातु का बना 'पवित्रा' चमका करता था। तारक ने बाहरी आकार में जैसे प्राचीन और नवीन दोनो दलों का मेल कर रक्खा था, वैसे ही भीतर भी। मुँह से बातचीत करने में प्राचीनता का कट्टर पक्षपाती था—शास्त्र और ऋषि के सिवा और कोई बात नहीं करता था, लेकिन सुर्बीते के माफ़िक़ बिना किसी विचार के प्राचीन और नवीन विधि का पालन करता था। तारक ने नवकिशोर को वेश में एकदम प्राचीन और मत में अत्यंत नवीन मार्ग ग्रहण करके चलते देखकर सोचा कि नवकिशोर भी शायद उसी की तरह दोनो पक्षों को बनाए रखकर चलनेवाला बुद्धिमान् है। मगर नवकिशोर को अपने दल में खींचकर लाने की चेष्टा करते समय तारक ने देखा कि नवकिशोर एक अपनी धुन का पक्का और कट्टर गँवार है; उसके हृदय में समझौता करके चलने का भाव ज़रा भी नहीं है। तारक को नवकिशोर जितना ही दुर्बोध पहेली-सा प्रतीत होने लगा, उतना ही वह नवकिशोर से अधिक मिलने-जुलने लगा। उसने अपने मन में दृढ़ प्रण-सा कर लिया कि चाहे जिस तरह हो, मैं नवकिशोर को अवश्य पहचानूँगा। वह अस्त-व्यस्त तर्क करके नवकिशोर को चिढ़ा देता था, और नवकिशोर उसके मुँह पर ही मूर्ख कहकर उसे गाली देता था, तो वह मुँह से ख़ूब आडंबर के साथ अपनी बुद्धिमानी का प्रमाण देने की चेष्टा अवश्य करता था, लेकिन नवकिशोर की स्वच्छ तर्क-युक्ति के आगे पग-पग पर परास्त होकर मन-ही-मन उस पर श्रद्धा रखता था, और उसकी प्रशंसा किए बिना उससे नहीं रहा जाता था।

तारक को अपदार्थ जानकर भी और कोई साथी न होने के कारण उसके इस अनुरक्त अध्यवसायशील उपद्रव को प्रश्रय देता था और सहता था। उसके बुद्धि-विचार-हीन तुमुल तर्क के कारण

नवकिशोर ने दिल्लगी से उसका नाम रक्खा था ताड़का राक्षसी ! और, तारक का यह नाम उसके दुर्भाग्य से उसके परिचित लोगों की मंडली में ऐसा प्रसिद्ध हो गया था कि उसके मा-बाप के रक्खे नाम के बदले नवकिशोर का रक्खा नाम ही बहाल हो गया।

नवकिशोर जब संस्कृत-कॉलेज से एम्० ए० और वेदांत की उच्च उपाधि लेकर बाहर निकला, तब वह 'शुद्धितत्त्व' और 'संहिता' के अनुशासन को विना विचारे स्वीकार करने की अवस्था से बहुत दूर हट गया था। लेकिन उस समय भी तारक उस हिंदू-शास्त्रों और ऋषि-वाक्यों पर निष्ठावान् बनाने की आशा को बिलकुल नहीं छोड़ सका था। वह भट्टाचार्य ब्राह्मण के लड़के को म्लेच्छभाव-युक्त देखकर अत्यंत व्यथित होता था—उसके मर्म-स्थल में चोट लगती थी; लेकिन वह सोचता था कि जो फल सड़ता है, उसका छिलका ही पहले सड़ता है। नवकिशोर ने जब पहनावे-पोशाक में इस तरह प्राचीन भाव बना रक्खा है, तब इसमें संदेह नहीं कि उसका हृदय अभी तक बिलकुल नष्ट नहीं हुआ। इसी-लिये व्यथित और आशान्वित होकर तारक ने एक दिन तर्क करते-करते अपने मस्तक की नसें और गड्ढे में पड़ी हुई आँखें फैलाकर नवकिशोर को क्रिस्तान और ब्राह्म कहकर गाली दी। नवकिशोर ने उससे कुछ भी नाराज़ न होकर हँसकर कहा—"यह तो ठीक गाली नहीं हुई ! अनेक देशों में अनेक समय जिन महापुरुषों ने प्रकट होकर समाज में अपना मत स्थापित किया है, वे केवल अपने देश या अपने समय में ही बँधे हुए नहीं थे। उनकी वाणी का जितना अंश उनके देश और समय के साथ संश्लिष्ट है, उसे छोड़कर उनकी सत्य वाणी शाश्वत है, वह विश्व-भर के मनुष्यों की संपत्ति है; वे सब जगत्-भर के गुरु हैं। इस हिसाब से ईसा और मुहम्मद जैसे हमारे पूजनीय हैं, वैसे ही शंकर,

बुद्ध, नानक, कबीर वग़ैरह महापुरुष भी क्रिस्तानों और मुसलमानों के पूजनीय हैं। इनमें से हरएक ने जुदी जुदी अवस्थाओं में जिस महान् सत्य का प्रचार किया है, उसका मूल-उद्गम-स्थान एक ही है। उपनिषद् और बाइबिल, क़ुरान और गीता, एक ही नदी की जुदी-जुदी धाराएँ हैं। ख़ास-ख़ास देशों में प्रकट होने के कारण वे विभिन्न ढंग के कर्मकांड के आडंबर और संस्कारगत संकीर्ण आचार के बाहरी आवरण से ढके हुए हैं। इसी कारण बुद्धिमान् सचेतन मन का जो धर्म है, वह सभी सामाजिक धर्मों से अलग है। वह सब धर्मों के भीतर की चीज़ है। उसे किसी नाम की रेखा खींचकर संकीर्ण बनाना संभव नहीं। मेरे धर्म-मत का अगर कोई नाम रखना चाहते हो, तो हिंदू नाम ही रक्खो; क्योंकि मैंने हिंदोस्तान की विशेष अवस्था में जन्म लिया और शिक्षा-दीक्षा पाई है।"

नवकिशोर की इस बात से तारक एकदम पागल-सा हो उठा, और उसने घोर तर्क ठान दिया। मामला बेढब देखकर मध्यस्थ होकर विपिन ने दोनों को तर्क-युद्ध से निवृत्त किया।

विपिन बहुत ही शांत प्रकृति का, चुपचाप रहनेवाला आदमी है। वह अपरिचित आदमी के साथ बातें करने में लज्जा के मारे संकुचित होता है; अकेले कहीं जा नहीं सकता; अपनी चेष्टा से कोई भी काम नहीं कर सकता। इसी कारण नवकिशोर के बिना घड़ी-भर भी उसका काम नहीं चलता। नवकिशोर उसका मित्र है, और अभिभावक भी।

विपिन अवस्था के फेर से ऐसा पर-निर्भर और मुँह-चोर हो गया था। वह ज़मींदार का लड़का है। वह लड़कपन से ही निषेध के जाल में जड़ित होकर केवल यही सुनता रहा कि उसे सबसे मिलना-जुलना न चाहिए, इधर-उधर जाना उचित नहीं

है। किस तरह पग-पग पर ज़मींदारी का अदब-क़ायदा और चाल-चलन बनाए रखकर इज़्ज़त बचाकर चलना चाहिए, इसकी शिक्षा उसे सदा औरों से मिला करती थी। इसके लिये उसे सदा अपनी अपेक्षा सतर्क और बुद्धिमान् लोगों के मत और इशारे पर निर्भर होकर रहना पड़ता था। ज़मींदार के घर के पुरोहित-वंश के लिये अकार्य होने पर भी नवकिशोर स्कूल में पढ़ने पाया था, लेकिन विपिन को वह सौभाग्य भी नहीं प्राप्त हुआ। चौधरी-वंश में वंश-परंपरा से यही विश्वास चला आता है कि स्याही की लकीर खींचने से क़र्ज़ बढ़ता है। लिखने-पढ़ने की मेहनत वे लोग बरदाश्त करें, जिन्हें मेहनत-मज़दूरी या नौकरी करके पेट पालना हो। जिन्होंने पैर पर पैर रखकर माता-लक्ष्मी के वाहन के रूप में आराम से रहने का दिव्य सौभाग्य प्राप्त किया है, उनका लिखना-पढ़ना व्यर्थ की मेहनत है। खा-पीकर सोने के बाद भी अगर रईस ज़मींदार का समय न काटे कटे, तो बड़े आदमी के लड़के के लिये आमोद-आह्लाद के सामान की कमी थोड़े हो सकती है।

किंतु विपिन का एकमात्र बंधु नवकिशोर जब स्कूल में भर्ती हुआ, तब विपिन ने भी अपनी मा के आगे स्कूल जाने का हठ पकड़ा। मगर विपिन की यह अनुचित ज़िद मानी नहीं गई। वह अपने ही असामियों के लड़कों के बराबर बैठकर पढ़ेगा! उसकी और उनकी बराबरी! यह हो ही नहीं सकता। घर में ही उसे पढ़ाने का प्रबंध किया जायगा। चौधरी-वंश की बात बड़ी है, या लड़के का हठ!

विपिन के चारो ओर निषेध की दीवार उठाकर उसके भीतर ही उसकी दृष्टि को एकदम अवरुद्ध कर देने की तैयारी में उसके अभिभावकों ने कुछ भी कसर नहीं उठा रक्खी थी। बस, नव-

किशोर ही बीच-बीच में बाहर की ख़बर सुनाकर गड़बड़ मचा देता था। इसी कारण इस पिंजड़े की चिड़िया और उस वन की चिड़िया में एक घनिष्ठ संयोग उत्पन्न हो गया था। अखंड 'निषेध' की दीवार के छोटे-छोटे छेदों से होकर विपिन के मन के ऊपर जो कुछ बाहर का प्रकाश आकर पड़ता था, उसी के सामने झुककर वह अपनी सारी बुद्धि को खोलकर रखता था। इससे उसका मन सचेत होकर अपने आस-पास की तुच्छ-से-तुच्छ घटना को भी छोड़ नहीं देता था। फल यह हुआ कि उस तामसिक परिवार के बीच में रहकर वह ऐसे सब विषयों का ज्ञान प्राप्त करने लगा, जिन्हें उस अवस्था में उसे जानना नहीं चाहिए था। मगर साथ ही उसकी शांत प्रकृति और नवकिशोर का निर्मल दर्प-पूर्ण चरित्र उसे इसके लिये संकुचित ही करता था।

इस तरह विरुद्ध भावों के बीच बढ़कर बड़े आदमी का दुलारा लड़का विपिन बहुत ही भाव-प्रवण और आवेगमय प्रकृति का हो गया था। पग-पग पर दूसरे के ख़याल के माफ़िक़ चलते-चलते और बात-बात में समझौता करते-करते उसका मन ऐसा पराए ऊपर भरोसा करनेवाला हो उठा था कि वह अपनी चेष्टा से कोई भी काम न कर सकता था। लेकिन किसी तरह उसकी इच्छा-शक्ति एक बार उत्तेजित हो उठने पर उसे रोकना दुःसाध्य हो उठता था। उसकी इच्छा-शक्ति को इस तरह उद्बोधित या उत्तेजित करनेवाला नव-किशोर ही था।

विपिन ने प्राइवेट इम्तिहान देकर जब एंट्रेंस पास कर लिया, तो नवकिशोर उसे कलकत्ते में जाकर पढ़ने की सलाह देने लगा। विपिन ने अपने पिता की अनेक आपत्ति और माता के आँसू आदि की परवा न करके ज़िद पकड़ी कि मैं कलकत्ते पढ़ने के लिये ज़रूर जाऊँगा।

विपिन के पिता हरिविहारी इकहरे लंबे डील के और गोरे थे। अपने ख़याल के माफ़िक़ भंग छानकर, अफ़ीम जमाकर, आँखें मूँदकर मौज लेना ही उन्हें पसंद था। वह किसी झंझट में पड़ना नहीं चाहते थे। ज़मींदारी देखने को दीवानजी थे, घर का प्रबंध बहूजी देखती थीं, और उनके निज के काम-काज को देखनेवाला कल्लू कहार था। इस कारण वह मज़े में निश्चिंत थे। उन्हें किसी झंझट से काम न था। अतएव दो-चार बार विपिन को मना किया, और जब वह न माना, तब "तुम्हारा जो जी चाहे, सो करो" कहकर वह एकदम अलग हो बैठे।

मगर पुरखिन के आँसू किसी तरह नहीं रुकते थे। विपिन की सगी मा जिस दिन मरी थीं, उस दिन वह विपिन को उन्हीं के हाथ में सौंप गई थीं। विपिन को गोद में लेकर ही पहले उन्होंने मातृ-गौरव और संतान-वात्सल्य का अनुभव किया था। अठारह बरस से जिसे गोद से दूर नहीं किया, उसी को आज अकेला विदेश भेजने के ख़याल से वह ऐसी उदास हो रही थीं कि उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था—छाती जैसे फटी जा रही थी—अज्ञात अनुमान-मूलक अमंगल की आशंका से छाती धड़क रही थी। विपिन भी इस पहलू से बहुत व्याकुल हो रहा था, लेकिन क़ैदी की हालत से छुटकारा पाने का आनंद उस वेदना को प्रबल हो उठने नहीं देता था।

विपिन ने कलकत्ते आकर, 'बाहर' के साथ पहले परिचय में, उसे लज्जिता नव-वधू की तरह चाह की नज़र से देखा। लेकिन संकोच के मारे वह संपूर्ण रूप से बाहर को आत्मसमर्पण नहीं कर सका। और, यह बात उसके लिये कल्याण ही का कारण हुई।

विपिन को कलकत्ते में पाकर नवकिशोर में भी जैसे जान आ गई। वह तारक के साथ लगातार तर्क करते-करते जब ऊब उठता था, तब

विपिन की स्नेह-पूर्ण शांत बातचीत से अपने मन को आराम पहुँचाता था। विपिन नवकिशोर के समान तार्किक नहीं है। उसे सदा से पराए मत में मत देने का अभ्यास है। इसी कारण एकमात्र मित्र और हित-चिंतक नवकिशोर के मत को मान लेना उसे विशेष कठिन नहीं जान पड़ता था। तो भी, जो वह बीच-बीच में एक-आध बार प्रतिवाद कर उठता था, सो इसलिये कि इस समय नवकिशोर का मत उसके लड़कपन से अब तक के संस्कार से एकदम विभिन्न रूप का हो उठा है। लेकिन भीतर-ही-भीतर विपिन का मत और संस्कार (धारणा) अपने बाल्य-काल के घेरे को नाँघकर एकदम नई राह में चला ही जा रहा था। दोनो मित्र नवीन मत के तर्क-रूप चकमक पत्थर को ठोककर बीच-बीच में अपने चारो ओर आग की चिनगारियाँ बरसाकर क्रीड़ा करते थे। उससे अपने घर में ही आग लग सकती है, ऐसी आशंका कभी-कभी उनके मन में उत्पन्न होने पर भी, घर की आग से राह में प्रकाश करने का मोह उन्हें पागल-सा कर देता था। उनका भाव-प्रवण तरुण हृदय आग की चिनगारियों की तरह ही स्वाधीन आनंद की उज्ज्वलता से घड़ी-घड़ी अपने को चारो ओर विकीर्ण करता रहता था।

पाँचवाँ परिच्छेद

मथुरापुर के चौधरी-परिवार में जिस समय विपिन की चाची की बहन की लड़की मालती को आश्रय देने की बात को लेकर हंगामा-सा हो रहा था, उस समय नवकिशोर और विपिन, दोनो मित्र कलकत्ते के डेरे में, बहुत ही निश्चित मन से, राह की धूल और हवा के धुएँ से लेकर पुनर्जन्म और ईश्वर के अस्तित्व तक की आलोचना बड़े उत्साह के साथ किया करते थे। और, उनकी घोर अवज्ञा का पात्र, चिरसहनशील, नित्य-सहचर तारक, उसके मत को कोई माने,

चाहे न माने—इस ओर तनिक भी ध्यान न देकर, दोनो मित्रों की बहस के बीच में पड़कर रुकावट डालने में कोई कसर उठा नहीं रखता था।

उस दिन प्रातःकाल था। शरद्-ऋतु की स्वच्छ सुनहली धूप खुली खिड़की से होकर कमरे के फ़र्श पर पड़ रही थी। कमरे में जहाँ-जहाँ दीवार थी, फ़र्श के ऊपर वहाँ-वहाँ छाया थी। जहाँ खुली हुई खिड़की थी, वहाँ उज्ज्वल धूप थी। उस धूप में भी बीच-बीच में लोहे की छड़ों की छाया की पतली लकीरें थीं। जान पड़ता था, जैसे धूप-छाँह के खानों की शतरंज बिछी हुई है। बड़ी खिड़की के नीचे ही हरसिंगार का पेड़ था। उसके नीचे झड़े हुए फूलों को देखने से जान पड़ता था, जैसे शरद्-लक्ष्मी के लिये फूलों की सेज बिछी हुई है। हरसिंगार के फूलों की मीठी सुगंध ठंडी हवा को छू रही थी। सड़क पर खँजड़ी बजाकर गीत गाकर फ़क़ीर भीख माँगते, और भिक्षा मिल जाने पर 'सम' की अपेक्षा न कर बीच ही में गाना बंद करके दूसरे गृहस्थ के द्वार पर चले जाते थे। फेरीवाले दूकानदार अपनी-अपनी चीज़ें विचित्र स्वर और ढंग से पुकार-पुकारकर बेच रहे थे।

विपिन एक आराम-कुरसी पर लेटा हुआ, फैलाए हुए पैर को स्टीपर पर रक्खे, शेक्सपियर के नाटक 'मर्चेंट ऑफ़ वेनिस' को पढ़ रहा था। अगहन के महीने में उसे एम्० ए० की परीक्षा देनी है। नवकिशोर पास ही फ़र्श पर तकिए के सहारे बैठा अख़बार पढ़ रहा था। बहुत देर पुस्तक के टीका-भाष्य के ऊहापोह को पढ़ते-पढ़ते विपिन का जी ऊब उठा था। उसने कहा—"अजी किशोर, अख़बार तो देना, ज़रा दुनिया की ख़बर पर भी नज़र डाल लूँ।"

नवकिशोर ने उसकी ओर टेढ़ी नज़र से देखकर, गंभीर भाव से कहा—"ना-ना, इस समय पोर्शिया की ख़बर लो; खा-पीकर दुनिया की ख़बर लेना।"

विपिन मित्र को ख़ूब पहचानता था। वह उसका केवल हँसी-मज़ाक़ या मन-बहलाव का साथी ही नहीं है; वह अभिभावक की तरह गंभीर भाव से उस पर हुकूमत भी करता है। नवकिशोर को गंभीर भाव से हुक्म-सा देते देखकर विपिन को फिर अख़बार माँगने का साहस नहीं हुआ; लेकिन साथ ही पुस्तक पढ़ने को भी अब किसी तरह जी नहीं चाहता था। इससे उसने हँसकर नवकिशोर की बात के उत्तर में कहा—"पोर्शिया की ख़बरदारी और किसी को नहीं करनी पड़ती, वही कितने ही लोगों की ख़बरदारी करती फिरती है! इसी से तो पोर्शिया का चरित्र मुझे उतना अच्छा नहीं लगता।"

फिर क्या था! तर्क की गंध पाकर नवकिशोर सीधा हो बैठा, और बोला—"क्यों?"

विपिन—"वह मुझे मर्दानी-सी जँचती है। उसमें जैसे नारी का भाव खंडित हो गया है।"

नवकिशोर—"तो फिर क्या होने से अच्छा होता? बुलाक पहने, पिन-पिन घिन-घिन करनेवाली हिंदोस्तानियों के घर की कमसिन नई बहू की तरह होनी चाहिए थी—क्यों? स्वामी के बंधु की विपत्ति में उदासीन, बहुत हुआ, तो रो-रोकर आसमान सिर उठा लेने में ही अपनी क्षमता और सहृदयता का चूड़ांत परिचय देनेवाली होती?"

विपिन ने हँसकर कहा—"यह नहीं सही, लेकिन क्या गृह-लक्ष्मी कमर बाँधकर अदालत में मुक़द्दमे की पैरवी करने जायगी?"

नवकिशोर ने ज़ोर देकर कहा—"दरकार होने पर जाने को क्या हुआ। झाँसी की रानी, रानी दुर्गावती, जॉन ऑफ़ यार्क आदि रमणियों ने युद्ध किया था, इसी कारण क्या हम लोगों की उन पर अधिक श्रद्धा नहीं है? क्यों? या इसलिये हम उन पर भक्ति का भाव नहीं रखते कि उन्होंने ख़ुद अपने दुःख के प्रतिकार की चेष्टा की थी? और, इसके विपरीत हमारी चाची-अम्मा को देखो! जिन्होंने

दग़ा करके उनका सर्वस्व ले लिया, उसके विरुद्ध खड़े होकर कुछ प्रतिकार कर सकना तो दूर रहा, उलटे तनिक आश्रय और मुट्ठी-भर अन्न के लिये उन्हीं के निकट उन्हें भिक्षा का अपमान स्वीकार करना पड़ा ! इससे अधिक अक्षमता की लज्जा और क्या हो सकती है ? सारा देश हीजड़ा हो उठा है ; इसी से अपमान सहने को लोग क्षमा समझते हैं—स्त्रियों की दुर्गति को गृह-लक्ष्मी का आदर्श मानते हैं ! ऐसी निर्जीव मन की पोथी में पढ़ी हुई बड़ी-बड़ी अर्थ-हीन बातों को धिक्कार है !

नवकिशोर का मेघ-गंभीर निर्घोष घर-भर में गूंज उठा। विपिन अपने पिता के अन्याय-व्यवहार के प्रसंग से लज्जित होकर निरुत्तर हो गया था। नवकिशोर भी उत्तेजना की झोंक में अकेले ही अनर्गल वक्तृता देता रहता ; किंतु आदमी ने दो चिट्ठियाँ लाकर उसमें बाधा डाल दी। विपिन को छुटकारा मिलने से आनंद हुआ।

एक चिट्ठी विपिन के नाम थी, और दूसरी नवकिशोर के नाम। दोनों के बापों ने चिट्ठियाँ लिखी थीं।

चिट्ठी पढ़कर नवकिशोर ने विपिन के आगे फेंक दी, और गरजकर कहा—"लो, हम लोगों के यहाँ की गृह-लक्ष्मियों की दुर्दशा देखो !"

विपिन ने वह पत्र पढ़कर देखा, स्मृतिरत्न ने नवकिशोर को मालती की अवस्था और उसकी आश्रय-प्रार्थना का सब हाल आदि से अंत तक ख़ुलासा करके लिख भेजा है। विपिन एक ओर माता के आचरण से जैसे अत्यंत लज्जित और कुंठित हुआ, वैसे ही दूसरी ओर अत्याचार सह रही चाची और उनकी निराश्रय बहन की बेटी मालती के प्रति सहानुभूति से उसका हृदय भर गया। विपिन ने अपने मा-बाप के संपूर्ण अन्याय-आचरण की कैफ़ियत के तौर पर कुंठित स्वर से कहा—"चाची की बहन की लड़की को तुम्हारे साथ मथुरापुर भेज देने के लिये पिताजी ने मुझे यह चिट्ठी लिखी है।"

नवकिशोर इस बात पर कुछ ध्यान न देकर बराबर कहता जा रहा था—"देखो, देखो, हम लोगों की करतूत देख ली ! हम अपने को आर्य कहकर गौरव का गर्व करते हैं, लेकिन काम ऐसे करते हैं कि कसाई भी न करेगा ! यह जो मालती आज आश्रय-हीन होकर पराए घर में दासी का काम करने के लिये विवश की जा रही है, इसकी अपेक्षा क्या उसका यथोचित रूप से ब्याह कर देना लाख-गुना अच्छा नहीं है ? इस पर भी क्या तुम यही कहोगे कि विधवा-विवाह अनुचित या निंदित है ?"

नवकिशोर की आँखों से जैसे आग निकल रही थी; जोश के मारे नथने फूल-फूलकर रह जाते थे। उसकी उत्तेजना के आगे संकुचित होकर विपिन ने कोमल स्वर से कहा—"मैं विधवा-विवाह को सर्वथा निंदित नहीं कहता। मैं उसे लाचारी का काम मानता हूँ। मेरा कहना यह है कि स्वामी की स्मृति को सामने रखकर ब्रह्मचर्य-पालन करना ही विधवा का श्रेष्ठ आदर्श है !"

नवकिशोर—"मैं मानता हूँ कि विधवा का श्रेष्ठ आदर्श वही है ; साथ ही यह भी कहता हूँ कि जिसकी पहली स्त्री मर गई हो, उस पुरुष का भी यही श्रेष्ठ आदर्श है। किंतु जिस काम के लिये भीतर से कोई प्रेरणा न आवे, केवल बाहर के दबाव से विवश होकर जो काम करना पड़े, वैसा धर्म-साधन भी व्यर्थ ही है ! हम क्या सचेतन भाव से कुछ करना जानते हैं ? धर्म-विधि, समाज-विधि आदि सभी विधियों का, अंधे की तरह, अभ्यास-वश, केवल पालन करते जाते हैं—उसका कारण यह है कि ऐसा न करके ऐसा कभी किसी ने नहीं किया या नहीं करता, बाप-दादे के अमल से ऐसा ही होता चला आ रहा है। अरे, एक दफ़े ज़रा बुद्धि लड़ाकर सोचो तो सही कि वे लोग ऐसा न करके ऐसा क्यों करते थे ? भगवान् ने हमारे मस्तक में दिमाग़ नाम की इतनी बड़ी और काम की चीज़ जो भर

दी है, सो क्या इस तरह गधे के समान बोझ लादने के लिये, काम लेने के लिये, बिलकुल नहीं ? बुद्धि ख़र्च करके पीछे दिवालिए न हो जायँ, इस डर से हम बाप-दादे की जमा की हुई पूँजी पर ही भरोसा किए बैठे हैं। चाहे आधे पेट खायँ और चाहे भूके ही रहें, किसी नए मामले में टका-भर बुद्धि ख़र्च करने का साहस ही नहीं होता !"

विपिन—"तुम क्या सोचते हो कि समाज के सभी लोग सोच-विचारकर अपनी बुद्धि से काम कर सकते हैं, या इसके योग्य हैं ? जिसकी बुद्धि शिक्षा के द्वारा परिमार्जित नहीं हुई, वह अगर अपनी बुद्धि से चलेगा, तो उससे अवश्य पग-पग पर भूल होगी।"

नवकिशोर—"वह भूल करे, सो भला ! भूल किए बिना सत्य का परिचय कैसे पावेगा ? हम बड़ी ही विज्ञ और सावधान जाति हैं; भूल भी नहीं करते, सत्य का पता भी नहीं पाते। और, शिक्षा की बात कहते हो ? वह व्यवस्था भी तुम्हीं लोगों को करनी होगी। तुम लोगों ने, जिन्होंने शिक्षा का स्वाद पाया है, और ग्रास करके जो तुम्हारे-जैसे धनी हैं, उन्हीं का यह कर्तव्य है। लेकिन जब तक वह नहीं होता, तब तक जड़ की तरह जैसे-के-तैसे उठे न रहकर, अपनी अशिक्षित बुद्धि से चलकर, सचेतन भाव से अगर हम भूल करें, तो वह भी अच्छा। उसका फल यह होगा कि भूल को सुधारने के लायक़ बुद्धि-शक्ति हम लोगों में क्रमशः संजीवित हो उठेगी। जैसे, मान लो, देश की अपढ़ औरतें तक जानती हैं कि भगवान् एक ओर अंतर्यामी हैं, और दूसरी ओर सर्व-व्यापी; किंतु उनका यह बोध सचेतन न होने के कारण हम लोग विश्व-मंदिर की विचित्रता और मनोमंदिर की निगूढ़ता के भीतर उनकी खोज न करके केवल मनुष्य-रचित मंदिर में ही उन्हें ढूँढ़ने फिरते हैं; विश्व-रूप में उनका प्रकाश न देखकर किसी ग्रास शिला या ग्राम मूर्ति में ही उन्हें

देखना चाहते हैं। घर की रसोई के आचार अनुष्ठान और पवित्रता आदि प्रायः सभी बातों में हमारा यह अर्ध-भाव स्पष्ट देख पड़ता है।"

विपिन—"ऐसा संशोधन कर सकने की शक्ति रखनेवाला कौन देख पड़ता है?"

नवकि०—"तुम, मैं, और जिनमें इस अभाव का बोध पैदा हो चुका है, वे! इसीलिये तो ज्ञान का प्रकाश फैलाने की ज़रूरत है, सबको शिक्षा देने का प्रयोजन है।"

विपिन—"किंतु स्त्री और पुरुष की शिक्षा क्या एक या एक-सी होना उचित है?"

नवकि०—"किस दर्जे तक एक होना अवश्य उचित है! नहीं तो उसका फल क्या होता है जानते हो? वृद्ध विपिनके होते ही चटपट और एक ब्याह कर लेना है कारण, वह रसोई बनाकर खाना या गिरस्ती के काम धंधे करना नहीं जानता। उधर बालिका के विधवा होने पर उस अभागे घर में दासी-वृत्ति ग्रहण करनी पड़ती है; क्योंकि उसने स्वतंत्र होकर अपने को सँभालने की शिक्षा कभी नहीं पाई। मान लो जैसे मालती है, उसके बाहरी संसार (रोज़गार-धंधे) को देखने लायक कोई पुरुष अभिभावक नहीं है; वह केवल अंतःपुर की शिक्षा को लेकर क्या करेगी? उससे उसका पेट कैसे भरेगा? उसकी वर्तमान अवस्था में उसे या तो बाहर की टक्कर में लड़ाई में टिकने के लायक शिक्षा प्राप्त करना होगा, और या दूसरे के अंतःपुर में आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा। दूसरे के अंतःपुर में दो तरह से आश्रय मिल सकता है—एक तो उस घर की बहू होकर, और दूसरे दासी होकर। दासी होने की अपेक्षा बहू होना कहीं अधिक सम्मान का है, यह तो अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा। एक समय था, जब

विधवा बुआ-बहन वग़ैरह भतीजे-भाई वग़ैरह के घर में सबके ऊपर हुकूमत करनेवाली पुरखिन बनकर रहती थीं; किंतु अब वह ज़माना नहीं है, समाज की हालत बदल गई है। इसी से इस समय विधवाओं को या तो स्वतंत्र होकर अपनी मान-मर्यादा बनाए रखनी होगी, और या पराया गलग्रह बनकर दासीपना करना होगा। तो निष्कर्ष यह निकला कि या तो विधवा का फिर ब्याह होना उचित है, और या फिर औरतों को भी शिक्षा और साहस में पुरुषों के समकक्ष होने की ज़रूरत है। ख़ासकर उन विधवाओं के लिये विशेष रूप से यह बात कही जा सकती है, जो मालती की-जैसी अवस्था में पड़कर पराधीन चाची-अम्मा के निकट आश्रय-प्रार्थिनी है।"

विपिन ज़ोर देकर कह उठा—"तुम तो जानते हो किशोर, चाची-अम्मा के मन से सारी ग्लानि दूर कर देने के लिये मैं उनकी कितनी भक्ति करता हूँ, कितना ख़याल रखता हूँ। मालती भी जिसमें अपने को पराए लिये गलग्रह न समझे, इसका प्रबंध मैं करूँगा। मालती के पास तुम कब जाओगे?"

नवकि०—"तीसरे पहर चलेंगे।"

विपिन—"चाची-अम्मा ने मालती को कुछ लिखा नहीं है, इस-लिये अचानक अगर तुम उसे लेने जाओगे, तो वह अविश्वास कर सकता है। तुम दोनों चिट्ठियाँ साथ लेते जाना; अगर ज़रूरत समझना, तो पढ़ने के लिये दे देना। दोनों चिट्ठियाँ पढ़ लेने से फिर कुछ संदेह नहीं रहेगा।"

नवकि०—"ऐसा ही किया जायगा। अब चलो, नहा-खा लो। सवेरे का समय तो बहस ही में बीत गया। दोपहर को तुम्हें पढ़ने जाना होगा। मालती के घर से लौटने में हम लोगों को रात हो जायगी।"

विपिन ने व्यस्त होकर कहा—"ना-ना, मैं वहाँ न जा सकूँगा। तुम्हीं अकेले जाना। बेजान-पहचान की औरत के सामने —"

नवकिशोर ज़ोर से हँसकर बोला—"तुम क्या सदा ऐसे ही मुँह-चोर बने रहोगे? जो बेजान-पहचान की औरत तुम्हारी स्त्री होकर आवेगा, उसे भी मुँह दिखाने में क्या शरमाओगे?"

विपिन ने लज्जित होकर कहा—"ना-ना, मैं नहीं जा सकूँगा, तुम अकेले ही जाना।"

छठा परिच्छेद

मालती के बाप का घर कलकत्ते के पास ही बेहाला नाम के गाँव में था। ब्याह के महीने-भर बाद जब मालती विधवा हो गई, तब उसके सास-ससुर इस विष-कन्या, सर्वनाशी, अलक्षणा, चक्षुशूल बहू को घर से निकाले बिना पानी न पीने की प्रतिज्ञा कर बैठे। महीना-भर भी न बीतने पाया, इसी बीच में जिस राक्षसी ने उनके असुर-तुल्य बलवान्, हट्टे-कट्टे, भले-चंगे लड़के को खा डाला, उसे घर में जगह देकर क्या वे अंत को और भी कुछ आफ़त अपने सिर लेते! उस समय मालती की अवस्था सिर्फ़ चौदह वर्ष की थी; पंद्रहवाँ साल लगा था। उसने सास के पैर पकड़कर, रोते-रोते कहा—"मा, मैं तुम्हारी दासी होकर यहाँ रहूँगी; मुझे अपने आश्रय से अलग मत करो।" लेकिन सास का मन किसी तरह नरम न हुआ। उनके शोकार्त हृदय ने अभागिन मालती के रोने-धोने को डाइन का झूठा ढोंग कहकर उड़ा दिया। तब लाचार होकर बाप के ही घर में आश्रय लेने के सिवा मालती के लिये और कोई उपाय न रह गया। नई जवानी जिस समय उसके भाव-शतदल की पँखड़ियों को एक के बाद एक खोल-खोलकर अपने चारो ओर मस्ती का संचार कर रही थी, जिस समय एक अपूर्व

सौंदर्य का अभिनव आनंद उसके चारो ओर उद्भासित हो उठ रहा था, ठीक उसी समय मालती अपनी सारी आशा-आकांक्षाओं का देना-पावना चुकाकर, मलिन मुख लिए, पिता के घर लौट आई।

मालती अपने मा-बाप की एकमात्र संतान थी। अतएव उन्होंने उसे गहरे दुःख के साथ ही बड़े आदर से ग्रहण किया। मालती के पिता आजकल के ख़यालात के आदमी थे। वह कन्या का फिर ब्याह करने की चेष्टा करने लगे। साथ ही उन्होंने उसे पढ़ाना-लिखाना भी शुरू कर दिया।

किंतु साल-भर भी पूरा न होने पाया कि मालती के दुर्भाग्य ने उन्हें इस लोक से उठा लिया। मालती के ब्याह की बात भी जहाँ-की-तहाँ दब गई।

अब केवल मालती और उसकी माता, दो जीव रह गए। दोनो विधवाओं का साधारण गिरस्ती के कामों से बचा हुआ समय जब किसी तरह कटने न आता था, उनके शोकार्त मन को अत्यंत पीड़ा पहुँचाता था, तब मालती अपने सारे भय और चिंता को पुस्तक के भीतर डुबा देने की चेष्टा करती थी। इस तरह लिखना-पढ़ना उसका नित्य का नशा हो उठा।

उसके बाद, दो वर्ष और बीतने पर, जब उसकी माता भी उसे छोड़कर चल बसी, तब उसने जाना कि केवल किताबों को ही लेकर नहीं रहा जा सकता; मनुष्य के जीवन में मनुष्य के संग और स्नेह-ममता की भी आवश्यकता है। उसके बाद गाँव के बेकार लोग जब अनाथ विधवा के दुःख से अत्यंत कातर होकर उसे अपनी देख-रेख में रखने के लिये उत्साहित हो उठे, तब मालती ने बहुत सोच-विचारकर, बुढ़िया दासी मटरू की मा की सलाह से, निश्चय कर लिया कि अपनी मौसी के पास जाकर रहने में ही कल्याण है। मालती ने अपनी मौसी को कभी देखा नहीं था। उन न देखी

और न पहचानी मौसी के निकट आश्रय ग्रहण करने में भी मालती के मन में तरह-तरह के भय और चिंता की छाया देख पड़ती थी। मगर मटरू की मा उसे बराबर उत्साह देती था कि मौसी तुम्हारी मा की बहन हो तो है; उनके पास जाने में काहे का डर है ?

मालती का मौसी के पास चिट्ठी भेजे सात दिन हो गए। मगर आज तक भी उसका कुछ जवाब नहीं आया। मालती घबराई हुई थी; उसे चारो ओर अंधकार देख पड़ता था।

तीसरा पहर था। मालती यों ही ज़मीन पर धोती का आँचल डाले लेटी हुई थी, और मटरू की मा उसके पास बैठी थी। दीवार में एक ताक़ पर रक्खी हुई टाइमपीस घड़ी अपने खट-खट शब्द से उस गहरी निस्तब्धता को नष्ट कर रही थी।

मालती लेटे-लेटे अपनी मौसी के बारे में ही सोच रही थी। वह मौसी की आकृति-प्रकृति भी अपनी माता के ही अनुरूप कल्पना कर रही थी। दुखिया मालती को यह आशा हो रही थी कि वह प्राण-पण से निःसंतान मौसी की सेवा-टहल करके, उनका सब संचित स्नेह पाकर माता के शोक को भूल सकेगी। मगर साथ ही उसे यह भी ख़याल होता था कि उसकी मौसी ने एक ज़मींदार के घर की मालकिन होकर भी आज तक कभी अपनी बहन और बहन की लड़की की ख़बर क्यों नहीं ली! मालती ने यह अवश्य सुना था कि उसकी मौसी विधवा होने के बाद अपना सर्वस्व हाथ से गँवाकर इस समय अपने जेठ के आश्रय में हैं; मगर पराधीन होने पर भी क्या इतना अधिकार उन्हें नहीं है कि वह आत्मीय-स्वजनों की खोज-ख़बर तक नहीं ले सकतीं! अगर वह ऐसी ही परवस हैं, तो उनके पास जाकर उसे (मालती को) ही न-जाने किस तरह रहना पड़ेगा! और, जो वह ऐसी पराधीन नहीं हैं, तो इस प्रकृति की मौसी से स्नेह पाने का भरोसा न रखना ही अच्छा!

मालती का मन जिस समय ऐसी ही चिंता में मग्न था, उसी समय सदर सड़क पर किसी आदमी ने भारी और गहरी आवाज़ में किसी से पूछा—"क्यों जी, अक्षय बाबू का घर कौन है ?"

यह प्रश्न सुनते ही मालती ने चटपट उठकर, खिड़की से सिर निकालकर, झाँककर देखा, एक गोरे रंग का लंबा-चौड़ा, बलिष्ठ शरीर का जवान, जो देखने में किसी ब्राह्मण-पंडित का लड़का-सा जान पड़ता है, उसी महल्ले के लल्लू बढ़ई से उसी के बाप के घर का पता पूछ रहा है। ज़रूर मौसी ने ही इस आदमी को भेजा है - यह ख़याल करके मालती का हृदय आनंद के वेग से धड़-धड़ करके काँप उठा।

लल्लू बढ़ई ने सन्नाटे में आकर सिर से पैर तक नवकिशोर को देखा, और फिर कहा—"यही घर चौधरी बाबू का है। आपका आना कहाँ से हुआ ?"

नवकिशोर ने कहा—'मैं अक्षय बाबू की बेटी की मौसी के गाँव का आदमी हूँ।'

यह सुनते ही मालती का चेहरा आनंद से खिल उठा। उसने दबी हुई आवाज़ से मटरू की मा को बुलाकर कहा—"मटरुआ की मा, जा-जा, जल्दी से उन्हें बुला ला। उठ-उठ।"

मालती का घर सदर सड़क के किनारे होने पर भी उसका दरवाज़ा एक गली के भीतर से था। दरवाज़े के भीतर जाकर, एक आँगन लाँघकर, नवकिशोर बाहर के बैठकख़ाने में पहुँचा। आँगन की दीवार के किनारे एक मेंहदी का और एक दुपहरिया का पेड़ था, और इधर-उधर कुछ क्रोटन, किसी समय की छोटी-सी बगिया के स्मारक के तौर पर, खड़े हुए थे। एक जगह दीवार की चूने की अस्तरकारी का बड़ा-सा पपड़ उखड़ा पड़ा था। बाहर की तरफ़ बैठने के लिये कोई कोठरी या कमरा नहीं था। भीतर से मिली हुई एक कोठरी ही भीतरी किवाड़े बंद करके बैठक के काम में लाई जाती

थी। मटरू की मा ने उसी कोठरी का दरवाज़ा खोलकर नवकिशोर से कहा—"इस घर में आप बैठिए भैया, मैं बिटिया को बुलाए देती हूँ।"

उस कोठरी में एक बिल्ली कुंडली मारे मज़े से, आराम के साथ, सो रही थी। प्रकाश और मनुष्य के अचानक आ जाने से उसके आराम में बाधा पड़ी, और इससे वह बहुत खीझ उठी। पहले उसने खिंची हुई कमान की तरह सिमटकर और ऊँट की तरह पीठ ऊँची करके आलस्य दूर किया, उसके बाद पहलवान जैसे दंड पेलते हैं, वैसे हाथ-पैर फैलाकर अपने को यथासंभव लंबा करके, जँभाई लेकर, वह उस कोठरी से चल दी। तनिक देर पहले ही पानी बरस चुका था; आँगन के आस-पास घास में पानी भरा हुआ था। वह बिल्ली पग-पग पर भीगे पैरों को उठाकर झाड़-झाड़कर, नया जूता पहने किसी शौक़ीन बाबू की तरह, ख़ूब बचा-बचाकर पैर रखती हुई घर के बाहर निकल गई।

नवकिशोर एक कुर्सी पर बैठकर उस कोठरी के चारों ओर नज़र दौड़ाने लगा। उस कोठरी में असबाब कुछ बहुत नहीं था। जो कुछ था, वह साफ़-सुथरा था, और निपुण गृह-लक्ष्मी की सुरुचि का परिचय और उसके कल्याण-पूर्ण हाथों की सेवा की साक्षी दे रहा था। कोठरी की खिड़की और दरवाज़े पर विचित्र रंग की छींट के पर्दे पड़े हुए थे, जिनमें मखमल की झालर टँकी हुई थी। कोठरी के बीच में एक टेबिल था; उसके आस-पास चार कुर्सियाँ रक्खी थीं। एक तरफ़ एक तख़्त पड़ा था; उस पर बढ़िया बेल-बूटों की कारीगरी से सुशोभित बहुमूल्य, सुंदर बिछौना बिछा था। दीवार में एक लकड़ी लगा था, जिसमें कई खूँटियाँ थीं। दीवार में चारों तरफ़ कई फ़ोटो और क़लमी तसवीरें वहाँ की शोभा बढ़ा रही थीं।

मटरू की मा ने दरवाज़े के पास आकर कहा—"मालती बिटिया आ गई हैं।"

नवकिशोर ने दरवाज़े की आड़ में खड़ी हुई मालती को उद्देश करके कहा—"मैं तुम्हें मथुरापुर ले जाने के लिये आया हूँ। मैंने बिना संकोच के पहले ही 'तुम' कहकर तुमसे बातचीत शुरू की है, इसका कुछ बुरा न मानना। तुम्हारी मौसी मेरी चाची होती हैं। बड़ा भाई अगर छोटी बहन को आप कहे, तो क्या वह सुनने में अच्छा लगेगा?"

मालती इस नवागत आगंतुक के निःसंकोच, सरल व्यवहार को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उसने स्पष्ट, किंतु कोमल स्वर में कहा—"यह आप क्यों पूछ रहे हैं? मुझे आप अगर 'आप' कहते, तभी अन्याय होता। आप मथुरापुर से यहाँ कब आए? मौसी की कोई चिट्ठी न मिलने से मुझे बड़ी चिंता हो रही थी।"

मालती जन्म से लेकर सयानी होने तक बाप के घर में देहात में ही पली थी; इसी से घूँघट काढ़ने या लज्जा-संकोच अधिक करने का अभ्यास ही उसे न था। ब्याह के बाद भी उसके ऊपर ससुराल का किसी तरह का दबाव न पड़ने के कारण उसने बिना संकोच के स्वाधीन भाव से, बढ़ उठने का मौक़ा पाया था। सास का शासन या नंद का झिड़कना कभी उसे सहना नहीं पड़ा—इसी से कृत्रिम भव्यता या लज्जा उसे छू भी नहीं सकी थी; लेकिन साथ ही असली लज्जा और संकोच की भी कमी उसमें नहीं था। फिर उसके पिता अगर ऑफ़िस में होते, या कभी परदेश जाते, और घर में कोई अतिथि अभ्यागत आ जाता, तो उसका आदर-सत्कार करने का काम भी उसी के ज़िम्मे था। इसका फल यह हुआ कि उसके प्रकृति-गत नारी-भाव के माधुर्य ने अभ्यासगत स्वाधीन, संकोच-हीन भाव के साथ मिलकर उसे एक अपूर्व ढंग से कोमल, लेकिन उसके साथ ही शक्तिशालिनी बना दिया था।

उस तरुणी रमणी के निःसंकोच, सच्चे, सरल व्यवहार से विस्मित

होकर नवकिशोर ने उत्तर दिया—"मैं कलकत्ते में ही रहता हूँ। मथुरापुर से चिट्ठी आई है, इसी से तुम्हें लेने आया हूँ।"

मालती ऐसी असंपूर्ण बात से संतुष्ट होनेवाली न थी। इसी कारण उसने फिर प्रश्न किया—"मौसी ने आपको लिखा है कि मुझे मथुरापुर ले जाइए; लेकिन मुझे तो उन्होंने कुछ भी ख़बर नहीं दी?"

इस प्रश्न से कुछ खीझकर नवकिशोर ने कहा—'ठीक चाची ने ही अपने हाथ से चिट्ठी मुझे नहीं लिखी है। वह पराधीन ठहरीं; सब समय इच्छा के मानिक काम कर नहीं पातीं। चाची के जेठ हरिविहारी बाबू ने अपने लड़के विपिन को चिट्ठी लिखी है, और विपिन ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।"

मालती—"तो आप विपिन बाबू नहीं हैं? मैंने उनका नाम सुना है। मौसी जब विधवा हो गई थीं, तब वही उन्हें अपने घर में रखने के लिये लेने गए थे। मैंने समझा था, आप विपिन बाबू ही हैं। आप विपिन बाबू के कौन होते हैं?"

नवकि०—"उनके साथ मेरा कोई ख़ास रक्त-मांस का संबंध नहीं है। मेरे पिताजी उनके कुल के पुरोहित हैं। इसी सूत्र से तुम्हारी मौसी हम सबकी चाची हैं। नौकर, दासी, गुमाश्ता, पायक, प्यादे, सब उन्हें चाची ही कहते और मानते हैं।"

मालती ने कुछ हँसकर कहा—"आपने जो चिट्ठी पाई है, उसे क्या मैं एक बार देख सकती हूँ?"

मालती की इतनी सावधानता देखकर और प्रतिभा-पूर्ण जिरह सुनकर नवकिशोर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने हँसकर कहा—"अपरिचित को शिनाख़्त करने की ज़रूरत होगी, यह सोचकर वह चिट्ठी मैं अपने साथ लेता आया हूँ। यह लो।"

नवकिशोर ने जेब से दोनो चिट्ठियाँ निकालीं, और भूल न हो

आप, इसलिये सतर्क होकर उसने अपने नाम की चिट्ठी देखकर जेब में रख ली, और विपिन के नाम की चिट्ठी दासी के हाथ में दे दी।

किंतु जिस भूल के लिये उसने इतनी सावधानी की, वही भूल हो गई। सवेरे के पहर बहस की झोंक में विपिन की चिट्ठी के लिफ़ाफ़े में अपनी चिट्ठी और अपने लिफ़ाफ़े में उसकी चिट्ठी रख दी थी। मालती को स्मृतिरत्न महाशय की चिट्ठी मिली, और वह उसमें अपने आश्रय देने का सारा ब्यौरा अवाक् होकर पढ़ने लगी।

मालती का विधवा होने के दुःख के बाद केवल कई दिन अपनी ससुराल का अनादर और उपेक्षा सहनी पड़ी थी। उस समय वह बालिका मात्र थी; उसके मा-बाप के स्नेह-प्रलेप ने उसकी सारी वेदना को शीघ्र ही शांत कर दिया था। किंतु पिता और माता की मौत के बाद उसकी जो दारुण वेदना जिस मौसी के निकट सांत्वना पाने की आशा कर रही थी, उसी मौसी की उदासीन उपेक्षा उस वेदना के ऊपर विष का काम कर गई—घाव पर जैसे किसी ने नमक छिड़क दिया। उसने मन-ही-मन मौसी की जो स्नेहमयी, कल्याणी मूर्ति कल्पना से गढ़ रक्खी थी, वह इस आघात से एकदम टूट-फूटकर मिट्टी में मिल गई। उसकी मौसी को उनका चोट खाया हुआ गर्व ही उसकी विपत्ति की अपेक्षा बड़ा दिखाई पड़ा, इस अपमान की चोट से उसके मन में लबालब भरा हुआ दुःख अभिमान के आँसुओं के रूप में बह निकला।

नवकिशोर ने मालती के रोने की आवाज़ सुनकर समझा कि वह उसके मा-बाप के मरने का शोक उभर आने का फल है। इसी से, सांत्वना देने की ग़रज़ से, उसने कहा—"दुःख न करो। हमारी चाची बहुत ही स्नेहमयी हैं। उनके पास जाने पर उनके प्यार से तुम्हें अपनी माता का अभाव भूल जायगा।"

मालती ने क्रंदन-पूर्ण दृढ़ स्वर से कहा—"हाँ, चिट्ठी में जैसा स्नेह का परिचय पा रही हूँ, उससे तो अब उनका अधिक प्यार पाने की इच्छा नहीं होती ! मैं उनके पास अब नहीं जाऊँगी।"

मालती की बातें सुनकर विस्मित होकर नवकिशोर सोचने लगा—यह क्या कह रही है ? उसके बाद एकाएक उसे ख़याल आया कि उसने शायद चिट्ठी देने में ग़लती कर डाली ! उसने चटपट जेब से दूसरी चिट्ठी निकालकर देखी, तो मालूम हो गया कि जो बात वह छिपाना चाहता था, वही असावधानता के कारण प्रकट हो गई है ! इससे वह लज्जित हुआ। साथ ही मालती के तेज और दर्प से भरे वचन सुनकर उसे एक प्रकार का आनंद भी हुआ। एक निराश्रय युवती के मुख से ऐसे तेज की बात सुनकर नवकिशोर ने कुछ लज्जा के साथ मुस्किराकर कहा—"तुम अगर न जाओगी, तो यहाँ तुम्हारा गुज़र कैसे होगा ?"

मालती—"किसी कन्या-पाठशाला में पढ़ाने की नौकरी कर लूँगी। मैं अकेली ही तो हूँ ; फिर मेरा ख़र्च भी कुछ बहुत नहीं ; किसी तरह निर्वाह हो ही जायगा।"

नवकिशोर को यह नहीं मालूम था कि किसी हिंदू के घर की औरत में भी ऐसा स्वावलंबन का साहस हो सकता है, जो अधिकांश मर्दों में भी नहीं पाया जाता। उसके मन में मालती के ऊपर श्रद्धा और आदर का भाव बहुत ही बढ़ गया। नवकिशोर ने मालती को और भी अच्छी तरह पहचानने की नियत से कहा—"यहाँ तुम्हें देखे-सुनेगा कौन ?"

मालती—"भगवान् और ख़ुद मैं।"

नवकिशोर ने हँसकर पूछा—"तो फिर तुमने इस तरह डर से घबराकर चाची को चिट्ठी क्यों लिखी थी ?"

मालती लज्जित होकर, आवाज़ और धीमी करके, रुक-रुककर

कहने लगी—"संसार के साथ मेरा परिचय अभी बहुत थोड़ा है, इसी से डर लगता है।"

नवकि० —"मगर अभी तक वह भय का कारण तो दूर नहीं हुआ ?"

मालती—"भगवान् ने जब मुझे संसार में अकेला करके छोड़ दिया है, और कहीं किसी का सहारा मिलने का भी ठिकाना नहीं है, तब मुझे लाचार होकर संसार के साथ परिचय कर ही लेना पड़ेगा। जब तक ऐसा नहीं होता, तभी तक डर मालूम पड़ता है"

इस समय नवकिशोर मालती की बातों को अच्छी तरह ध्यान देकर नहीं सुन रहा था। वह मन-ही-मन अपनी जानी-पहचानी औरतों के साथ मालती की तुलना कर रहा था। उसे मालती के आगे उन सबके चरित्र-चित्र हँसी पैदा करनेवाले जँचते थे। नवकिशोर ने अपने मन में संकल्प कर लिया कि चाहे जिस तरह हो, मालती को मथुरापुर के ज़मींदार के अन्तःपुर में ले ही जाना होगा। मालती के आदर्श संसर्ग और चेष्टा के द्वारा वहाँ के मूर्ख पर निंदा-प्रिय स्त्री-समाज का सुधार अवश्य ही करना होगा।

नवकिशोर ने दम-भर चुप रहकर कहा 'अपनी मौसी के व्यवहार से तुम्हारे मन को कष्ट होना स्वाभाविक है। लेकिन तुम्हें उनकी मानसिक अवस्था को भी एक बार विचार करके देखना चाहिए। एक समय वह जिनके समकक्ष और हिस्सेदार थीं, उन्हीं के कुचक्र से आज सर्वस्व खोकर उन्हें उन्हीं का मुँह ताकना पड़ रहा है। उन्हीं लोगों के निकट प्रार्थना करते समय अगर उनका अभिमान कुछ तीक्ष्ण ही हो उठा, तो क्या वह एकदम अमार्जनीय है ? तुम अपनी मौसी को नहीं पहचानतीं, लेकिन हम लोग उन्हें बहुत अच्छी तरह जानते हैं।"

मालती ने ज़रा सोचकर कहा—"हाँ, यह हो सकता है। लेकिन जहाँ एक तरफ़ भिक्षा और दूसरी तरफ़ उपेक्षा है, वहाँ भिक्षा की मात्रा बढ़ाकर मौसी को और भी अपमानित और कुंठित करना भी तो मेरे लिये उचित न होगा। मैं अगर जानती कि उन्हें इस तरह भिक्षा के ऊपर भरोसा करके रहना पड़ता है, तो कभी उन्हें चिट्ठी न लिखती।"

नवकि० —"इस बारे में भी तुम्हारी अपेक्षा हमारे लिये जानने का सुयोग अधिक है। विपिन की मा ज़मीदार की अशिक्षित गृहिणी हैं, इसी से वह कानों की कच्ची, गर्वित और किसी की बात न सह सकनेवाली हैं। इसी से उनमें ख़ाम-ख़याली की मात्रा अधिक है। लेकिन असल में वह बहुत सीधी-सादी है, बहुत ही स्नेह करनेवाली है। थोड़े ही में वह ख़ुश भी हो जाती है, और उनका क्रोध भी बहुत देर तक नहीं ठहरता। अगर उनकी इच्छा को समझकर उसके माफ़िक़ कह चले, तो उनसे जो चाहो, सो करा लेना कुछ कठिन काम नहीं है। चाचा ऐसा नहीं कर सकतीं, इसी से सब गड़बड़ होता है। विपिन मध्यस्थ होकर दोनों ओर सँभालता है। विपिन जल्दी ही घर जायगा, तब फिर कुछ गड़बड़ होने की सम्भावना नहीं रह जायगी। मैं अब तुम्हारा कोई उज़्र नहीं सुनूँगा। यह देखो, हरिविहारी बाबू ने तुम्हें सादर बुला भेजा है, विपिन की तरफ़ से मैं तुम्हें लेने आया हूँ, तुम्हें चलना ही पड़ेगा। उस घर में तुम्हारे जाने की ज़रूरत है। हम लोग तुम्हारे द्वारा बहुत कुछ काम करा लेंगे। हम दोनों मित्रों ने बहुत कुछ करने का मनसूबा बाँध रक्खा है; तुम्हें जाकर उसमें सहायता करनी पड़ेगी। स्पष्ट कह देने में कोई हर्ज नहीं है, तुम्हें शायद पहले कुछ खीझ और बक-झक सहना पड़ेगी। लेकिन पहला वार बीत जाने पर फिर कुछ गड़बड़ नहीं रह जायगी।"

मालती नवकिशोर के सरल, सबल चरित्र का आभास पाकर मन-ही-मन मुग्ध हो रही थी; वह चुप बैठी रही। नवकिशोर ने इससे प्रसन्न होकर कहा—"तो हम लोग कल ही रवाना होंगे—क्यों? यात्रा के मुहूर्त के लिये 'पत्रा' तो न खोजना पड़ेगा?"

मालती ने हँसकर कोमल स्वर से कहा—"नहीं, उसका हमारे यहाँ विशेष विचार नहीं किया जाता।"

नवकिशोर ने ज़ोर से हँसकर कहा—"तब तो हम तुम्हें मथुरा-पुर ले गए बिना किसी तरह नहीं छोड़ सकते। हम दोनों मित्रों की लोग निंदा करते हैं कि हम पोथी-पत्रा कुछ नहीं मानते; चलो, तुम्हारे चलने से हमारे दल में एक और आदमी बढ़ जायगा। अच्छा, तो तुम सब बाँध बूँधकर तैयार रहना, मैं कल आकर तुम्हें साथ ले लूँगा। अब मैं चलता हूँ।"

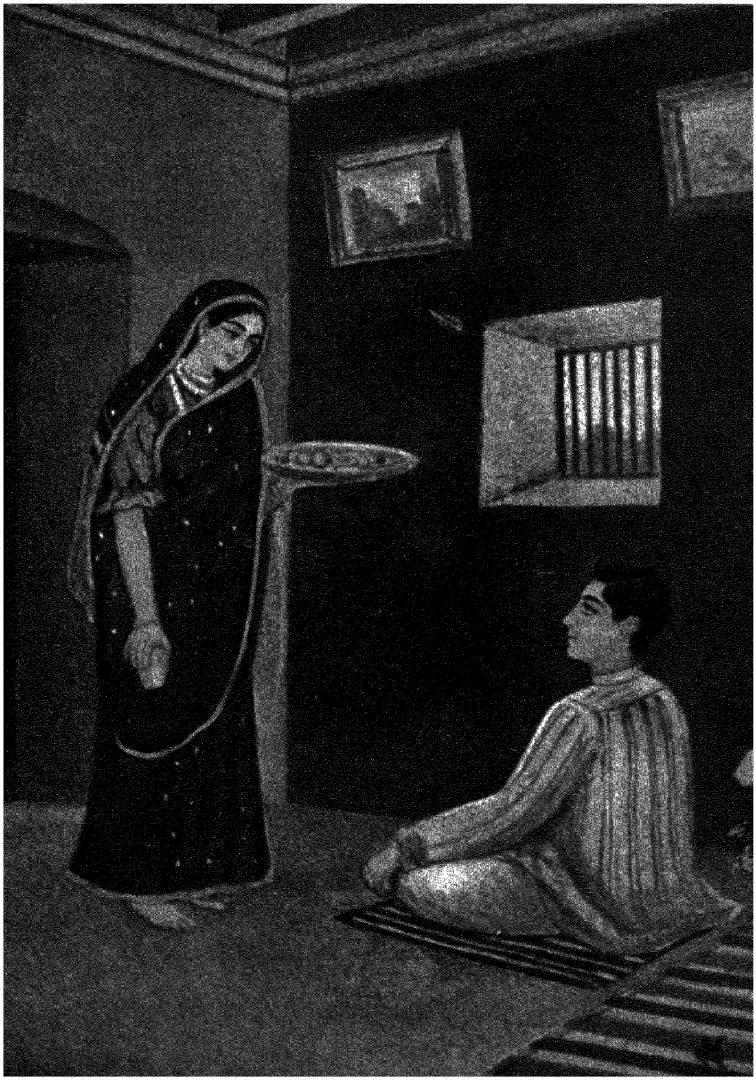
नवकिशोर छाता उठाकर चलने को तैयार हुआ।

मालती ने कोमल स्वर से कहा—"मुँह मीठा किए बिना आपका जाना नहीं हो सकता।"

नवकिशोर ने अपने अट्टहास से कोठरी-भर को गुँजाकर कहा—"संस्कृत-नाटक के विदूषक की तरह मैं भी मिठाई का घोर पक्षपाती हूँ, और इस बात को यह मेरा बेडौल डील किसी तरह छिपा नहीं सकता। ख़ैर, लाओ, उसमें मुझे विशेष आपत्ति नहीं है।"

दासी ने एक आसन लाकर डाल दिया; नवकिशोर उस पर जा बैठा। दम-भर बाद लज्जा और मुस्कान से, मनोहर मुखवाली मालती हाथ में मिठाई की थाली और गिलास में पानी लिए वहाँ उपस्थित हुई। नवकिशोर ने अब तक मालती को देख नहीं पाया था; वह आड़ से ही बातें कर रही थी। इस समय उसे आते देखकर नव-किशोर ने देखा, स्वर्ग की कोई सुंदरी सामने मौजूद है! वह एक अपूर्व रूप-लावण्य था। एक धुली हुई रेशमी साड़ी ही उस अलं-

बहता हुआ फूल



मालती हाथ में मिठाई की थाली और गिलास में पानी लिए वहाँ उपस्थित हुई।

(पृष्ठ ८०)

कार-हीन तरुणी को एक रानी के समान महिमामयी दिखा रही थी। नवकिशोर आदर के भाव से आसन पर उठकर खड़ा हो गया। मालती ने उसके सामने वह थाली रख दी, और पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया।

सातवाँ परिच्छेद

ज़िद के ज़ोर में चाची ने मालती को अपने पास बुलाने की चेष्टा छोड़ दी थी सही, लेकिन उनका मन निश्चित नहीं था। वह सोचती थीं, किसी दूर के शहर में उनकी बहन की लड़की है; इस निष्ठुर संसार में वह बिलकुल ही अकेली है। उसके साथ केवल उसका परिपूर्ण यौवन और अनूप रूप-भर है! कौन इन सब शत्रुओं से उसकी रक्षा करेगा? तिल-भर अपवित्रता ने अगर उसे कलुषित कर दिया, तो उसकी लज्जा और दोष की भागिनी वह भी होंगी। धिक्कार है, घोर धिक्कार है उनके क्रोध को! क्यों वह ऐसी इतनी बड़ी क़सम खा बैठीं! ऐसी बुद्धि क्यों हो गई! अभागिन लड़की के कारण शत्रु के आगे सिर तो झुकाना ही पड़ा; लेकिन कुछ काम नहीं हुआ! वह लड़की क्या ऐसी ही अलच्छनी है कि जहाँ पैर रक्खा, वहीं आग लग गई! कैसी बुरी साइत में वह पैदा हुई थी! पराए गलग्रह होने की जो दीनता इतने दिन के अभ्यास के तले दब गई थी, वह आज मालती ही के लिये तो अपने और परायों के आगे फिर से नई हो उठी! कैसी लज्जा की बात है! कैसी शर्म है! मालती के यहाँ आने की ज़रूरत नहीं है; उसका न आना ही अच्छा! लेकिन वह अनाथ जो है! आहा, वह अभी बच्ची है, उसकी अवस्था ही कितनी है! उसे देखनेवाला, उसकी सहायता करनेवाला और कोई नहीं है।

इस तरह चाची का मन एक ओर मालती के दुःख से कातर होता था, तो फ़ौरन् फिर उनका आहत अभिमान उसे कठिन कर देता था। खीझ और ममता के बीच झोंके खाकर उनका मन यह ठीक नहीं कर पाता था कि मालती के संबंध में वह कुछ न करके चुप रहें, या उसके लिये कुछ चेष्टा करें।

इस तरह कुछ निश्चय न कर पाने के कारण कई दिन लगातार रो-रोकर वह क्लांत हो पड़ी थीं। मालती को लाने के लिये हरिविहारी ने विपिन को और भट्टाचार्य ने अपने पुत्र नवकिशोर को जो पत्र लिखे थे, उनका हाल चाची को नहीं मालूम था। हरिविहारी एकांतवासी और कम बोलनेवाले आदमी थे; उन्होंने यह बात किसी से कहना आवश्यक नहीं समझा। उधर भट्टाचार्य ने भी इस भय से कि मालती के आ जाने के आगे ही उसके आने की ख़बर ज़ाहिर हो जाने से पीछे कोई विघ्न न उठ खड़ा हो, वह बात गुप्त ही रक्खी थी। वह केवल चाची को यह सांत्वना देते जाते थे कि बहूजी, चिंता न करो, भगवान् वही करेंगे, जिससे भला होगा। हम लोग कितना सोच सकते हैं बहूजी! हमारा ख़याल वही रखते हैं।

वास्तव में चाची को इतनी चिंता थी कि वह सोच-सोचकर हैरान थीं; उन्हें कोई उपाय नहीं सूझता था। वह वेदना-कातर शरीर और मन को हरि के चरणों पर लोटाकर आँसू बहाती हुई निवेदन करती थीं कि हे ठाकुरजी, अब नहीं सहा जाता, अब नहीं रहा जाता। रक्षा करो नारायण, रक्षा करो!

एक दिन सबेरे चाची ठाकुरद्वारे में बैठी आँसुओं से ठाकुरजी की पूजा कर रही थीं, इसी समय अंदर की ड्योढ़ी में पालकी के कहारों का क्लांत कल-रव सुनाई पड़ा।

अंदर-महल में एक कौतुक की लहर दौड़ गई। ऐसे असमय में बिना ख़बर दिए, कौन आया? बड़ी बहू तक जब नहीं जानतीं, तो

इसके भीतर कुछ रहस्य अवश्य है ! लड़के-लड़की और दासियाँ देखने के लिये दौड़ पड़ीं। बहू-बेटियाँ आँगन में जमा होकर खड़ी-खड़ी उत्सुक दृष्टि से बार-बार दरवाज़े की तरफ़ झाँक-झाँककर संभव-असंभव तरह-तरह के अनुमान करने लगीं।

चाची को किसी से कुछ वास्ता नहीं। वह ठाकुरद्वारे में ही, चुप-चाप ठाकुरजी की ओर टकटकी लगाए, चित्र-लिखित-सी बैठी रहीं। वह अपने मन में कहने लगीं—माधवी ही अगर आई हो ! इस संभावना से आनंद और भय, आशा और दुःख, दोनों मिलकर उनके मन को मथने लगे। उनका हृदय भीतर से रह-रहकर काँप उठने लगा।

सबको ठेलकर रोहिणी ही आगे ड्योढ़ी में दौड़ी गई थी। उसने जाकर देखा, नवकिशोर के पीछे एक सजीव प्रतिमा अंदर आ रही है। रोहिणी संभ्रम और विस्मय के भाव से अवाक् होकर, ठिठककर, खड़ी हो गई। जिसके इतना रूप है, वह क्या मनुष्य हो सकता है ?

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"अवाक् होकर क्या देख रही हो रोहिणी ? यह हमारी चाची की बहन की लड़की है।"

रोहिणी के जैसे जान में जान आई। वह कोई रानी नहीं है, परी नहीं है, यहाँ तक कि मेम भी नहीं है ; वह सिर्फ़ चाची की बहन की बेटी मालती-मात्र है, एक बहुत ही साधारण लड़की-भर है ; जिसके लिये उस दिन इतना बड़ा लंका-कांड हो गया, यह वही है—यह जानकर रोहिणी आश्वस्त हुई ! उसने स्वाभाविक कुटिल हँसी हँसकर कहा—"ओ भैया ! यही चाची की बहन की लड़की है ! मैं समझी थी, दादा-ठाकुर शायद आख़िर को कलकत्ते से धौंधरे-वाली मेम ब्याह लाए !"

मालती का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा। उसने चकित दृष्टि से एक बार रोहिणी को देखकर सिर झुका लिया। उसे रोहिणी के रंग-ढंग बिलकुल अच्छे नहीं लगे।

नवकिशोर ने रोहिणी की ओर ऐसे तीव्र भाव से आँखें लाल करके देखा कि रोहिणी दुबारा दिल्लगी करने के लिये उद्यत जीभ को रोककर भीतर की ओर भागी। वह नवकिशोर को बहुत अच्छी तरह जानती थी!

रोहिणी को लौटकर आते देखकर सब औरतें एक साथ उस पर प्रश्नों की वर्षा करने लगीं—"कौन है रोहिणी? कौन है रे। कौन आया है? इत्यादि-इत्यादि।"

रोहिणी उस समय चाची को ख़बर देने के लिये छटपटा रही थी। उसने दौड़ते-दौड़ते कहा—"अजी, और कौन, वही हमारी चाची की घाँघरेवाली मेम बहन की लड़की आई है जी!"

नवकिशोर के पीछे-पीछे मालती आँगन में आकर पहुँची। लड़की-लड़के चारों ओर से मालती को घेरकर कल-रव करने लगे। विनोद ने कहा—"दादा-ठाकुर, तुम आए, बड़े दादा क्यों नहीं आए? अब की तुमको रोज़ शाम को एक कहानी ज़रूर सुनानी पड़ेगी—हाँ!"

पाँचू ने कहा—"हाँ, वही सात भाई-बहनों की कहानी!"

विनोद ने उसे रोककर कहा—"ना-ना, वह तो पुरानी कहानी है। वही सोने-रूपे की छड़ीवाली कहानी, वही राजकुँअर के काठ के घोड़े की कहानी, कहनी होगी दादा-ठाकुर—"

नवकिशोर ने हँसते-हँसते दोनों हाथों से दोनों के सिर हिलाकर कहा—"हाँ-रे-हाँ, कहूँगा, सब कहूँगा। अभी बंदरो, ज़रा सबर करो। देखते नहीं हो, तुम दोनों के एक नई दीदी आई है! यह बहुत-सी कहानियाँ जानती हैं। जाओ, इनसे जान-पहचान कर लो।"

लड़के विस्मय और कौतूहल के साथ आनेवाली अपरिचिता के मुँह की ओर देखकर स्तब्ध होकर खड़े रहे।

बहुएँ नवकिशोर को देखकर, माथे पर घूँघट खींचकर, किनारे हट,

इन अपनी उँगलियों से ज़रा घूँघट उठाकर मालती को देखने लगीं। बेटियाँ भी न कुछ बोलती थीं, न हिलती-डुलती थीं ; एक तरफ़ खड़ी यह तमाशा देख रही थीं। किसी ने भी बढ़कर मालती की अभ्यर्थना नहीं की।

रोहिणी के बेतुके ठट्ठे से मालती रुआसी हो उठी थी ; इस समय सबके अशिष्ट और रूढ़ व्यवहार से उसे आँसू रोकना कठिन हो गया। वह अपने मन में सोचने लगी—यह मैं कहाँ आई ? सबकी उपेक्षा-अनादर को सहकर मैं यहाँ कैसे रह सकूँगी ? इस तरह सबकी दृष्टि का लक्ष्य बनकर और कितनी देर मुझे लज्जित होना पड़ेगा ? कोई क्या मुझे एक बार बुलाकर अपने दल में शामिल नहीं कर लेगा ? और, मौसी ही कहाँ हैं ?

नवकिशोर से मालती की अवस्था छिपी नहीं रही। उसने जैसे करुण सांत्वना की दृष्टि से उसकी ओर देखा, वैसे ही उसकी आँखों में आँसू छलक उठे। उन्हें छिपाने के लिये मालती ने सिर झुका लिया। उस अपरिचित और विमुख नारी-मंडली के बीच में अकेले नवकिशोर को अपना बंधु देखकर जितनी ही वह उसकी प्रत्याशा करती थी, उतना ही उसका यह भय बढ़ रहा था कि पराए घर में नवकिशोर कितनी देर तक उसे ताके रहेगा ! इन सब विमुख आदमियों के विरुद्ध भाव को सहकर ही उसे यहाँ रहना होगा ! मालती इस संभावना की चिंता से ही व्याकुल होकर निराश्रय की हताश दुर्बलता से एकदम मरी-सी जा रही थी। वह अपने को किसी तरह सँभाल नहीं सकती थी।

इसी समय बिनो ने आकर उसे बचा लिया। वह अब तक मालती के मुँह की ओर दूर से ताक रही थी। देखते-देखते साहस करके आगे बढ़कर उसने मालती का हाथ पकड़ लिया, और गंभीर भाव से कहा—"तुम मेली दीदी हो ? तुम कहानी कहोगी ?"

मालती को जैसे समुद्र में किनारा मिल गया। उसने चटपट बिनी को उठाकर गोद में ले लिया, और उसका मुँह चूमते ही उसकी अपने को सँभालने की सारी चेष्टा धूल में मिल गई। प्रभात-वायु के स्निग्ध स्पर्श से शुभ्र, सुंदर हरसिंगार के फूल की तरह उसकी आँखों से आँसू की बूँदें झर-झर करके झड़ पड़ने लगीं। इस घर के किसी एक आदमी ने तो आदर-पूर्वक आत्मीय कहकर उसकी अभ्यर्थना की! उसकी सारी लज्जा की ग्लानि को उस छोटी-सी लड़की ने आदर करके धो बहाया!

मालती ने जल्दी से आँचल से आँसू पोंछ डाले, और नवकिशोर की ओर सकरुण, प्रसन्न दृष्टि फेरी। इतनी देर बाद कुछ कहने का अवकाश पाकर नवकिशोर की भी जैसे जान बची। उसने कहा—"यह हमारी बिनी है, और यह हमारी मा है—"

बिनी कहीं मालती को छू न ले, इस भय से विपिन की मा जल्दी से बिनी को पकड़ने आई थीं। किंतु उनके पहुँचने के पहले ही मालती ने उसे गोद में उठा लिया था। पुरखिन यह देखकर चुपचाप काठ की तरह खड़ी हो रहीं। मालती ने उन्हें प्रणाम करके चरण-रज लेने के लिये जैसे हाथ बढ़ाया, वैसे ही, जिस तरह पैरों के पास काला नाग देखकर आदमी चौंक उठता और पीछे हट जाता है, उसी तरह, वह हट गईं। उन्होंने कहा—"बिनी, कहती हूँ—गोद से उतर आ! नाचते-नाचते जाकर गोद में चढ़ गई! जा, रोहिणी के पास जा, घाँघरा खोलकर धोने के लिये दे दे! जाती है कि नहीं!"

नवकिशोर मालती के आने को किसी तरह एक सहज घटना न बना सकने के कारण परेशान हो उठा था। वह इस समय किसी तरह मालती को चाची के ज़िम्मे सौंप दे, तो उसे छुटकारा मिले। उसने पुरखिन से पूछा—"मा, चाची-अम्मा नहीं देख पड़तीं; कहाँ हैं?"

पुरखिन को पूरा निश्चय था कि उन्हें विना जताए मालती को एकदम बुला जाना छोटी बहू की ही कारसाज़ी है! इसमें उन्हें रत्ती-भर संदेह नहीं था। वह भीतर-ही-भीतर रुँधे हुए रोष से जल रही थीं। नवकिशोर का प्रश्न सुनते ही वह तीव्र स्वर से कह उठीं—"कौन जाने, तुम्हारी चाची-अम्मा कहाँ है? वह ठहरीं रानी-महरानी! हम-ऐसी लौंडी-बाँदियों से कुछ कहती है, या पूछती है?"

नवकिशोर ने निराश्रय भाव से एक बार चारों ओर देखा। क्षमा ने कहा—"चाची-अम्मा ठाकुरद्वारे में हैं।"

नवकिशोर ने प्रार्थना के स्वर में कहा—"क्षमा, भई, तू मालती को चाची के पास पहुँचा तो दे। मैं तब तक मा के साथ ज़रा बात-चीत करता हूँ। विपिन ने मा से कहने के लिये बहुत-सी बातें कही हैं।"

नवकिशोर पुत्र का नाम लेकर माता का हृदय जीतने की आशा कर रहा था।

क्षमा ने अवाक् होकर एक बार मालती की ओर देखा। उसकी समझ में नहीं आता था कि वह मेम को क्या कहकर संभाषण करे, और मेम ही उसकी बात को कैसे समझेंगी? कुछ इधर-उधर करके क्षमा ने माथा हिलाकर इशारे से मालती को बुलाया।

पुरखिन ने आँखें लाल करके क्षमा से कहा—"भर पाजी औरत! उसे क्या ठाकुरद्वारे में ले जायगी?"

क्षमा बेवकूफ़ बन गई। वह किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर एक बार बड़ी बहू की ओर, एक बार मालती की ओर, और एक बार नवकिशोर की ओर ताकने लगी।

नवकिशोर ने कोशिश करके हँसकर बड़ी बहू से कहा—"क्यों मा, वह ठाकुरद्वारे जायँगी, तो क्या होगा?"

पुरखिन ने विस्मय के स्वर में कहा—"जायगी तो क्या होगा ? अजात-कुजात, सभी इस तरह ठाकुरद्वारे में चले जा सकते हैं ?"

नवकिशोर—"अजात-कुजात क्या, वह तो तुम्हारी ही देवरानी की बहन की बेटी हैं !"

पुरखिन—"देवरानी की बहन की बेटी होने से क्या होता है। उसने घाँघरा जब पहन लिया, तो किरिस्टान हो गई ! उसकी जात ही कहाँ रही ?"

मालती नवकिशोर की ओर देखकर कुछ हँसी। मालती का मुँह उस समय लज्जा और अपमान से लाल हो उठा था।

नवकिशोर ने बड़ी बहू से कहा—"वह तो घाँघरा नहीं है ; उसे शेमीज कहते हैं ! आजकल शहरों में सभी आबरूदार औरतें इस तरह के कुर्ते पहनती हैं। खासकर कलकत्ते में तो यह चलन-सा हो गया है। तुम लोग जो कपड़े पहनती हो, उन्हीं कपड़ों को काटकर एक कुर्ता बनाकर पहनते ही जाति चली गई ! जाति क्या कोई कपूर की डली है कि हवा लगते ही उड़ जाती है, बात-बात में चली जाती है ! और, घाँघरा पहनते ही अगर जाति जाती है, तो फिर बिनी की भी तो जाति गई है !"

पुरखिन ने विस्मय का भाव प्रकट करके कहा—"वह बच्चा और यह सयानी लड़की बराबर !"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"मैं जानता हूँ कि तुम जाति मानती हो ; मगर आज मालूम हुआ कि तुम्हारे घर के ठाकुर भी जाति का विचार करते हैं ! तुम-जैसे कुछ शुचि-बाई के रोगवाले लोगों के ही कहे में क्या देवता भी हैं ? वे क्या तुम्हारे ही देवता हैं, जगत् में और किसी के भी नहीं ? मगर उधर तुम्हीं लोग बात-बात में कहती हो कि देवता पतित-पावन हैं।"

नवकिशोर की युक्ति के आगे हारने के कारण गरम होकर, हाथ

और नथ मटकाकर, पुरखिन ने कहा—"देवता पतित-पावन हैं, तो क्या मलिच्छ आकर ठाकुरद्वारे में ठाकुर की पूजा करेगा ? तुम लोग चाँद का टुकड़ा चेहरा देखते ही उन्हें सिर पर चढ़ा लो, तो ठीक है ; लेकिन हम लोग तो अपनी जाति नहीं दे सकते—ठाकुरद्वारे को अपवित्र नहीं कर सकते ! किशोर, तू शास्त्र पढ़कर क्या हो गया है रे ? शास्त्र में लिखा है, दर्ज़ी के घर का सिला हुआ कपड़ा पहनकर देवता का कोई काम नहीं करना चाहिए, और न ठाकुरजी के पास जाना चाहिए। तू ही बता, दर्ज़ी मुसलमान और क्यों हुए ?"

नवकि०—"नहीं मा, वह शास्त्र मैंने नहीं पढ़ा, जिसमें ये बातें लिखी हैं। और, दर्ज़ी इधर मुसलमान ही अधिक हैं, मगर पछाँह में हज़ारों हिंदू दर्ज़ी हैं। इसके सिवा तुमने मथुरा, काशी वग़ैरह के पुजारियों को तो देखा ही है। वे मज़े से रुई के भरे और दर्ज़ी के घर के सिले कपड़े पहने ठाकुर की पूजा करते और उनका भोग लगाते हैं।"

पुरखिन ने खीझकर कहा—"देवता के पुजारियों की और बात है। उनकी और हमारी कोई बराबरी नहीं है। तेरे ज्ञान-बुद्धि कब होगी किशोर ? मैं देखती हूँ, तू इतने बड़े भट्टाचार्य-घराने का नाम डुबा देगा !"

नवकिशोर ने देखा, इस तर्क की मीमांसा नहीं होने की ! उधर मालती शिथिल-वृंत, पतनोन्मुख फूल की तरह, निराश्रय भाव से खड़ी है। इसी से नवकिशोर ने हँसकर कहा—"इससे अधिक ज्ञान-बुद्धि तो तुम्हारे किशोर के होगी नहीं मा ! मेरी आशा छोड़ दो। मालती अभी बालिका है। उसे गोबर-गोमूत्र वग़ैरह खिला-पिलाकर किसी तरह शुद्ध कर ले सको, तो उससे तुम्हारा नाम-यश और पुण्य, दोनों बातें होंगी। उसका सब भार तो तुम्हीं को लेना होगा। चाची-अम्मा तो उसे बुलाने को राज़ी ही नहीं

थीं। वह तुम्हारा यश सुनकर आप ही तुम्हारे आश्रय में चली आई है—"

अब की नवकिशोर का निशाना ठीक बैठा। इन बातों से पुरखिन खुश हो गईं। उन्होंने कहा—"सो जब वह आ गई है, तो क्या मैं उसे भगा दूँगी? लेकिन तुमसे कहे रखती हूँ बेटी, यह सब मलिच्छपना तुम्हें छोड़ देना पड़ेगा! यह नहीं, वह नहीं, विधवा स्त्री का यह पहनावा—छी! छोटी बहू की बुद्धि की बलिहारी! लड़की पहर-भर से आकर खड़ी है, ज़रा आकर इधर झाँकने का भी नाम नहीं। छोटी बहू, ओ छोटी बहू—"

चाची को ठाकुरद्वारे में ही मालती के आने का हाल मालूम हो गया था। वह बह रहे आँसुओं की धारा रोककर उठने के लिये चेष्टा कर रही थीं। इसी समय रोहिणी ने आकर कर्कश व्यंग्य के स्वर में कहा—"अर्जी, ओ चाची-अम्मा, घाँघरा पहने मेम तुम्हारी बहन की लड़की आई है; आओ, देखो तो!"

चाची आँखें मूँदे वैसे ही निश्चल बैठी रहीं। उन्होंने रोहिणी की बात का कुछ जवाब ही नहीं दिया।

रोहिणी अप्रसन्न होकर वहाँ से लौटी। राह में बड़ी बहू से भेंट हुई। बड़ी बहू ने पूछा—"छोटी बहू कहाँ है रोहिणी?"

रोहिणी ने मुँह बनाकर कहा—"ठाकुरद्वारे में आँखें मूँदकर ध्यान कर रही हैं। मैंने जाकर कहा, तुम्हारी बहन की लड़की आई है, तो उसने जैसे सुना ही नहीं!"

पुरखिन ने ठाकुरद्वारे में जाकर पुकारा—"छोटी बहू!"

चाची ने उठकर ठाकुरजी को प्रणाम किया, और फिर आँसू-भरी, करुण दृष्टि से जिठानी के मुँह की ओर देखा।

यह देखकर पुरखिन का मन पसीज उठा। उन्होंने कोमल स्वर से कहा—"बेकार रो क्यों रही हो छोटी बहू? उस लड़की की मा

मर गई है, और वह आसरा करके तुम्हारे पास आई है ; उसे देखो-सुनो। आओ, चलो।"

बड़े कष्ट से उमड़ी हुई रुआई को रोककर चाची-अम्मा ने कहा—"दीदी, मैं इस ठाकुर-घर में खड़ी कह रही हूँ, मैंने उसे नहीं बुलवाया है ; मुझे उसके आने की रत्ती-भर ख़बर भी नहीं थी। वह तुम्हारे ही आश्रय में आई है ; तुम्हीं उसकी मा और मौसी हो। तुम्हीं उसे देखो-सुनो।"

पुरखिन ने संतुष्ट होकर कहा—"हाँ, सो मैं तो देखूँगी ही। तो भी तुम ज़रा उसके पास तो हो आओ। लेकिन मैं यह कहे रखती हूँ छोटी बहू, इस घर में वह सब मलिच्छपना नहीं चलेगा!"

चाची-अम्मा इस बात के कुछ माने नहीं समझ सकीं। वह पुरखिन के पीछे-पीछे ठाकुरद्वारे से बाहर निकलीं। बाहर आते ही उन्होंने देखा, नवकिशोर के पीछे एक परम सुंदरी युवती खड़ी है! यह अपूर्व रूपवती ही उनकी बहन की लड़की है! यह कैसा रूप है! दोनों बड़ी-बड़ी आँखें लज्जा से झुकी हुई हैं, गोल-गोल गुलाबी गाल लज्जा के अरुण राग से रंजित होकर और भी सुहावने जान पड़ते हैं। एक शेमीज और उसके ऊपर बढ़िया महीन धोती है। आगे से आधा सिर आँचल से ढका हुआ है। काले रेशम के समान, चिकने, चमकीले, छोटे छोटे बाल गोरे, सुंदर ललाट के ऊपर हवा लगने से उड़ रहे हैं। दोनों सुडौल कलाइयों में एक-एक सोने की चूड़ी पड़ी है।

यह सब देखकर चाची-अम्मा का मन मालती की ओर से एकदम विमुख और अप्रसन्न हो उठा। ग़रीब की अनाथ लड़की के इतना रूप ही क्यों है? और, विधवा का इतना सिंगार ही किसके लिये है? लेकिन उन्होंने एक बार यह सोचकर नहीं देखा कि इसके लिये मालती तनिक भी ज़िम्मेदार नहीं है ; इसमें उसका

रत्ती-भर भी दोष नहीं है। ग़रीब हिंदू के घर की विधवा जानकर भी विधाता ने उसे रूप, यौवन और स्वास्थ्य देने समय तनिक भी कृपणता नहीं की, और मालती के मा-बाप अपनी एकमात्र संतान को एकदम विधवा के सर्वशून्य उजाड़ वेष में देख नहीं सके। मालती अभ्यास-वश ही रूप और उसे बढ़ानेवाला यह वेष लेकर उपस्थित हुई थी। उसने यह नहीं सोचा था कि उसका यह रूप और वेष किसी की खीझ या कौतहल का कारण हो सकता है।

नवकिशोर प्रणाम करके हट गया। तब मालती ने भी आगे बढ़कर अपनी मौसी को प्रणाम किया। लेकिन अब की उसने चरणों की रज लेने की चेष्टा नहीं की। उसने सोचा, शायद यह भी बड़ी बहू की तरह छूने से परहेज़ करें, और मुझे बेकार अपमानित और लज्जित होना पड़े। लेकिन चाची ने उसे मालती का अशिष्टता और अहंकार समझा, और इससे उनका मन मालती की ओर से और भी विमुख हो उठा। उन्होंने रूखे, कठोर स्वर में सिर्फ़ इतना ही कहा—"इधर आ।"

आठवाँ परिच्छेद

मालती ने चाची की कोठरी में जाते ही कहा—"मौसी, मुझे एक कोरी मारकीन की धोती तो दो।"

चाची—"इस समय धोती क्या करेगी? नहायगी नहीं?"

मालती—"नहाऊँगी तो। नहाने की जगह किधर है?"

चाची—"यह क्या तेरा कलकत्ता-शहर है कि घर के भीतर ही जल-कल और नहाने की जगह हो! यहाँ सब लोग तालाब में नहाते हैं, और घर इतने बड़े नहीं होते कि उनमें तालाब खुद-वाए जायँ।"

मालती इस घर में आने के बाद से अब जाकर हँसी। उसने हँसी को दबाकर कहा—"तालाब रहने-लायक़ घर न सही, तालाब का पानी भरकर घड़े रखने के लायक जगह तो है!"

चाची—"भरकर लाए गए पानी में नहायगी क्या? चल, तुझे तालाब दिखा आऊँ। वहीं नहा लेना। तालाब घर से मिला ही हुआ है।"

मालती—"ना मौसी, मैं नौकर-चाकरों के सामने नहीं नहा सकूँगी।"

चाची—"तालाब में नहीं नहायगी, तो तुझे पानी भरकर कौन ला देगा? तेरी मौसी के दस-पाँच लौंडियाँ लगी हैं क्या?"

मालती—"मुझे चलकर तालाब दिखा दो। मैं ख़ुद वहाँ से पानी भर लाऊँगी।"

चाची ने विस्मित होकर कहा—"क्या कहती है, तू पानी भर लावेगी?"

मालती—"ले ही आऊँगी, तो क्या होगा? जब हमारे कोई नौकर-चाकर नहीं है, तो अपना काम आप कर लेने में हर्ज ही क्या है?"

चाची ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा—"ना-ना, यह सब छोटे आदमियों का ढंग यहाँ नहीं चल सकेगा। यह ज़मींदार का घर है, तुझे यहाँ का अदब-क़ायदा मानकर चलना पड़ेगा। यों ही तेरे कारन मेरा सिर नीचा हो रहा है—"

मालती ने हँसकर कहा—"यह तो ख़ूब अजूबा ज़मींदारी का अदब क़ायदा देख पड़ता है। तालाब में सबके आगे नहाने में शर्म नहीं है, और वहाँ से पानी भर लाने से ही आबरू मिट जायगी? वाह!"

मालती को हँसी और पंडिताई देखकर चाची के हाड़ जल उठे। उन्होंने रूखे स्वर में कहा—"अभी आए घड़ी-भर नहीं हुआ, इतने

हा में तूने जलाना शुरू कर दिया ! बारह महीने-तीस दिन तेरे साथ मैं कैसे रहूँगी ?"

फिर वैसी हा हाड़ जलानेवाली हँसी हँसकर मालती ने कहा—"इसके लिये कुछ चिंता न करो मौसी, दो दिन एक जगह रहने से ही मेरा चाल-चलन तुम्हें सह्य हो जायगा, और यहाँ का अदब-क़ायदा भी मुझे भज जायगा।"

इस बात मे चाची बहुत ही जल उठकर गन-गन करने लगीं; लेकिन यह कुछ ठीक न कर सकीं कि मालती से क्या कहें। मालती ने समझ लिया कि उन्हें क्रोध चढ़ आया है। उसने कहा—"अच्छा, तो मौसी, मुझे एक सूखी धोती दो ; मैं घाट से यहाँ तक भीगी धोती पहने नहीं आ सकूँगा।"

अब का कुछ नरम होकर चाची ने कहा—"अपने बक्स का चाभी दे ; उसमें से तेरी धोती निकाल दूँ।"

मालती ने कहा—"उसमें सब किनारेदार धोतियाँ हैं। मैं अब किनारेदार धोती नहीं पहनूंगा। तुम अपना एक मारकीन के थान की धोती दो मौसी।"

चाची खुश होकर धोती लेने गईं। मालती ने हाथ की चूड़ियाँ निकालकर बक्स में रख दीं।

विधवा के वेष में मालती की नवीन श्री उद्भासित हो उठी।

नहा-धो चुकने पर चाची-अम्मा ने मालती से कहा—"जा, बड़ी बहू के पास जाकर बैठ। सदा-सर्वदा उन्हीं के पास रहा कर, सेवा-टहल करके उन्हें खुश रक्खा कर, समझा ?"

बड़ी बहू की प्रसन्नता पाने की प्रत्याशा से मालती उनके पास पहुँची।

बहू भोजन करके आराम से लेटी हुई थीं। रोहिणी और एक दूसरी दासी, दोनो पैर दाब रही थीं। पलँग के एक तरफ़ विनोद

और बिनी, दोनो बैठे अकड़ी-मकड़ी का खेल खेल रहे थे। बड़ी बहू मुस्किराती हुई पुत्र-कन्या के अर्थ-हीन खेल देख रही थीं। सहसा सामने मालती देख पड़ी। बड़ी बहू के मुँह पर जैसे अंधकार छा गया। वह गंभीर भाव से, आँख नीची करके, ज़मीन की ओर देखने लगीं।

मालती इस उपेक्षा को भी सहकर बड़ी बहू की चरण-सेवा में शामिल होने के लिये रोहिणी के पास बिछौने पर बैठने लगी। बड़ी बहू एकदम "हाँ-हाँ-हाँ, क्या करती है!" कहती हुई चटपट बिछौने पर उठ बैठीं। मालती सिटपिटाकर सिमट गई, और चारों ओर देखने लगी।

बड़ी बहू ने कहा—"इन कपड़ों को पहने कभी मेरा बिछौना न छूना।"

मालती ने अप्रतिभ होकर कहा—"ये कपड़े तो पवित्र हैं मौसी। मैंने नहा-धोकर मौसी की धुली हुई धोती पहनी है।"

बड़ी बहू ने कहा—"धोती धुली होने से क्या होता है! मैं कहे रखती हूँ तुझसे, यह घाँघरा पहनकर हमारी कोई चीज़ कभी न छूना।"

मालती का सिर जैसे किसी ने काट लिया। वहाँ बैठे रहना, या वहाँ से उठकर चले जाना, दोनो काम उसके लिये कठिन हो गए! मालती चुपचाप खड़ी रही, और दम-भर बाद, धीरे-धीरे जैसे आई थी, वैसे ही लौट गई। बड़ी बहू ने और कोई बात भी उससे नहीं की। रोहिणी मज़े की गंध पाकर उठकर मालती के पीछे चली।

एक कमरे में क्षमा, मोक्षदा, पाँचू की मा, जया वग़ैरह कई ज़मींदार के घर में पलनेवाली औरतें एक ग़लीचा बिछाए बैठी पचीसी खेल रही थीं। ये सब ज़मींदार बाबू के नाते-रिश्ते की औरतें हैं, और

उन्हीं के आश्रित हैं। किसी के साथ साधारण या दूर का नाता है, और किसी के साथ कुछ भी नाता नहीं है। सभी सधवा हैं; केवल जया विधवा है। उसे अनाथ, विधवा देखकर जब हरिविहारी बाबू ने अपने अंतःपुर में आश्रय दिया था, तब बड़ी बहू ने बहुत कुछ आपत्ति की थी, और कई दिन तक आँसू बहाए थे; लेकिन सब वृथा हुआ। धीरे-धीरे अब उसकी ओर उनका वह भाव नहीं रहा है; मगर विपिन अब भी जया को देख नहीं सकता। अन्य औरतों में से कोई पुरखिन के मैके के गाँव के नाते से आत्मीय है, कोई ससुराल के संबंध से सगी है। उनमें से किसी का पति ज़मींदार बाबू के यहाँ गुमाश्तागीरी करता है, कोई मुसाहबत करता है। सब मज़े से भाँग छानकर, अफ़ीम की गोली जमाकर, गाँजे पर दम लगाकर या बोतल-वाहिनी की उपासना कर मस्त रहते हैं। ये औरतें इधर-उधर घूम-फिरकर, गप-शप लड़ाकर, परनिंदा-परपंच करके, ताश-पचीसी पीटकर, गुलछर्रे उड़ाती हैं।

मालती उसी कमरे के सामने से होकर चली जा रही थी। यह देखकर क्षमा ने कहा—"जया बुआ, वह मालती छुकरिया जा रही है, ज़रा उसे बुलाओ।"

जया ने पुकारा—"अजी, ओ मालती, ज़रा हम ग़रीबों के पास भी पधारा करो। आओ-आओ।"

शांत, शीतल चंद्र-किरण के समान अपने चारो ओर सौंदर्य की छटा छिटकाती हुई मालती ने चुपचाप, ललित गति से, धीरे-धीरे उस कमरे में प्रवेश किया। बहुओं ने चटपट सिर पर आँचल खींच लिया, और हाथ से दाँव की कौड़ी रखकर सिमट बैठीं। बेटियाँ अवाक् होकर मालती के मुँह की ओर ताकती हुई एक दूसरे का मुँह देखने लगीं।

मालती को बुलाकर सब मछली की आँखों की-जैसी भाव-हीन दृष्टि से उसको ताकने लगीं। यह देखकर मालती को बड़ी हँसी मालूम

पड़ी। किसी को कुछ बोलते न देखकर मालती ने कहा—"तुम खेलती क्यों नहीं हो भाई। मुझे देखकर इतनी शरम करने से काम कैसे चलेगा? मैं तो अब तुम्हीं लोगों में रहूँगी; मुझे भी अपने दल का एक आदमी समझो।"

किसी ने कुछ नहीं कहा। केवल जया ने कहा—"बैठो।"

मालती ज़मीन पर बैठ गई। जया ने कहा—"वहाँ क्यों बैठती हो—वहाँ क्यों बैठती हो? ग़लीचे के ऊपर आकर बैठो भाई।"

मालती ने हँसकर कहा—"ना-ना, मैं अच्छी बैठी हूँ। मैं मलिच्छ ठहरी; मेरे छूने से तुम्हें छूत लग जायगी।"

किसी को 'मलिच्छ' कहकर नाक सिकोड़ी जाती है सही, लेकिन अगर वह उस निंदा को आप अपने मुँह से स्वीकार कर लेता है, तो उसे म्लेच्छ कहनेवाला ख़ुद शरमा जाता है। उस समय मनुष्य-धर्म अवश्य ही समाज के धर्म से बड़ा होकर दिखाई देता है। मालती की इस बात से लज्जित होकर जया ने कहा—"नहीं-नहीं, ग़लीचे में बैठने में कोई दोष नहीं है। शास्त्र में लिखा है कि काठ में, ऊन में, हाथी की पीठ से, नाव में छुआछूत का दोष नहीं होता।"

मालती ने हँसकर कहा—"शास्त्र की मति-गति अब ठीक नहीं रही। शास्त्र तो पुराना होने से सठिया गया है बहन। वह व्यवस्था भी देता है, और मना भी करता है। किसे माना जाय? भाई, इस झंझट की ज़रूरत ही क्या है? मैं अलग ही बैठी हूँ। तुम खेलो, मैं यहीं से देखूँगी।"

क्षमा ने कहा—"आओ, तुम भी न खेलो।"

मालती—"मैं खेलना नहीं जानती।"

क्षमा—"सिर्फ़ पढ़ना ही जानती हो?"

मालती—"हाँ, सिर्फ़ यही मैंने सीखा है। तुम अगर खेलना सिखा दो, तो शायद सीख भी सकूँ।"

पाँचू की मा ने, दो उँगलियों से घूँघट उठाकर, धीरे से मोक्षदा के कान के पास, ऐसे स्पष्ट स्वर में कि मालती सुन ले, कहा—"मैया रे, कैसी शरम की बात है! औरत होकर पढ़ना-लिखना, और फिर उसे इस तरह घमंड के साथ सबके आगे कहना! इसी से तो विधवा हो गई हैं, लक्ष्मी पास नहीं फटकती, पर'ए दरवाज़ की ठोकरें खाती फिरती हैं! औरत की जाति का इतना मर्दानापन, ऐसी बेधर्मी, भगवान नहीं सह सकते! अच्छा, पूछो न बहन, वह गाना गा सकती है?"

मालती ने हँसकर कहा—"तुम ही क्यों नहीं पूछतीं? मैं तो तुम्हारी ही उमर की हूँ; मुझसे बातचीत करने में इतनी शरम की क्या ज़रूरत है?"

पाँचू की मा ने मुँह मटकाकर कहा—"राम-राम! मैं क्या उनकी तरह बेहया हूँ!"

मोक्षदा ने इस अप्रिय प्रसंग को टालने की ग़रज़ से कहा—"अच्छा बहन, तुम क्या सचमुच गाना जानती हो?"

मालती के मुँह की हँसी पाँचू की मा की बेहूदा बातचीत से कपूर की तरह उड़ गई थी। उसने अपने को सँभालकर कहा—"गाना तो मैं जानती नहीं, हाँ, कुछ-कुछ गुनगुना लेती हूँ।"

क्षमा ने गाल में हाथ देकर आँख ऊपर चढ़ाकर कहा—"ओ मैया! तुम तो पक्की क्रिस्टान देख पड़ती हो!"

मालती ने कहा—"क्यों, क्रिस्टान क्यों हूँ? तुम लोग क्या काम-काज में कभी ढोल पीटती और गाती नहीं हो?"

क्षमा ने गाल फुलाकर कहा—"काम-काज में चार औरतों का मिलकर गाना और बात है, और इस तरह शौक़िया अकेले गाना और बात। दोनो बराबर कैसे हुए? अच्छा, तुम लोग मर्दों के गले में हाथ डालकर नाचती भी हो?"

मालती का मुँह लाल हो उठा। वह अपमान-जनित क्षोभ के मारे वहाँ से उठकर चल दी।

मालती कमरे के बाहर निकली भी न होगी कि सब औरतें एक-साथ ठहाका मारकर हँस उठीं, मानो उन्होंने जन्म-भर में कभी ऐसा कौतुक का जीव नहीं देखा!

पाँचू की मा एकदम घूँघट खोलकर कहने लगी—"वाह वाह, अच्छी औरत है! देखा नहीं, कैसा दिमाग़ है!"

क्षमा ने कहा—"रूप का दिमाग़ है भाई! कहीं रूप ढक न जाय, इसलिये मत्था तक अच्छी तरह नहीं ढकती। रूप जैसे और किसी के है ही नहीं।"

जया ने विज्ञ भाव से कहा—"रूप को देखकर ही यहाँ लाई गई है! ऐसे लोगों का क़दर रूप ही से तो होता है।"

मोक्षदा अब तक चुपचाप बैठी हुई सबकी बातें सुन रही थी। सुंदर मुख जादू की छड़ी की तरह अपने चारों ओर के सोए हुए सौंदर्य को जगा देता है। मालती के अनूप रूप ने इन सब कुरूपाओं के मन में डाह की आग सुलगा दी थी। अपना पराभव अत्यंत तीव्र भाव से इन सबको लज्जित कर रहा था। इसी कारण अपने मुख से उस सवाग-सुंदर रूप को अस्वीकार करने के लिये—यहाँ तक कि उसे कुरूप साबित करने के लिये—उन सबके मन में इतना आग्रह देख पड़ रहा था। मोक्षदा इस मंडली भर से सुंदर थी। इसी से उस मालती के रूप से उतना डाह नहीं हुआ। वह उसके सौंदर्य को एकदम अस्वीकार नहीं कर सकी। मोक्षदा ने कहा—"तुम लोग चाहे जो कहो बहन, रूप तो मालती का बेशक देखने के लायक़ चीज़ है! मैंने ऐसा गोरा रंग और ऐसे सुडौल अंग कभी नहीं देखे। गाल में ठहोका मारने से जान पड़ता है, ख़ून निकल आवेगा।"

पाँचू की मा ने अवज्ञा के भाव से कहा—"दूर हो! तू भी वैसी

ही बेवकूफ़ है! गालों में पौडर लगाया है। उस दफ़ा बिनी के छेदन में जो वह ठेटर (थिएटर) कलकत्ते से आया था, उसमें जो औरत राधिका बनी थी, वह कैसी ख़ूबसूरत मालूम पड़ती थी! लेकिन दिन को जब भीतर महल में आई, तो देखा, एक बुढ़िया कालो भुतनी है। जान ही नहीं पड़ता था कि रात को यही नाच-गा रही थी। वही बात—"

पाँचू की मा की बात काटकर मोक्षदा ने कहा—"लेकिन मालती तो तुम्हारे सामने दिन को आई थी बहू। ख़ैर, यह भी मान लिया कि रंग बनावटी है, लेकिन डील की गढ़न तो बनावटी नहीं हो सकती। कैसे बेऐब, सुडौल अंग हैं, कैसा मनोहर चेहरा है!"

पाँचू की मा चट कह उठी—"गढ़न क्या ख़ाक-पत्थर अच्छी है! इस तरह सँवारे-सिंगारे रहें, रंडियों की तरह बना-ठनी रहें, तो हम भी सुंदर देख पड़ें!"

जया ने कहा—"मोक्षदा, भला अंगों में सुडौलपन तूने किस जगह देखा? आँखें दोनों तो बैल की-जैसी बड़ी-बड़ी बेडौल हैं; जैसे खा लेगी, इस तरह ताकती है। आँखें, जान पड़ता है, जैसे निकली पड़ती हैं—"

क्षमा ने कहा—"नाक भी सूपनखा की-जैसी बित्ता-भर की लंबी है—"

पाँचू की मा ने हँसकर मोक्षदा की तरफ़ इशारा करते हुए कहा—"किसी ने सच कहा है कि गोरा चमड़ा सब ऐबों को छिपा देता है।"

मतलब यह कि मालती बहुत ही बदसूरत है, वह सबको धोका देकर बनावटी रूप से अपने को ख़ूबसूरत दिखाती है, यह तय हो गया। तब मोक्षदा ने इस प्रसंग को टालने के लिये कहा—"एक दिन मालती का गाना सुनना होगा।"

पाँचू की मा ने कहा—"उसके लिये क्या है, वह तो गाना गाने के लिये जैसे उधार ही खाए बैठी है। क्षमा बहन, जाओ न मालती को बुला लाओ।"

क्षमा—"वह भला अब बुलाने से आवेगी? इससे तो यही अच्छा होगा कि हम सब उसी के पास चलें।"

पाँचू की मा—"वहाँ अगर चाची-अम्मा हों, तो?"

क्षमा—"इस वक्त चाचा-अम्मा कहाँ? वह या तो ठाकुरद्वारे में होंगी, या अपने लिये रसोई कर रही होंगी।"

तब सब जनी मिलकर मालती की तलाश में चलीं।

मालती अपनी कोठरी में जाकर बिछौने पर लेटी हुई जया वग़ैरह के आचरण का सोच रही थी। उन्हीं लोगों के वहाँ उपस्थित होने से मन-ही-मन खीझकर वह चटपट उठ बैठी। उन लोगों की ओर देखना या उनसे बात करना मालती के लिये असंभव हो उठा।

क्षमा ने कहा—"बहन, तुम हम लोगों पर नाराज़ होकर चली आईं, इसी से हम सब तुमको मनाने और तुमसे माफ़ी माँगने आई हैं।"

मालती ने कुंठित दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा—"तुम यह क्या कहती हो भाई? मुझसे क्यों माफ़ी माँगोगी? मैं नाराज़ नहीं हूँ।"

मोक्षदा ने कहा—"अच्छा, अगर तुम एक गाना गा दो, तो हम समझेंगी कि तुम हम पर नाराज़ नहीं हो।"

मालती मुश्किल में पड़ गई। इन लोगों के आगे गाने को भी उसका जी नहीं चाहता, और न गाने से भी नहीं बनता। उससे यह साबित होता था कि वह उनसे नाराज़ है। ज़रा सोचकर मालती ने कहा—"मेरा गीत तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा; अंत को तुम सब मुझे हँसोगी।"

क्षमा ने कहा- "नहीं जी, हम हँसेंगी नहीं। तुम्हें एक गीत गाना ही पड़ेगा।"

मालती ने लज्जित होकर, खीझ के साथ कहा—"इस समय गाना रहने दो भाई। उस कमरे में बड़ी बहूजी हैं; मौसी भी आती ही होंगी। ये लोग सुनेंगी, तो क्या कहेंगी?"

क्षमा ने कहा—"ना-ना, यह न होगा। तुम टाल रही हो। चाची-अम्मा अभी नहीं आवेंगी। वह तीन बजे के इधर खाने-पीने से ही छुट्टी नहीं पातीं। और, बहू रानी इस वक्त सो रही हैं। हम दरवाज़ा बंद किए देती हैं; धीरे-धीरे गाना, बाहर आवाज़ नहीं जायगी।"

मालती को इस घर में आए आज पहला ही दिन है। इस घर के जो पुराने बाशिंदे हैं, उन्होंने उसकी अभ्यर्थना नहीं की, परिचय नहीं पूछा, एक मामूली शिष्टाचार की बात तक नहीं की। वे ही, परिचय न रहने पर भी, इस समय आकर बिना भूमिका के उससे गाने के लिये ज़िद कर रही हैं, उसे एक तमाशे की चीज़ समझकर बनाने के लिये ऐसा असंगत आग्रह कर रही हैं, यह समझ-सोचकर मालती मन-ही-मन अत्यंत विरक्त और संकुचित हो रही थी। गाना गाने के लिये उसकी तनिक भी इच्छा न होती थी।

मालती ने दम-भर चुप रहकर कहा—"तुम लोग ज़िद करती हो, इसी से एक गाना गाती हूँ। लेकिन फिर गाने के लिये मुझसे न कहना।"

जया ने कहा—"पहले एक गीत गाओ तो सही। फिर दूसरा गीत गाने के लिये कहने-न कहने की बात देखी जायगी।"

मालती सिर झुकाकर मधुर स्वर से गुनगुनाने लगी—

"मैं तो हरि-चरनन की दासी।
सबै विषय-रस त्यागे जग के, राम-नाम-रस-प्यासी;
साधु-संग जहँ मिलै जगत में, सोई समझौ कासी।

दुख, अपमान, कष्ट सब सहिहौं, कुटिल जगत की हाँसी ;
सज्जन सुहृद सहायक मेरे, दुर्जन के मुख मासी।"

मालती के समग्र हृदय का भाव जैसे इस गीत के रूप में प्रत्यक्ष प्रकट हो उठा। उसके मधुर, विकंपित, करुण स्वर ने उस स्थान को गुँजा दिया। गान समाप्त हो जाने पर भी घड़ी-भर सब औरतें मुग्ध, स्तब्ध, अवाक् होकर बैठी रहीं।

बहुत देर के बाद एक साँस लेकर मोक्षदा ने कहा—"तुम्हारा कैसा मीठा गला है बहन—वाह !"

तब एक-एक करके सबका मुँह खुला। क्षमा ने कहा—"हाँ, गला बुरा नहीं है, लेकिन गीत दो कौड़ी का है ; भगतिन बुढ़ियों के गाने लायक है। तुम उस्ताद इंदरमन की नौटंकी नहीं जानती हो ? क्या सड़ा-सा गीत गाया। कोई अच्छा-सा दादरा ही सुनाओ।"

पाँचू की मा ने कहा—"हाँ-जी-हाँ, वही गाओ, वही, अच्छी तरह याद नहीं आता—अरे वही क्षमा, जो उस दफ़े ब्याह में रंडा ने गाया था—"

क्षमा—"कौन ? वही—

गोरे गाल तिल काला, मोहनिया ने क्या जादू डाला !"

पाँचू की मा ने आँख मटकाकर, मुस्किराते हुए, सिर हिला-हिलाकर कहा—"हाँ-हाँ-हाँ, यही गाओ ज़रा ! सुनकर तबियत भी ख़ुश हो।"

मालती का चेहरा सुर्ख़ हो गया। उसने गंभीर भाव से सिर हिलाकर दृढ़ता के साथ कहा—"मैं ऐसे वाहियात गीत नहीं जानती।"

मोक्षदा ने कहा— "अच्छा, भाई, तुम जो जानती हो, वही एक और गाओ।"

मालती ने दृढ़ स्वर से कहा—"मैंने तो पहले ही कह दिया था कि मैं फिर कुछ नहीं गाऊँगी।"

जया ने कहा—"तुम तो जैसे एकदम भीषम-पितामह की-जैसी प्रतिज्ञा कर बैठी हो !"

क्षमा ने कहा—"क्या कहने से दिमाग़ हो गया, क्यों ?"

पाँचू की मा ने कहा—"उस दफ़े कलकत्ते से जो रंडियाँ आई थीं, उनसे जितने गीत गाने को कहो, गा देती थीं। कहने से तुम्हें विश्वास न होगा भाई, उनमें से एक देखने में ठीक तुम्हारी ही सूरत की थी; गाल का यह तिल तक था। क्यों क्षमा जीजी, सच है कि नहीं ?"

अपमान की वेदना से मालती की आँखों में आँसू भर आए। उसका सारा मन और शरीर जैसे गंदी जगह में जाकर संकुचित हुआ जा रहा था। मालती तेज़ी से उठकर, दृढ़ता के साथ, वहाँ से बाहर चली गई।

क्षमा, पाँचू की मा वग़ैरह ने कितना ही पुकारा, मालती ने एक बार घूमकर देखा भी नहीं। पाँचू की मा ने नाक सिकोड़कर कहा—"लौंडिया का दिमाग़ और शेख़ी तो देखो ! कहीं अपना घर-दुआर या ठौर-ठिकाना होता, तो धरती पर पैर ही न पड़ता !"

जया ने कहा—"कहते ही हैं, 'चंचल नारि छिपै न छिपाए !' छोटे बाबू को कालीतारा को नहीं देखती ! लावारिस बेवा थी, छोटे बाबू के घर बैठकर मज़े में हो गई है ! अब कोई कुछ भी कहता है, तो तुनक उठती है, जैसे बड़ी भारी सती सीता है।"

पाँचू की मा ने कहा—"हाँ जया मौसी, कालीतारा के क्या लड़का होनेवाला है ? मैया रे, कैसी शरम की बात है !"

क्षमा कहने लगी—"हाँ, वह (पति) कहते थे कि निवारन मुखिया और कालीतारा के जेठ रघुनाथ दीवान ने चुपचाप सब पर धूल डाल देने की सलाह छोटे बाबू को दी है। पर कालीतारा किसी तरह गर्भ-हत्या के लिये राज़ी नहीं होती।"

मोक्षदा ने दया से आर्द्र स्वर में कहा—"ऐसे निठुर काम के लिये कैसे कोई औरत राज़ी हो सकती है दीदी ? अभी मा को मोहब्बत का अनुभव तुम्हें नहीं हुआ । जब पेट से पैदा करोगी, तब जानोगी ।"

इस बात से सभी के हृदय एक स्नेह-कोमल वेदना से परिपूर्ण हो उठे । सबको दम-भर के लिये अपने नारी-भाव की उपलब्धि हो आई । दम-भर किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली ।

पाँचू की मा एकाएक उस सन्नाटे को तोड़कर कहने लगी—"सो तो हुआ, लेकिन इतने बड़े नार्मी, इज़्ज़तदार, भले आदमी छोटे बाबू की इज़्ज़त तो बचनी ही चाहिए !"

जया ने कहा—"इसीलिये तो छोटे बाबू ने कह दिया है कि काशीतारा अगर उनका बात न मानेगी, तो उसे घर से निकाल बाहर कर देंगे ।"

मोक्षदा ने व्यथित होकर कहा—"आहा, तो फिर वह बेचारी कहाँ, किसके पास जाकर खड़ी होगी ? उसके जेठ ने दीवान की जगह पाने के लोभ से उसे छोटे बाबू की सेवा में हाज़िर करके उसका धर्म नष्ट किया है । जब से वह विधवा हुई, तब से जेठ-जेठानी ने उसकी जैसी दुर्गति कर रक्खी थी, सो क्या तुम सब नहीं जानतीं ? घर-भर का काम करवाकर शाम को पेट-भर खाने को भी नहीं देते थे; एक समूची धोती भी पहनने को नहीं थी । कभी-कभी बेरहमी से मारते तक थे । अब छोटे बाबू उसे निकाल देंगे, तो जेठ भी अपने घर में घुसने न देगा ।"

जया ने कहा—"सो भाई, जैसे उसके करम हैं, वैसा ही फल मिलेगा ।"

मोक्षदा ने व्यथित स्वर से कहा—"ना-ना, ऐसी निठुर बात न कहो जया बुआ ! वह क्या यों ही छोटे बाबू के पास आई थी ? छोटे बाबू

ने कहा था कि विद्यासागर के मत से वह उसके साथ ब्याह करेंगे, तब राज़ी हुई थी। आहा, वह छोटे बाबू को देवता से बढ़कर मानती और प्यार करती है। वह छोटे बाबू के सुख के लिये अपने प्राण तक दे सकती है। उस दफ़े छोटे बाबू जब माँदे पड़े थे, तो उसने खाना-पीना, सोना छोड़कर लगकर उनकी कैसी सेवा की थी? छोटी बहू रानी ने तो उसकी चौथाई भी सेवा नहीं की। कालीतारा तो छोटे बाबू को अपना पति ही जानती-मानती है। पुरोहित के दो-चार मंत्र पढ़ देने से ही क्या ब्याह होता है? सच तो यह है कि हम अपने-अपने स्वामी को उस तरह उतना प्यार नहीं कर पातीं। तब भी हम सती हैं, और कालीतारा कुलटा!'

जया ने मुँह मटकाकर कहा—"वह सब ढोंग है जी ढोंग! जितनी ख़राब औरतें हैं, सब इसी तरह लोगों को दिखाने के लिये प्राण देती हैं। ऐसा न करें, तो उनका धंधा कैसे चले भाई?"

जया की बात से चिढ़कर मोक्षदा ने कह डाला—"ख़राब औरतों का स्वभाव हम लोग क्या जानें भाई? हाँ, तुम जानती होगी।'

"क्या! जितना बड़ा मुँह नहीं, उतनी बड़ी बात! हरामज़ादी मोक्षदा को आज मैं इसका मज़ा दिखा दूँगी! जाती हूँ बड़ी रानी के पास।" कहकर जया फर-फर उड़ती-सी चली गई। रोहिणी नए मज़ा की खोज में जया के पीछे दौड़ी।

मोक्षदा ने भय से मलिन-मुखी होकर कहा—"क्या होगा भाई? क्षमा जीजी, ज़रा जाओ, उसे समझाकर लौटा लाओ।"

क्षमा ने हँसकर कहा—"तू पागल हुई है क्या? वह मुँह से यहाँ चाहे जो बक गई हो, किसी से जाकर कुछ नहीं कहेगी। उसका मुँह है कि अपना सतीपना ज़ाहिर करे? और क्या बहू रानी उसकी करतूत जानती नहीं हैं?"

मोक्षदा—"तो भी जाकर मना लेना चाहिए। बड़े सरकार तक उसकी पहुँच है!"

सब उठकर जया को शांत करने गईं।

नवाँ परिच्छेद

मालती चिढ़कर उन स्त्रियों की वाहियात बातचीत से बचने के लिये उठ अवश्य आई थी, लेकिन रोहिणी की कृपा से पिछली बात-चीत भी उसे सुनने को मिल गई। कालीतारा की कथा सुनकर एक तरफ़ तो उसके हृदय में कालीतारा के ऊपर करुणा उत्पन्न हो रही थी, और दूसरी तरफ़ समग्र ज़मींदार-परिवार के नर-नारियों के चरित्र की ऐसी एक अभद्रता या अश्लीलता का परिचय वह पा रही थी कि सब के प्रति अविश्वास, भय और घृणा के भाव से उसके हृदय का भीतरी भाग काँप उठा। इस समय वह विपिन के अपने घर आने की सभावना को भी प्रसन्नता-पूर्वक हृदय में जगह नहीं दे पाती थी। वह भय के मारे अपने को सर्वथा सबके संसर्ग से दूर रखने लगी।

मालती क्यों नहीं इस घर के आदमियों से हिल-मिलकर उनमें मिल जाती, वह सबसे अलग रहकर सबके मन के सामने अपना अस्तित्व स्पष्ट क्यों किए हुए है, यही सोचकर चाची उसके ऊपर खीझने और नाराज़ रहने लगीं। अचानक एकदम भिन्न प्रकृतिवाली मालती के आ जाने से, ज़मींदार-परिवार को जिस जीवन के ढंग का अभ्यास था, उसमें जो कुछ विपरीत सुर बज उठा, उसके कारण मालती के साथ चाची-अम्मा की भी विशेष रूप से सब लोग सर्वत्र आलोचना करने लगे। यही कारण था कि चाची-अम्मा किसी तरह अपने मन को मालती के ऊपर प्रसन्न, बाधा-मुक्त नहीं बना पाती

थीं। मालती भी सदा उनकी ओर से कोंचा खाकर, झिड़की जाकर मन-ही-मन विरक्त होती जाती थी। वह मौसी को उचित भक्ति-श्रद्धा देकर अपना आदमी नहीं स्वीकार कर सकती थी। मौसी उसे जेलख़ाने के पहरेदार के रूप में देख पड़ती थीं। अपने अपमान और लांछना के लिये वह मौसी को ही ज़िम्मेदार ठहराती थी। उसे जान पड़ता था, जैसे मौसी ने ही उसे भुलावा देकर या ज़बरदस्ती इस घर में लाकर कैद कर रक्खा है।

मालती की अभिमानी और तेजस्वी प्रकृति सबके निकट अपमान और आघात पाते-पाते विद्रोह के लिये उद्यत वज्र के समान कठिन और ज़िद्दी बनने लगी। धीरे-धीरे यह हाल हो गया कि किसी की ओर दृक्पात करना भी उसने आवश्यक नहीं समझा। उसने अपने ख़याल के माफ़िक़ पूरी मात्रा में स्वाधीन भाव से चलना शुरू कर दिया। उसका यह उद्धत विद्रोह जितना लोगों को उसके विरुद्ध उत्तेजित करने लगा, उतनी ही उसकी वह धुन और भी पक्की होने लगी।

विद्रोही होकर, सर्वदा युद्ध-सज्जा से सज्जित रहकर, शत्रु-पक्ष को भय दिखाकर हटा रख सकते हैं, लेकिन उसका फल यह होता है कि ख़ुद भी निश्चिंत होकर आराम नहीं कर सकते। चौधरी-परिवार के घर के काम-काज में मालती हाथ लगा ही नहीं सकती थी। इसीलिये हरदम अकेले बेकार रहने से उसका मन अशांत और अप्रसन्न हो उठा। वह जब अपने घर में थी, तो पहले दिन-भर माता-पिता की सेवा-टहल करके, महल्ले के छोटे-बड़े लड़का-लड़कों को पढ़ा-लिखाकर, बहू-बेटियों को सीना-पीरोना आदि गिरिस्ती के काम-काज सिखाकर, अपने घर के कामों में लगे रहकर उसी में मग्न रहती थी। उसे ख़ुद अपने ऊपर ध्यान देने का—चिंता करने की—फ़ुरसत ही नहीं मिलती थी। किंतु यहाँ आकर वह अपने निकट आप बहुत कुछ

स्पष्ट होती जा रही थी, और उसके हृदय के भीतर जो सेवा-परायण कल्याणी नारी की प्रकृति थी, वह अवलंबन के अभाव मे नित्यप्रति आर्तनाद करती रहती थी। सब इच्छाओं को ज़बरदस्ती गला घोटकर मारते-मारते उसका मन भी गूँगा बनता जा रहा था। वह अब पहले की तरह मन में आनंद के, अभय के, तृप्ति के उस निःसंकोच संचार का अनुभव नहीं कर पाती थी। ऐसी अवस्था में, मन के भीतर अपने उस निरुपद्रव, निर्जन घर की स्मृति जाग उठकर 'हाय-हाय' करने लगी। वहाँ उसका कोई नहीं था, न सही, पुस्तकों का साथ तो था। उसे तो कोई रोकने नहीं आता था। यहाँ इस सरस्वती की सौत लक्ष्मी के मंदिर में सरस्वती के आसन-शतदल की पँखडी तो एक भी नहीं टूटकर गिर सकती; और, अगर कभी गिरती भी है, तो लक्ष्मी के असंख्य वाहनों की तीक्ष्ण चोंच और नाख़ून के प्रहार मे वह अधिक क्षण तक टिक नहीं सकती। मालती ने यह ज़िद पकड़ी कि असाध्य-साधन करना होगा—लक्ष्मी के मंदिर में बैठकर लक्ष्मी के वाहनों को दिखा-दिखाकर सरस्वती का आसन-शतदल यहीं बिछाना होगा। ख़ाली न बैठकर पुस्तकों मे जी बहलाना ही अच्छा और उपयोगी काम है।

मालती ने जब इरादा पक्का कर लिया, तब वह गर्भस्थ बालक की तरह कार्य-रूप मे परिणत होने के लिये उसे पीड़ा पहुँचाने लगा। एक दिन उसने देखा, विपिन की कई आलमारियों में असंख्य पुस्तकें रक्खी हुई हैं। मगर विपिन तो घर में है ही नहीं। वह किसके निकट इस आनंद, शांति और ज्ञान के राज्य में प्रवेश का अधिकार पावेगी? नवकिशोर तो विपिन का बंधु है; वह क्या इसका कुछ प्रबंध नहीं कर सकता? विपिन की लाइब्रेरी खोलने का अधिकार अगर वह न भी दे सके, तो ख़ुद कुछ पुस्तकें भी क्या नहीं ला दे सकेगा? मालती नवकिशोर से भेंट करने के लिये व्यग्र हो उठी।

मालती को ले आने के बाद से नवकिशोर ने भीतर आना बहुत ही कम कर दिया था। आता भी था, तो मालती से मुलाक़ात नहीं करता था। मालती के कारण ज़मींदार भवन में होनेवाले विषम आंदोलन का यथेष्ट आभास घर में बैठे ही नवकिशोर पा रहा था। उसमें मालती के लिये नवकिशोर को कष्ट का अनुभव अवश्य होता था, लेकिन उसका कुछ भी बस नहीं था कि वह किसी तरह की सहायता देकर मालती को उससे बचाता। उसके कुछ भी चेष्टा करने से मालती के चारों ओर जो निंदा की कीचड़ उछलेगा, उससे मालती को और भी क्लेश पहुँचेगा। मालती के सताए जाने और लांछित-अपमानित होने की ख़बर से वह आग ही मन के भीतर फट रहे ज्वालामुखी की तरह जल-जलकर रहता था; खुलकर वह अग्नि प्रकट करने में विपिन के आने की अपेक्षा थी। विपिन के आने पर उसे इस अत्याचार से मालती को बचाने का काम सौंपना होगा, यह निश्चय करके नवकिशोर विपिन के आने के लिये छटपटा रहा था। विपिन घर का लड़का ठहरा। एक घर में रहकर सर्वदा मालती की ख़बर लेना या उसका ख़याल रखना उसके लिये कुछ भी कठिन या अशोभन न होगा। उससे उसकी भी निंदा की संभावना यथेष्ट है; लेकिन भरोसा केवल यही है कि कोई सहज ही विपिन को बदनाम करने का साहस न कर सकेगा।

किंतु मालती विपिन को जानती नहीं; उसकी प्रकृति को पहचानती नहीं। उसके आने से पढ़ने के लिये पुस्तक पाने की संभावना रहने पर भी, उसका अनुवर्ती बनने के लिये नवकिशोर ही की ज़रूरत होगी। इसी से नवकिशोर को ख़बर देकर बुलाने की इच्छा करके मालती ने अपनी मौसी से कहा "मौसी तुम लोग किसी काम में तो मुझे हाथ ही नहीं लगाने देती हो। फिर मैं यों चोर की तरह अकेले मुँह बंद किए कैसे बैठा रहूँ, तुम्हीं बताओ?"

चाची ने चिढ़कर कहा—"तो मैं क्या जानूँ कि दिन कैसे कटे ? तू क्या मेरे कहे पर चलती है, जो मुझसे पूछने आई है ? मारे मिज़ाज के किसी से बात तक नहीं करता, किसी के पास तक नहीं फटकता ! तू अपनी इच्छा से अकेली रहती है, मैं क्या करूँ ?"

मालती ने कहा—"मौसी, तुम्हारे घर के आदमी इस ढंग के हैं कि मैं क्या, कोई भी भद्र घर का बहू-बेटी उनसे हेल-मेल करके नहीं रह सकती।"

चाची तीव्र स्वर से कह उठीं—"लेकिन तेरे कारन मेरा तो खुआरी हो रही है। उठते बैठते सभी लोग ताना मारकर कहते हैं—मालती की मौसी, मालती की मौसी। और जब तेरी कुछ चर्चा होती है, तब तेरा नाम कोई नहीं लेता, सब लोग चाची की बहन की लड़की कहते हैं।"

मालती ने व्यथित होकर कहा—'इसमें मेरा दोष क्या मेरा ही है मौसी ? अच्छा तो फिर मुझे मेरे गाँव भेज दो। यहाँ जब से आई हूँ तब से मुझे भी रत्ती-भर सुख शान्ति नहीं है, और तुम भी दुख पा रही हो।"

चाची ने मुँह फेरकर गंभीर भाव से कहा—'मैंने तो तुझे यहाँ लाने के लिये किसी को भेजा नहीं था। तू मर्दानी लड़की है; आप ही आई है, और अपने ही मन से चलती है। जो तेरा जुशी हो, सो कर। मैं कुछ नहीं जानती।"

चाची की व्यथा को मालती समझ नहीं सकी। वह कुछ क्रोध ही के साथ कह उठी—"तुमने भी जैसे मुझे बुलाने के लिये किसी को नहीं भेजा था, वैसे ही मैं भी आज व्यस्त होकर तुम्हारे इस नरक के जेलखाने में नहीं आई। मुझे वहाँ से ले आए हैं नवकिशोर बाबू। उन्हें बुला दो, मैं उन्हीं से फ़ैसला कर लूँगी!"

चाची भी ग़ुस्से मे बे-आपे होकर तीव्र स्वर से कह उठी—"मर हरामज़ादी ! इतने पर भी तुझे हया नहीं है ? अच्छी लड़की तू पैदा हुई है ! चाहिए शरम से गड जाना, सो उलटे कहती है, नवकिशोर को बुला दो !"

मालती इसके उत्तर में कुछ कड़ी बात कहनेवाली थी, लेकिन कुछ समझकर रुक गई । उच्छ्वसित आँसुओं को उसने बड़े कष्ट से रोका । वह अपनी सारी शक्ति से आँसू रोककर, पत्थर की मूर्ति की तरह, जहाँ-की-तहाँ, बैठी रही । उसकी ज़िद्दी, अभिमानी प्रकृति केवल बाधा के ऊपर बाधा पाकर प्रबल विद्रोही हो उठी थी । इस समय वह युद्ध के लिये उन्मुख थी, इसीलिये इस घड़ी उसे रोना नहीं सोहता । उसने निश्चय कर लिया कि वह किसी की कोई नहीं है, और उसका भी कोई नहीं है । जो कुछ करना है, वह उसे अकेले आप ही करना पड़ेगा । वह सबकी उपेक्षा करके अपने मन के माफ़िक़ चलने के इरादे को और भी पक्का करके चुप हो रही ।

चाची अगर ज़रा नरम होकर भले-बुरे का विचार मालती के ही ऊपर छोड़ देतीं, तो वह कभी किसी को अप्रसन्न करनेवाला आचरण नहीं कर सकती । किंतु चाची लड़कपन मे ज़मींदार के घर की स्त्री और स्वामी की दुलारी थीं । सास-ननँद के अधीन दबाव में कभी उन्हें रहना नहीं पड़ा । उन्हें हुक्म देने का ही अभ्यास था । उसके बाद काल-चक्र के फेर मे पड़कर पराधीनता के दुःख के विरुद्ध निष्फल आक्रोश से भीतर-ही-भीतर जलती रहती थीं । ऐसी ही अवस्था में उन्हें एक ऐसा आदमी मिल गया, जो केवल उनकी बहन की बेटी ही नहीं, बल्कि उनके आश्रित भी था । हुक्म देकर अपनी अधीनता में दबा रखने के बीच जो एक विलासिता का आनंद होता है, उसके प्रलोभन को चाची इस समय मालती को पाकर किसी तरह छोड़ नहीं सकती थीं ।

इधर मालती भी कभी किसी के दबाव में रहकर किसी का हुक्म मानकर नहीं चली थी। सहानुभूति-पूर्ण अरुण-हृदय पिता-माता के स्नेह-बल की शीतल छाया में वह बिना विरोध के स्वाधीन भाव से ही विचरती रही है। आज अचानक अपरिचित, अप्रीतिकर घेरे के बीच क़ैद होकर वह पग-पग पर उस रुकावट को किसी तरह बरदाश्त नहीं कर सकती थी।

इस तरह दोनों ओर से विरोध की आँधी उठकर, उद्यत होकर, एक दिन भयानक संघर्षण से प्रलय-कांड की घटना घटित करने के लिये प्रस्तुत होने लगी।

दसवाँ परिच्छेद

नवकिशोर ने एक तरह से ज़बरदस्ती ज़िद करके मालती को यहाँ लाकर इस अपमान और लांछना के चक्कर में डाल दिया है। उसके ऊपर, यहाँ आने के बाद से एक बार भी उसकी सूरत देखने को नहीं मिली। मालती जीती है या मर गई, यह ख़बर तक न लेकर वह बहुत ही निश्चित मन से अपने घर में बैठा है। यह मालती को नवकिशोर का अमार्जनीय अपराध-सा प्रतीत होने लगा। वह नवकिशोर की निश्चित शांति को नष्ट करने के लिये व्यग्र हो उठी।

इस समय नवकिशोर को बुलाने के लिये किसी दासी की शरण में जाने के सिवा और दूसरा कोई उपाय नहीं देख पड़ता। दासियों में प्रधान दासी रोहिणी से कोई अनुरोध करने के लिये मालती का जी नहीं चाहता था। मालती ने सोचा, दूसरा दासी भोंदू की मा मिज़ाज की अच्छी जान पड़ती है, उसी से काम निकालना चाहिए। एक दिन अकेले में उसे पाकर मालती ने अनुनय-विनय के भाव से कहा—"भोंदू की मा, तू मेरा थोड़ा-सा उपकार कर सकेगी?"

भोंदू की मा ने उत्सुक होकर पूछा—"क्या बिटिया?"

मालती—"तू अगर तनिक दया करके नवकिशोर बाबू को बुला दे, तो बड़ा काम करे।"

भोंदू की मा ने कहा—"यह कौन बड़ा काम है बिटिया? मैं उन्हें अभी बुलाए लाती हूँ।" इतना कहकर वह चल दी।

राह में रोहिणी से भेंट हो गई। रोहिणी ने पूछा—"हाँ रे भोंदू की मा, इस तरह झपटी हुई कहाँ जा रही है?"

भोंदू की मा ने कहा—"और कहाँ जाऊँगी! मालती बिटिया ने दादा-ठाकुर (नवकिशोर) को बुला देने के लिये कहा है, सो वहाँ पुरोहितजी के घर जा रही हूँ।"

रोहिणी ने मटककर कहा—"समझ गई! दूती बनकर जा रही है!"

भोंदू की मा तेल के बैंगन की तरह चिड़चिड़ाकर कहने लगी—"तू दूती बन राँड! तेरी सात पीढ़ी दूती बनें हरामज़ादी! जितना बड़ा मुँह नहीं, उतनी बड़ी बातें करती है कलमुही! देख, अभी जाकर बड़ी रानीजी से कहकर कैसी तेरी गत बनवाती हूँ!"

भोंदू की मा ने आश्चर्य के साथ देखा कि रोहिणी बिगड़कर बदले में गालियाँ न देकर उलटे हँस रही है। रोहिणी ने मुस्किराकर, आँख मटकाकर कहा—"जा, बड़ी रानी से कह न दे, वह तुझे बकसीस देगी! उस चंचल, छत्तीसी छोकरी के कहते ही न एक ग़ैर मर्द को ख़बर देने दौड़ी! बहू रानी को ख़बर लग जायगी, तो तेरी नौकरी भी जायगी। वह तो कहो, तेरी तक़दीर अच्छी है, जो मुझसे भेंट हो गई!"

भोंदू की मा ने कुछ सोचकर डरकर कहा—"यह तो तू ठीक कहती है। अच्छा हुआ, जो तू मिल गई। जाती हूँ, मालती से कहे देती हूँ कि यह काम मुझसे न होगा।"

रोहिणी ने कहा—"दुर बेवक़ूफ़, तेरे तनिक भी अक्किल नहीं है। ऐसा करने से तेरा बचाव कहाँ हुआ? बड़ी रानी से अगर कोई

जाकर कह दे कि मालती ने भोंदू की मा से यह बात कही थी, लेकिन भोंदू की मा ने तुमसे कुछ नहीं कहा, तो फिर तू उन्हें क्या जवाब देगी ? इससे तो यही अच्छा होगा कि तू अभी आप जाकर बड़ी बहू से सब हाल कह दे ; फिर तेरे ऊपर कुछ ज़िम्मेदारी नहीं रह जायगी।"

भोंदू की मा का विश्वास हो गया कि रोहिणी से बढ़कर उसका शुभचिंतक और कोई नहीं है। रोहिणी की दूरदर्शिता और समझदारी पर अवाक् होकर भोंदू की मा ने कहा—'तू ठीक कहती है, मैं अभी जाकर बहू रानी से सब हाल कहे देती हूँ।"

इस तरह भोंदू की मा को बड़ा बहू के पास नालिश करने के लिये भेजकर रोहिणी दौड़ती और हाँफती हुई मालती के पास हाज़िर हुई। वहाँ जाकर उसने बड़ी ही सहानुभूति दिखाते हुए मालती से कहा—"बिटिया, ओ बिटिया, तुमने यह क्या किया, ए ! इतना भी समझ तुममें नहीं है !'

मालती ने विस्मित होकर कहा—"क्यों, मैंने क्या किया ?"

रोहिणी ने बहुत ही व्यथित भाव से, माथे पर हाथ दे मारकर कहा—"किया ह मेरा सिर ! दादा ठाकुर को बुलाना था, तो चुपके से मुझसे कह देतीं, काम हो जाता ! मगर मुझे तो तुम देख ही नहीं सकती हो ! तुम्हें भोंदू की मा पर विश्वास है। उधर उसने जाकर बड़ी बहू से सब हाल कह दिया है।"

मालती ने खीझकर कहा—"सो कह दिया, तो क्या हुआ ! इसमें लुकाने-छिपाने की बात ही क्या है ?"

रोहिणी ने गाल पर हाथ रखकर, बहुत ही विस्मय के भाव से कहा—"तुमने तो ग़ज़ब कर डाला बिटिया ! ग़ैर मर्द को बुलाओगी गाँव-भर में ढिंढोरा पीटकर ! लोग क्या कहेंगे ? सच किसी ने कहा है कि ऐब के लिये भी हुनर चाहिए। हम भी कभी जवान थीं, लेकिन भई, ऐसी हिम्मत नहीं थी !"

मालती का मुख क्रोध के मारे विवर्ण हो उठा। उसने कहा—"दूर हो तू मेरे सामने से!"

रोहिणी ने उसी स्वाभाविक कुटिल मुस्कान के साथ, आँख मटकाकर कहा—"वाह रे! अब तो मुझे चींटी का बिल ढूँढना पड़ा! देखा जायगा, बड़ी बहू अभी आकर किसे दूर करता है!"

मालती असह्य अपमान से अपने को बचाने के लिये चटपट वहाँ से चल दी।

क्रोध, लज्जा, अपमान और निकटवर्ती लांछना की संभावना से अभिभूत होकर मालती मृतप्राय हो गई। उससे खड़े रहा नहीं जाता था। अपने कमरे में जाकर मालती लेट रही।

चाची चौके में आसन पर बैठी माला जप रही थीं। उन्होंने पूछा—"यह भी भला कोई सोने का समय है जो तू जाकर लेट रही? क्या तबियत अच्छी नहीं है?"

मालती क्या उत्तर देती? वह चुपचाप पड़ी रही।

चाची बकने लगीं—"सभी अनोखी बातें हैं! सभी कुलच्छन हैं! बड़े-बूढ़ों का कुछ दबाव ही नहीं है!—"

मालती क्षण-क्षण पर पुरन्दिन के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। किसी के पैरों की आहट पाते ही वह चौंक उठती थी, और सोचती थी कि लांछना और अपमान का तूफ़ान उसके सिर पर आ पहुँचा। किसी को कुछ बात करते दूर से देखती थी, तो उसे जान पड़ता था, उसी की निंदा की जा रही है। जब से मालती इस घर में आई है, तब से उसका परपंच करना उस घर की बेकार औरतों का एक ख़ास शौक़ का काम हो गया है। मालती के हृदय में सबसे बढ़कर यही व्यथा थी कि देखने में इतनी भोली भोंदू की मा भी उसे अपमानित, लांछित करने के प्रलोभन को नहीं त्याग सकी! उसके ऐसे ही बुरे नसीब हैं!

एकाएक तेज़ी से धम-धम करके पैर रखती हुई पुरखिन आ पहुँचीं। उन्होंने चाची-अम्मा के कमरे में पैर रखते ही तीक्ष्ण स्वर से कहा—"मैं कहती हूँ छोटी बहू, यह कैसा ग़ज़ब है? अपनी लाड़ली (बहन की बेटी) की कीर्ति सुनो?"

चाची ने अवाक् होकर एक दफ़े बड़ी बहू को और एक दफ़े मालती की ओर देखा। मालती तकिए में मुँह छिपाकर, मुर्दे की तरह, पड़ी हुई थी।

पुरखिन ने जिस तरह अलंकारमयी भाषा में मालती की नई कीर्ति की कहानी वर्णन की, उससे मालती के यों बेवक्त लेट रहने का कारण चाची के आगे भयानक रूप से स्पष्ट हो उठा। पुरखिन की लगाई कलंक-कालिमा का प्रतिवाद करके भीतर-ही-भीतर मालती का मन चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था कि सब झूठ, सब झूठ, आदि से अंत तक बिलकुल झूठ! लेकिन वह अपने पक्ष के समर्थन में मुँह फोड़कर एक बात भी न कह सकी।

पुरखिन वहाँ से जाते-जाते कह गईं—"ऐसी लड़की के लिये मेरे घर में जगह नहीं है, यह मैं साफ़ कहे देती हूँ छोटी बहू! तुम अपनी बहन की लड़की के लिये और कोई जगह देखो। और, अगर अपनी रसीली बहन की लड़की को छोड़ न सको, तो तुम भी अपने लिये जगह देखो। मैंने तुमसे कह दिया।"

घर में सन्नाटा छाया हुआ था। वह सन्नाटा मालती और उसकी मौसी की छाती पर हज़ार मन की शिला के समान रक्खा हुआ था, और उससे उनका दम जैसे घुटा जा रहा था। चाची का जी चाहता था कि मालती उनसे कहे—मौसी, सब झूठ है, मेरा कुछ अपराध नहीं है, मैं निर्दोष हूँ। और, मालती चाहती थी कि मौसी उससे पूछें कि सब बात क्या है? तिरस्कार करें, लांछना करें। इस

तरह चुपचाप स्वीकार के द्वारा उसे अपराधी मान लेना उसे एकदम असह्य हो रहा था।

चाची अम्मा को किसी तरह कुछ बोलते न देखकर मालती उठ बैठी, और उसने अपने को उनकी दृष्टि के सामने स्पष्ट करके उपस्थित करना चाहा। तो भी चाची ने उस पर ध्यान नहीं दिया। तब मालती अभिमान और दर्प से पूर्ण स्वर में कहने लगी—"मौसी, तुम मुझे मेरे गाँव भेज दो। मैं इस घर में अब घड़ी-भर भी नहीं रहूँगी और इसीलिये मैंने नवकिशोर बाबू को बुला भेजा था।"

इतनी बड़ी घटना के बाद भी मालती के स्वर में तनिक भी संकोच नहीं, तनिक भी कुंठित भाव नहीं! जिसके लिये लोग धिक्कार देते और छी-छी करते हैं, उसी बात को इस तरह ज़ोर देकर कहने में तनिक भी नहीं शरमाती! यह देखकर चाची एकदम पागल-सी हो उठीं। संदेह के अंधकार-जाल में पड़कर वह सोच रही थीं कि किसी तरह इस जाल को छिन्न-भिन्न करके सत्य का प्रकाश प्रकट हो पड़े। अंधे की तरह अँधेरे में टटोलने की अपेक्षा आँख मूँदकर बैठे रहने के लिये वह तैयार थीं। इसी समय एकाएक मालती के वाक्य की चोट से उनके संदेह-जाल में जो एक बड़ा-सा छेद हो गया, उसी के भीतर से फाँदकर बाहर निकलने में चाची-अम्मा का मन और भी उस जाल में फँस गया—गुत्थी सुलझने के बदले और भी उलझ गई। वह और कोई प्रश्न न कर लगातार बकने लगीं—"कलमुँही, हज़ारगश्ता, सत्तरजहाँ, हरामज़ादी, दूर हो! निकल!—"

मालती कुछ भी जवाब न देकर चुपचाप, पत्थर की मूर्ति की तरह, बैठी रही।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

मालती की इस नई लांछना की ख़बर भी नवकिशोर से छिपी नहीं रही। वह कटहरे में बद्ध बाघ की तरह निष्फल क्रोध से फूलने लगा। वह अगर अपना सर्वस्व देकर, प्राण तक देकर इस असहाय, अनाथ अबला की रक्षा कर सकता, तो अवश्य करता। लेकिन उसे केवल यही सूझ पड़ता था कि उपाय नहीं है, कोई उपाय नहीं है। मालती को बचाने की साधारण चेष्टा भी उसे दुःख ही पहुँचावेगी।

नवकिशोर सिर पर हाथ रक्खे मालती की रक्षा का उपाय सोच रहा था, इसी समय उसके पिता वहाँ उपस्थित हुए। पिता को देखकर नवकिशोर उठ खड़ा हुआ, और उनके मुँह की ओर ताकता हुआ आज्ञा की अपेक्षा करने लगा। भट्टाचार्य ने स्नेह-पूर्ण स्वर में कहा—"बेटा किशोर, तुम ज़रा हरिविहारी बाबू के अंतःपुर में हो आओ। सुनता हूँ, मालती ने भेंट करने के लिये तुम्हें बुलवाया था।"

नवकिशोर ने सिर झुकाकर कहा—"इतने हंगामे के बाद मेरा जाना क्या ठीक होगा?"

भट्टाचार्य ने निर्विकार भाव से कहा—"इतना हंगामा होने के कारण ही तुम्हारे जाने की और भी अधिक ज़रूरत है। एक तो मालती ने किसी ज़रूरत से ही तुम्हें बुलवाया होगा। दूसरे, जिस तरह अनुचित ढंग से उस पर अत्याचार किया जा रहा है, वह अवश्य ही उसे असह्य हो रहा होगा, इसलिये उसे सांत्वना देने की भी तो बड़ी ज़रूरत है।"

नवकि०—"लेकिन मेरा जाना क्या मालती के लिये और भी अधिक लज्जा का कारण न होगा?"

भट्टाचार्य—"नहीं भैया, तुम्हारे जाने से उसकी लज्जा की तीव्रता

कम हो जायगी, और वह उसे सह सकेगी। याद रक्खो—कर नहीं, तो डर नहीं।"

नवकिशोर ने कुछ सोचकर कहा—"अच्छा, तो मैं अभी जाता हूँ।"

भट्टाचार्य ने कहा—"हाँ, जाओ भैया।"

नवकिशोर के चाल-चलन में स्वभाव से ही दर्प का भाव था। आज वह और भी सिर ऊँचा करके, और भी दृढ़ता के साथ पैर रखता हुआ, चेहरे पर और भी निःसंकोच भाव लाकर जैसे सारी निंदा, संपूर्ण लज्जा, समग्र अपमान के विरुद्ध युद्ध करने के लिये ही ज़मींदार बाबू के महल की ओर रवाना हुआ।

नवकिशोर ने जैसे ही ज़नाने में पैर रक्खा, वैसे ही चारो ओर एक अस्पष्ट धूम-सी मच गई। सभी इस बेहया के अति साहस को देखकर एक दूसरे का मुँह ताकने और व्यंग्य-पूर्ण अस्पष्ट हँसी के साथ इशारेबाज़ी करने लगीं। नौजवान औरतें आपस में मुस्किरा-मुस्किराकर धीरे-धीरे कहने लगीं—"देखो, जैसे ज़मीन पर पैर ही नहीं पड़ता! अप्सरा ने बुला भेजा है—हवा की तरह दौड़े हुए आए! कैसे आए बिना रहा जा सकता था!"

नवकिशोर की तीक्ष्ण, सतर्क दृष्टि से यह कुछ भी छिपा नहीं रहा। तो भी उसने इन सब बातों की रत्ती-भर परवा न करके, खूब सप्रतिभ भाव से, ऊँचे स्वर से पुकारा—"मा!"

नवकिशोर के वज्र-गंभीर स्वर ने सारे कोलाहल को दबा दिया। उसकी आवाज़ जैसे घर-भर में गूँज उठी। आज बड़ी बहू इतने बड़े हंगामे के बाद नवकिशोर के पुकारने के उत्तर में सदा की तरह प्रसन्नता-पूर्वक सरल भाव से 'क्या है रे किशोर?' कहकर उसके सामने उपस्थित नहीं हो सकीं। उनकी आज्ञा से रोहिणी ने ऊपर की दालान से आँगन में खड़े हुए नवकिशोर से कहा—"दादा-ठाकुर, बहू रानी यहाँ ऊपर हैं।"

नवकिशोर उसी तरह प्रसन्नता के साथ, मुस्किराता हुआ, बिना किसी संकोच के, ऊपर चढ़ गया। जहाँ पुरखिन थीं, उस कमरे में नवकिशोर ने प्रवेश किया। बड़ी बहू एक कत्थई रंग की शाल ओढ़े सफ़ेद दूध-जैसे मोटे गद्दे पर गाव के सहारे बैठी थीं। नवकिशोर लड़के की तरह जाकर उनके पैरों के पास बैठ गया, और बोला—"विपिन यहाँ नहीं है, तो मा भी मुझे कभी याद नहीं करती। मा नहीं याद करती, इसीलिये लड़का ख़ुद मा को देखने आया है। विपिन की परीक्षा को अब बहुत दिन नहीं हैं मा।"

नवकिशोर इतनी बात कह तो गया, लेकिन उसे ख़ुद मालूम पड़ा कि उसकी बातें बिलकुल बेढंगी और अस्वाभाविक सी हुईं। वह किसी तरह पहले की तरह अच्छे ढग से कायदे के साथ बातचीत नहीं शुरू कर सका। कारण, वह ऊपर से चाहे जितना सयत भाव दिखावे, उसके हृदय के भीतर आज की घटना ने एक भयंकर हलचल डाल रक्खी थी। वह इतना कहकर अन्यमनस्क भाव से बड़ी बहू की शाल के किनारे खोंटने लगा।

बड़ी बहू भी नवकिशोर की बातों का कुछ उत्तर नहीं दे सकीं। उन्हें यही ख़याल हो रहा था कि इस कमरे के पास वही ढीठ लड़की मौजूद है, जिसने थोड़ी देर पहले आपसे उपयाचिका होकर इस नौजवान लड़के को बुलाना चाहा था, और इसी कारण उन्हें नवकिशोर का आज आना वैसी सहज या साधारण घटना नहीं जान पड़ता था।

नवकिशोर जब पुरखिन के साथ किसी तरह स्वाभाविक भाव से बातचीत का रंग न जमा सका, तो एकाएक जैसे चेष्टा करके ही कह उठा—"शाम हो गई है, जाऊँ, ज़रा चाची-अम्मा और मालती से भी मुलाक़ात कर आऊँ।"

इस बात को सुनकर पुरखिन डर उठीं, लेकिन वह नवकिशोर

को मना भी नहीं कर सकीं। नवकिशोर का रंग ढंग देखकर वह समझ गई थीं कि नवकिशोर विद्रोही होकर सब बाधाओं को अग्राह्य करने के लिये ही उद्धत और प्रस्तुत हो आया है। नवकिशोर ने जब देखा, पुरखिन ने न उसे मना किया, और न कुछ तिरस्कार ही किया, तब वह कुछ अप्रतिभ और संकुचित भाव से ही चाची के कमरे की ओर चला गया।

नवकिशोर के चले जाने पर पुरखिन ने चुपके-चुपके रोहिणी से कहा—"जा रोहिणी, आड़ से सुन तो, क्या बातचीत होती है।"

रोहिणी का मन आप ही इस प्रिय काम के लिये छटपटा रहा था। अब पुरखिन की आज्ञा मिल गई; सोने में सुगंध हो गई! वह बड़ी खुशी से जासूसी करने के लिये दौड़ी गई।

नवकिशोर की आवाज़ और पैरों का आहट ख़ास तरह की थी। उसकी आहट पाकर चाची लज्जा और आशंका से मुर्दा सी हो गईं। उन्होंने संकुचित होकर जान बचाने के लिये चटपट खूँटी पर से माला उतार ली, और जप करने बैठ गईं। उधर मालती के हृदय की इतनी देर से रुद्ध वेदना उच्छ्वसित होकर आँसुओं के रूप में बाहर निकलने लगी।

नवकिशोर ने दरवाज़े के पास आकर पुकारा—"चाची-अम्मा!"

चाची ने कुछ उत्तर नहीं दिया, जल्दी-जल्दी, काँपती हुई उँगलियों से, माला की गुरिया सरकाने लगीं, जैसे जप में व्यग्र होने के कारण ही बोल नहीं सकतीं। यह देखकर मालती ने मुँह फेरा।

नवकिशोर ने चाची का आहट न पाकर पुकारा—"मालती!"

मालती ने चटपट आँसू पोंछ डाले। उठकर खड़ी हो गई, और बोली—"आइए।"

नवकिशोर चाची का उत्तर न पाकर बाहर से ही शायद लौट जाता;

लेकिन मालती ने बेहया की तरह उसे बुला लिया। चाची ने इसे भी उसकी ढिठाई और अपने विरुद्ध आचरण समझा। वह अपने मन के क्रोध की सारी आग दृष्टि में जमा करके इस तरह मालती की ओर देखने लगी, जैसे उसे जलाकर भस्म कर डालेगी।

चाची की कुछ आहट न पाकर केवल मालती के बुलाने से इस संध्या-काल के घने हो रहे अंधकार में भीतर जाते नवकिशोर को संकोच मालूम हुआ। लेकिन वैसे ही उसने सोचा कि चाची अवश्य भीतर हैं, नहीं तो मालती इस तरह निःसंकोच होकर उसे कभी नहीं बुलाती। नवकिशोर कमरे के भीतर गया। भीतर जाकर देखा, चाची-अम्मा दीवार के सहारे बैठी हुई तेज़ी के साथ माला फेर रही हैं, और मालती एक किनारे दर्प-पूर्ण भाव से खड़ी है। मालती उस समय श्रावण की पूर्णिमा की तरह जल, मेघ और प्रकाश के एकत्र समावेश से अपूर्व सुंदरी देख पड़ रही थी। उस समय उसके मुख की शोभा अनिर्वचनीय हो उठी थी।

नवकिशोर को मुग्ध दृष्टि से मालती की ओर एकटक निहारते देखकर चाची मालती की ओर उग्र दृष्टि से देखने लगीं। किंतु यह सब होने पर भी बेहया लड़की नवकिशोर की ओर मुँह किए खड़ी ही रही। तब चाची जप समाप्त करने का स्वाँग रचकर चटपट माला को मस्तक से लगाकर मालती से बोलीं—"मालती, जा न, कपड़े फैले पड़े हैं, उन्हें उठाकर रख दे, शाम हो गई है।"

मालती मौसी को 'जाती हूँ' यह संक्षिप्त उत्तर देकर नवकिशोर से द्रुत स्पष्ट स्वर में कहने लगी—"मैं कई दिन से आपको बुला भेजने का इरादा कर रही हूँ, लेकिन यह ऐसा अच्छा घर है कि एक बार आपको बुला देने-भर का उपकार करने के लिये भी कोई तैयार नहीं है। आप आ गए, सो अच्छा ही हुआ, मुझे मेरे घर पहुँचा आइए!'

मालती का यह दुःसाहस देखकर चाची अवाक् होकर उसकी ओर ताकने लगीं। मालती ने उधर ध्यान भी नहीं दिया। उस समय उसके हृदय में विद्रोह के भाव ने प्रचंड रूप धारण कर लिया था। वह समझती थी, यह विद्रोह उसके लिये सर्वनाश और दुःख का कारण होगा; लेकिन उसकी समझ में इस तरह सिर झुकाकर पग-पग पर अपमान सहने की अपेक्षा वह भी अच्छा था—श्रेय था।

नवकिशोर ने शांत स्वर में कहा—"तुम अपने घर क्यों जाना चाहती हो? वहाँ अपनी मा के पास थी, उनके न रहने पर यहाँ अपनी मौसी के पास आई हो। यहाँ तुम्हें क्या दुःख है?"

मालती ने हरएक शब्द को घोर घृणा के साथ उच्चारण करते हुए ज़ोर देकर कहा—"यहाँ मुझे क्या सुख है, यह पूछिए! मौसी के अत्यंत अधिक स्नेह से और अन्य सबके आदर से यहाँ घड़ी-भर रहना मुझे भारू हो गया है। ऐसा आदर है कि कोई मुझे किसी काम में हाथ नहीं लगाने देता, पास बैठने का रवादार नहीं है। सब लोग रात-दिन मीठा बोलियों से मेरे कानों में अमृत की वर्षा किया करते हैं। मैं शेमीज़ पहनती हूँ, माला हाथ में लेकर दुनिया-भर के आदमियों की निंदा और परपंच नहीं करती, मन में नास्तिकीय भाव रखकर हाथ-भर का घूँघट निकालते सती बनना नहीं जानती, इसी से मैं म्लेच्छ हूँ, मैं क्रिस्टान हूँ, मैं अस्पृश्य हूँ! इस घर की नेकापाका, शुद्धशीला औरतों के साथ मेरी नहीं बनेगी। आप मुझे ले आए हैं, आप ही मुझे मेरे घर पहुँचा आइए। मैं अब यहाँ एक दिन भी नहीं रहूँगी; क्योंकि रहूँगी, तो पागल हो जाऊँगी।"

चाची मुँह बनाकर कह उठीं—"यहाँ कैसे रहेगी! किस चूल्हे में जायगी कलमुही! कभी कहेगी, ले चलो, कभी कहेगी, यहाँ नहीं

रहूँगी, वहाँ पहुँचा आओ। यहाँ कौन तेरे बाबा का नौकर बैठा है, हरामज़ादा ?"

मालती ने इस तिरस्कार पर ध्यान ही नहीं दिया। वह फिर नवकिशोर से कहने लगी—"मेरी इस लांछना और अपमान के लिये आप ही ज़िम्मेदार हैं। मैं तो आती ही नहीं थी, आप ही ज़बरदस्ती करके मुझे ले आए। आप मुझे पहुँचा आने के लिये बाध्य हैं!"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"मैं जिस काम के लिये तुम्हें लाया हूँ, वह तो बाक़ी ही पड़ा है; अभी केवल उसका सूत्र पात-मात्र हुआ है। विपिन जब तक नहीं आता, तब तक तुम्हें अपेक्षा करनी होगी, सब उपद्रव सहना होगा।"

मालती—"लेकिन इस घर के सभी लोगों का मन ऐसा शक्की और गंदा है कि इस सोहबत में कोई भला आदमी रह नहीं सकता।"

नवकिशोर ने फिर हँसकर कहा—"ऐसा होना ही तो स्वाभाविक है। जो लोग रक्त-संबंध को छोड़कर स्त्री-पुरुष के संबंध का केवल पति-पत्नी-रूप में ही देखते हैं, जिनकी समझ में मर्द और औरत के बीच और किसी तरह का पवित्र संबंध हो ही नहीं सकता, जिन्होंने नर-नारी के बीच वैसा पवित्र संबंध कभी देखा ही नहीं, और जो उसकी कल्पना भी कभी नहीं कर सकते, उनका मन तो ऐसा गंदा होगा ही। हम लोगों को अपने दृष्टांत से उन्हें विशुद्ध हृदय बनाना पड़ेगा। जब वे देखेंगे कि रक्त-संबंध शून्य होकर भी स्त्री-जाति और पुरुष-जाति के बीच बंधुत्व रह सकता है, तब इनका मन भी पवित्र हो उठेगा। तब संबंध-हीन स्त्री-पुरुष की घनिष्ठता इन्हें असंगत नहीं जान पड़ेगी।"

मालती—"मगर मैं भी तो कहती हूँ कि तब तक मेरा दिमाग़ सही नहीं रहेगा; मैं पागल हो जाऊँगी।"

नवकिशोर ने वैसे ही हँसकर कहा—"नहीं, तुम पागल न होने

पाओगी। भगवान् ने इस लोगों के पुनीत काम में सहायता करने के लिये ही तुम्हें यहाँ पहुँचा दिया है।"

दम-भर चुप रहकर मालती ने कहा—"तो फिर मुझे कुछ पुस्तकें लाकर दे जाइए। मेरा समय काटे नहीं कटता, मैं उन्हीं को पढ़कर जी बहलाऊँगी।"

नवकिशोर ने कहा—'अभी पुस्तकें पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। इस घर में ज्ञान-वृक्ष के निषिद्ध फल पुस्तक का प्रवेश निषिद्ध है। इस समय जो आंदोलन उठ खड़ा हुआ है, उसे पहने सहो। इसके ऊपर पुस्तक पढ़ने से यह आंदोलन जो रूप धारण करेगा, उसे तुम किसी तरह नहीं सह सकोगी। और कुछ दिन चुपचाप सहती रहो। विपिन के आने में अब और अधिक देर नहीं है। उसके आते ही सब ठीक हो जायगा।"

मालती सिर झुकाकर सोचने लगी—विपिन के आते ही क्या सब ठीक हो जायगा? इन दुष्टों की दुष्ट प्रकृति बदल जायगी? इस ज़मींदार-परिवार में उसे थोड़ी-बहुत शांति अगर कोई पहुँचा सकता है, तो वह क्या केवल एकमात्र विपिन ही है? यह बात भविष्य ही जाने कि वह विपिन इस कुत्सित उत्पात से उसकी रक्षा करना चाहेगा या नहीं? और चाहने पर भी वैसा कर सकेगा या नहीं? तथापि मालती ने आशा करके सब चिंता को दूर ठेल देना चाहा। विपिन को भावी उद्धारकर्ता बंधु समझकर वह मन-ही-मन उसकी भव्य मूर्ति और उदार हृदय की कल्पना करने लगी—आग्रह के साथ उसके आगमन का अभिनंदन करने लगी।

मालती के चुप रहने को सम्मति का लक्षण समझकर नवकिशोर चाची की ओर फिरा, और मुस्किराकर कहने लगा—"देखो चाचा, तुम्हारी इस पागल लड़की को मैंने शांत कर दिया। अब शाम हो गई, मैं घर जाता हूँ।"

चाची चुपचाप मुँह फुलाए बैठी रहीं। नवकिशोर उनके पैर छूकर अपने घर चला दिया।

चाची-अम्मा विपिन और नवकिशोर, दोनों को अपने पुत्र के समान मानती और प्यार करती थीं। लेकिन इन दिनों मालती के कारण अपमान और क्षोभ का जो आघात उन्हें सहना पड़ता था, उसके लिये गौण-भाव से मन-ही-मन वह नवकिशोर को ही ज़िम्मेदार ठहरा रही थीं। वह अगर मालती को न ले आता, तो उन्हें इतनी ज्वाला न सहना पड़ती। उसके बाद नवकिशोर की आज की बातचीत सुनकर चाची के मन में यह संदेह पैदा हो गया कि मालती और विपिन को लेकर नवकिशोर न-जाने कौन-सा अनोखा कुचक्र रच रहा है। वह नवकिशोर की बातें अच्छी तरह समझ नहीं सकी, इसी कारण उनका यह संदेह क्रमशः प्रबलतर हो उठने लगा। इसी से उनका मन नवकिशोर के साथ ही विपिन की ओर से भी विमुख और अप्रसन्न हो उठा। नवकिशोर और विपिन की दृष्टि और संसर्ग से मालती को दूर रखना चाची ने अपना एक बड़ा भारी कर्तव्य समझा।

बारहवाँ परिच्छेद

नवकिशोर के चले जाने पर सभी को यह जानने का कौतूहल हो रहा था कि वह मालती के साथ क्या सलाह कर गया। लेकिन चाची के ख़ौफ़ से मालती के पास फटकने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।

रोहिणी ने लौट आकर बड़ी बहू से कहा—"बहू रानी, मैं क्या कहूँ, कहने से आपको यक़ीन न आवेगा, दादा-ठाकुर की आवाज़ सुनते ही मालती चटपट बाहर निकल आई, और उन्हें बुलाकर हाथ पकड़कर भीतर ले गई। तनिक भी लाज नहीं आई,

तनिक भी डर नहीं हुआ ! उस छोकरी की हिम्मत और हाथ-भर का कलेजा देखकर डर के मारे मेरी तो अब तक छाती धड़क रही है ! बाप रे बाप ! ऐसी औरत तो मैंने कहीं नहीं देखी !"

यों कहकर, गाल में हाथ देकर, गर्दन टेढ़ी करके, रोहिणी ने आश्चर्य प्रकट किया। उसके बाद ही छाती पर हाथ रखकर बार-बार जल्दी-जल्दी साँस लेकर वह भय का अद्भुत अभिनय करने लगी। सचमुच रोहिणी का कलेजा काँप रहा था, लेकिन मालती का हाथ-भर की छाती देखकर नहीं, बल्कि इसलिये कि ज़रा और देर होती, तो नवकिशोर उसे छिपकर जासूस करते देख लेता, और फिर उसकी बड़ी ही दुर्दशा होती। नवकिशोर का मिज़ाज किसी से छिपा नहीं था।

रोहिणी के अभिनय से उत्सुक होकर पुरखिन ने पूछा—"उसके बाद ? फिर क्या बातचीत हुई ? छोटी बहू कहाँ थीं ? क्या सलाह हुई ?"

रोहिणी ने कहा—"चाची उसी कमरे में थीं, माला जप रही थीं। उन्होंने दादा-ठाकुर से कोई बात नहीं की। मालती ने दादा ठाकुर से ज़िद करके कहा कि मैं अपने घर चली जाऊँगी, तुम सूत हो नहीं दिखाते। चाची-अम्मा इस पर बहुत नाराज़ हुईं, बहुत बकी-झकीं। दादा-ठाकुर ने भी बहुत समझाया-बुझाया। उसका एक अक्षर भी मेरी समझ में नहीं आया, मैं अँगरेज़ी-फ़ारसी क्या जानूँ। अंत को दादा-ठाकुर ने कहा—छोटे राजा (विपिन) घर आ जायँ, तो फिर तुम्हें कोई कष्ट नहीं मिलेगा—सब दुख दूर हो जायँगे।"

पुरखिन बीच ही में बोल उठीं—"मेरे विपिन का ऐसा स्वभाव ही नहीं है। किशोर छोकरे को भी मैं सुशील लड़का जानती थी। कलि-काल के लड़की-लड़कों को कोई पहचान नहीं सकता बाबा ! जा, ज़रा छोटी बहू को तो बुला ला।"

रोहिणी के मुँह से बड़ी बहू के पास अपनी तलबी सुनकर चाची का मुँह सूख गया। उन्होंने पूछा—"जीजी क्यों बुलाती है रोहिणी?"

रोहिणी ने बहुत ही भलमनी और सीधेपन के साथ कहा—"सो मैं क्या जानूँ चाची-अम्मा?"

उसके दोनो छोटे-छोटे, गोल-गोल नेत्र शैतानी कौतुक की दीप्ति से जुगनु की तरह चमक रहे थे।

चाची-अम्मा गुस्से से लाल हो रही आँखें फेरकर उग्र दृष्टि से मालती की ओर देखकर रोहिणी के साथ चली।

चाची ने बड़ी बहू के पास पहुँचकर पूछा—"जीजी, तुमने बुलाया है?"

पुरखिन मुँह फुलाए ही बैठी थीं। उन्होंने और भी गंभीर होकर कहा—"किशोर के साथ क्या सलाह हुई?"

पुरखिन की बातचीत के ढंग से कुंठित होकर चाची-अम्मा ने कहा—"सलाह और क्या होगी जीजी? मालती किशोर से कह रही थी कि वह उसे कलकत्ते पहुँचा दे।"

पुरखिन ने पहले ही की तरह गंभीर भाव से कहा—"फिर? कब जाने का ठीक हुआ?"

चाची ने कहा—"किशोर अभी उसे यहाँ से ले जाना नहीं चाहता।"

रोहिणी वैसे ही मुँह मटकाकर कह उठी—"उन्हीं को क्यों दोष देती हो? तुमने भी तो नहीं जाने दिया, खूब बका-झका।"

चाची समझ गईं कि रोहिणी ने छिपकर सभी बातें सुनी हैं, और पहले ही आकर अपनी मालकिन से लगा-बुझा गई है। तब उन्होंने सोचा, अब कुछ छिपाने की चेष्टा करना वृथा है। रोहिणी की बात जैसे सुनी ही नहीं, इस तरह वह अपनी ही बात के सिलसिले में कहने लगी—"मैंने भी मालती से कहा कि ऐसी

जगह में रहकर ही जब तू दबाव नहीं मानती, तब तेरा अपने यहाँ ख़ुद मुख़्तार होकर रहना तो और भी ग़ज़ब होगा। अगर तक़दीर से अच्छे घर में आश्रय पा गई है, तो परोसी थाली को लात मारकर क्यों चली जाती है ?"

पुरखिन ने कहा—"ना छोटी बहू, मेरे घर में ऐसा चलन औरत के लिये जगह नहीं है। तुम उसे सँभालकर दबाव में नहीं रख सकोगी। अंत को क्या तुम्हारी बहन की बेटी के कारण मैं भी अपना सिर नीचा कराऊँगी ? हमा बाच में चारों ओर तुम्हारी बहन की लड़की के गुन ज़ाहिर हो गए हैं; गाँव-भर के लोग फिटकारी मार रहे हैं। आज तो शाम हो गई है, कल मैं ख़ुद किशोर को बुलाकर उससे कहूँगी कि वह उसे कलकत्ते पहुँचा आवे। मैं पराई आफ़त अपने सिर नहीं ले सकूँगी। यह सब मलिच्छपना मुझसे नहीं देखा जायगा।"

चाची-अम्मा ने विनती के स्वर में कहा—"जीजी, बड़े हो पेड़ में आँधी लगती है; पीपल-बगद के पेड़ों में ही चिड़ियाँ झाक लगाती हैं। इससे पेड़ का गौरव ही बढ़ता है, लोग देवता की तरह पीपल-बगद की पूजा करते हैं। तुम भागवान हो, कितने ही लोग तुम्हारे यहाँ शांति के साथ रहते और पलते हैं। लड़की को दया करके अपने चरणों में आश्रय दिया है, तो अब दूर न करो। तुम उसे छोड़ दोगी, तो उसका सत्यनाश होते देर नहीं लगेगी !"

चाची के विनीत वचनों से पुरखिन की खीझ शांत हो गई। उनका प्रकृति ही ऐसा थी। उन्होंने प्रसन्न होकर, अनुग्रह के भाव से कहा—"सो क्या मैं नहीं समझती छोटी बहू ? लेकिन वह लड़की क्या सुधरनेवाली है ? झुककर चलती ही नहीं; किसी को दबती ही नहीं। अपने ही मन का काम करती है। डर लगता है कि उसकी देखा-देखी घर की और बहू-बेटियों का मिज़ाज भी न बिगड़ जाय !'

चाची-अम्मा ने आँसू पोंछकर कहा—"जीजी, तुम सती, लक्ष्मी, भागवान हो। तुम्हारे आशीर्वाद से उसकी बुद्धि ठिकाने आ जायगी। यहाँ आते ही उसने हाथ की चूड़ियाँ उतार डाली हैं, सफ़ेद मारकीन की धोती पहनने लगी है। धीरे धीरे और सब बुराइयाँ और बुरे ख़याल भी दूर हो जायँगे।"

पुरखिन ने कहा—"तो फिर पहले उसका वह घाँघरा उतरवाओ छोटी बहू! वह घाँघरा ही सब अनर्थ की जड़ है।"

जिस समय चाची और पुरखिन की यह बातचीत हो रही थी, उसी समय उधर क्षमा, मोक्षदा, पाँचू की मा, जया वग़ैरह औरतों के दल ने जाकर मालती के ऊपर हमला किया। क्षमा ने कहा—"अरे भई मालती, क्या हो रहा है?"

मालती अच्छी तरह समझ गई कि आज ये सब औरतें गले पड़कर बातचीत करने और हेल-मेल बढ़ाने क्यों आई हैं। वह कुछ उत्तर न देकर, लैंप के पास सिर झुकाकर, एकाग्र मन से सुपारी काटने लगी।

मालती से उत्तर न पाकर क्षमा ने उसे सुनाने के लिये आप ही-आप कहा—"ओः! दिमाग़ देखकर जी जल जाता है!" फिर मालती से कहा—"अजी, मुँह से बोलती क्यों नहीं हो? क्या बोल भी बिकता है? या हम पर नाराज़ हो?"

पाँचू की मा ने क्षमा के कान के पास मुँह ले जाकर, ऐसे स्वर में कि मालती भी सुन ले, कहा—"भाई, यह नाराज़ी नहीं है, ख़ुशी का उमग है!"

मालती को इस पर भी चुप बैठे देखकर क्षमा की क्षमा जाती रही। वह क्रोध के मारे दाँत पीसकर रह गई। आज मतलब हल होने के पहले मालती से बिगाड़ करना उसे अभीष्ट न था। मालती के साथ नवकिशोर की क्या बातचीत हुई है, यह जानने के आग्रह ने

उसे सँभाल रक्खा था। बार-बार तीन बार कोशिश करके देखने की बात शास्त्र में लिखी है। इसी कारण फिर भी कपट की हँसी हँसकर क्षमा ने नाटक के ढंग से कहा—"अजी ओ मानिनी राधिका, तुम्हारा यह कैसा मान है, बड़ा हैरान है, ओठों पर जान है। ज़रा बोलो, आँखें खोलो, अमृत में ज़हर न घोलो।"

इतना कहकर वह मालती के पैरों को छूने चली।

मालती ने श्लेष-कटु स्वर में कहा—"छी-छी! यह क्या करती हो! तुम सब पुण्यात्मा, पतिव्रता ठहरीं। मलिच्छ, किरिस्टान के पैर छूकर अपना धर्म गँवाओगी?"

मालती को बोलते देख आश्वस्त होकर सब-की-सब उसके सामने बैठ गईं। क्षमा ने कहा—"ले भई, अपना ठट्ठा रहने दो। हम सब पुण्यात्मा काहे से हैं? तुम भई, इस तरह मुँह फुलाए-लटकाए क्यों बैठी रहती हो? तुम्हें क्या यहाँ की कोई चीज़ या बात पसंद नहीं है?"

पाँचू का मा ने धीरे से, किंतु इस तरह कि मालती सुन ले, कहा—"सिर्फ़ किशोर बाबू को छोड़कर।"

मालती ने घोर घृणा और भयानक भर्त्सना के भाव से भरी दोनों आँखें स्थिर करके पाँचू की मा की ओर देखा। उसने लज्जित और शंकित होकर सिर झुका लिया। मालती की तेज से भरी दृष्टि के ताप को वह नहीं सह सकी।

क्षमा ने जैसे इस पर लक्ष्य ही नहीं किया, इस तरह निरीह भाव से कहा—"तुम क्या यहाँ से चले जाने के लिये तैयार हो मालती? किशोर दादा ने क्या कहा?"

मालती ने क्रोध-कटु, रूखे स्वर में कहा—"तुम्हारे किशोर-दादा ने कहा कि तुम ज़िंदगी-भर इस नरक की यातना भोग करो!"

क्षमा ने शर्मिंदा होकर कहा—"तुम इस तरह क्रोध कर-करके क्यों बातें कर रही हो बहन?"

पाँचू की मा ने कहा—"बहन, क्रोध होने की तो बात ही है। हज़ार हो, स्त्री ठहरीं। आपसे मुँह फाड़कर एक बात कही, तो वह भी पूरी नहीं हुई। किशोर दादा की कैसी अक्किल है कि इतनी-सी बात नहीं मानी। इसमें किस औरत को क्रोध न आवेगा? हम लोग होतीं, तो लज्जा और क्रोध के मारे फाँसी लगाकर जान दे देतीं!"

मालती से यह गुप्त व्यंग्य सहा नहीं गया। वह कहने को तैयार हुई कि 'तुम सब हरामज़ादियो निकलो मेरे घर से!' लेकिन साथ ही यह ख़याल हो आने से वह चुप हो रही कि यह घर तो उसका अपना नहीं है! इस पर उसका अधिकार ही क्या है? लाचार वही ख़ुद वहाँ से उठकर चल दी। उन कलुषित, नीच प्रकृतिवाली स्त्रियों के ताने और बोली-ठोलियाँ मालती के धैर्य के ऊपर बड़ी ही निष्ठुरता के साथ असह्य अत्याचार कर रही थीं।

मालती के चले जाने पर सब औरतें एक दूसरे की ओर देखकर हँस उठीं। पाँचू की मा ने हँसकर कहा—"वाह! दिमाग़ तो देखो, जैसे कोई रानी-महरानी है! अगर कहीं अपना घर या ठिकाना होता, तो छोकरी हम लोगों को कोल्हू में डालकर पिरवाए बिना न छोड़ती!"

पाँचू की मा ने इस तरह यह बात कही, जैसे उन सभी के अपने बड़े-बड़े महल खड़े हैं, और वे सभी रानी-महरानी हैं।

क्षमा ने कहा—"चलो जी चलो, देखें लौंडिया कहाँ गई। उसे इस तरह बिना हैरान किए सहज में न छोड़ना होगा।"

इसके बाद मालती को किस-किस वाक्य-बाण से व्यथा पहुँचानी चाहिए, यही सलाह करती हुई सब मालती की खोज में चलीं। मालती जो अपने को सबसे अलग रखना चाहती थी, निर्लिप्त रहने की चेष्टा करती थी, उसी से ये सब बेकार, पर-निंदा-प्रिय, परपंची औरतें उसके विरुद्ध अधिकाधिक उत्तेजित हो रही थीं। ये सब

निराश्रय, अथच अभिमानिनी, मालती को अपने पास राककर घृणा दिखाने और सताने के विलास-सुख से वंचित होना नहीं चाहती थीं, और इसी कारण मालती के उपेक्षा दिखाने से जल उठती थी। जैसे शिकारी भागे हुए शिकार का पीछा करता है, वैसे ही ये सब औरतें इस कमरे से उस कमरे में, मालती के पीछे-पीछे, फिरने लगीं। मालती को ऐसा अवकाश मिलना दुर्घट हो उठा कि वह किसी कोठरी या कमरे के भीतर अंधकार में अपने को छिपाकर अपने घायल हृदय की घड़ी भर सेवा-शुश्रूषा करती। इधर-उधर से सबकी तीक्ष्ण, कौतुक-पूर्ण दृष्टि आकर उसके घाव को खोल देती, और निर्दय भाव से उसी पर चोट मारती थी। यहाँ स्वाधीन भाव से जी भरकर वेदना भोग करने के लायक ज़रा-सी निराली जगह भी नहीं है! कौतूहल दृष्टि के काँटे भरे रहने के कारण उसे इतना बड़ा घर भी एक तंग काल-कोठरी-सा जान पड़ने लगा! पिंजड़े में फँसी चोट खाई हुई चिड़िया की तरह उड़कर भागने की चेष्टा उसे केवल नई चोट ही पहुँचाती थी।

तेरहवाँ परिच्छेद

भट्टाचार्य महाशय ने अपने पुत्र को ज़मींदार के अंतःपुर में भेज दिया था, और आप एक लाल शाल ओढ़े अपने घर के सामने के छोटे चमन में टहल-टहलकर महिम्न-स्तोत्र का पाठ कर रहे थे। वह असल में उत्सुक भाव से पुत्र के आने की राह देख रहे थे। ज़मींदार के घर ठाकुरजी की आरती करने के लिये जाने का समय हो गया; लेकिन नवकिशोर के मुँह से सब हाल सुने बिना वह जाना नहीं चाहते थे। वह अधीर होकर बार-बार रास्ते की ओर निहार रहे थे। धीरे धीरे गाँव के घरों में दीपक जल गए। घरों में चूल्हे जलने का

धुआँ उठकर छप्परों के ऊपर जमा होने और कुहासे में मिल जाने लगा। इसी समय नवकिशोर लौटकर घर आया।

भट्टाचार्य ने पुकारा—"भैया किशोर ?"

नवकिशोर—"जी हाँ, आया।"

नवकिशोर अपने पिता के पास आकर खड़ा हो गया।

भट्टाचार्य ने पूछा—"मालती ने किसलिये बुलाया था ?"

नवकिशोर—"वह अपने घर चले जाना चाहती है। उसके ऊपर अत्यन्त अत्याचार किया जा रहा है। वह शेमीज पहनती है, इसी-लिये कोई उसे छूता नहीं, पास नहीं बैठने देता, कोई काम नहीं करने देता। इसके सिवा सब लोग भली-बुरी बातें कहकर हर घड़ी उसका अपमान करते हैं।"

भट्टा०—"छोटी बहू क्या करती है ? वह क्या अपनी बहन की लड़की को इस अत्याचार से नहीं बचातीं ?"

नवकिशोर—"मैंने देखा कि वह भी सबके ऊपर का रिस मालती के ही ऊपर झाड़ती हैं। वह भी मालती को ही बुरा-भला कहती और बकती-झकती है।"

भट्टा०—"तुम मालती से क्या कह आए ? कलकत्ते में पहुँचा आने का वादा कर आए हो ?"

नवकिशोर—"ना, उसे कहाँ ले जाऊँगा ? वहाँ कौन उसकी देख-रेख करेगा ? मैंने कहा, जब तक विपिन नहीं आता, तब तक सहन करो; उसके आने पर सब ठीक हो जायगा।'

भट्टा०—"कैसे ?"

नवकिशोर—"विपिन हर घड़ी घर के भीतर ही रहेगा, और तब उसके फ्रौफ़ से कोई कुछ उत्पात या मालती पर अत्याचार करने का साहस नहीं कर सकेगा। मालती भी विपिन का साथ पाकर अब की तरह अपने को अकेला नहीं समझेगी।"

भट्टा०—"लेकिन यह क्या रोग की असली दवा हुई ? हमें तो रोग की रुकावट कह सकते हैं, रोग का प्रतिकार नहीं कह सकते। विपिन एक दिन के लिये भी घर से बाहर जायगा, तो सबका सचित आक्रोश उतनी ही देर में सदा का बदला चुका लेने के लिये प्रचंड हो उठेगा। अगर ऐसा न भी हो, तो मालती कभी किसी और के निकट सहानुभूति या स्नेह का व्यवहार नहीं पावेगी। क्या सबकी आँखों का काँटा होकर रहना सहज समझते हो ? इसके प्रतिकार का तुमने क्या उपाय सोचा है ?"

नवकिशोर—"इसका प्रतिकार तो सहज नहीं है। जब तक स्त्री-शिक्षा स्त्रियों के विचारों को उच्च और उदार नहीं बनाती, उनके सामने महत् आदर्श की राह नहीं खोल देती, तब तक वे क्षुद्रता अथवा नीचता छोड़कर भिन्न मत के मनुष्य को क्षमा की उदार दृष्टि से नहीं देख सकेंगी।"

भट्टा०—"तो फिर उस स्त्री-शिक्षा की ही व्यवस्था करनी होगी। तुम लोग अगर रोग का निदान जानकर भी उसके प्रतिकार की चेष्टा नहीं करोगे, तो तुम्हारी शिक्षा निष्फल जायगी। यह काम तुम-जैसे उच्च शिक्षित उदार विचारवाले पुरुषों का ही कर्तव्य है।"

नवकिशोर—'किंतु यह असाध्य-साधन क्या मुझ अकेले के द्वारा हो सकेगा ? मैंने तो यह ठीक किया है कि गाँव-गाँव में पाठशालाएँ खोलकर वहाँ लड़की-लड़कों को शिक्षा देना फिरूँगा। उसके बाद मेरे विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने पर मेरी ही तरह वे भी शिक्षा देंगे, और जहाँ-जहाँ पाठशाला नहीं है, वहाँ-वहाँ पाठशाला खोलेंगे। लेकिन इधर मुश्किल यह है कि ज़मींदार के ज़नाने में जो विलास और दंभ के भावों में पली हुई, स्त्री-शिक्षा का विरोध करनेवाली, कुसंस्कारों से दूषित, सयानी औरतें हैं, उन्हें शिक्षा देने का भार कौन अपने ऊपर लेगा ?"

भट्टा० —"अपने घर की औरतों की शिक्षा का भार विपिन को ही अपने ऊपर लेना पड़ेगा। भगवान् ने इसके लिये बहुत कुछ सुविधा भी कर दी है। उन्होंने सुशिक्षिता मालती को इस घर में शायद इसीलिये भेज दिया है। इसी से इस काम में उनके कल्याण-प्रद हाथ का इशारा स्पष्ट दिखाई दे रहा है।"

नवकिशोर—"लेकिन मालती विपिन के साथ मिलकर यह शुभ काम करने भी पावेगी? ज़मींदार के घर की औरतें लिख-पढ़ लेंगी, तभी तो उसकी क़दर करेंगी? मुझे तो जान पड़ता है, तब तक मालती के ऊपर असह्य अत्याचार करके वे उसके हृदय के सब कल्याण-भाव को नष्ट कर देंगी। आख़िर मालती भी मनुष्य ही तो है, कहाँ तक सहेगी?"

भट्टाचार्य ने दम-भर चुपचाप टहलते रहने के बाद कहा—"अच्छा, बताओ तो, जहाँ तक तुमने देखा-सुना है, उससे तुम्हें मालती का चरित्र कैसा जान पड़ता है?"

नवकिशोर ने उत्साहित होकर कहा—"बहुत ही अच्छा है। मालती बहुत ही अच्छी प्रकृति की लड़की है; रूप और गुणों में साक्षात् लक्ष्मी है। उसके स्वभाव में विनय और तेज, अदब और स्वतंत्रता का विचित्र समावेश है। घर के काम-काज करने में भी वह ख़ूब निपुण है। चतुर और बुद्धिमती है। मुझे तो वह एक निर्दोष गृह-लक्ष्मी या देवी की प्रतिमा जान पड़ती है।"

भट्टाचार्य ने फिर चुपचाप दम-भर टहलकर कहा—'मालती की रक्षा करने का एकमात्र उपाय मुझे यही सूझ पड़ता है कि उसका ब्याह कर दिया जाय। तुम्हारी क्या राय है?"

नवकिशोर—"मैंने भी बहुत पहले से यही बात सोच रक्खी है।" लेकिन साहस करके विधवा के ब्याह का प्रसंग उठा नहीं सका।"

भट्टाचार्य—"क्यों भैया, विधवा का विवाह उच्च आदर्श भले ही

न हो, लेकिन शास्त्र-विरुद्ध नहीं है। जो बाल-विधवाएँ जन्म-भर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन नहीं कर सकतीं, या मालती की-जैसी अवस्था में पड़कर दुःख पा रही हैं, उनका ब्याह अवश्य कर देना चाहिए। ऐसे विधवा-विवाह पहले के ज़माने में भी हुआ करते थे। देशाचार के कारण कुछ दिन से इसका चलन उठ गया है। जो बात युक्ति और शुभ बुद्धि के प्रतिकूल नहीं है, उसे स्वीकार करने या लोगों के आगे प्रकट करने में कभी नहीं डरना चाहिए।"

नवकिशोर—"अच्छा, मालती के योग्य पात्र कौन है?"

भट्टाचार्य ने नवकिशोर के सामने खड़े होकर कहा—"मैंने ठीक किया है कि मालती को मैं खुद अपनी पुत्र-वधू बनाऊँगा।"

नवकिशोर ने थोड़ी देर तक सोचकर कहा—"नहीं पिताजी, मैंने जो शिक्षा-प्रचार और देश-सेवा का व्रत ग्रहण किया है, उसके लिये ब्याह एक भारी रुकावट है। ब्याह करने से उसके पालन में असुविधा होगी।"

भट्टाचार्य—"तुम्हें क्या मालती से ब्याह करने में आपत्ति है?"

नवकिशोर—"ना, यह बात नहीं है। अगर मैं ब्याह करना चाहूँ, तो मालती को सहधर्मिणी के रूप में पाने से अपने को सौभाग्यशाली समझूँगा। लेकिन मुझे अपना ब्याह करने के ही बारे में आपत्ति है। मेरी मुक्त शक्ति और विपिन का धन देश के बीच शिक्षा का प्रचार करने के काम में लगाना होगा। विपिन पर-निर्भर और दुर्बल प्रकृति का आदमी है। मालती उसी की सहधर्मिणी होने के लायक है। मालती उत्तेजना देकर उसकी शक्ति को बढ़ावेगी।"

भट्टाचार्य—"लेकिन तुम्हारे मा-बाप तो अपनी इच्छा से खुशी के साथ विधवा को पुत्र-वधू बनाने के लिये तैयार हैं; परंतु विपिन को यह सुहाता नहीं है। उसके मा-बाप इसका घोर विरोध करेंगे। उनकी आत्मा में वह सात्त्विक बल नहीं है।"

नवकिशोर—"इसी में तो उस काम में सफलता का मूल्य भी अधिक होगा। विपिन की परीक्षा बहुत जल्दी समाप्त हो जायगी। मैं पहले ही से कलकत्ते जाकर उसे संपूर्ण विरोध और प्रतिकूलता के विरुद्ध युद्ध करने के लिये तैयार करके अपने साथ यहाँ लाऊँगा।"

भट्टाचार्य—"लेकिन अभी मालती के साथ उसके ब्याह का चर्चा उसके आगे बिलकुल मत करना। दोनों का भेंट हो जाने के बाद, उनके मन का भाव समझकर, जो ठीक समझ जायगा, सो किया जायगा। एकाएक कुछ कर उठाने से उसका फल शायद शुभ न हो। अच्छा, तुम घर जाओ, मैं ठाकुरजी की आरती कर आऊँ। उसके बाद इस बारे में विशेष आलोचना की जायगी। ओ रे मुरलिया, मुझे एक लालटेन और मेरा सोंटा तो उठा ला दे।"

नवकिशोर मालती के ब्याह की बात सोचता हुआ चला गया। उसे जान पड़ने लगा कि रूप, गुण, शिक्षा, तेजस्वी, मधुर प्रकृति आदि जो कुछ पुरुष चाह सकता है, सो सब मालती में पूर्ण मात्रा में मौजूद है। केवल 'हाँ' कह देने से ही ऐसी श्रेष्ठ स्त्री मालती उसकी हो सकती है। मालती भी इस असह्य दुःख और अपमान से छुटकारा पाने के लिये बड़े आनंद से उसकी स्त्री होना स्वीकार कर लेगी। इस समय सुख की राह उसके लिये खुली हुई है। बहुत ही सहज में वह उस सुख को पा सकता है, जो लोगों को बहुत खोज करने से भी नहीं मिलने आता। सुख उसके पीछे फिर रहा है, केवल हाथ बढ़ाकर उसे अपनाने-भर की देर है। लेकिन नहीं। इस बड़े भारी प्रलोभन को अपने कर्तव्य में बाधा डालनेवाला समझकर नवकिशोर ने बल-पूर्वक अपने मन को मालती की ओर से फेरकर सोचना शुरू किया कि मेरी प्रकृति ऐसी दुर्बल नहीं है कि किसी प्रवृत्ति के वशीभूत होकर मैं अपने सत्संकल्प को नष्ट कर दूँ या अपने दृढ विचार को बदल डालूँ। चाहे जिस तरह हो, विपिन ही

के साथ मालती का ब्याह कराना होगा। उससे यह होगा कि मालती स्नेहशील, उपयुक्त स्वामी का आश्रय भी पावेगी, और विपिन-जैसा एक धनी, शिक्षित ज़मींदार मेरे समाज-संस्कार और देश-सुधार के काम में सदा के लिये सच्चा सहायक भी बन जायगा। जवानी का जोश घट जाने पर उसके उस कार्य से विमुख या निरुत्साह होने की राह भी एकदम बंद हो जायगी। मालती के ही द्वारा विपिन की दुर्बल प्रकृति को सबल और दृढ़ बनाऊँगा, और उसे दुविधा में पड़ने या भटकने नहीं दूँगा। लेकिन मालती, बड़ी ही सुंदरी है! बार-बार मन में यही ख़याल क्यों पैदा होता है कि मालती बड़ी ही सुंदरी है! रूप और गुण, दोनों बातों में वह एक स्त्री-रत्न है! अनिर्वचनीय रूप है! बहुत ही लुभावनी मूर्ति है! किंतु होने दो सुंदरी! होने दो लुभावनी! इस सौंदर्य को कल्याण ही के साथ मिलाऊँगा, अपनी तुच्छ लालसा की पूर्ति के काम में नहीं लगाऊँगा। अपने बहुत दिनों के सोचे हुए उद्देश्य की सिद्धि के लिये मुझे यह स्वार्थ-त्याग स्वीकार ही करना होगा; यह प्रथम परीक्षा देनी ही पड़ेगी!

नवकिशोर इस आनंद के अनुभव में मालती के ख़याल को दबाने और दूर करने की चेष्टा करने लगा कि वह चाहता, तो मालती उसकी हो सकती थी; किंतु वह अपनी इच्छा से उसका त्याग करता है, और यह प्रवृत्ति के ऊपर विजय उसके लिये गौरव की ही बात है! लेकिन हवा के झोंकों से हिल रहे, जल-निमग्न पद्म-पुष्प की तरह मालती के मुख की छवि नवकिशोर के मन को उन्मथित करके बार-बार ऊपर उठ आती थी, उसे किसी तरह विवेक-जल में डुबाकर रखना असंभव-सा हो रहा था।

चौदहवाँ परिच्छेद

विपिन की परीक्षा का आख़िरी दिन था। उसी दिन दोपहर को नवकिशोर कलकत्ते में, उसके डेरे में, पहुँचा। घुरुआ कहार ने उसे स्नान करवाया, और भोजन का भी प्रबंध कर दिया। विपिन परीक्षा देने गया था, इससे उपस्थित न था।

भोजन के बाद आराम से बैठने पर नवकिशोर ने वृद्ध घुरुआ से पूछा—'घूरू दादा, विपिन घर कब जायगा, कुछ सुना है?"

घुरुआ—'भैया, यह हाल तो मुझे नहीं मालूम। छोटे राजा तो दिन-रात किताबों में ही मगन रहते हैं; घर-दुआर का तो जैसे उन्हें कुछ ख़याल ही नहीं है। अब आप आ गए हैं, समझा-बुझाकर उन्हें घर ले चलिए। अरे, जलम-भर अगर पढ़ते-लिखते ही रहेंगे, तो फिर सुख-भोग कब करेंगे?"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"घूरू दादा, जिस काम में सुख नहीं मिलता, वह काम तो कोई करता ही नहीं। हम लोगों को पढ़ने-लिखने में ही सबसे बढ़कर सुख मिलता है।"

घुरुआ ने ज़रा चिढ़कर, रूखे स्वर में कहा—"आप ही तो उनके गुरूघंटाल हैं। आप ही ने छोटे राजा की तबियत इस ढंग की कर दी है। वह ज़मींदार हैं, राजा के लड़के हैं। वह जो दिन-रात इस तरह खाना-सोना, सुख-आराम, सब भुलाकर भूत की तरह पढ़ने-लिखने में मेहनत करते हैं, सो किसलिये? उन्हें क्या पेट पालने के लिये नौकरी करनी है, या तुम्हारी तरह पाठशाला खोलकर गाँव के लड़कों को पढ़ाना है? उनके लिये लिखना-पढ़ना तो ख़ाली ऐश-आराम की उमर मिट्टी में मिलाना है। करम-भोग है, और कुछ नहीं।"

घुरुआ ज़मींदार के घर का बहुत पुराना नौकर था, इसीलिये

सब लोग उसे बहुत मानते थे। नवकिशोर ने हँसकर कहा—"घूरू दादा, मैं विपिन का कर्म-भोग ज़रा और बढ़ाने की कोशिश कर रहा हूं।"

घुरुआ गाँजे की चिलम पर दम लगाए हुए था; आँखें लाल हो रही थीं। उसने आश्चर्य-भरी, विस्फारित दृष्टि से नवकिशोर की ओर देखकर कहा—"यह आप क्या कह रहे हैं?"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"तुम्हारे छोटे राजा के ब्याह का तदबीर कर रहा हूँ घूरु दादा।"

इस शुभ संवाद से घुरुआ को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने बहुत ही संतुष्ट होकर कहा—"ब्याह क्या ठीक हो गया है किशोर भैया? कब होगा? लड़की कहाँ की है? देखने-सुनने में कैसी है? कितना बड़ी है?"

घुरुआ नवकिशोर के उत्तर की अपेक्षा न करके उत्साह के मारे लगातार बके जाने लगा—"बड़े राजा का ब्याह बारह बरस की उमर में ही हो गया था। बड़ी रानी की उमर पाँच बरस की थी। बड़ा रानी हमारी लच्छमी का रूप थीं। हमारे छोटे राजा के पैदा होने के बाद ही वह भगवान् के घर चली गईं!—"

घुरुआ कंधे पर पड़े हुए अँगोछे के खूँट से आँसू पोंछकर फिर कहने लगा—"उसी साल मेरा भी एक लड़का मर गया था। उस साल बड़े ज़ोर कामरी आई थी—उसे आज बीस-बाईस बरस हुए। मैंने ही तो छोटे राजा को अपनी गोद में रखकर इतना बड़ा किया है। अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, इसी से वह मेरी बात नहीं सुनते। ब्याह की चर्चा चलाते ही कहने लगते हैं—'अरे घूरू दादा, ब्याह भी हो जायगा, अभी कुछ मैं बूढ़ा थोड़े हुआ जाता हूँ! ब्याह की उमर कहीं भागी नहीं जाती?' ज़रा लड़के की बातें तो सुनो! मैं कहता हूँ, ब्याह की उमर भागी नहीं जाती, तो क्या

सदा हाथ जोड़े खड़ी रहेगी ? मेरी बातें सुनकर हँसने लगते हैं, और हँसकर टाल देते हैं। छोटी रानी भी हजारों में एक है ! सौतेला मा ऐसा कभी हो ही नहीं सकती। बड़े भाग से ऐसा मा छोटे राजा ने पाई है। बड़े राजा ब्याह के लिये समझाते हैं, छोटी रानी कितना कहती-सुनती हैं, मगर छोटे राजा ध्यान ही नहीं देते। छोटे राजा सिवा आपके और किसी की भी बात नहीं सुनते। सो तुम दोनों का तो ढंग एक ही है ! चोर-चोर मौसेरे भाई ! आप तो उनसे ब्याह करने के लिये कुछ कहते ही नहीं हैं। अब की आपको न जाने कौन सुमति हुई है कि छोटे राजा के ब्याह की बात कह रहे हैं। लड़की पसंद कर ली गई है ? आपने देखा है ? कितनी बड़ी है ?"

बूढ़े और पुराने नौकर के इस तिरस्कार-मिश्रित, स्नेह पूर्ण उलाहने को सुनकर हंसते-हँसते नवकिशोर ने कहा—"हाँ घूरू दादा, ब्याह तो एक तरह ठीक ही हो गया है। लड़की जैसे परी है। उमर अठारह-उन्नीस बरस की होगी।"

घुरुआ ने दांत निकालकर कहा—"हे-हे-हे, आप मेरे साथ दिल्लगी कर रहे हैं।"

नवकिशोर ने गंभीर भाव धारण करके कहा—"दिल्लगी नहीं करता घूरू दादा। तुम्हारे छोटे राजा अब सयाने हो चुके हैं, एक सात-आठ बरस की लड़की उनके गले में बाँध देना क्या अच्छा होता ? इसी से नव-दूने अठारह साल की लड़की ठीक की गई है।"

घुरुआ ने विस्मित होकर कहा—"तो क्या इसीलिये एक अधेड़ औरत उनके गले बाँध दोगे ? हमारे यहाँ के धरम-सास्त्र में तो इतनी बड़ी लड़की से ब्याह करने में पाप लिखा है। चौदह पीढ़ी नरक में जाता है। तुम्हीं लोगों से मैंने यह बात सुनी है।"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"घूरू दादा, हम लोग नए ज़माने के

आया। नवकिशोर को देखते ही आनंद से उच्छ्वसित होकर उसने कहा—"वाह-वाह! किशोर बाबू देख पड़ते हैं! एकदम Surprise visit है! कब आए? सब ख़ैरियत तो है?"

तारक ने अपने शीर्ण मुख के भीतर से सब बड़े-बड़े खबे दाँत बाहर निकालकर कहा—"क्यों जी किशोर बाबू, अच्छे तो हो?"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—'सब तुम्हारी दया है! कहो विपिन, इम्तिहान में कैसे पर्चे किए?"

विपिन—"बुरे नहीं किए। पास हो जाने का भरोसा है। लेकिन फ़र्स्ट डिविजन में पास होने के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। ऐच्छो-सैक्सन फ़ाइलॉलोजी का पर्चा ज़रा ख़राब हो गया; और प्रोज़ का पर्चा भी मन के माफ़िक़ नहीं हुआ।"

नव०—"और सब पर्चे तो ठीक किए हैं? फिर कुछ डर नहीं है; फर्स्ट डिविज़न में पास हो जाओगे। अच्छा, अब यह बताओ, घर कब चलोगे?"

विपिन—"अब तुम आ ही गए हो; जब कहोगे, तब चलूँगा।"

नव०—"जाने से पहले कई ज़रूरी कामों के बारे में सलाह करनी होगी।"

विपिन—"क्या सलाह?"

नव०—"वह बड़ा भारी झगड़ा है। अभी इतनी जल्दी तय न होगा। जाकर हाथ-मुँह धोओ, और जल-पान करो। रात को सलाह होगी। तुम जाओ; मैं तब तक ताड़का (तारक) के साथ मल्ल युद्ध करता हूँ।'

तारक ने दाँत बाहर निकालकर, गले की नसें फुलाकर, कहा—"अच्छी बात है! एहि एहि युद्धं देहि! किस विषय में युद्ध होगा? विधवा-विवाह, या जाति-भेद, या समुद्र-यात्रा? कौन विषय चुनते हो?"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"छी ! यह पुराना एक ही ढंग की बक-बक करने में कहाँ जी लग सकता है ! इन सब पुरानी बातों की आलोचना तो हद दर्जे तक हो चुकी है। तुम नव्य हिंदू-दल के आदमी हो ; कोई नई समस्या खड़ी करो, तभी तुम्हारी करामात है।'

तारक ने गंभीर होकर कहा—"अर्थात ?'

नवकिशोर ने भी खूब गंभीर होकर कहा—"यही, जैसे तुम विधान दो कि औरतों के द्रौपदी की तरह पाँच पति होने चाहिए, फिर भी वे सती की सती बनी रहेंगी, और चार पतियों के मरने पर भी उनका सोहाग अचल बना रहेगा ; विधवा-विवाह की आशंका भी नहीं रहेगी ; अथवा यह कहो कि लड़की पैदा होते ही उसकी आँखें निकाल ली जायँ, और जीभ काट ली जाय ; उसका फल यह होगा कि कोई स्त्री-शिक्षा की बात नहीं उठावेगा। या यह विधान दो कि सबको अपने ही हाथ का पकाया भोजन करना चाहिए ; नहीं तो जाति नष्ट होगी, अधर्म होगा, साढ़े सत्तावन पीढ़ी बावन लाख बरस तक नरक-वास करेगी। कारण, ज़ोर करके यह तो कहा नहीं जा सकता कि स्त्री-कन्या वगैरह भी हमारी स्वजाति हैं ! ये तो सिर्फ नमूना-भर हैं ! इसी ढंग की नई-नई विशेष गवेषणा और ख़ास खोज की व्यवस्थाएं दो। तब उसके अनुकूल या प्रतिकूल जो आलोचना होगी, वह मौलिक और नए ढंग की अलबत्ता होगी। मनु के ज़माने के मत जैसे पुराने हैं, वैसे ही उनकी आलोचना भी पुरानी हो गई है। बुद्धिमान् लोग उन सब विषयों की आलोचना न करें, तभी उनकी बुद्धि की इज्ज़त बनी रह सकती है।"

तारक नवकिशोर की बात सुनकर समझ गया कि इस समय नवकिशोर की तर्क करने की इच्छा नहीं है ; इसी से वह उसे बना रहा है। तारक खूब जानता था कि नवकिशोर के व्यंग्य-विद्रूप की तीव्रता कैसी उग्र होती है। इसी कारण आत्मरक्षा के लिये व्यग्र

होकर उसने कहा—"ओह, एक ज़रूरी काम तो मैं भूल ही गया था! ख़ूब याद आया। मैं अभी पलटकर आता हूँ।"

नवकिशोर ने कहा—"तो यह शास्त्रार्थ अभी तहाकर रख दो। और दिन फ़ैसला होगा। लेकिन काम क्या ज़रूरी है?"

तारक ने व्यग्र होकर कहा—"ओह, बहुत ही ज़रूरी है।"

नव०—'मैं अभय-दान देता हूँ; तुम इस समय सुलह कर लो।"

तारक—"क्यों, क्या मैं तर्क-युद्ध को डरता हूँ? मैं अभी आता हूँ; तुमसे बहस करूँगा।"

इतना कहकर तारक चटपट चल दिया।

दम-भर के बाद विपिन ने आकर नवकिशोर से कहा—"तारका कहाँ गया?"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—'मेरे नवीन शास्त्र-विधान का आभास पाते ही भाग खड़ा हुआ। लौटकर आने के लिये कह ज़रूर गया है, लेकिन आज वह लौटकर आ नहीं सकता।"

विपिन ने हँसते-हँसते कहा—"चलो, बरामदे में चलकर बैठें।'

दोनों मित्र सड़क के किनारे बरामदे में, कुर्सी डालकर, मोटा मख़मली का चादर ओढ़कर, बैठे। कलकत्ते के धुएँ और धूल की चादर ओढ़े हुए शीत-काल की हवा सिमटी और छिपी हुई थी। धूल और धुएँ के पर्दे को फाड़कर सड़क के किनारे की गैस की रोशनी धुँधली-धुँधला टिमटिमा रही थी; जैसे दूर आकाश की स्पष्ट नीहारिका हो। उसके मटमैले प्रकाश में सारा कलकत्ता शहर जैसे तंद्रातुर (ख़ुमारी में भरा हुआ)-सा देख पड़ता था। बीच-बीच में 'हट जाओ' के शब्द से लोगों को चौंकाकर, शराबी आँखों के समान लालटेनों की रोशनी चमकाकर, घर-घर करती हुई घोड़ों की गाड़ियाँ निकल जाती थीं। नवकिशोर ने विपिन से पूछा—"अच्छा विपिन, तुम्हारी चौदह पीढ़ियों में तो कभी किसी ने लिखा-पढ़ा

नहीं, तुम यह विद्या का बोझ लादकर क्या करोगे ? कारण, तुम्हारे यहाँ कभी किसी ने विद्या का बोझ नहीं लादा; और इसी कारण कहना चाहिए कि तुम्हारे कुल को इस बोझ के लादने का अभ्यास नहीं है। क्या केवल ज़मींदारी का बहीखाता और जमा-ख़र्च देख लेना ही इस विद्या का फल होगा ? तुम्हारी विद्या से क्या इतना ही आशा की जाय ?"

विपिन ने हँसकर कहा—"घर में एक कोने बूढ़ेबाबा बैठे-बैठे पैसा-रुपया जमा करें, काग़ज़-पत्र देखें, मामले-मुक़द्दमे करते रहें; बंदा तो मज़े से, निश्चिंत होकर, काव्य-साहित्य की चर्चा करेगा। काव्य की आलोचना का सुख प्रेयसी के प्रथम चुंबन के समान ही मधुर है। काव्य की आलोचना वैसे ही एक अचिन्त्य, अनवर्च आनंद से भरी, वैसे ही आधे गुप्त और आधे स्पष्ट भाव से परिपूर्ण होती है ! वाह, यह भी कैसी अद्भुत अपूर्व वस्तु है ! वह सुख छोड़कर जमा-वासिल-बाक़ी के फेर में मैं पड़ूंगा ! राम भजो !"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"कविजी, तुम्हारा प्रथमी का प्रथम चुंबन अब और बहुत दिन तक केवल कल्पना की सामग्री नहीं बना रहेगा। शीघ्र ही उस सुख का भी स्वाद पा जाओगे। देखना, उस समय कहीं वह सशरीर कविता इस पुस्तक गत प्रियतमा को तुमसे अलग न कर दे !"

विपिन ने हँसते हँसते कहा—"नहीं जी, नहीं, वह शुभ दिन अगर आया, तब तो अपने अव्यक्त भावों को आकार देने के लिये पुस्तक की सरस्वती की सहायता और भी आवश्यक होगी। लज्जा-पूर्ण हृदय जिस बात को नहीं कह सकता, उसे कवि इशारों से कह देता है !"-

इसी समय तारक भी आकर वहाँ बैठ गया। विपिन ने कहा—"सुना तारका, किशोर भैया मुझसे प्रेयसी को मिलाने के लिये व्यग्र हो उठे हैं। लेकिन मैं ऐसा स्वार्थ-पर कैसे हो सकता हूँ, तुम्हीं

बताओ ? हम दोनों मित्र एक ही राह पर चल रहे हैं; फिर फल भिन्न-भिन्न कैसे हो सकता है ? भैया किशोर, तुम्हीं को विशेष रूप से देखने-सुनने के लिये एक चतुर अभिभावक की बड़ी ज़रूरत है। तुम तो रात-दिन पराई चिंता में ऐसे चूर रहते हो कि अपनी चिंता करने की, अपने खाने-पीने, सोने और आराम करने की फुरसत ही तुम्हें नहीं मिलती। इसके सिवा तुम दार्शनिक ठहरे; दर्शन-शास्त्र की चर्चा में ही डूबे रहते हो; अपनी दशा के दर्शन करने का समय ही तुम्हें नहीं मिलता। तुम जब यह विचार करने बैठ जाओगे कि तेल पात्र का आधार है, या पात्र तेल का आधार है, तब यह देखनेवाले एक दृढ़ अभिभावक की सख्त ज़रूरत होगी कि घर में नोन-तेल-लकड़ी का ठिकाना भी है या नहीं। बताओ, तुम उस अभिभावक को कब लाओगे ?"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"तुम लोग बड़े आदमी ठहरे, तुम अपना समय व्यर्थ नष्ट करो, तो कोई हानि नहीं। हम छोटे, ग़रीब आदमी हैं; समय को व्यर्थ नष्ट नहीं कर सकते। जो समय मिलता है, उसमें काम करते रहते हैं। इसीलिये मेरी राय है कि कवित्व के साथ की सब सामग्री का बोझ तुम्हीं उठाओ। हम लोग कड़ी धातु के आदमी हैं; कठिन कर्म में ही हमें आनंद है। तुम सुकुमार राजकुमार हो; कोमल कवित्व-कला का आनंद लूटो। लेकिन मैं तुम्हें बिलकुल कोरा ही नहीं छोड़ दूँगा। बीच-बीच में तुम्हें भी प्रेयसी के पास से खींच लाकर कर्म में लगा दूँगा, नहीं तो तुम आलसी और निकम्मे हो जाओगे। यह न समझना कि इतनी बड़ी पूँजी को मैं सूद पर न चलाकर यों ही बेकार पड़ा रहने दूँगा।"

तारक ने गंभीर भाव से पूछा—"तो तुम क्या चिर-कुमार-व्रतधारी होकर एकदम संसार त्याग कर दोगे ?"

नवकिशोर—"क्यों, मुझे क्या दुःख है, जो संसार-त्याग कर दूँगा ?"

तारक— 'संसार-त्याग नहीं करोगे, और ब्याह भी नहीं करोगे ? यह कैसे ? न संन्यासी होगे, न गृहस्थ बनोगे ?"

नव०—"क्यों ? क्या कोई ऐसा नियम है कि सन्यासी होने से अवश्य ही संसार-त्याग करना पड़ता है ? सच्चे संन्यासी तो वे ही हैं, जो संसार में रहकर देश का, दस आदमियों का हित करते हैं। अपने पास जो कुछ ज्ञान की पूँजी हो, उसे सबको बाँटकर धन्य होना ही तो संन्यासी और ब्राह्मण का काम है। विद्या पढ़कर, स्वार्थ-पर होकर आप ही उस शिक्षा के आनंद का भोग करना तो सन्यासी या ब्राह्मण का काम नहीं है। माता सरस्वती की वीणा के तारों में जो अपूर्व आनंद की रागिनी बजती है, उसे जितना तुमने सुन पाया है, उसकी ख़बर और दस आदमियों को देना ही तो तुम्हारा कर्तव्य है। ऐसा करने से ही तुम अपने कर्तव्य का पालन करोगे। हमारे देश के ब्राह्मण लोग इसीलिये पूज्य हैं; इसी से उन्हें गुरु की पदवी और सम्मान मिला है। इस समय शिक्षितों में से जो आदमी यथाशक्ति शिक्षा का प्रचार नहीं करता, वही इस महत कर्तव्य की अवहेला करके ब्राह्मण के सम्मान को नष्ट कर रहा है। अतएव यह निश्चित है कि समाज में शिक्षित लोगों की एक बड़ी भारी ज़िम्मेदारी है; और शिक्षित धनी की ज़िम्मदारी तो और भी अधिक है।'

विपिन ने नवकिशोर का गूढ़ इशारा समझकर कहा—"मैं यथा-साध्य अवश्य अपने कर्तव्य का पालन और अपनी ज़िम्मेदारी का ख़याल करूँगा ! लेकिन तुम तो जानते ही हो कि मैं कैसी अलस प्रकृति का आदमी हूँ। ख़ुद उद्योगी होकर कुछ भी नहीं कर सकता। तुम किसी कार्य का उद्योग करके उसमें मुझे लगा दो। मुझसे काम लेने का काम तुम्हीं को करना होगा।"

नवकिशोर ने कहा—"मैंने एक काम सोचा है। पहले तो आस-

पास के कुछ गाँव ठीक करके उनके कई मंडल बनाने होंगे। हरएक मंडल में एक-एक पाठशाला रहेगी। उनमें छोटे-छोटे लड़की-लड़के एक साथ पढ़ेंगे। पाठ्य-विषय या पाठ्य-पुस्तक कोई निर्दिष्ट नहीं रहेंगी। शिक्षक ज़बानी चित्र और नक़्शे आदि दिखाकर सब विषयों की शिक्षा देने का यत्न करेंगे। स्कूल की फ़ीस भी नाम-मात्र को रहेगी। इससे फल यह होगा कि ग़रीब मा-बाप भी अपने लड़की-लड़कों को वहाँ भेज सकेंगे। उन्हें कोई असुविधा नहीं होगी। स्कूल में जैसे आमदनी नहीं रहेगी, वैसे ही ख़र्च भी नहीं किया जायगा। स्कूल के लिये घर, कुर्सी, टेबिल वग़ैरह सामान कुछ नहीं रहेगा। किसी ऊँचे टीले पर, या आम वग़ैरह के बाग़ में पेड़ों के नीचे, स्कूल लगेगा। प्राचीन काल की तरह मेघ-गर्जन और वर्षा के समय अनध्याय रहेगा। शिक्षक के डेरे में ही थोड़ी-सी जगह करके वहीं स्कूल की किताब, नक़्शे वग़ैरह सब सामान रक्खा जायगा। शिक्षक भी हमीं लोग तैयार कर लेंगे। तुम मथुरापुर में बैठकर रसद पहुँचाना, और मैं हरएक मंडल में घूम-घूमकर सब व्यवस्था देखता फिरूँगा। थोड़ा-सा शिक्षा का प्रचार हो जाने पर हर गाँव में एक-एक छोटी लाइब्रेरी स्थापित करनी होगी। मथुरापुर में एक सर्वांग-पूर्ण केंद्र-लाइब्रेरी खोली जायगी। उसकी चुनी हुई अच्छी पुस्तकें बारी-बारी से सब लाइब्रेरियों को, एक निर्दिष्ट समय के लिये, उधार दी जाया करेंगी। देश में जहाँ-जहाँ माइनर स्कूल या छात्र-वृत्ति-स्कूल हैं, उन्हें हमारी प्राइमरी पाठशालाएँ पुष्ट करेंगी। लड़कों की तरह लड़कियों की भी उच्च शिक्षा के लिये जगह-जगह अलग छात्रवृत्ति या माइनर कन्या-पाठशाला स्थापित करनी होंगी। लोग जब शिक्षा की मर्यादा और लाभ कुछ समझ लेंगे, तब शायद हम सबकी समवेत चेष्टा से जगह-जगह एंट्रेंस-स्कूल के समकक्ष बड़ी पाठशालाएँ भी स्थापित कर सकेंगे। इस काम को अच्छी तरह

चला देने में ही तुम्हारी शिक्षा धन्य होगी—तुम्हारा धन सफल होगा।"

तारक ने दाँत बाहर निकालकर कहा—"थ्योरी और प्रक्टिकल में बड़ा अंतर है भाई! कवित्व का स्वप्न देखना, मनोरथ के घोड़े दौड़ाना सहज है; मगर काम करना कठिन है—बड़ा कठिन है!"

नवकिशोर ने कहा—"यों तो तुम ठीक ही कह रहे हो। मगर इसीलिये तो काम का मूल्य अधिक है।"

विपिन ने तारक की बात पर ध्यान न देकर नवकिशोर से पूछा—"मगर अभी काम शुरू करने-भर की रकम हम कहाँ पावेंगे? पिताजी तो इस प्रस्ताव की उपयोगिता समझेंगे नहीं। और, समझने पर भी शायद इस काम में रुपए खर्च करने को राज़ी न होंगे।"

नवकिशोर ने कहा—"तुमने तीन परीक्षा पास करके तीन गाँव पुरस्कार में पिता से पाए हैं। अब की भी एक पाओगे। उनका स्वत्व तुम्हें इस काम के अर्पण कर देना होगा।"

विपिन ने कहा—"मगर गवर्नमेंट क्या अपने संबंध से रहित शिक्षा-प्रचार को नेक नज़र से देख सकेगी? उधर सरकारी संबंध की झोंक सँभालने के लायक़ सामर्थ्य भी हममें नहीं है। हमारी स्कीम बिलकुल प्राचीन ढंग की है। गवर्नमेंट आडंबर को अधिक पसंद करती है।"

नवकिशोर ने कहा—"नहीं, बड़े लोगों की बातें बड़ी होती हैं। गवर्नमेंट से सहायता लेना झंझट है। उसकी निगरानी में यह काम करने से यथेष्ट फल न प्राप्त होगा, और कार्य-क्रम में गवर्नमेंट से हमारी पटेगी भी नहीं। हमें स्वतंत्र, स्वाधीन भाव से ही काम करना चाहिए। सच तो यह है कि गवर्नमेंट या उसके उच्च कर्मचारी यहाँ ज्ञान और शिक्षा के प्रचार को कुछ भय की ही दृष्टि से देखते हैं। कारण, वे क्रुस्तान हैं। और, क्रुस्तान लोग ज्ञान-वृक्ष के फल को आदिम मानव

आदम के अमल से ही भय की दृष्टि से देखते आते हैं। वे किसी तरह यह नहीं समझने, या यों कहो, समझना नहीं चाहते कि अज्ञान के अंधकार में ही शैतान छिपा रहता है। ज्ञान जो है, वह मनुष्य को मनुष्य के समान अवश्य बना देता है, लेकिन मनुष्य का शत्रु नहीं बनाता। देखो, तुम्हारे ही घर में अज्ञान ने कैसे अकल्याण का आश्रय दे रक्खा है। मालती ज्ञान-वृक्ष के निषिद्ध फल का कुछ स्वाद पाकर उस घर में गई है, तो उससे वहाँ कैसी हलचल मची हुई है!"

विपिन ने उत्सुक और व्यग्र होकर कहा—"क्यों, क्या हुआ?"

नवकिशोर कहने लगा—"प्रथम कारण यह है कि मालती विधवा होकर भी सोने की चूड़ियाँ और किनारीदार धोती पहने थी। लेकिन उसने वहाँ जाते ही वह सब उतारकर रख दिया है। यह त्याग उसके अपरिचित स्वामी की स्मृति के सम्मान के लिये नहीं है। अपने मन के वैराग्य से भी नहीं है। इस त्याग का कारण केवल समाज का ज़बरदस्ती और ज़ुल्म ही है।"

तारक आस्फालन करके कह उठा—"जो आदमी समाज में रहकर समाज के आदर्शों की अवहेलना करे, उस पर ज़ुल्म करने का समाज को एक सौ बार अधिकार है—"

नवकिशोर तारक के आस्फालन पर कुछ ध्यान न देकर कहने लगा—"दूसरा कारण यह है कि मालती शेमीज पहनती है; उसे वह किसी तरह नहीं छोड़ सकी। तीसरा कारण यह है कि उसने स्वीकार किया कि वह लिखी-पढ़ी है। चौथा कारण यह है कि वह तुच्छ, परपंच और पर-निंदा की बेहूदा बातों का साथ नहीं देती, और न वैसी मंडली में शामिल ही होती है। पाँचवाँ कारण यह है कि वह पुरुष को देखकर हाथ-भर का घूँघट नहीं निकालती, और ऐसे अवसर पर उस मर्द के आगे से बद-बद करके भागने को ही अधिक लज्जा की बात समझती है। इन्हीं तुच्छ कारणों से सब मिलकर

उसके पीछे पड़ी रहती है। उसका रहना भारू हो गया है; उस पर बेहद अत्याचार किया जाता है। सब लोग बात-बात में अकारण उसका अपमान करते हैं। कोई उससे एक भी मीठी बात नहीं बोलता। कोई उसे किसी काम में हाथ नहीं लगाने देता। वह इतने आदमियों में अकेले रहकर काल-कोठरी की यातना भुगत रही है। घर जाकर तुम्हारा पहला काम मालती की रक्षा करना होगा। उसके बाद अपने परिवार के कुसंस्कार को दूर करके शिक्षा के आदर्श से अपने घर की स्त्रियों के विचार उदार और उन्नत बनाने होंगे। मालती को अगर तुम अपना लो, उसे अपना सहायक बना लो, तो तुम्हारा श्रम बहुत कुछ कम हो सकता है।"

तारक कह उठा—"ख़बरदार! ऐसा काम मत करना—कभी मत करना। कहता हूँ, अपना क्रिस्तानी आदर्श शांत अंतःपुर में भी ले जाकर अशांति की आग न लगाना। तुम जो कर रहे हो, उससे मर्दों को ही नष्ट होने दो; हम लोगों के घर की गृह-लक्ष्मियों की शांति नष्ट करने से कभी तुम्हारा या समाज का कल्याण न होगा!"

असहाय, अबला मालती के ऊपर अपने परिवार के किए अत्याचारों को अपना ही अपराध समझकर, उत्तेजित होकर विपिन ने कहा—"अकल्याण के कूड़े को दूर करने के लिये अगर आग लगाने की ज़रूरत होगी, तो मैं आग भी लगाऊँगा। और, अगर उस अन्याय का प्रतिकार हम न कर सके, तो हम ख़ुद ही उस आग में जल मरेंगे। मैं परिवार के साथ सब संबंध छोड़ दूँगा।"

भाव-प्रवण विपिन को उत्तेजित देखकर, संतुष्ट होकर नवकिशोर ने कहा—"संबंध छोड़ देने से काम नहीं चल सकता। मा, बहन, बाप वग़ैरह का नाता तो ऐसा नहीं है कि छोड़ दिया जाय। उन

लोगों के साथ संबंध बनाए रखकर ही परिवार के बीच उन्नत आदर्श की स्थापना करनी होगी—समझे ?"

विपिन दम-भर चुप रहकर कह उठा "मालती का ब्याह कर दिया जाय, तो कैसा हो ?"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—'ऐसा पात्र कौन है ?"

विपिन ने भी हँसकर कहा—'तुम।"

नवकिशोर ने हँसते हँसते कहा—"पहले मालती को एक दफ़े देख लो ; उसके बाद अगर हो सके, तो दूसरे का नाम लेना।"

विपिन हँसने लगा। तारक आँख और मुँह लाल करके बोला—ऐं, तुम लोगों का क्या ऐसा अधःपात हो गया है कि ब्रह्मचारिणी विधवा के बारे में दिल्लगी करते हो ! तुम लोग याद रक्खो, हिंदू-समाज में अभी तक जान बाक़ी है ! उस भारी और बहु-विस्तृत शक्ति को अपने विरुद्ध उत्तेजित मत करो। मैं कहे रखता हूँ, इससे तुम्हारा कल्याण न होगा, न होगा, न होगा।"

तारक जोश के मारे तेज़ी के साथ वहाँ से उठकर बाहर चला गया। नवकिशोर का अट्टहास और विपिन का उच्च हास्य जैसे पीछा करता हुआ उसके पीछे दौड़ा।

पंद्रहवाँ परिच्छेद

बहुत दिन बाद परीक्षा देकर विपिन घर आ रहा है। घर के सभी लोग उत्सुकता के साथ विपिन के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बड़ी बहू का हृदय आज मातृ-गर्व से परिपूर्ण और चित्त प्रसन्न है। वह मन में सोच रही थीं कि इसी फागुन के महीने में वह ख़ूब धूम-धाम और आनंद-कोलाहल के साथ विपिन का ब्याह करेंगी, और बहू का मुँह देखेंगी। आज का यह उत्सव एक तरह से

उसी की पूर्व-सूचना है। पुरखिन के आनंद से आज सभी आनंदित हैं। राहिणी आज अकारण ही इधर-उधर चिल्ला-चिल्लाकर 'यह नहीं हुआ; वह करो' इत्यादि कहती हुई अपनी कार्य-कुशलता का परिचय देती फिरती है। घर की बहू-बेटियाँ भी आज अधिक उत्सुकता के मारे अपने आनंद को दबा नहीं सकतीं।

इस आनंद-उल्लास के बीच दो आदमियों के मन में एक तरह की दुविधा देख पड़ती थी—वह थीं चाची और मालती! विपिन की अवाई के आनंद में वे सबमें शामिल होकर उनका साथ देंगी, या अलग रहेंगी, यह कुछ उनकी समझ में नहीं आता था। वे ठीक नहीं कर सकती थीं कि उनका कर्तव्य क्या है? सबके साथ आनंद में शामिल होने से लोगों के मन में खीझ का भाव पैदा होने का खटका है; और अलग एकांत में पड़े रहने से भी बड़ी बहू को बुरा लगेगा, और वह देखने में अच्छा भी नहीं मालूम पड़ेगा। चाची विपिन को अपने पुत्र के समान मानती और स्नेह करती है। उसकी अवाई सुनकर उनका हृदय आप ही में यह चाहता था कि सबके आगे जाकर वही विपिन को आशीर्वाद दें। विपिन ने संकट के समय जो उनकी सहायता की है, उपकार किया है, वह भुलाया नहीं जा सकता। किंतु उनके इस सहज आचरण में मालती आकर बाधा बन गई थी। उसे लेकर विपिन की अभ्यर्थना करने जाने में फिर कोई नया हंगामा न उठ खड़ा हो, यही सोचकर वह किं-कर्तव्य-विमूढ़-सी हो रही थीं। मालती को साथ लेकर उनसे सबके आनंद में शामिल नहीं हुआ जायगा; और उधर मालती को साथ न लेकर अकेले विपिन का स्वागत करने जाना भी देखने में अच्छा नहीं लगता। चाची के लिये यही एक बड़ी भारी समस्या हो रही थी।

उधर मालती के हृदय में सुख और संकोच का युद्ध चल रहा था। नवकिशोर ने कहा है कि विपिन के आते ही उसका सब दुःख

और यंत्रणा दूर हो जायगी। वही उसे सुदुःसह दुःख से बचानेवाला बंधु आज आ रहा है। उसे देखने का दारुण कौतूहल मालती के मन को जैसे मथे डाल रहा था। उसने मन में जो विपिन की कल्पित मूर्ति गढ़ रक्खी थी, उसके साथ असल को मिलाकर देखने के लिये उसका चित्त बहुत ही उत्सुक हो रहा था। लेकिन साथ ही यह भय भी हो रहा था कि ऐसा करने से भी लोग उसे भला-बुरा न कहने लगें! यह भी उसका अनुचित काम न समझा जाय!

बहुत कुछ सोच-विचारकर अंत को चाची ने ठीक किया कि मालती को साथ लेकर ही सबके साथ, किंतु सबके पीछे, वह विपिन की अभ्यर्थना में शामिल होगी; और विपिन जब घर के भीतर आ जायगा, तब उस धूम-धाम में मालती को लेकर खिसक आवेगी।

चाची ने मालती से कहा—"अरे, सुनती है, चल, नीचे चलें। आज विपिन आ रहा है। सब लोग विपिन को लेने के लिये नीचे जमा हैं; हम वहाँ न जायँगी, तो देखने में अच्छा नहीं लगेगा। लेकिन तू सबके पीछे रहना, समझ गई? इस तरह आँखें फाड़-फाड़कर क्या देख रही है? वहाँ भी इस तरह न ताकना। मैं जैसे बुलाऊँ, वैसे ही चली आना, समझी? बोलती क्यों नहीं, जवाब क्या नहीं देती? हाँ-ना, कुछ कहती ही नहीं; क्या जीभ कोको ले गई है? ले, ज़रा घूँघट काढ़कर सिर ढक ले। ना, तू मेरा कहा नहीं मानेगी हरामज़ादी!"

मालती ने कहा—"मुझे घूँघट काढ़ने का अभ्यास नहीं है। मुझसे घूँघट नहीं काढ़ा जायगा—मुझे शरम लगती है।"

चाची ने झनककर कहा—"मर मुँहजली! घूँघट काढ़ते शरम लगती है, और भाठा-जैसा मुँह खोलकर मर्दों के सामने निकलते शरम नहीं लगती? ज़रा इसकी बातें तो कोई देखे! जो तेरी ख़ुशी हो, सो कर; मैं नहीं जानती!"

इतना कहकर तेज़ी से पैर रखती हुई, चाची वहाँ से चल दीं। मालती भी हंस की सी मंद गति से उनके पीछे सिधारी।

उधर उस समय बड़ी बहू जया से चाची की ही बात कर रही थीं। वह कह रही थी कि देखती है जया, छोटी बहू का अकिल? आज मेरा विपिन घर आ रहा है, सो आज भी बहन की लड़की को लिए अपने कमरे में छिपी बैठी है।"

जया बड़ी चालाक औरत थी। वह ख़ुशामद करके ही पुरखिन की दुर्बल प्रकृति को अपने वश में किए थी। पुरखिन उसके सैकड़ों अनाचारों और अन्यायों को उसकी चालाकी से ही भूली रहती थी। इस समय पुरखिन की तबियत का रुख़ वह ठीक नहीं पहचान सकी कि किधर है। वह निश्चय न कर सकी कि इस समय पुरखिन चाची पर ख़ुश है या नाराज़, और चाची को भला-बुरा कहने का, उनकी ओर से लगाने-बुझाने का मौक़ा है या नहीं। वह जानती थी कि अनुमान में तनिक भूल होते ही जो धूल वह चाची के ऊपर छोड़ेगी, उसका उड़कर उसी की आँखों में पड़ना कुछ आश्चर्य नहीं है; और उसका परिणाम आँसू बहाना ही होगा! इसी से उसने मिटपिटाकर कहा—"वही सब, छोटी बहू तो बेशक नहीं देख पड़ती!"

इसी समय चाची आकर कुछ फ़ासले से खड़ी हो गईं। उनके पीछे ही मालती भी था।

चाची को देखकर पुरखिन ने चुपके-चुपके जया से कहा—"देखती है जया, विपिन आ रहा है, इसी से आज अपना घोंसला छोड़कर बाहर निकली है। लेकिन विपिन को उन्होंने पाया कहाँ से? मुझसे ही तो?"

जया ने गंभीर भाव से गर्दन हिलाकर कहा—"सो तो ठीक ही है।।पहले तुम हो, या विपिन? तुम्हीं तो सबकी जड़ हो। आहा,

भैया की लाखों बरस की उमर हो। मगर देखती हो जीजा, मालती मेम साहब भी बाहर निकलकर हाज़िर हुई हैं। माथे पर तनिक-सा भी आँचल नहीं है। रूप दिखाकर विपिन को वश में करने का इरादा जान पड़ता है!"

पुरखिन ने मालती की ओर फिरकर देखा, उस विषादमयी मुख श्री में कहीं पर भी ज़रा-सी चंचलता नहीं है। संयम की एक प्रकार की लज्जा मुख-मंडल में छाई हुई है; आँखों में शील सकोच भरा हुआ है। पुरखिन की समझ में आ गया कि घूँघट इससे बढ़कर काम नहीं कर सकता। तब उन्होंने ज़रा जया को खींचा मारकर कहा—"मेरा विपिन वैसे स्वभाव का लड़का नहीं है; उसमें अपने बाप के ढंग बिलकुल नहीं हैं।"

जया इस प्रच्छन्न व्यंग्य से लज्जित होकर इस ग्लानि को ढकने के लिये जिस समय व्यग्र हो उठी, उसी समय जैसे उसकी जान बचाने ही के लिये बाहर विपिन आ पहुँचा, और गुडुम-गुडुम करके बंदूकों के फ़ायर होने लगे—गोले दगने लगे। रोहिणी ख़ुशी के मारे उछलती और ताली पीटती भीतर आकर कहने लगी—'छोटे राजा आ रहे हैं—छोटे राजा आ रहे हैं।"

पुरखिन चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगीं—"अरे, वहाँ वह खाली कलसा किसने रख दिया? हटाओ-हटाओ सामने से!—अच्छा, नहीं-नहीं भर दो-भर दो। सब जैसे बेवकूफ़ हैं; सबके जैसे हाथ-पैर रह गए! किसी से कुछ नहीं होता! अरे, जल्दी करो, नहीं विपिन सामने आ जायगा।"

पाँच-सात नौकर-दासी वग़ैरह खाली कलसे को भरने दौड़े। और सब लोग विपिन के भीतर आने की प्रतीक्षा में जगह-जगह दल बाँधकर खड़े रहे।

दम-भर के बाद विपिन मुस्किराता हुआ आँगन में दिखाई पड़ा।

उसे देख पाते ही बिनी दौड़कर उसके पैरों से लिपट गई, और छोटा भाई विनोद भी आगे बढ़कर विपिन का हाथ पकड़कर नाच-नाचकर कहने लगा—"अरे दादा आ गया—अरे दादा आ गया!" बिनी भी उसका अनुकरण करके कहने लगी—"अले दादा आ गया, अले दादा आ गया!"

विपिन ने हँसते हँसते विनोद को प्यार करके बिनी को गोद में ले लिया, और उसके बाद माता को प्रणाम करने के लिये आगे बढ़ा। विनोद भी उसका हाथ पकड़े हुए साथ चला। पुरखिन हड़बड़ाकर कह उठीं—"अरे पागल लड़के, ठहर-ठहर! पहले भरे कलश के हाथ जोड़, उसके बाद मेरे पैर छूना।"

विपिन ने हँसकर कहा—"तुमसे बड़ा मेरे लिये और कोई नहीं है अम्मा! भगवान् मेरे सिर-आँखों पर हैं, लेकिन मैं तो तुम्हें ही अपना साक्षात इष्ट-देव मानता हूँ, और तुम्हारे ही पैर पहले छुऊँगा।"

पुरखिन मन ही मन प्रसन्न होकर हँसते-हँसते कहने लगीं—"तुम सब लड़के अँगरेजी पढ़-पढ़कर किरिस्टान हो गए हो। मगर जब तक हम लोग हैं, तब तक देवी-देवताओं को मानना ही पड़ेगा; हमारे न रहने पर चाहे जो करना।"

विपिन ने हँसकर कहा—"अच्छा, चटपट बताओ, क्या करना होगा?"

पुरखिन ने भरा हुआ कलश दिखाकर कहा—"इसके हाथ जोड़; तेरी मनोकामना पूरा होगा।"

विपिन ने कहा—"ना अम्मा, घट-वट को मैं प्रणाम न कर सकूँगा। मैं तुम्हें ही प्रणाम करूँगा, और उसी से मेरा मनोरथ पूरा होगा—सब तरह भला होगा।"

विपिन ने चटपट आगे बढ़कर माता के पैरों पर सिर रखकर

प्रणाम किया। पुरखिन ने मुस्किराकर, स्नेह का उलाहना देकर, कहा—"तू इतना बड़ा हुआ, मा के सिवा और कुछ जानता ही नहीं।" इसके बाद विपिन का उठाकर, पीठ पर हाथ फेरते-फेरते कहा—"बहू को घर आने दे, तब देखूँगी, मा का ऐसा ही ख़याल कैसे बना रहता है!"

विपिन ने हँसकर कहा—"इसी खटके से तो मैं बहू को घर लाने के लिये राज़ी नहीं हूँ।"

ब्याह की बात उठते ही विपिन को मालती का ख़याल आ गया। उसने सरसरी तौर से एक बार चारों तरफ़ नज़र दौड़ाकर कहा—"अम्मा, चाचा-अम्मा कहीं नहीं देख पड़तीं; कहाँ हैं?"

पुरखिन ने भी चारों ओर नज़र दौड़ाई, और चाची को कहीं न देखकर कहा—"यहीं तो थीं, कहाँ चली गईं? बहन को लड़की को लेकर कहीं ग़ायब हो गईं!—जा तो रोहिणी, अपने कमरे में होगी, बुला ला।"

विपिन ने बाधा देकर कहा—"नहीं रोहिणी, रहने दे। बुलाने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं ख़ुद उनके पास जाता हूँ।"

पुरखिन विपिन को मना तो नहीं कर सकीं, लेकिन चाची के ऊपर विपिन का अधिक श्रद्धा या ममता देखकर उनका मन कुछ अप्रसन्न हो उठा।

जया ने समझा था कि विपिन उसके भी पैर छुएगा; लेकिन इसकी कोई संभावना न देखकर वह भी चाची के इस सौभाग्य पर ईर्षा से जल उठी।

विपिन चाची के पास गया। लड़के-बाले और बहू-बेटियाँ भी सब उसके पीछे-पीछे चलीं। आज विस्मय-पूर्ण आनंद के साथ विपिन को बार-बार देखकर भी किसी की देखने की आकांक्षा नहीं मिटती थी। आज वह जैसे नवीन होकर घर आया है।

विपिन ने चाची के पास पहुँचते ही पुकारा—"चाची-अम्मा!"

चाची ने चटपट कमरे के बाहर आकर कहा—"आओ भैया, आओ।"

विपिन ने पैरों पर सिर रखकर चाची को प्रणाम किया, और उन्होंने भी उमड़े हुए आँसुओं के वेग को बड़े कष्ट से रोककर गद्गद स्वर से कहा—"हृदय से आशीर्वाद देती हूँ भैया, सदा सुखी रहो।"

मालती को देखने के लिये विपिन का कौतूहल कड़ी ताकीद कर रहा था। इसी से विपिन ने हँसकर कहा—"चाची-अम्मा, भीतर चलो। क्या दरवाज़े पर से ही बिदा कर दोगी?"

चाची ने लज्जित होकर घबराहट के साथ कहा—"आओ बेटा, आओ। लेकिन तुम यहाँ देर करोगे, तो जीजी नाराज़ हो जायँगी।"

विपिन ने कहा—"मुमकिन है, वह कुछ नाराज़ हो जायँ। लेकिन मा की नाराज़ी मिटाते कितनी देर लगती है!"

इतना कहकर ही विपिन भीतर दाखिल हो गया।

घर के भीतर पैर रखते ही विपिन ने देखा, एक अप्सरा-सी सुंदरी, निराभरणता, तरुणी, युवती एक तरफ़ संगमरमर की मूर्ति के समान खड़ी हुई है। विपिन को देखते ही मालती की दृष्टि लज्जा-मिश्रित कौतूहल से चंचल और उज्ज्वल हो उठी। उस दृष्टि ने मालती के सौंदर्य की सौमवत्ता को जैसे अग्नि-शिखा की तरह रोशन कर दिया। विपिन मुग्ध दृष्टि से मालती की ओर देखते-देखते अपने मन में सोचने लगा—यही मालती है! ऐसा सुंदरी है! ऐसा रूप तो वह कभी कल्पना में भी नहीं देख सका! उसकी दोनों आँख जैसे शरत्तु के स्वच्छ आकाश के दो टुकड़े काटकर रख दिए गए हैं; उसके दोनों गोल गाल गुलाब के जैसे फूल हैं; मुँह जैसे कमल का

खिला हुआ फूल है ; रंग जैसे सीपी के भीतर की झलक है ! वह जैसे मूर्तिमती उषा है ! साक्षात् वसंत की श्री है !

विपिन और मालती की आँखें एक हुईं। विपिन के शरीर-भर में जैसे एक तरह का तीव्र बिजली दौड़ गई। विपिन की स्वच्छ, उदार दृष्टि को विस्मय और प्रशंसा के भाव से परिपूर्ण देखकर मालती की संकोच-भरी दृष्टि लज्जा के बोझ से नीचे झुक गई। उसके मुख में मुस्कान की क्षीण रेखा फूट उठी। विपिन ने देखा, उस निर्दोष मुख में वह हँसी विश्व-शिल्पी की चरम निपुणता है !

विपिन को देखकर मालती का चित्त भी प्रसन्न हो उठा। उसने देखा, विपिन एक उज्ज्वल श्याम वर्ण का, मँझोले क़द का नौजवान है। उसके मुख की श्री अत्यंत कोमल है। वह प्रियदर्शन है। उसके ओठों में प्रशांत हास्य विराजमान है। दोनों आँखें करुणा और सरलता से परिपूर्ण हैं, उनमें जैसे सहानुभूति छलकी पड़ती है। उसकी स्वच्छ दृष्टि के भीतर उसकी कोमल प्रकृति का प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उसकी उन्नत नासिका उसकी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय दे रही है। उसका ललाट ज्ञान की दीप्ति से उज्ज्वल है। वह वेश-भूषा में भी फ़िट और साफ़-सुथरा है। उसके पैर के नाख़ून से लेकर सिर के कुंचित केश तक उसकी सुरुचि की घोषणा कर रहे हैं। विपिन का बाहरी भाग जैसे भीतरी भाग का दर्पण है। विपिन को अपना परम आत्मीय और हितैषी स्वीकार करने के लिये मालती को और प्रमाण की अपेक्षा नहीं रही; एक बार आँख से आँख मिलते ही उसके हृदय को इसका पूर्ण विश्वास हो गया कि यहाँ क्या, संसार-भर में विपिन से बढ़कर उसका आत्मीय तथा हितैषी और कोई नहीं है। दो तरुण हृदय पहली भेंट में ही आनंद के साथ परस्पर एक दूसरे के पक्षपाती हो गए।

विपिन और मालती की चार आँखें होना चाची की तीक्ष्ण दृष्टि

से छिपा नहीं रहा। इससे चाची का चित्त अशांत हो उठा। मालती ने विपिन की ओर देखने के लिये जैसे दुबारा सिर उठाया, वैसे ही चाची की उग्र दृष्टि ने उसे सचेत कर दिया। चाची का यह तिरस्कार का भाव विपिन ने भी देख लिया।

मालती उस कमरे से बाहर जाने के लिये दूसरे दरवाज़े की ओर गई। वैसे ही विपिन भी "अब अम्मा के पास जाता हूँ" कहकर एकाएक अन्य द्वार की ओर चला गया।

उस भारी कमरे के दोनों सिरे के दोनों दरवाज़ों के पास पहुँचकर मालती और विपिन दोनों ने एक बार फिरकर देखा। फिर उनकी चार आँखें हुईं। मालती ने अपने विशाल नेत्रों को उठाकर ऐसी स्निग्ध, करुण और संकोच-सुंदर दृष्टि से देखा, जैसे आज उसने विपिन में अपने आश्रय, अपनी सांत्वना और अपने अनन्य बंधु को देख पाया है। इसके बाद मालती कमरे से बाहर निकलकर दरवाज़े पर भीड़ करके खड़ी औरतों के झुंड में चली गई।

एक बार चकित दृष्टि से देखकर विपिन ने भी देख लिया कि मालती की दृष्टि जैसे उसे एक भीरु आत्मीयता का परिचय जता गई। मालती के सब अंगों में जवानी का उच्छ्वसित आनंद झलक रहा है; पानी की धारा में चाँदनी की चमक के समान उसके सब अंगों में जैसे एक संभ्रम-सयत सजीवता जगमगा रही है। वह सजीवता, शीशे के आवरण के भीतर बिजली की रोशनी के समान, दम-दम-भर पर उसकी दृष्टि में, हँसी में, शरीर के हिलने-डुलने में बार-बार झलक उठती थी। लज्जा के आवरण से इस लावण्य-राशि को ढकने के लिये मालती ने बहुत कुछ चेष्टा की; पर वह व्यर्थ ही हुई।

विपिन मुग्ध होकर चाची के कमरे से लौटा। आम में चौंधियाई हुई नज़र के सामने जैसे सैकड़ों सूर्य नाचने लगते हैं, सारा ब्रह्मांड

जैसे चक्कर खाने लगता है, वैसे ही विपिन के भीतर-बाहर सर्वत्र मालती की छवि व्याप्त हो गई। विपिन ने जाते जाते फिर घूमकर देखा ; मगर मालती नहीं देख पड़ी।

अब तक विपिन के मुख पर प्रसन्नता छाई हुई थी, मगर दम-भर में ही प्रसन्नता की जगह एक तरह की चिंता और उदासी छा गई ; मालती के साथ किस तरह परिचय और बातचीत की जाय, यही चिंता पैदा हो गई। विपिन ने अपने मन में सोचा, उसके आत्मीय स्वजन इसी तरुणी पर अनेक अत्याचार कर रहे हैं ! इतने बड़े परिवार में आकर भी वह अकेली है—किसी को उससे सहानुभूति नहीं है ! विपिन का हृदय समवेदना से परिपूर्ण और व्याकुल हो उठा। उसे जान पड़ने लगा, इन सब पुराने ढंग के लोगों से उसकी भी नहीं पटेगी ; अपने परिवार में वह भी निःसंग और अकेला है ! अगर वह किसी तरह मालती के साथ अच्छी तरह बातचीत कर ले, हेल-मेल बढ़ा ले, तो मालती को भी एक साथी मिल जाय, और वह भी एक साथी पाकर संतुष्ट हो। इस परिचय में दोनों का स्वार्थ है। इस घर में टिकने के लिये उन दोनों के परिचय और हेल-मेल के होने की बड़ी आवश्यकता है।

विपिन ने मालती से बातचीत करने और हेल-मेल बढ़ाने के सैकड़ों उपाय सोच डाले ; मगर कोई उपाय उसे ठीक न जँचा। केवल यही ख्याल होने लगा कि सबसे अच्छा और सहज जो उपाय था, उसे नवकिशोर ने पहले ही चालाकी करके अपना लिया ! हाय-हाय ! उस दिन विपिन भी अगर नवकिशोर के साथ मालती के घर गया होता, तो मालती के साथ उसकी जान-पहचान तो हो ही जाती, साथ ही आज उसे इस तरह मालती के साथ बातचीत करने का उपाय निकालने के लिये हैरान भी न होना पड़ता ! क्यों उस समय उसकी ऐसी कुबुद्धि हुई कि आप

न जाकर नवकिशोर को मालती के घर भेज दिया ! सोचते-सोचते विपिन को जान पड़ने लगा कि नवकिशोर ने जैसे उसे चकमा देकर उससे पहले मालती के साथ जान-पहचान कर ली है। विपिन ने यद्यपि इस ख़याल को हृदय से दूर करने की बड़ी कोशिश की, तो भी उसका मन उसका कहा न मानकर नवकिशोर के इस सौभाग्य को ईर्षा की दृष्टि से देखने लगा।

भाव-प्रवण विपिन भाव के आवेग में इसी तरह अपने को व्याकुल और चिंतित बना रहा था। भाव-जाल को फैलाकर वह मालती को पकड़ने या क़ाबू में लाने के लिये जितना ही फंदा लगा रहा था, उतना ही वह ख़ुद उसमें उलझकर बाहर निकलने की राह नहीं ढूँढ़ पाता था। मालती के साथ बातचीत करने के लिये वह जितना ही अधिक व्यग्र होता जा रहा था, उतना ही उसे अपने सोचे हुए सब उपाय अत्यंत विसदृश और लज्जा-जनक प्रतीत हो रहे थे। कभी-कभी वह सोचता था कि अपने मंत्री नवकिशोर की शरण में जाने से शायद इस समस्या का समाधान सहज में ही हो जायगा। किंतु इसी काम में नवकिशोर को जो अनायास सफलता प्राप्त हो चुकी है, वह उसके इस कठिन प्रयास का उपहास करेगी, यही सोचकर उसका मन किसी तरह इस काम में नवकिशोर की सलाह लेने को राज़ी नहीं होता था।

विपिन जब चाची के घर से लौटकर आया, तब जैसे वह पहले का विपिन ही नहीं था। वह हँसता हुआ गया था; मगर लौटा मुँह लटकाए हुए ! यह देखकर अनेक लोग अनेक तरह की बातें कहने लगे। पुरवासिन ने समझा, ज़रूर छोटी बहू ने विपिन के आगे उनके नाम से लगाया-बुझाया है; एक-एक को सात-सात लगाकर विपिन की तबियत ख़राब कर दी है ! और सबने सोचा, ज़रूर इस डाइन लौंडिया मालती ने जादू-टोना कर दिया है !

उक्त धारणा के वशवर्ती होकर पुरखिन ने चाची-अम्मा को ख़ूब कड़ी-कड़ी बातें सुना दीं। कारण, उन्हें निश्चय हो गया था कि चाची ने विपिन से, उनके नाम से, झूठी-सच्ची बातें कहकर उसके कान भर दिए हैं! चाची-अम्मा ने रोते-रोते लाख यह सफ़ाई दी कि और चार आदमी वहाँ मौजूद थे, मैंने उससे कुछ नहीं कहा है; लेकिन पुरखिन के मन में संदेह बना ही रहा। उधर जया पांचू की मा वग़ैरह अंतःपुर की और औरतें उठते-बैठते मालती पर ताने कसने और उसे परेशान करने लगीं। मगर मालती चुपचाप सारे अत्याचार को टाल जाने लगी।

विपिन को घर आए तीन-चार दिन हो गए; मगर उस प्रथम दर्शन के बाद फिर मालती को उसने नहीं देख पाया। इससे उसका मन विरक्त हो गया। प्रथम साक्षात के बाद ही उसने सोचा था कि मदारी के माया-तरु की तरह उनके प्रणय का बीज घड़ी-भर में ही अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हो उठेगा; और उस पुष्प को लेकर एक चिर-किशोर देवता जो बाण तैयार करेगा, उसकी चोट से त्रस्त होकर मालती भी अब किसी-न-किसी बहाने से घूम-फिर-कर उसे दर्शन अवश्य देगी। किंतु विपिन ने देखा, उसका ख़याल ग़लत था; जहाँ विपिन होता है, वहाँ मालती फटकती ही नहीं। विपिन के बार-बार अकारण आने-जाने के समय वह राह में अचानक कहीं नहीं मिलती या देख पड़ती। बार-बार जल्दी-जल्दी चाची-अम्मा के कमरे की तरफ़ जाने में विपिन को ख़ुद ही लज्जा लगती है, इसी से उसे जान पड़ता है कि और लोग भी उसके छल या कौशल को समझ गए हैं। अब वह उधर भी कम जाता है—बिलकुल जाना ही नहीं। अगर कभी विशेष चेष्टा करके वह चाची के कमरे में जाता भी है, तो वहाँ उसे मालती नहीं देख पड़ती। वह उसकी आहट पाते ही वहाँ से खिसक जाती है। जो चाची-

अम्मा का कमरा उसका दिन-भर का आश्रय था, जहाँ वह पहले दिन-भर पड़ा रहता था, वहाँ भी अधिक समय तक ठहरना दुश्वार है। चाची-अम्मा के कमरे में जाते ही वह न-जाने कैसे विषाद और त्रास के भाव से व्यग्र होकर, उठकर, गंभीर भाव से कहने लगती हैं—'मेरे कमरे में तुम जल्दी-जल्दी न आया करो भैया, जीजी ख़फ़ा होकर मेरी गति बनाने लगेंगी।' इसके बाद उनके कमरे में ठहरना विपिन के लिये असंभव हो उठता था। अपनी स्नेहमयी चाची-अम्मा के इस निष्ठुर परिवर्तन का कारण अनुमान कर लेने पर भी वह मन-ही-मन चाची पर खीझकर उठ आता था।

सोलहवाँ परिच्छेद

मिलने की राह में बाधा पाकर हठी और भाव-प्रवण विपिन पागल और उच्छृंखल हो उठता; लेकिन मालती के अति सावधानी और दूरदर्शिता के व्यवहार ने उसे दबा या सँभाल रक्खा था। मालती जो अपना वश चलते-भर विपिन के सामने नहीं आती थी, और अचानक सामने पड़ जाने पर भी ख़ूब कुंठित-सभ्रम के साथ हट जाती थी, इससे विपिन कुछ निरुत्साह ही हो जाने लगा। धीरे-धीरे उसे होश आया कि मालती विधवा है। विधवा-विवाह के संबंध में विपिन का अपना मत चाहे कुछ हो क्यों न हो, एक विधवा के मतामत को जाने बिना उसके प्रति अनुराग दिखाना प्रकारांतर से उसका अपमान ही करना है। इसके सिवा मालती उसी के आश्रित है। ऐसी अवस्था में विपिन की ओर से यदि कुछ असंयत व्यवहार या ढिठाई हो, तो उससे मालती यह समझ सकती है कि विपिन मौक़ा पाकर उसे अपने फंदे में फँसाने की चेष्टा कर रहा है। मालती के स्वतंत्र होने पर

विपिन जितना निस्संकोच होकर उसके आगे अपनी अभिलाषा प्रकट कर सकता, मालती के अपनी मुट्ठी में होने के कारण वह उतना निस्संकोच होकर कुछ नहीं कह सकता। फिर, विपिन के परिवार के लोग मालती के साथ जैसा प्रतिकूल आचरण कर रहे हैं, उससे इस समय ज़रा भी विपिन के व्यवहार में व्यतिक्रम होते ही वह मालती के ऊपर अत्याचार के बढ़ने ही का कारण होगा। यही सोचकर विपिन बल-पूर्वक अपने मन का दमन करने लगा। अपने उद्दाम आवेग को रोकते-रोकते विपिन बेदम हो गया। वह अपने को निराश्रय, दुर्बल समझने लगा। परीक्षा देने की तैयारी में दिन रात पढ़ते-लिखते रहने के बाद एकदम बेकार होकर बैठना यों ही विपिन को अच्छा नहीं लगता था, उसके ऊपर इस नए ख़याल ने और भी परेशान कर डाला। अब वह अपने को किसी एक काम में लगा देने के लिये व्यग्र हो उठा।

विपिन को ख़याल आया, कलकत्ते से आते समय नवकिशोर के साथ उसने सलाह की थी कि वह अपने परिवार की सब औरतों को शिक्षा देने के लिये घर में एक पाठ-सभा स्थापित करेगा, और उसमें पहलेपहल वह ख़ुद कोई अच्छी पुस्तक पढ़कर सुनाया करेगा। एक दिन विपिन ने देखा, घर की सब औरतें उसकी मा के पास बेकार बैठी गप-शप लड़ा रही हैं। मौक़ा अच्छा देखकर उसने प्रस्ताव किया—"देखो अम्मा, मैंने सोचा है कि रोज़ दोपहर को आराम करने के समय कोई अच्छी पुस्तक पढ़कर तुम लोगों को सुनाया करूँ। दोपहर के समय तुम लोगों में से किसी को कोई काम नहीं रहता। केवल ताश-पच्चीसा वग़ैरह खेलकर समय नष्ट करती हो। उससे तो यह बहुत अच्छा होगा कि अच्छी पुस्तकों की चार अच्छी बातें तुम्हारे कान में पड़ें। क्यों अम्मा, तुम्हारी क्या राय है?"

इस प्रस्ताव में किसी का मन उत्साहित नहीं हुआ। विपिन की

मा ने भी पसंद नहीं किया। लेकिन लड़के का मन रखने के लिये कह दिया—"अच्छा तो है। कल से इस दालान में न पढ़ना; हम सब सुनेंगी।"

जया ने विपिन को खुश करने के लिये कहा—"हाँ; हम सब सुनेंगी। मगर अँगरेज़ी-वँगरेज़ी न पढ़ना भैया। अँगरेज़ी में सुनने लायक़ कुछ है भी नहीं। पाँचू पढ़ता है, मैं सुना करती हूँ; उसमें घोड़ा, गधा, बैल और घसियारे की कहानी ही है।"

इतना कहकर, पाँचू की मा की तरफ़ देखकर, जया हँसी; जैसे उसकी बात को समझ सकनेवाला अगर कोई है, तो बस पाँचू की मा ही। पाँचू की मा ने दो उँगलियों से घूँघट उठाकर, आँखें मटकाकर, जया की हँसी का साथ दिया। उसका भाव यही था कि तुमने कुछ झूठ नहीं कहा जया बुआ!"

क्षमा ने कहा—"ना, अँगरेज़ी-वँगरेज़ी की कहानी हमें अच्छी नहीं लगेगी। छबीली भटियारी, चहार-दरवेश, गुल-बकावली, नौटंकी वग़ैरह के क़िस्से अच्छे हैं!"

मोक्षदा ने बड़ी भारी समझदारी दिखाते हुए कहा—"ये सब कहानियाँ तो महाभारत की हैं।"

पुरखिन उत्साह के साथ बोल उठी—"हाँ-हाँ, विपिन, तू महाभारत पढ़ना। समय भी कटेगा, और धर्म भी होगा।"

विपिन ने हँसकर कहा—"अच्छा, महाभारत ही पढ़ूँगा। कल से ही शुरू कर दूँगा। लेकिन तुम सबको बैठकर सुनना पड़ेगा।"

जया ने कहा—"हाँ-हाँ, हम सब सुनेंगी भैया।"

विपिन के चले जाने पर एक-एक करके सभी औरतें पुरखिन के पास से उठकर एक और स्थान में जमा हुईं। पाँचू की मा बोली—"यह एक नया फ़साद खड़ा हुआ।"

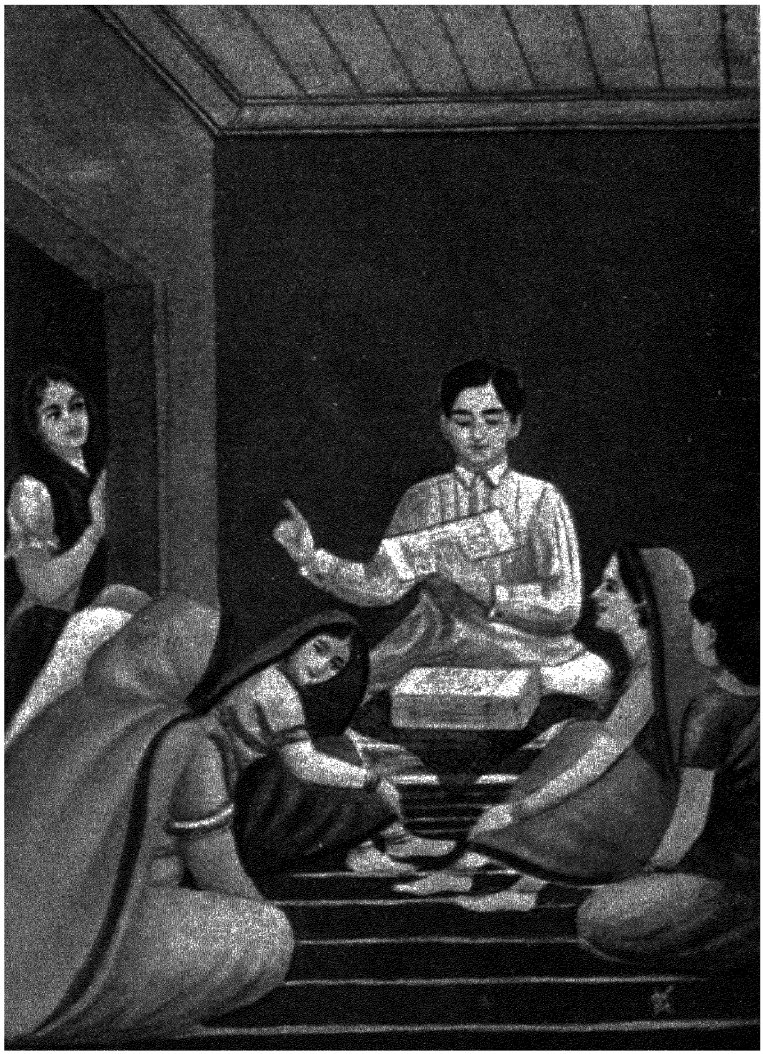
क्षमा ने कहा—"सच बहन, दोपहर को ज़रा लेट-पोटकर आराम

करने में भी बाधा लग गई ! ज़रा खेलकर जी बहलाना भी गया ! मुँह बंद करके बैठना पड़ेगा ? मुझे तो बहना, नींद आवेगी । विपिन दादा को यह अच्छी सूझी ।"

जया ने कहा—"अरे, इतना सोच क्या करती है ? विपिन की भी तबियत थिर नहीं रहती । दो दिन के बाद यह ख़याल भी जाता रहेगा ।"

दूसरे दिन दोपहर को बड़े दालान में फ़र्श बिछवाकर विपिन ने पाठ-सभा जोड़ी । विपिन का आसन सबसे अलग बिछा । विपिन महाभारत-भाषा लेकर आया । उसने एक बार सब श्रोताओं को देखा । सब दालान में फ़र्श पर मौजूद थे । केवल चाची कमरे से दालान में आने के दरवाज़े पर अलग ज़मीन पर बैठी थीं, और उनकी आड़ में, दरवाज़े के पीछे, और भी एक श्रोता बैठा हुआ मालूम पड़ता था । विपिन ने अनुमान से समझ लिया कि वह माजती है । विपिन एक रुकी हुई हलकी साँस लेकर पढ़ने लगा ।

पढ़ते-पढ़ते उसका मन उत्साहित हो उठा । वह महाभारत के भीतर की भौगोलिक स्थिति, इतिहास के इशारे, समाज-तत्त्व, चरित्रों की विशेषता आदि कह-कहकर समझाने लगा । वह महाभारत की घटनाओं के दृष्टांत देकर बताने लगा कि प्राचीन काल में भारत में जाति-भेद नहीं था, छुआछूत का विचार इतना नहीं था; विधवा का फिर ब्याह होता था; बाल-विवाह को कोई जानता ही नहीं था । ये सब प्रथाएँ बाद को किस तरह प्रचलित या निषिद्ध हुई हैं, और उनसे समाज का क्या अनिष्ट हुआ है, यह समझाते समय मुँह-चोर विपिन की अद्भुत वक्तृत्व-शक्ति देखकर सबको आश्चर्य होने लगा । विपिन पढ़ते-पढ़ते जब सिर उठाता था, तब उसे देख पड़ता था कि दो बड़ी-बड़ी आँखों की व्यग्र दृष्टि किवाड़ों से झाँक-झाँककर जैसे उसकी बातों को जी-भरकर पी रही है । जैसे विपिन से



वह महाभारत के भीतर की भौगोलिक स्थिति, इतिहास के इशारे, समाज-तत्व, चरित्रों की विशेषता आदि कह-कहकर समझाने लगा।

(पृष्ठ १७२)

मालती की चार आँखें होती थीं, वैसे ही उसकी उत्सुक दृष्टि नीची होकर हट जाती थी। सब सुननेवालियाँ काठ की पुतली की तरह बैठी हुई भाव-शून्य दृष्टि से विपिन का मुँह ताक रही थीं। कोई जँभाई ले रही थी, कोई अँगड़ाई तोड़ रही थी, कोई फुस-फुस करके लगातार बातें किए जाती थीं। किंतु दरवाज़े की आड़ में बैठी हुई मालती में उत्सुकता और आग्रह का होना उसकी दृष्टि से ही साफ़ मालूम हो रहा था।

विपिन ने "बस, आज यहीं तक" कहकर पढ़ना बंद कर दिया, और उठकर खड़ा हो गया। किसी के किसी उत्तर की राह देखे बिना ही, बग़ल में पोथी दबाकर, वह चलता बना। जाते समय और एक बार द्वार की आड़ में बैठी मालती की सलज्ज दृष्टि के साथ विपिन की प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि का मेल हो गया।

जया ने चुटकी बजाते-बजाते बड़े ज़ोर से जँभाई ली। क्षमा मोक्षदा को ढकेलकर ज़ोर से हँसती हुई उठकर कहने लगी—"अरे मोक्षदा, तू तो लुढ़क ही पड़ेगी नींद के मारे?" पाँचू की मा ने घूँघट खोलकर स्वस्ति की साँस ली। पुरखिन ने कहा—"आओ जी जया, ज़रा ताशों का खेल हो। रोहणी, ताश ले तो आ।"

चाची धीरे से उठकर चल दी। मालती का कहीं पता न था। वह पहले ही न-जाने कब उठकर चली गई थी।

सत्रहवाँ परिच्छेद

इधर विपिन ने अपने घर में औरतों की शिक्षा शुरू कराने के लिये पाठ-सभा खोल दी थी, तो उधर नवकिशोर भी ख़ाली नहीं बैठा था। उसने मथुरापुर में पिता की जो पाठशाला थी, उसे केंद्र बनाकर मंडलों में एक-एक पाठशाला खोल दी थी।

उसके पिता की पुरानी पाठशाला के विद्यार्थियों के अलावा, उसकी विद्या का नाम सुनकर, नए-नए लड़के भी आ-आकर भरती होने लगे। उनमें से कोई व्याकरण, कोई वेदांत, कोई न्याय और कोई स्मृति, इस तरह एक एक विषय पढ़ने के इरादे से सब आए थे। नवकिशोर ने उनसे कहा—"देखो, मेरी पाठशाला में केवल एक ही विषय की शिक्षा किसी को नहीं दी जायगी। मनुष्य का ज्ञान बहुमुख हुए बिना उसकी चिंता-शक्ति में जान नहीं आती—सारे जगत् के व्यापारों के साथ उसका योग नहीं होता। मेरी पाठशाला में संस्कृत और अपनी मातृभाषा पहले खूब अच्छी तरह पढ़कर उनकी प्रधान और अच्छी-अच्छी पुस्तकें धीरे-धीरे पढ़ डालनी पड़ेंगी। मातृभाषा में ही थोड़ा गणित, भूगोल, गौण रूप से जगत का और विशेष रूप से भारत का स्थूल इतिहास और विज्ञान के स्थूल-स्थूल तत्त्व पढ़ने के साथ ही कुछ अँगरेज़ी भी सीखनी पड़ेगी। उसके साथ प्रधान रूप से संस्कृत के साहित्य और व्याकरण का अनुशीलन करना होगा। इन सब विषयों को स्थूल रूप से सीख लेने पर विद्यार्थी अपनी इच्छा के अनुसार अँगरेज़ी या संस्कृत-भाषा के द्वारा किसी खास विषय में पारदर्शी पंडित होने की चेष्टा कर सकेगा। जो संस्कृत ज्योतिष पढ़ना चाहेगा, उसे एस्ट्रोनॉमी भी पढ़नी पड़ेगी; भारतीय षट्दर्शनों के साथ योरप की फ़िलॉसफ़ी भी देखनी होगी; संस्कृत-साहित्य के साथ-साथ योरप का एक से अधिक भाषाओं के साहित्य से परिचित होना भी आवश्यक समझा जायगा। जो विद्यार्थी इस क्रम से शिक्षा नहीं प्राप्त करेगा, उसे मेरी पाठशाला से कोई उपाधि नहीं मिलेगी।"

अभिराम नाम का एक विद्यार्थी विस्मय से आँख फाड़कर चोटी फटकारता हुआ कहने लगा—"जी, तब तो यह पाठशाला क्यों,

एकदम स्कूल हो जायगा। म्लेच्छों के ढंग से म्लेच्छों की भाषा ही अगर सीखनी है, तो हम पाठशाला में क्यों आवेंगे ?"

नवकिशोर ने गंभीर भाव से कहा—"मेरी पाठशाला तो ऐसा ही होगी; म्लेच्छों का ही ढंग रहेगा। जो छात्र शिक्षा और ज्ञान में भी जाति-भेद का विचार करते हैं, उनके लिये मेरी यह पाठशाला नहीं है। वे खुशी से जाकर निवारण पंडित की पाठशाला में पढ़ सकते हैं।"

यह सुनकर सभी विद्यार्थी चुप रहे। किसी ने कुछ प्रतिवाद नहीं किया। नवकिशोर कहने लगा—"शिक्षा समाप्त कर चुकने पर हरएक विद्यार्थी से मैं गुरु-दक्षिणा लूँगा, और भरती होने के पहले हरएक विद्यार्थी को एक कागज़ पर गुरु दक्षिणा देना अंगीकार करके दस्तख़त कर देने पड़ेंगे।"

अभिराम ने भय-विस्फारित दृष्टि से नवकिशोर की ओर देखकर कहा—"जी, यह तो बहुत कड़ा नियम है! आप जो गुरु-दक्षिणा चाहें, वह अगर हमारी ताक़त के बाहर हो, तब तो प्रतिज्ञा-भंग का पाप करने के कारण हमें नरक में जाना पड़ेगा ही, किंतु आप चाहें, तो वादे-खिलाफ़ी की नालिश करके हम लोगों को जेल में भी सड़ा सकते हैं।"

नवकिशोर ज़ोर से हँस पड़ा, और बोला—"डरो नहीं अभिराम, मैं वेद-व्यास की तरह शुभशुक्ला रानी के कानों के कुंडल नहीं माँगूगा, और उनके लिये तुम्हें उतंक ऋषि की तरह नाग-लोक तक नहीं दौड़ना पड़ेगा; अथवा वरतंतु के शिष्य कौत्स की तरह राजा रघु का शरण में भी नहीं जाना पड़ेगा। मेरी गुरु-दक्षिणा बहुत ही साधारण होगी। जो विद्यार्थी मेरी पाठशाला से 'उपाधि' लेकर निकलेंगे, उन्हें कम-से-कम मेरी किसी ग्राम्य-पाठशाला में पढ़ाना पड़ेगा। इस समय भी वे छात्रावस्था की तरह सिर्फ़ ख़ूराक और कपड़े पावेंगे। और, एक बात कहे रखता हूँ। अपनी पाठशाला में

मैं ब्याहे हुए विद्यार्थियों को नहीं लूँगा, और जब तक पाठशाला से संबंध रहेगा, तब तक किसी को ब्याह करने का अधिकार भी न होगा। कारण, शिक्षा समाप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना ही हमारे देश का सनातन नियम है।"

इसी समय रहीम किसान अपने लड़के अहमदअली को लेकर वहाँ आया। वह पाठशाला की दालान के नीचे, सलाम करके, खड़ा हो गया। रहीम ज़मींदार हरिविहारी बाबू के इलाक़े में बसता है, और एक धना, प्रतिष्ठित प्रजा है।

नवकिशोर उसे देखते ही चटपट उठ खड़ा हुआ, और प्रति-नमस्कार करके कहने लगा—"रहीम काका, आओ-आओ। साथ में क्या तुम्हारा लड़का अहमदअली है? इसे मैंने छुटपन में देखा था; अब बड़ा हुआ है, इसी से मैं पहचान नहीं सका था। आओ-आओ, दालान के ऊपर आओ।"

अभिराम ने आपत्ति के स्वर में कहा—"ऐं! ऊपर कैसे आवेंगे?"

नवकिशोर ने उसकी ओर फिरकर भौंहें टेढ़ी करके कहा—"क्यों? क्या आपत्ति है?"

अभिराम ने चुटैया फटकारकर कहा—'मुसलमान वग़ैरह के आने-जाने से पाठशाला अपवित्र न होगी!"

नवकिशोर ज़ोर से हँसकर कहने लगा—"हाँ; यह तो है। लेकिन रहीम काका को भी आपत्ति हो सकती है कि तुम-जैसे काफ़िरों के पास कैसे बैठे? तुम्हारे ही शास्त्र में तो लिखा है कि 'रुचियों की विचित्रता के कारण टेढ़ी-सीधी राहों में चलनेवाले सभी मनुष्यों के पहुँचने की जगह वही एक ईश्वर है; जैसे सभी नदियाँ समुद्र ही में जाकर मिलती हैं' से। तुम्हारे शास्त्रों का तो उपदेश है कि

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव। (शिव-महिम्न स्तोत्र)

'सर्वदेवमयोऽतिथिः', 'सर्वत्राभ्यागतो गुरुः !' * । तुम लोग शास्त्र की आज्ञाओं में से, सुविधा और इच्छा के अनुसार, कुछ मानते हो, और कुछ नहीं मानते ? अर्थात् अपनी ही प्रवृत्ति की अधीनता में चलते हो; शास्त्र तो सिर्फ़ आड़-भर है ! अगर तुम्हें अपने शास्त्र की इस आज्ञा पर आस्था नहीं है, तो तुम उठकर चले जा सकते हो ।—आओ रहीम काका, नीचे क्यों खड़े हो ?"

रहीम ने कुंठित होकर कहा—"रहने दो भैया, मैं यहीं अच्छा खड़ा हूँ ।"

नवकिशोर ख़ुद नीचे जाकर दोनो बाप-बेटों के हाथ पकड़कर ऊपर ले आया, और एक तरह से ज़बरदस्ती ही उन्हें फ़र्श पर बिठा दिया ।

अभिराम वग़ैरह विद्यार्थी विरक्त और संकुचित होकर अलग खिसक बैठे; लेकिन कोई उठ नहीं गया ।

नवकिशोर ने उनकी ओर ध्यान न देकर कहा—"हाँ रहीम काका, कैसे आना हुआ ? सब कुशल तो है ?"

रहीम—"अल्लाताला की दुआ से सब ख़ैर-आफ़ियत है भैया । अब की इतवार को अहमद की शादी होगी । उसी की इत्तिला करने आया था ।"

नवकिशोर—"काका बाबू (हरिविहारी) से मुलाक़ात हुई थी ?"

रहीम—"मुलाक़ात हुई थी । उसी वक़्त छोटे राजा (विपिन) कलकत्ते से आए थे; उन्होंने मेरे ग़रीबख़ाने में तशरीफ़ लाना मंज़ूर कर लिया है । अब तुम भी भैया, अगर ज़रा तकलीफ़ उठाना मंज़ूर कर लो, तो मुझे बड़ी ख़ुशी हो । रात को नाच-गाना होगा—मुर्शिदाबाद से बहुत बढ़िया गाने-नाचनेवाली बाईजी आवेंगी ।"

---

* अतिथि सर्व-देवमय है । अभ्यागत सर्वत्र गुरु-तुल्य माननीय है ।

नवकिशोर कह उठा—"माफ़ करना रहीम काका ! मैं ज़रूर आता; लेकिन अब नहीं आ सकूँगा। रंडी के नाच में मैं तो जाऊँगा ही नहीं, विपिन को भी नहीं जाने दूँगा।"

रहीम ने विस्मित होकर कहा—"क्यों भैया, उसमें क्या कुछ हर्ज है ?"

नवकिशोर कह उठा—"दोष नहीं है ? बहुत कुछ दोष है ! वे ख़राब चलन की औरतें हैं। किसी भले आदमी को उनके साथ किसी तरह का सबंध नहीं रखना चाहिए।"

अहमद ने विनीत दृष्टि से नवकिशोर की ओर देखकर कहा—"मैं कुछ अर्ज़ करूँगा।"

नवकिशोर—"कहो।"

अहमद ने सिर झुकाकर धीरे स्वर से कहा—"आपके घर में एक आलमारी या टेबिल बनवाने की ज़रूरत पड़ने पर आप एक ऐसे बढ़ई को बुलावेंगे, जो अच्छा कारीगर और होशियारी से काम करने-वाला होगा। उसका चाल-चलन कैसा भी हो, उसकी खोज करना ज़रूरी नहीं समझिएगा; क्योंकि इस तरह चाल-चलन की जाँच करने से काम नहीं चल सकता। जिस जुलाहे ने हमारे कपड़े बुने हैं, जिस मोची ने हमारा जूते का जोड़ा बनाया है, उनका चाल-चलन कैसा है, यह हम नहीं देखते। हम यही देखते हैं कि उनकी बनाई हुई चीज़ कैसी है। रंडी कैसा गाती और नाचती है, यही देखना मुनासिब है। अगर कोई असमतदार औरत गाना नहीं जानती, तो ऐसे मौक़े पर उसकी कुछ क़ीमत नहीं है, जहाँ दिल-बहलाव के लिये गाने-बजाने की ज़रूरत है। रवींद्र बाबू के एक लेख में मैंने पढ़ा था, उन्होंने टट्टा करके पूछा था कि शराबी इंजीनियर ने हड्डे का पुल बनाया था, यह सोचकर क्या हम हड्डे के पुल पर चलना छोड़ देंगे ?"

नवकिशोर का मुख-मंडल संतोष के भाव से उज्ज्वल हो उठा। उसने प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि से दम-भर अहमदअली के मुँह की ओर ताककर कहा—"तुम ठीक कहते हो। इस बात के इस पहलू को मैंने इस तरह सोचकर नहीं देखा था। मगर तुम और एक पहलू से इस पर विचार करके देखो। ये सब वेश्याएँ, जो कलकत्ते, मुर्शिदाबाद वग़ैरह में यह पेशा उठाए हुई हैं, ज़मीन फोड़कर नहीं निकली हैं। वे सब हमारे-तुम्हारे लोगों के ही परिवार का सिर नीचा कर घर से निकली हैं, और कुल-त्याग करके इस पेशे को करने लगी हैं। उनके नाच-गाने के पीछे कितने ही परिवारों की लज्जा और आँसुओं का इतिहास जमा है। इसी कारण उनके नाच-गाने से मन बहलाने को भी मैं निष्ठुर, बर्बर का काम समझता हूँ।"

अहमद ने फिर सिर उठाकर, नवकिशोर की ओर ताककर, विनीत भाव से कहा—"नाचना-गाना तो औरतों ही का काम है। हमारे समाज के रिवाज के दोष से शरीफ़ों की औरतें वह आनंद दे नहीं सकतीं। जिन्होंने समाज के आनंद के लिये ही यह पेशा क़बूल किया है, उनकी समाज ही निंदा करता है, और ख़ुद भी लज्जा और दुःख पाता है।"

नवकिशोर ने आनंद से उत्साहित होकर कहा—"तुमने ठीक कहा। समाज की उस भ्रांत व्यवस्था को बदलने के लिये भी हमें इस तरह के आनंद-भोग से अलग रहना पड़ेगा। मान लो, यह हमारी सामाजिक व्यवस्था का प्रतिवाद है, तो भी हमें इस मामले में शामिल होना उचित नहीं है।"

अहमद चुप हो गया। रहीम ने कहा—"अच्छा भैया, तुम लोग शाम को होकर चले आना। तुम्हारे हो आने से ही मैं ख़ुश हो जाऊँगा।"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"अच्छा, आऊँगा।"

रहीम ने अपने लड़के से कहा—"दे दे, भैया को भी न्योते का एक रुक्का दे।"

अहमद ने एक गुलाबी काग़ज़ पर सुनहले अक्षरों में छपा हुआ निमंत्रण-पत्र निकालकर नवकिशोर के हाथ में दिया। नवकिशोर उसे पढ़कर ख़ूब हँसा। नवकिशोर ने कहा—"रहीम काका, यह तुमने क्या किया? यह तो न बँगला है, न फ़ारसी! जब तुम्हें अपने बंगाली भाइयों को ही न्योता देना है, अरब के मुग़ल लोगों को नहीं, तब यह बँगला और फ़ारसी की बेढंगी खिचड़ी पकाने से क्या लाभ?"

रहीम ने कुछ लज्जित होकर कहा—"हम लोगों में ऐसा ही रिवाज है भैया। फ़ारसी अल्फ़ाज न रहें, तो बड़ी हँसी और निंदा हो।"

नवकिशोर ने ज़ोर से हँसकर कहा—"यह तुम्हारे यहाँ की अद्भुत रीति है! समझें, चाहे न समझें, फ़ारसी अवश्य चाहिए! यह रोग केवल तुम्हीं लोगों में नहीं, हम लोगों में भी है। हम लोग भी श्लोक बनवाकर निमंत्रण-पत्र में लिखते हैं। अच्छा, हम शाम को आवेंगे।"

रहीम ने उठते-उठते कहा—"भैया, मैंने सुना है, तुम पाठशाला खोल रहे हो। अगर अहमद को कोई काम दो—"

नवकिशोर बीच ही में बोल उठा—"सो अच्छा तो है। तुम्हारे शीतलपुर में, नवीनगर में पाठशालाएँ खुलेंगी। वहाँ घर में रहकर ही अहमद काम कर सकेगा।—अहमद, तुमने कहाँ तक पढ़ा था? एफ़० ए० तक पढ़ा था न?"

अहमद—"जी हाँ, इम्तिहान देने के पहले मैं बहुत बीमार हो गया था, इसी से इम्तिहान नहीं दे सका।"

नवकिशोर—"तुमने अँगरेज़ी के साथ संस्कृत पढ़ी थी, या फ़ारसी?"

रहीम—"साथ में तो संस्कृत पढ़ी थी, लेकिन घर में थोड़ी फ़ारसी भी पढ़ी है!"

नवकिशोर—"सो अच्छी बात है। तुम अगर काम करने को राज़ी हो, तो तीन-चार महीने मेरे पास आकर तुम्हें यह सीखना पड़ेगा कि किस तरह पाठशाला का काम चलाना होगा।"

रहीम ने कहा—"शादी हो जाने के बाद ही इसे भेज दूँगा भैया। तुम इसके रहने का कहीं बंदोबस्त कर देना। यह अपने हाथ से खाना पका सकता है।"

नवकिशोर—"क्यों? इसकी क्या चिंता है? अहमद हमारे इसी घर में रहेगा। हम लोगों के यहाँ का पका भोजन क्या तुम लोग नहीं करते?"

रहीम ने कहा—"रोटी-दाल खाने का तो रिवाज नहीं है।"

नवकिशोर ने ज़ोर से हँसकर, अपने छात्रों की तरफ़ फिरकर कहा—"सुनते हो जी अभिराम, तुम लोग जैसे घृणा के साथ म्लेच्छ कहकर इन लोगों के हाथ का बनाया—छुआ भोजन नहीं करते, वैसे ही ये लोग भी घृणा करके काफ़िरों के हाथ का अन्न नहीं खाते! यह न समझो कि तुम लोग ही ऊँचे पर बैठकर, नाक सिकोड़कर सबको अपने से दूर रक्खे हुए हो; देश-विदेश के सब लोग तुम्हें भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं, और उन्होंने भी तुम्हें पैरों से ठेलकर दूर रक्खा है। अच्छा रहीम काका, अहमद एक वक्त अपने हाथ से रोटी बनाकर खायगा, और एक वक्त हमारे यहाँ की पूरी-तरकारी खायगा। तब तो ठीक होगा? मगर हाँ, यहाँ मांस-वांस का सुबीता न होगा।"

अहमद ने कहा—"मैं कभी गोश्त हाथ से नहीं छूता।"

नवकिशोर ने कहा—"तब तो कुछ झंझट ही नहीं है। मैं सब ठीक कर दूँगा।"

रहीम ने कहा—"तुम्हारी बहुत बहुत मेहरबानी है भैया! अच्छा, तो मैं अब चलता हूँ।"

नवकिशोर ने कहा—"नहीं, अभी ज़रा ठहर जाओ काका, कुछ जल-पान कर लो, तब जाना।"

इतना कहकर नवकिशोर चटपट घर के भीतर गया, और अपनी मा से बोला—"मा, रहीम और उसका बेटा अहमद, दोनो आए हैं; उनके जल-पान करने के लिये कुछ दो।"

नवकिशोर की मा पत्ते के दो दोने में थोड़ी मिठाई निकालकर रखने लगीं।

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"मा, गोबरा अगर आता, तो उसे काहे में जल-पान का सामान देतीं?"

गोवर्द्धन मुखर्जी निवारणचंद्र मुखर्जी का बेटा था। वह एक प्रसिद्ध कुचरित्र और कुकर्मी था।

नवकिशोर की मा ने पुत्र की बात का इशारा समझकर, हँसकर कहा—"हज़ार हो, वह ब्राह्मण का लड़का है, और ये मुसलमान हैं!"

नवकिशोर—"मा, अगर निवारण ब्राह्मण है, तो फिर ये लोग भी क्यों न ब्राह्मण समझे जायँ?"

नवकिशोर की मा ने कहा—"वे लोग सब भक्ष्य-अभक्ष्य खाते-पीते हैं—"

नवकिशोर—"तुमने तो सुना है, लोग कहते हैं कि जवानी में, कमसरियट की नौकरी करते समय, निवारण गोरों की जूठन तक खा लेता था! और ये कोई भी मांस नहीं खाते! अब बताओ, इनमें कौन ब्राह्मण है, और कौन मुसल[illegible]? दो भले आदमी तुम्हारे घर अतिथि होकर आए हैं; तुम अगर जाति का विचार करके उन्हें पत्ते में खाने को दोगी, तो इससे क्या उनका अपमान न होगा?"

इसी समय नवकिशोर के पिता वहाँ आकर खड़े हो गए। उन्होंने कहा—"ना भैया, हमारे देश में राजा तक को पत्ते की पत्तल में भोजन दिया जाता है। कंबल का आसन राजा और फ़क़ीर, दोनो को दिया जाता है।"

नवकिशोर ने कहा—"यह आपका कहना ठीक है। देश के दस आदमियों को एक साथ पत्तल में खाने को दिया जाय, और कंबल का आसन बिछाया जाय, तो कोई हर्ज नहीं है। परंतु अकेले इन्ही दो आदमियों को अगर मैं इस तरह दोने में खाने को मिठाई दूँगा, तो क्या इन्हें यह ख़याल न होगा कि हम इन्हे हीन जाति समझते है?"

नवकिशोर की मा ने हँसकर कहा—"ले रहने दे, बहस बंद कर। तुम आजकल के लड़के मनमानी ही करोगे, पुराने ज़माने की चाल तो मानोगे ही नहीं। रकाबी में ही मिठाई देती हूँ, ले जा। ये दोनो रकाबियाँ अलग, तेरी अतिथि-सेवा के ही लिये, रक्खी रहेंगी। ले, ले जा।"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"अच्छा, अभी ऐसा ही होगा। बाद को देखोगी, धीरे-धीरे रकाबियाँ और सब बरतनों में मिल जायँगी।"

नवकिशोर मिठाई लेकर अतिथियों की अभ्यर्थना करने गया।

नवकिशोर ने मुसलमानों को कंबल पर बिठाकर थाली में मिठाई और गिलास में पीने को पानी दिया। यह देखकर पाठशाला के विद्यार्थियों के होश उड़ गए! ऐसा अनाचार तो उन्होंने कभी देखा-सुना ही नही।"

रहीम और अहमद को भोजन कराते-कराते नवकिशोर ने कहा—"अहमद, तुम तो अपने को बंगाली ही मानते हो न?"

अहमद—"जी हाँ, बंगाली नहीं, तो और क्या हैं?"

नवकिशोर—"तो फिर इस तरह पाजामा, चपकन और टोपी

पहनकर तुमने अपने को बंगालियों से अलग क्यों कर रक्खा है ? इस पोशाक से सारे मुसलमान-समाज के साथ तुम्हारा मेल हो सकता है, लेकिन जिस देश में तुम बसते हो, उस देश के रहनेवालों से अलगाव ही होता है। तुम धर्म-संप्रदाय के चिह्न से नेशन के दो टुकड़े करना क्या मुनासिब समझते हो ? हम सब पहले भारतीय हैं; हिंदू, मुसलमान, ईसाई या पारसी पीछे।"

अहमद—"आप लोगों में भी तो अलगाव के चिह्नों की कमी नहीं है ? मारवाड़ी पगड़ी बाँधते हैं, पंजाबी साफ़ा बाँधते हैं, बंगाली नंगे सिर रहते हैं। फिर बंगालियों में ही वैष्णव रामनामी दुपट्टा ओढ़ते हैं, और शैव लोग शिव के नाम का छपा हुआ दुपट्टा। कोई भस्म लगाता है, कोई सफ़ेद और कोई लाल चंदन। कोई रुद्राक्ष की माला पहनता है, कोई तुलसी की। ये बातें अगर एक नेशन बनने में बाधा नहीं डालतीं, तो फिर हमारी जुदी पोशाक में ही क्या हर्ज है ?"

नवकिशोर—"केवल पोशाक ही तो तुम दूसरी तरह की नहीं पहनते ? तुम लोगों का चाल-चलन, आचार-विचार, बातचीत, सभी बातें देशवासी भाइयों से जुदी हैं। यहाँ तक कि तुम्हारे नाम तक बंगालियों के-जैसे नहीं हैं।"

अहमद—"सो ठीक है; लेकिन आप लोग जैसे अपने देवी-देवतों के नाम पर नाम रखना पसंद करते हैं, वैसे ही हम लोग भी। आप लोग हरिचरण, कालीमोहन, रामलोचन वग़ैरह नाम रखते हैं; और हम लोग ग़ुलाममोहम्मद, अब्दुलरसूल, अब्दुर्रहमान वग़ैरह। हमारा धर्म-शास्त्र अरबी में लिखा है, इसीलिये अरबी-शब्दों का इस्तेमाल किए बिना हम लोगों का काम नहीं चलता।"

नवकिशोर ने संतुष्ट होकर कहा—"अच्छी बात है। तुम मेरे मन

के माफ़िक़ मास्टर हो सकोगे। तुम्हारे साथ मेरी ख़ूब पटेगी।"

अहमद ने सलाम करके कहा—"यह सब आपकी कृपा है।"

दोनो के चले जाने पर नवकिशोर ने नौकर को बुलाकर उससे कहा—"मुरली, यह थाली और गिलास उठा ले जा।"

मुरली ने कहा—"बाबूजी, मैं मुसलमान का जूठन नहीं छू सकता। मुझे बिरादरी छोड़ देगी; हुक्का-पानी बंद हो जायगा।"

नवकिशोर हँसकर ख़ुद थाली-गिलास उठाकर माँजने ले गया।

नवकिशोर के विद्यार्थी परस्पर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। उसके बाद एक-एक करके धीरे-धीरे सब उठ गए।

अठारहवाँ परिच्छेद

अभिराम वग़ैरह नवकिशोर की पाठशाला के सब विद्यार्थी मर्माहत होकर निवारण मुखर्जी की शरण में गए। निवारण उन लोगों के मुँह से नवकिशोर के अनाचार का समाचार सुनकर मन-ही-मन बहुत ख़ुश हुआ। वह कड़वी तमाखू में कस-कसकर दो-चार दम मारकर ज़ोर से खाँसते-खाँसते सिर हिलाने लगा। कुछ देर बाद खाँसी के वेग को सँभालकर, दोनो आँखों में क्रूर हँसी की ज्वाला झलकाकर, गले से एक साथ ही भारी और हलकी दो तरह की आवाज़ निकालकर, निवारण कहने लगा—"यह तो मैं पहले ही से जानता था कि किशोर छोकरा एक दिन ऐसे कुकर्म करेगा। तुम लोगों ने हरिविहारी बाबू को क्या यह ख़बर दी है?"

लड़कों ने कहा—"जी नहीं। पहले आपकी सलाह लिए बिना तो हम लोग कुछ कर नहीं सकते। इसी से दौड़े हुए पहले आप ही के पास आए हैं।"

निवारण ने परम संतुष्ट होकर कहा—"तुम लोगों ने बहुत ही

ठीक किया। मेरी इतनी अवस्था हुई, बाल पक गए, मगर मैंने कभी शास्त्र के विरुद्ध कोई काम भूलकर भी नहीं किया। मैं जैसे ख़ुद शास्त्र को मानता हूँ, वैसे ही और लोगों से भी मनवाता हूँ। इसी से लोग नाराज़ होकर मुझे झूठ-मूठ बदनाम करते हैं। ख़ैर, उन लोगों की लगाई तोहमत से मैं नहीं डरता। मैं केवल ईश्वर को, धर्म को और शास्त्र को डरता हूँ—लोकापवाद की मुझे रत्ती-भर भी पर्वा नहीं है। चलो, अब ज़रा पहले हरिविहारी बाबू से मिल आना चाहिए। मैं जो करूँगा, वही होगा; तो भी वह ज़मींदार हैं, उन्हें इत्तिला देकर काम करना अच्छा है।"

अभिराम ने पूछा—"क्या व्यवस्था कीजिएगा?"

निवारण ने गर्व के साथ कहा—"और क्या करूँगा, किशोर छोकरे का मूड़ मुड़वाकर उससे प्रायश्चित्त करवाऊँगा; और अगर वह ऐसा करने को राज़ी न होगा, तो उसे समाज से निकालकर अलग कर दूँगा। इसके लिये और तीसरी राह है ही नहीं। शास्त्र का इस बारे में कड़ा विधान है। अपने सगे बेटे से भी कोई इस बारे में कुछ रियायत नहीं कर सकता!"

निवारण ने एक सुदामा के ज़माने की फटी, मैली चादर ओढ़कर, खड़ाऊँ उतारकर, फटी-पुरानी स्लीपरें पहन लीं। स्लीपर का जोड़ा सूखकर लकड़ी हो गया था; उसका चमड़ा भी फूट की तरह विटक गया था। आगे-आगे निवारण और पीछे-पीछे सब विद्यार्थी हरिविहारी बाबू की बैठक में पहुँचे।

हरिविहारी बाबू अपने पेट ही के समान फूली हुई तकिया के सहारे बैठे, मुँह में नल लगाए, आँखें मूँदे बढ़िया तमाखू का स्वाद ले रहे थे। सुगंधित धुआँ ढेर-का ढेर उनके मुँह से निकल रहा था। वृद्ध दीवानजी पास ही बैठे ज़मींदारी के बही-खाते और दलील-दस्तावेज़ों का ढेर लगाए, ज़रूरी दस्तख़त कराने के

काग़ज़ात निकाल-निकालकर रख रहे थे। निवारण की स्लीपरों का शब्द सुनकर, ज़रा आँखें फाड़कर हरिविहारी ने देखा। उसके बाद कहा—"काका, आओ-आओ। कैसे आना हुआ? आज इतने चेले-चापड़ क्यों साथ हैं?"

निवारण बहुत ही हताश भाव से फ़र्श पर बैठकर कातर स्वर से कहने लगा—"अरे भाई, तुम समाज के सिर-धरा और कर्ता-धर्ता होकर भी कुछ देखते-सुनते नहीं कि कहाँ कौन क्या कर रहा है! ख़ैर, न देखो-सुनो, लेकिन ख़बर मिलने पर तो समाज के धर्म की रक्षा का प्रबंध करो। तुम्हीं न रक्षा करोगे, तो समाज, धर्म और देश रसातल को चला जायगा!"

हरिविहारी ने उत्सुक होकर पूछा—"क्यों? क्या हुआ? मामला क्या है?"

निवारण ने कहा—"ये सब भले आदमियों के लड़के दूर-दूर के गाँवों से पढ़ने के लिये आते हैं। इन्होंने किशोर छोकरे को एक दिग्गज पंडित समझ लिया था। अब जो इन्होंने उसका चाल-चलन देखा, तो रोते हुए मेरे पास दौड़े आए हैं। तुम्हारे सिवा और किससे जाकर फ़र्याद की जाय, तुम्हीं बताओ?"

हरिविहारी ने कहा—"किशोर? उसने क्या किया?"

निवारण ने कहा—"कहने से तुम्हें विश्वास न होगा भैयाजी, उसने पाठशाला के घर में मुसलमानों को बिठाकर खिलाया, और इन्हें दिखा-दिखाकर आप उनकी जूठन खाई—"

अभिराम ने बीच में रोककर कहा—"नहीं, जूठन नहीं—"

निवारण ने आँखें बदलकर कहा—"अरे, तुम चुप रहो। तुम सब ठीक तौर से समझाकर नहीं कह सकोगे। मुझे कहने दो।"

हरिविहारी हुक्के का नल हटाकर सीधे होकर बैठे, और बोले—"तुम क्या कह रहे थे?"

अभिराम ने कहा—"हम लोगों ने जूठन खाते नहीं देखा। हाँ, उन्होंने मुसलमान को बिछौने पर बिठाकर अपने बरतन में खाने को दिया, और उनके जूठे बरतन उठाकर माँजे। इतना हमने ज़रूर देखा है। यहीं देखकर हम चले आए—"

निवारण चटपट कह उठा—"अरे लो, वही सही। इसी को जूठन खा लेना कहते हैं। थाली-गिलास तो फेंक नहीं देगा। उन्हीं बरतनों में फिर सब घर खायगा कि नहीं? बल्कि शायद ठाकुर-देवता, ब्राह्मण आदि सबको खिलावेगा! फिर मुसलमान की जूठन तो हाथ से छुई! राम-राम!"

हरिविहारी ने कहा—"यह तो किशोर ने बड़ा अन्याय किया! अच्छा, मैं अभी किशोर को बुलाकर धमका दूँगा। मुसलमान के जूठे थाली-गिलास फेंक देने से सब ठीक हो जायगा।"

निवारण ने गर्दन हिलाकर कहा—"नहीं भैया, इससे उसकी हिम्मत और भी बढ़ जायगी। ऐसा अनाचार करनेवाले को पूरा दंड मिलना चाहिए।"

हरिविहारी ने कहा—"तो तुम क्या करने को कहते हो?"

निवारण ने कहा—"उन्हें समाज से अलग कर देना चाहिए। अगर ऐसा न करोगे, तो हम इस गाँव से उठ जायँगे! म्लेच्छों के साथ खानेवाले, अथवा उनकी जूठन धोनेवाले आदमी से संबंध रखकर हम भी क्या नरक में अपने पुरखों को गिरावेंगे? हम अपने पुरखों का घर छोड़ देंगे, मगर धर्म नहीं छोड़ सकेंगे!"

निवारण को चूड़ांत निष्पत्ति (फ़ैसला) करते देखकर झंझट-बखेड़े से अलग रहनेवाले हरिविहारी बाबू हताश भाव से तकिए पर ढुलक पड़े, और बोले—"तो फिर तुम जो मुनासिब समझो, सो करो।"

हरिविहारी को सहज ही इस मामले से तटस्थ होते देखकर निवारण उत्फुल्ल हो उठा। हरिविहारी ने तो सहज ही कंधे पर से

जुआँ रख दिया, मगर दीवानजी ने कहा—"एक बार स्मृतिरत्नजी को बुलाकर उनसे यह बात कह देना उचित जान पड़ता है। अगर किशोर प्रायश्चित्त कर डाले, तो सब सहज ही में ठीक हो जायगा।"

निवारण ने डरकर कि कहीं किशोर पर चलाया गया उसका अस्त्र इस तरह व्यर्थ न हो जाय, ज़ोर से सिर हिलाकर कहा—"हाँ! रहने दीजिए अपना प्रायश्चित्त! जो जान-बूझकर इच्छा-पूर्वक पाप करता है, उसका प्रायश्चित्त कैसा!"

अभिराम ने कहा—"और वह प्रायश्चित्त करने को राज़ी भी नहीं होंगे। कहेंगे, प्रायश्चित्त मन के भीतर होता है; वह बाहर का अनुष्ठान नहीं है। हम सब अनाचार को वह अन्याय स्वीकार ही नहीं करेंगे! इस बारे में हम उनके साथ बहस कर चुके हैं—"

दीवानजी ने कहा—"अच्छा, अगर किशोर न प्रायश्चित्त करेगा, तो स्मृतिरत्नजी अपने पुत्र को त्याग देंगे। दोष तो किशोर ने किया है, स्मृतिरत्नजी का क्या अपराध है, जो वह समाज के बाहर किए जायँगे?"

हरिविहारी आश्वस्त हो उठ बैठे, और बोले—"ठीक कहा दीवानजी। तुममें से कोई जाकर स्मृतिरत्नजी को बुला लावे।"

निवारण का उत्साह एकदम जाता रहा! स्मृतिरत्न और नवकिशोर पर उसे बहुत दिन से बड़ा क्रोध था। ये दोनों बाप-बेटे निवारण के पुत्र गोवर्द्धन को ब्राह्मण ही नहीं मानते; ब्राह्मण-भोजन कहीं होता है, तो उसे निमंत्रण ही नहीं देने देते, और ख़ुद भी उस घर में पैर नहीं रखते, जहाँ गोवर्द्धन रहता है। निवारण की यही धारणा है कि वे प्रकारांतर से उन दोनों बाप-बेटों को समाज च्युत करने की चेष्टा में हैं। इस समय उनसे उस शत्रुता का बदला लेने का अच्छा मौक़ा हाथ लगा है। उन्हें समाज-च्युत कर सकने से ही निवारण के मन का क्षोभ मिट सकता है! कहाँ से बूढ़े दीवानजी ने बीच में फाँद-

कर सब बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया! वह ऐसी पक्की चाल व्यर्थ किए देता है, यह देखकर निवारण बहुत ही क्षोभ और उत्कंठा के साथ हरिविहारी से बोला—'अच्छी बात है, भट्टाचार्य को बुलाना चाहते हो, तो बुलाओ। मगर उन्हें सहज में छोड़ देने से काम नहीं चलेगा। और कोई अगर ऐसा अनाचार करता, तो मैं उसे सहज में न छोड़ता। लेकिन वह तुम्हारे पुरोहित हैं, इसी से उनके साथ इतनी रियायत है! तुम्हारे घर के पुरोहित होने के कारण ही तो उन्हें इतना घमंड हो गया कि हम लोगों को कुछ गिनते ही नहीं, आदमी ही नहीं समझते। मुसलमान की जूठन धो सकते हैं, शायद खा भी सकते हैं, लेकिन हम ब्राह्मणों के घर जाते जैसे उनकी जाति जाती है! बड़े भारी निष्ठावान्, धर्मात्मा बने हैं! मैं तुमसे पहले ही कहे रखता हूँ, वे दोनो बाप-बेटे अगर अपना अपराध स्वीकार करके क्षमा-प्रार्थना करेंगे, और मेरे घर में खायँगे, तभी मैं उन्हें समाज से अलग नहीं करूँगा। यह सब रियायत तुम्हारे ही कारण है—"

हरिविहारी के मन को स्मृतिरत्न की ओर से विमुख करने के लिये निवारण लगातर विष उगल रहा था। इसी बीच में भट्टाचार्यजी वहाँ आ मौजूद हुए। उनके आते ही निवारण का मुँह बंद हो गया।

भट्टाचार्य ने निवारण की ओर न देखकर ही हरिविहारी से कहा—"क्यों भाई, मुझे क्यों बुलाया है?"

हरिविहारी ने कहा—"आइए, बैठिए, कहता हूँ।"

भट्टाचार्य के बैठने पर हरिविहारी ने अप्रतिभ भाव से सिर झुकाकर कहा—"ये लोग कहते हैं, नवकिशोर ने मुसलमान को पाठशाला में बुलाकर—"

भट्टाचार्य ने बीच ही में बात काटकर कहा—"हाँ, ये लोग जो कुछ कहते हैं, सब सच है।"

हरि०—"अब क्या करना चाहिए ? क्या कर्तव्य है ?"

भट्टा०—"इसके लिये कर्तव्य-अकर्तव्य क्या है ?"

हरि०—"मुसलमान के साथ खाने से—"

भट्टा०—"उसने मुसलमान के साथ नहीं खाया। और, अगर खा ही लेता, तो उसमें क्या दोष था ?"

हरि०—"म्लेच्छ के संसर्ग और स्पर्श से धर्म की हानि नहीं हुई ?"

भट्टाचार्य—"म्लेच्छ कौन है ? म्लेच्छ वे ही हैं, जो गंदे रहते हैं, जिनका चरित्र कुत्सित है, जो कुकर्म करते हैं—वे चाहे जो धर्म स्वीकार करें, चाहे जिस आचार का पालन करें, और चाहे जिस कुल में जन्म लें। कोई शुद्धाचारी भला आदमी म्लेच्छ नहीं हो सकता, वह चाहे मुसलमान हो और चाहे ईसाई।"

निवारण ने ज़ोर से सिर हिलाकर कहा—"तो क्या गो-मांसाहारी यवन का छुआ खा लेना चाहिए ?"

भट्टाचार्य ने हँसकर कहा—"मुसलमान का छुआ कौन नहीं खाता ? हरिविहारी ख़ुद सोडा बर्फ़-लेमनेड पीते हैं, और शायद आप भी यह अस्वीकार नहीं कर सकते कि इन चीज़ों से आपको परहेज़ नहीं है। सोडा-लेमनेड-बर्फ़ वग़ैरह भिश्ती की मशक के पानी से ही प्रायः बनते हैं, यह भी आपसे छिपा नहीं है।"

निवारण ने कहा—"सोडा-लेमनेड बोतल में रहता है; उसे हमारी आँखों के आगे म्लेच्छ नहीं बनाते, वह परोक्ष का छूना है। बर्फ़ तो जल का विकार-मात्र है। प्रत्यक्ष छूने का दोष है—गो-मांसाहारी के सामने छूने में दोष है!"

भट्टाचार्य ने कहा—"अगर बहस ही करते हो, तो मैं प्रमाण दिखा सकता हूँ कि हमारे पूर्व-पुरुष गो-मेध करते थे, और गो-मांस से भी परहेज़ नहीं रखते थे। आजकल भी कुछ ज़ाहिर और कुछ

छिपे तौर से होटल वग़ैरह में, और विलायत आदि विदेशों में, अनेक हिंदू ऐसा ही अनाचार करते रहते हैं, और उनके साथ खाने-पीने में आप-जैसे महामहोपाध्यायों को कुछ आपत्ति नहीं है! फिर आप लोग ख़ुद मछली-मांस ख़ुलासा खाते हैं; डॉक्टर-ख़ाने में जाकर दवा के रूप में भिश्ती की मशक का पानी, जिसमें दो-चार बूँद ब्रांडी भी मिली रहती है, घट-घट करके पी जाते हैं। यह सब संस्कार और रुचि की बात है। मैं जिस चीज़ को खाना नहीं पसंद करता, दूसरा उसी चीज़ को रुचि के साथ खाता है। केवल खान-पान की विभिन्नता या प्रतिकूलता के कारण किसी से घृणा करने का हमें-तुम्हें क्या अधिकार है?"

निवारण—"शास्त्र की आज्ञा है! म्लेच्छों—"

स्मृतिरत्न ने बीच ही में बात काटकर कहा—"शास्त्र की सब आज्ञाएँ क्या आप लोग मानते हैं? शास्त्र में तो स्याही, वनबराह, नीलगाय वग़ैरह भक्ष्य माने गए हैं। आप खा सकते हैं? आप बंगाली ब्राह्मण ख़ुलासा मछली खाते हैं, किंतु युक्तप्रांत के ब्राह्मण मछली छूते भी नहीं; और सच तो यह है कि इसी कारण वे हमें म्लेच्छों से भी गंदा समझने और घृणा करते हैं। असल बात यह है कि आप लोग जैसे दूसरे के किसी अभ्यास को अपनी रुचि के अनुसार बुरा समझकर उससे घृणा करते हैं, वैसे ही दूसरा भी अपनी रुचि के अनुसार आपके किसी अभ्यास को बुरा समझकर आपसे घृणा कर सकता है। यह सब अपने-अपने संस्कार की बात है। और, संस्कार के बारे में विचार करने से देख पड़ेगा कि वह प्रायः युक्ति से बाहर अभ्यास-मात्र है।"

निवारण ने सिर हिलाकर कहा—"सो तुम चाहे जो कहो, हमारे सामाजिक नियम को तोड़कर किशोर ने बड़ा अन्याय किया है; समाज-भर का घोर अपमान किया है।"

भट्टा०—"मैं स्वीकार करता हूँ कि इस तरह यह काम करके उसने अन्याय अवश्य किया है। अच्छा, तो उसके लिये आप क्या व्यवस्था करना चाहते हैं?"

निवारण—"किशोर को प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।"

भट्टा०—"किंतु किशोर से प्रायश्चित्त कराने के पहले व्यवस्था देनेवालों को भी प्रायश्चित्त करना पड़ेगा; फिर किशोर प्रायश्चित्त करेगा।"

निवारण ने यह बात जैसे सुनी ही नहीं, इस तरह कहा—"अगर किशोर प्रायश्चित्त करने को राज़ी न हो, तो फिर आपको उसे अपने से अलग कर देना पड़ेगा।"

भट्टा०—"किशोर ने मेरा तो कुछ अपराध किया नहीं है। फिर मैं उसे क्यों अपने से अलग कर दूँ?"

निवारण—"तो फिर अपने समाज से आपको अलग करने के लिये हमें विवश होना पड़ेगा।"

भट्टा०—"तुम लोगों का जो जी चाहे, कर सकते हो।"

इतना कहकर भट्टाचार्य उठ खड़े हुए। दरवाज़े के पास जाकर उन्होंने कहा—"हरिविहारी भाई, तो फिर आज से ठाकुरजी की पूजा-आरती का कुछ और प्रबंध कर लेना।"

हरिविहारी ने विषाद के साथ कहा—"भट्टाचार्य दादा, यह बात क्या अच्छी हुई? ज़रा सोचकर देखिए।"

भट्टाचार्य ने कहा—"क्या करूँ भाई, अपनी समझ में जो उचित है, उसे अनुचित मानना मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। 'मन में कुछ और मुँह में कुछ' का पक्षपाती मैं नहीं हूँ।"

अभिराम वग़ैरह विद्यार्थी वृद्ध भट्टाचार्य की बातें सुनकर सलाह में आ गए थे। उन्होंने नवकिशोर के दोष की मात्रा प्रबल प्रमाणित करने के लिये कहा—"गुरुजी (नवकिशोर) ख़ुद जाति-भेद नहीं

मानते। हम लोग मानते हैं, इसीलिये हमें मूर्ख, विवेक-विहीन कहकर तिरस्कार करते हैं।"

भट्टाचार्य फिरकर खड़े हो गए, और बोले—"जिसका जो विश्वास है, वह चाहता है कि उसके विद्यार्थियों का भी वही विश्वास हो। यह एक स्वाभाविक बात है। तुम लोगों को अगर उसमें आपत्ति हो, तो उसके मत को मत मानो; हो सके, तो उसका खंडन करो। जी चाहे, तो पाठशाला छोड़कर चले जाओ। शास्त्र को पढ़कर भी जो कोई उसके यथार्थ तत्त्व को समझ नहीं सकता, उसे शास्त्र क्या कहता है, जानते हो? शास्त्र कहता है—'स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।' अर्थात् जो शास्त्र को पढ़कर उसके भावार्थ को नहीं जानता, या समझ सकता, वह भारवाही गदंभ अथवा काठ के कुंदे के समान है। मैं नहीं जानता था कि इतना शास्त्र पढ़कर भी तुम ऐसे मूर्ख बने हुए हो!"

निवारण ने बड़े ही विज्ञ पुरुष की तरह गर्दन हिलाकर कहा—"सो तुम चाहे जो कहो, तुम्हारी बातों से हमारा जी नहीं भरता। तुम लोगों ने शास्त्र पढ़ा है, दो-एक वचन सुनाकर जो कुछ समझा दोगे, वही हम मान लेंगे, ऐसा मत समझो।"

भट्टाचार्य ने हँसकर कहा—"नहीं जी, मैं कभी आप लोगों को इतना बुद्धिमान् नहीं समझता। आप साक्षात् निवारण ठहरे! जो सत्य है, जो मंगल है, उसे निवारण करने के लिये आप सदा तैयार रहते हैं, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। केवल अपने गोबरा के लिये आप निवारण नहीं, निपातन बन जाते हैं; उस समय शास्त्र को तहाकर ताक पर रख देते हैं! उसे अधःपात में और भी ढकेल देते हैं!"

यह सुनकर पाठशाला के सब विद्यार्थी हँसी को न रोक सके; सब हँसने लगे।

उन्हें हँसते देखकर निवारण भी अपने हृदय के भाव को नहीं दबा सका। उसने क्रुद्ध होकर ऊँचे स्वर से कहा—"अच्छा, तो मैंने तुम्हें समाज से अलग कर दिया!"

भट्टाचार्य ने हँसकर कहा—"जो ख़ुद ही समाज से अलग होने से भी बढ़कर हो रहे हैं, उन्हें फिर नए सिरे से अलग करने-वाला कौन है? आप यह समझकर घमंड न कीजिएगा कि हमें समाज से अलग करके आपने ख़ूब अपमानित या बेइज़्ज़त कर डाला है! मैं तो देख रहा हूँ कि आजकल वे ही समाज से अलग किए जाते हैं, जो धर्म या समाज की भलाई के लिये कोई नवीन काम या संस्कार करना चाहते हैं, जो जगत् को पुरानी लकीर का फ़क़ीर नहीं देखना चाहते, और सुमार्ग पर ले जाने की—उदार बनाने की—चेष्टा करते हैं, जो ऐसे कामों के अगुआ हैं, जिनके काम जातीय जड़ता को हटाकर उसमें जीवन का स्पंदन पैदा करने-वाले होते हैं। प्रायः देख पड़ता है कि अलग होने के माने मूर्खता या अधर्म नहीं है; उसका अर्थ है साहस, उत्साह और स्वार्थ-त्याग! आपकी इच्छा है, तो आप ख़ुशी से मुझे अलग कर सकते हैं।"

इतना कहकर स्मृतिरत्नजी दर्प के साथ पैर रखते हुए वहाँ से चल दिए। जो लोग वहाँ थे, सब चुप बैठे रहे। भट्टाचार्य यद्यपि नवकिशोर के इस काम के पूर्ण पक्षपाती नहीं थे, तथापि निवारण की बातें सुनकर उन्होंने दृढ़ता के साथ नवकिशोर के मत का समर्थन किया।

बहुत देर बाद, चिंतित भाव से, हरिविहारी ने कहा—"यह तो सब हुआ, लेकिन अब ठाकुरजी की पूजा का क्या प्रबंध किया जाय?"

निवारण ने उत्साहित होकर कहा—"उसके लिये क्या चिंता है

भैया ? मैं हूँ ! गोवर्द्धन है ! कोई-न-कोई आकर ठाकुरजी की पूजा कर जायगा ।"

निवारण और सब विद्यार्थी जाने के लिये उठ खड़े हुए । हरिविहारी भी किसी तरह ठाकुरजी की पूजा का प्रबंध करके निश्चित मन से तमाखू पीने लगे ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

तीसरा पहर था । विपिन सब औरतों को महाभारत पढ़कर सुना रहा था । इसी समय रोहिणी हाँफती-दौड़ती हुई आकर उपस्थित हुई । आते ही उसने ख़बर दी कि स्मृतिरत्न समाज से अलग कर दिए गए !

इस विश्वास के अयोग्य, अद्भुत ख़बर को सुनकर सब लोग सन्नाटे में आ गए । विपिन को भी विश्वास नहीं हुआ ; उसने क्रोध पूर्ण दृष्टि से रोहिणी की ओर देखा । रोहिणी विपिन का भाव समझकर कहने लगी—"हाँ, मैं सच कहती हूँ छोटे राजा । निवारण पंडित कचहरी में बड़े राजा के पास आकर सब ठीक कर गए हैं ।"

विपिन ने पूछा—"भट्टाचार्य काका का क्या अपराध है, कुछ तूने सुना ?"

रोहिणी ने कहा—"दादा-ठाकुर ने मुसलमान के हाथ से रोटी-दाल खा ली है ।"

विपिन पोथी बंद करके उठ खड़ा हुआ । उसने कहा—"जाऊँ, देखूँ तो, क्या मामला है ?"

विपिन ने वहाँ से उठकर जाते समय देखा, आज मालती अपनी जगह पर किवाड़ों की आड़ में नहीं बैठी है । चारों ओर देखकर मालती की खोज करते-करते विपिन जब बाहर निकलने लगा, तो

उसने देखा, दरवाज़े के पास ही मालती इस तरह खड़ी है, जैसे वह उसी के आने की प्रतीक्षा में है, और कुछ कहना चाहती है। विपिन का हृदय धड़कने लगा। वह मालती के पास पहुँचकर ठिठक गया। जिस मालती को देखने के लिये वह बहाने-पर-बहाना निकालकर पीछा करते-करते कुंठित और क्लांत हो चुका था, वही दुर्लभ-दर्शन मालती आज अकेले एकांत में बिलकुल उसके पास ही खड़ी है! विपिन कोमल, करुण दृष्टि से मालती के मुँह की ओर ताकता रहा। आज मालती सामने से हट नहीं गई। उसने सिर उठाकर, विपिन की ओर देखकर, ख़ूब सहज भाव से ही कहा—"भट्टाचार्यजी का हाल जो कुछ मालूम हो, सो आकर मुझसे भी कहिएगा।"

विपिन से मालती ने यही पहली बात कही। विपिन के कानों में जैसे किसी ने अमृत की वर्षा कर दी! मालती का मधुर स्वर विपिन के कानों में गूँजने लगा। वह आवेग-रुद्ध कंठ से केवल इतना ही कह सका—"अच्छा।"

तब मालती धीरे-धीरे, राजहंसी की चाल से, अपने कमरे की ओर चली गई। विपिन को जब कुछ होश-सा हुआ, तो उसके हृदय में एक दूसरी अशांति, जिसे लोग डाह कहते हैं, पैदा हो गई। उसे जान पड़ने लगा, नवकिशोर के लिये ही मालती की यह व्याकुलता है। केवल नवकिशोर की ख़बर पाने के लिये ही मालती पाठ-सभा से पहले उठ आई, राह में उसकी प्रतीक्षा में खड़ी रही, और ख़ुद छेड़कर उसने उससे बात की! विपिन के कानों में ईर्षा कहने लगी—"नवकिशोर ही बड़ा भाग्यशाली है!"

विपिन एक लंबी साँस लेकर चटपट वहाँ से चल दिया।

विषाद-पूर्ण, उदास मुख लिए विपिन नवकिशोर के घर पहुँचा। उसने देखा, पाठशाला की दालान में एक शतरंजी बिछाए अकेला

नवकिशोर बैठा कोई पुस्तक पढ़ रहा है। विपिन समझ गया, क्षोभ से चंचल चित्त को शांत करने के लिये ही यह तैयारी है।

विपिन को देखकर, पुस्तक बंद करके, हँसते-हँसते नवकिशोर ने कहा—"सुना?"

विपिन—"सुना। लेकिन बताओ, असल मामला क्या है?"

नव०—"बैठो, कहता हूँ।"

विपिन को अपने पास बिठाकर नवकिशोर ने आदि से अंत तक सब हाल कह सुनाया। सुनकर, हँसकर विपिन ने कहा—"यह बात है! मैं समझा था, तुम अपनी धुन में न-जाने क्या कर बैठे! मगर इतना मैं ज़रूर कहूँगा कि हम लोगों के पहले ही उद्योग में इस तरह की बाधा उठ खड़ी होने से कुछ असुविधा ज़रूर होगी। तुम इतना न करते, तो भी कुछ हानि नहीं थी; मुसलमान की जूठन न उठाते, तो भी कुछ हर्ज न था। लेकिन स्थान, काल, पात्र का ख़याल किए बिना ही सहसा काम कर डालना तो तुम्हारी जन्मपत्री ही में जैसे लिख गया है। मैं तो यही कहूँगा कि धीरे-धीरे लोगों को समझा-बुझाकर अपने मत का प्रचार करना अच्छा होगा, इस तरह उद्दंडता के साथ काम करने से लोग विरोधी बन बैठेंगे, और उसका फल अच्छा न होगा।"

नवकिशोर ज़ोर देकर कह उठा—"कभी नहीं; मैं इसी तरह आदर्श बनकर अपने मत का प्रचार करूँगा। भगवान् का स्वरूप ऋषियों ने ही बतलाया है कि वह सत्य-स्वरूप हैं। उस सत्य को जो बेधड़क होकर स्वीकार नहीं कर सकता, वह कुछ भी नहीं कर सकता। जो सत्य है, वह सदा से विशुद्ध है, खुलासा है। सत्य के पालन में किसी तरह का समझौता नहीं हो सकता। जो लोगों के साथ समझौता करके, उनका मन रखकर चलना चाहता है, वह सत्य को तो पाता ही नहीं, बल्कि जिस असत्य का मन मनाने के

लिये समझौता करता है, वह असत्य उसके आश्रय से जीवित रहता है, और अंत को वही असत्य उसे लज्जा और धिक्कार देता है।"

नवकिशोर का गर्जन सुनकर विपिन दम-भर चुप रहा। उसके बाद उसने कहा—"सो ठीक है। भट्टाचार्य काका में जो असीम उदारता छिपी हुई थी, सो आज तुम्हारे द्वारा प्रकट हुई, इसमें कोई संदेह नहीं।"

नवकिशोर ने अपने स्वाभाविक अट्टहास के साथ कहा—"हाँ, मैं जो कुछ उदार बन सका हूँ, उसके आदि-कारण का आज आविष्कार हुआ।"

विपिन ने कहा—"बाबूजी ने निवारण पाजी की सलाह से तुम लोगों को समाज से अलग कर दिया है सही, लेकिन मैं तो तुम्हें छोड़ नहीं सकूँगा। तुम्हारा घर अकेला रह गया है, मैं तुम्हारा दूसरा साथी बनूँगा। मैं तुम लोगों का साथ दूँगा; समाज से अलग होकर तुम्हारे ही यहाँ रहूँगा।"

नवकिशोर ने विपिन के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"दुर पागल! इस तरह बिना कुछ किए ही समाज से अलग होने की इतनी साध क्यों है? तुमने जो व्रत ग्रहण किया है, उसे पूरा करते जाओ। तुम्हें कुछ चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी, समाज आप ही तुम्हें छोड़ देगा।"

इतना कहकर नवकिशोर ज़ोर से हँसने लगा।

विपिन ने कहा—"चलो, ज़रा काका और काकी के पैर तो छू आऊँ।"

नवकिशोर—"अरे, जाना, इतनी जल्दी काहे की है? क्या समाज के छोड़े हुए आदमी के घर में अधिक देर तक ठहरते डर मालूम होता है?"

इतना कहकर फिर नवकिशोर ज़ोर से हँसने लगा।

विपिन ने लज्जित होकर कहा—"जो कंगाल है, उसे चोर-डकैत का क्या डर! लेकिन मालती तुम्हारी ख़बर पाने के लिये बहुत

ही उत्कंठित हो रही है; उससे जाकर जल्दी सब हाल कहना है। वह सचमुच तुम्हें बहुत चाहती है।"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"वह मुझे चाहती है या नहीं, सो तो मैं नहीं जानता। लेकिन हाँ, इसका यथेष्ट प्रमाण मिल रहा है कि तुम इतने ही दिनों में उसे बहुत चाहने लगे हो।"

विपिन ने ज़ोर देकर कहा—"कभी नहीं। अभी तक उससे बातचीत ही नहीं हुई थी। वही आज, केवल तुम्हारा हाल जानने के लिये, व्यग्र होकर पहलेपहल बोली है।"

नवकिशोर ने कहा—"सो तो ठीक है। तुम ऐसे लजीले और मुँहचोर हो कि जन्म-भर एक घर में रहकर भी उससे बातचीत न कर सकते। अच्छा ही हुआ, इसी ज़रिए से तुम दोनों का परिचय घनिष्ठ हो जायगा। बर्फ़ जब तक टूटती नहीं, तब तक कड़ी रहती है; एक बार टूटने पर फिर गलने लगती है। मगर भाई, बातचीत हुए बिना तो यह हाल है, जब बातचीत का रंग ख़ूब जम जायगा, तब क्या होगा?"

इतना कहकर फिर नवकिशोर हँसने लगा।

विपिन ने लज्जित होकर कहा—"छीः! पर-नारी के संबंध में ऐसी बातचीत करना तुम्हारा बड़ा भारी अन्याय है!"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"हूँ! इसी बीच में इतना दर्द पैदा हो गया! सो भाई, उसे अपनी नारी बनाओगे, यह जानकर ही तो मैं ऐसी बातचीत कर रहा हूँ।"

विपिन ने कहा—"ना-ना, तुम यह क्या कह रहे हो? इसकी तो कुछ भी संभावना नहीं है।"

नवकिशोर ने हँसकर कहा—"प्रणय-रोग के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं। मैं ब्राह्मण का बालक आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारी कामना पूरी हो।"

नवकिशोर के बार-बार इस तरह हँसने से लज्जित होकर विपिन ने कहा—"जाओ जी, तुम भी क्या दिल्लगी कर रहे हो! चलो, काका को प्रणाम कर आवें।"

स्मृतिरत्नजी संध्या-पूजा करने के लिये हाथ-पैर धो रहे थे। विपिन ने जाकर प्रणाम किया। भट्टाचार्य ने हँसकर कहा—"सुना है भैया, हम समाज से अलग कर दिए गए हैं।"

विपिन ने कहा—"काकाजी, मुझे भी जरूरी ही आपके परिवार में शामिल होना पड़ेगा।"

भट्टाचार्य—"ना भैया, किसी तरह का उद्धत व्यवहार करके मा-बाप के मन को कष्ट न पहुँचाना।"

विपिन—"नहीं, मैं उद्धत व्यवहार नहीं करूँगा। वे आप ही मुझे त्याग कर देंगे।"

भट्टा०—"यह भी कहीं हो सकता है भैया! अपने लड़के को त्याग कर देना क्या सहज है?"

विपिन—"अच्छा, तब आप देख लीजिएगा।"

विपिन की आवाज़ सुनकर नवकिशोर की मा बाहर आ गईं। उन्होंने कहा—"कौन, बेटा विपिन, आ गए?"

विपिन ने प्रणाम करके कहा—"हाँ काकी, देखने आया था कि किशोर गुंडे ने क्या हंगामा खड़ा कर दिया है।"

नवकिशोर ज़ोर से हँसने लगा। सब लोग उसके साथ हँस पड़े।

विपिन ने हँसते-हँसते कहा—"अच्छा काकी, तुम्हीं बताओ, किशोर यह क्या कर बैठा? तुम नाराज़ नहीं हो?"

नवकिशोर की मा ने कहा—"इसमें नाराज़ होने की क्या बात है भैया? किशोर ने कुछ कुकर्म या अन्याय तो किया ही नहीं है। थालियों में मिठाई रखकर मैंने ही दी थी।"

विपिन—"तुम्हें मुसलमान से घृणा नहीं है ?"

नवकिशोर की मा ने कहा—"मैं खुद ही ऐसी पवित्र नहीं हूँ कि दूसरे से घृणा करूँ। अगर अपवित्रता के लिये मुसलमानों से बराव किया जाय, तो फिर अनेक ब्राह्मण-कायस्थ भी वैसे ही हैं; उन्हें भी छूना न चाहिए। जब उनके साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता, तो फिर मुसलमानों ही से क्यों किया जाय ?"

विपिन ने कहा—"काकी, तुम्हारे-जैसा ज्ञान हमारे देश की सभी स्त्रियों को होता, तो बहुत-सी सामाजिक समस्याओं का समाधान सहज हो जाता।"

नवकिशोर की मा मुस्किराने लगीं।

विपिन ने कहा—"अब जाता हूँ काकी।"

नवकिशोर की मा ने आशीर्वाद देकर कहा—"अच्छा भैया।"

बीसवाँ परिच्छेद

विपिन ने लौटकर घर आते ही सीधे चाची के कमरे के द्वार पर पहुँचकर पुकारा—"चाची-अम्मा !"

उस समय शाम हो गई थी। कमरे के भीतर एक दीपक मंद ज्योति से जल रहा था। विपिन की आवाज़ सुनते ही सामने आकर मालती ने कहा—"मौसी नहीं हैं।"

विपिन ने सिटपिटाकर कहा—"कहाँ है ?"

मालती—"ठाकुरद्वारे में बैठी जप कर रही हैं।"

विपिन इधर-उधर करने लगा। इस शीत-काल की शाम के अंधकार में एकांत में खड़े होकर मालती से देर तक बातचीत करना युक्ति-संगत होगा या नहीं—यही वह सोचने लगा। इसी बीच में उसकी दुविधा दूर करके मालती ने ही प्रश्न किया—"आप भट्टाचार्य-जी के घर गए थे ?"

विपिन ने लज्जा-कुंठित भाव से कहा—"गया था।"

मालती ने कौतूहल और जिज्ञासा से परिपूर्ण दृष्टि गड़ाकर विपिन के मुँह की ओर देखा। विपिन उसके मन का भाव और प्रश्न समझकर कहने लगा—"मामला और कुछ नहीं है। किशोर ने अपने घर में बिठाकर मुसलमान को अपने बरतनों में खिलाया-पिलाया था, इसीलिये वह समाज से अलग कर दिए गए हैं।"

मालती ने आश्वस्त होकर कहा—"आप भी क्या अपने मित्र को छोड़ देंगे?"

विपिन ने ज़ोर देकर कहा—"यह असंभव है! मेरी शिक्षा-दीक्षा और चरित्र में जो कुछ भलाई का अंश है, वह सब किशोर का ही ऋण है। मैं उसे छोड़ तो सकता ही नहीं। बल्कि मैं जिस मतलब से इस पाठ-सभा को स्थापित करके संस्कार की नींव डालने की चेष्टा कर रहा हूँ, उसके लिये मुझे भी जल्दी ही समाज से अलग और किशोर के दल में शामिल होना पड़ेगा। और, पाठ-सभा आदि की स्थापना भी नवकिशोर की ही आज्ञा से हुई है; मैं तो केवल उसकी आज्ञा का पालन करनेवाला हूँ।"

विपिन को इस तरह निष्कपट भाव से अपने मित्र का ऋण स्वीकार करते देखकर मालती बहुत प्रसन्न हुई। श्रद्धा और प्रीति से परिपूर्ण दोनों आँखें उठाकर मालती ने विपिन की ओर देखा, जैसे वह विपिन की आरती उतारने लगी। मुग्ध विपिन आत्म-विस्मृति भाव से उसकी ओर देखता रहा।

विपिन परिपूर्ण और प्रसन्न हृदय लेकर जब वहाँ से लौटा, तो उसे जान पड़ा, जैसे कोई परछाहीं उसके सामने से हट गई। उस समय विपिन ऐसा तन्मय हो रहा था कि छाया को हटते देखकर भी उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

विपिन के चले जाने पर मालती लेटकर सोचने लगी—इन

दोनों नौजवानों की मित्रता ख़ूब है। दोनों के हृदय निष्कपट, उच्च, उदार हैं! दोनों युवक भी देव-चरित्र और बड़े मज़े के हैं। एक जैसे देवदारु का पेड़ हो, वैसा सरल और सुंदर है। और, दूसरा जैसे अंगूर की बेल हो, वैसा ही रस से भरा मधुर है; अपने ऐश्वर्य को आप नहीं जानता, दूसरे के अवलंब पर रहकर जगत् को अमृत का स्वाद चखाता है!

इस अंगूर की बेल की उपमा का ख़याल आते ही मालती के मुख में क्षण हँसी की रेखा फूट उठी। अंगूर के फल के रस के भीतर मधुरता की आड़ में जो मादकता छिपी रहती है, उसी का ख़याल करके वह मुस्किराई। किंतु उसे उसने स्पष्ट करके सोचना नहीं चाहा; बल्कि उस ख़याल को दबा देने के इरादे से वह ज़बरदस्ती और-और चिंताओं को घसीट लाकर मन में स्थान देने लगी। वह अपने मन में कहने लगी—ख़ैर जो, इनके आ जाने से कुछ तो जान बची! अब कोई पहले की तरह स्पष्ट रूप से मुँह के सामने ही अंट-संट कहकर अपमानित करने की हिम्मत नहीं करता—

एकाएक उसके इन ख़यालातों में बाधा पड़ गई। चाची-अम्मा तेज़ी के साथ कमरे के भीतर आकर दबी आवाज़ से गरजकर कहने लगीं—"अरी कलमुँही, तू यह क्या कर रही है? दो दिन भी अपने को सँभालकर नहीं रख सकती? ज़रा हंगामा कम पड़ा था; बस, तुझसे चुप नहीं रहा गया, फिर आग हुसका दी? हरामज़ादी, तुझे मौत भी नहीं आती? या तो तुझे मौत आवे, या मुझे!"

मालती इस अचानक आक्रमण का कुछ मतलब नहीं समझ सकी। वह किं-कर्तव्य-विमूढ़ भाव से उठ बैठी, और विस्मय-पूर्ण दृष्टि से मौसी की ओर देखकर कहने लगी—"क्यों, हुआ क्या?"

चाची ने मालती के मुँह के सामने दोनों हाथ मटकाकर कहना शुरू किया—"हुआ मेरा सिर, और तेरा कपार! तू विपिन से बातें

करने क्यों गई थी बेहया ? तुझे शरम नहीं लगती ? मेरा जी चाहता है कि तेरे कारन सिर फोड़कर जान दे दूँ।"

चाची आँखों में आँचल देकर रोने लगीं। मालती कुछ ठीक न कर सकी कि हँसे या रोवे। वह काठ की तरह सख़्त होकर उसी तरह बिछौने पर बैठी रही।

विपिन ने जो परछाहीं अपने सामने से हट जाते देखी थी, वह श्रीमती रोहिणी की थी। रोहिणी ने अँधेरे में खड़े होकर विपिन और मालती को बातें करते देखते ही अपने मन में सोचा कि उसने एक बहुत बड़े रहस्य का आविष्कार कर डाला ! जिस घर में जया, मोक्षदा वग़ैरह औरतों का जमाव था, कोई पान के लिये सुपारी काट रही थी, कोई पान लगा रही थी, कोई पैर फैलाए जलाने की रुई की बत्ती बना रही था, कोई बेकार बैठी हुई लगातार दुनिया-भर की बातें कर रही थी, कोई गुट्टे खेल रही थी, वहीं दौड़ती हुई रोहिणी पहुँची, और धरती पर धम-से बैठकर बेदम हँसती हुई लोट-पोट हो गई। हँसते-हँसते वह पेट पकड़ लेती थी, और फिर हँसने लगती थी। किसी तरह उसकी हँसी बंद ही नहीं होती थी।

पाँचू की मा ने उत्सुक होकर पूछा—"अरे रोहिणी, क्या है ? तुझे क्या हो गया ? पागल हो गई है, या भूत लगा है ? इतना क्यों हँस रही है ?"

हँसी के ज़ोर से पलटे खाती हुई रोहिणी हाँफती-हाँफती कहने लगी—"बाप-रे-बाप ! मैं भाई, अब इस घर में नौकरी नहीं करूँगी—अपना हिसाब लेकर अपना रास्ता देखूँगी ! बाप रे ! अब नहीं हँसा जाता; पेट में बल पड़-पड़ गए ! सच कहती हूँ बहू, इस घर में रहूँगी, तो बहुत जल्दी पागल हो जाऊँगी ! आज अभी शाम को साक्षात भूत मैंने देखा है।"

क्षमा ने कहा—"अरे मामला क्या है ? खुलासा करके क्यों नहीं कहती ? पहेली क्या बुझा रही है ?"

रोहिणी—"अरे ठहरो-ठहरो; पेट तो हँसी के मारे फटा जा रहा है। हँसते-हँसते आँसू निकल पड़े।"

क्षमा—"अरे मर चुड़ैल, घंटे-भर से हरामज़दगी किए जा रही है ! खोलकर कहती क्यों नहीं कि क्या हुआ ?"

रोहिणी ने धोती के आँचल से आँसू पोछकर, कुछ सँभलकर, धीरे-धीरे कहना शुरू किया—"अजी, वही तुम्हारी मेम साहब, मालती-मालती !"

इतना कहकर फिर हँसने लगी।

पाँचू की मा ने बहुत ही उत्सुक होकर पूछा—"मालती ! मालती ने क्या किया ?"

मालती का नाम सुनते ही उत्सुकता के मारे सब औरतें हाल जानने के लिये चटपटा उठीं। सभी ने अपना-अपना काम छोड़कर रोहिणी को आकर घेर लिया।

रोहिणी ने इतनी भूमिका बाँधकर, अपना रंग जमा हुआ देखकर कहना शुरू किया—"मालती अँधेरे में, निरखले में अकेला खड़ी हुई, छोटे राजा के गले में हाथ डाले घुल-घुलकर बातें कर रही थी—और क्या ? भई, तुम लोग किसी से कहना नहीं। तुम्हें मेरे सिर की क़सम ! छोटे राजा सुन पावेंगे, तो मेरी जान नहीं बचेगी !"

क्षमा ने कहा—"ऐं ! ऐसी बात है ! हम लोग जानती थीं कि मालती विपिन दादा से नहीं बोलती। मैया रे ! इतनी-सी लौंडिया में इतने गुन भरे पड़े हैं ! कलकत्ते की छटी हुई छत्तीसी औरत है ! ऊँच की चोरी झुके-झुके ! वह तो जानता है कि गुप-चुप गुलछर्रे उड़ाओ; कोई क्या देखने आवेगा ? मगर यह नहीं जानती कि पाप छिप नहीं सकता।"

पाँचू की मा ने हँसकर, आँखें मटकाकर कहा—"अजी, मैं तो पहले ही से जानती थी कि वह हम लोगों को दिखाने के लिये नेका-पाका बनी हुई है! लोगों के सामने छोटे राजा से नहीं बोलती। छिपकर आड़ में दो बातें कर लेने में हर्ज ही क्या है?"

उस कमरे से घर-भर में, घड़ी ही-भर में, हँसी, व्यंग्य, विद्रूप, निंदा और आवाज़ों का तूफ़ान जैसे उमड़ उठा।

रोहिणी ने अपने स्वभाव के अनुसार, इस तरह बहुत बढ़ाकर, यह समाचार हरएक से जाकर कहा। उसने हरएक से यह भी कह दिया कि देखो, तुम्हें मेरे सिर की क़सम, यह बात और किसी से न कहना। किंतु आप ही जाकर सबसे कह आई।

जिस समय घर-भर में जगह-जगह औरतें जमा होकर यही चर्चा कर रही थीं, उसी समय चाची जप समाप्त करके ठाकुरद्वारे से बाहर निकलीं। उन्होंने देखा, जगह-जगह औरतों की मंडलियाँ चुपके-चुपके जैसे किसी एक ही विषय का आंदोलन कर रही हैं। उन्होंने यह भी लक्ष्य किया कि औरतें उन्हें देख-देखकर मुस्किरा रही हैं। चाची को उत्सुक देखकर रोहिणी जान-बूझकर गंभीर भाव से चाची के पास होकर निकली, और उनकी ओर बिलकुल ध्यान न देकर आगे बढ़ी। उसने ऐसा भाव दिखाया, जैसे वह किसी काम में अधिक व्यस्त हो रही है। चाची ने कहा—"क्यों रोहिणी, मामला क्या है? क्या हुआ?"

रोहिणी ने उदास भाव से चाची की ओर फिरकर कहा—क्या मालूम चाची-अम्मा, मैं तो अपने काम में लगी हुई हूँ; मुझे लोगों की बातें सुनने की फ़ुरसत कहाँ है? जाते-जाते इतनी भनक मेरे कान में ज़रूर पड़ गई है कि मालती बिटिया शायद अँधेरे में अकेली खड़ी छोटे राजा से बातें कर रही थीं। उसी की यह चर्चा हो

रही है। और हाल कुछ मुझे नहीं मालूम। मैं यह भी नहीं जानती कि लोगों का यह कहना कहाँ तक ठीक है।"

इतना कहकर ही वह तेज़ी के साथ चली गई।

रोहिणी ने ऐसा भाव दिखाया, जैसे वह कुछ बता नहीं सकी, और वह कहना भी नहीं चाहती; उसे इतनी फ़ुरसत भी नहीं है। रोहिणी आग लगाकर चल दी। किंतु इधर उस आग को हवा देकर भड़कानेवाले लोगों की भी कमी नहीं थी। चाची-अम्मा लज्जा और अपमान से व्यथित होकर, पद-दलित नागिन की तरह फुफकारती हुई, अपने कमरे में गईं, और वहाँ जाकर जिस तरह उन्होंने वह गुस्सा मालती के ऊपर झाड़ा, सो ऊपर लिखा जा चुका है।

धीरे-धीरे यह बात बड़ी बहू और विपिन के कान तक भी पहुँची। पुरखिन ने कहा—"मेरा विपिन वैसा बुरा लड़का नहीं है। इस बदमाश छोकरी का ही सारा दोष है। उसकी आँखें नहीं देखती हो, चर्ख़ी की तरह नाचा करती हैं!"

विपिन को पता लगाने से मालूम हो गया कि यह आग रोहिणी ने ही लगाई है। एक बार उसको इच्छा हुई कि अभी लात मारकर रोहिणी को घर से निकाल बाहर करे! लेकिन फिर वैसे ही सोचा, जिस घर की नींव ही कुसंस्कार और अज्ञान के पहाड़ पर है, उसका एक अंश हटा देने से ही क्या फल होगा?

विपिन ने पक्का इरादा कर लिया कि अज्ञान की आँधी से जमा हुए इस कसंस्कार और बुरे भावों के कूड़े को घर से अवश्य हटाना होगा। और, चाहे जो हो, सब संकोच दूर करके प्रकाश्य रूप से सबके आगे ही वह मालती से बातचीत किया करेगा।

विपिन ने सोचकर देखा, यह जो संपूर्ण नीचता उसके परिवार में जमी हुई है, वह पीढ़ी दर-पीढ़ी से जमा हुआ कूड़ा है। इस

परिवार ने जिस समाज के आदर्श पर अपनी प्रकृति को संगठित किया है, उस समाज में स्त्री-शिक्षा एक महापाप समझी जाती है, और स्त्री की स्वाधीनता तो एक दुःस्वप्न-मात्र है—स्वेच्छाचार का नामांतर है। उस समाज में मर्द लोग अपने को और स्त्रियों को इतना दुर्बल और पाप-प्रकृति माने बैठे हैं कि स्त्रियों को पुरुषों के संसर्ग में आते देखते ही चाणक्य की नीति को स्मरण करके काँप उठते हैं। वे समझते हैं, स्त्रियाँ कपूर की तरह उड़ जाने के लिये ही मुँह बाए बैठी हैं। उन्हें उस अंतःपुर के डिब्बे में, जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं जातीं, बंद कर रखना, और "हवाल हवा लौ न जानत जाको"-ऐसा बनाए रखना ही एकमात्र उनकी रक्षा का उपाय है! ऐसा न करने से, स्त्रियों को स्वाधीन कर देने से, बस सर्वनाश हो जायगा। युग-युगांतर से पुरुषों के इस निंदित, नीच धारणा के वशवर्ती होने से स्त्रियों का मन भी ऐसा जड़-सा हो गया है कि वे आप ही अपना विश्वास नहीं कर सकतीं; वे ख़ुद ही अपने को मनुष्य नहीं समझतीं; उन्हें ख़ुद अपने मनुष्य होने पर विश्वास नहीं है। वे यह नहीं समझ सकतीं, या समझना नहीं चाहतीं कि समाज में उनका भी कोई स्थान या कुछ कर्तव्य है। इसी कारण सदा से चला आ रहा संस्कार जहाँ पर बाधा पाता है, जहाँ वे कुछ नई बात देखती हैं, वहीं विमुख और विद्रोही बन बैठती और केवल विपत्ति की ही आशंका करती रहती हैं। अंधकार में जो आदमी राह चलता है, उसे पग-पग पर आशंका होता है कि कहीं वह गढ़े में न गिर पड़े, या साँप के ऊपर उसका पैर न पड़ जाय, अथवा किसी तरफ़ से अलक्ष्य रूप से कोई ख़ूनी जानवर आकर उस पर हमला न कर बैठे। इस अकारण भय को दूर करने का एकमात्र श्रेष्ठ उपाय ज्ञान का प्रकाश है। समाज या परिवार जो सब संस्कार-गत मिथ्या आशंका का कूड़ा जमा है, बद्ध-मूल है,

उसे दूर करने का भी एकमात्र उपाय ज्ञान की आग सुलगाकर उसमें उसे जला देना ही है। चाहे जिस तरह हो, इन सब कुसंस्कारों और भ्रांत धारणाओं को दूर करना ही होगा। विपिन को फ़िलहाल यही अपना प्रधान कर्तव्य जान पड़ने लगा।

जब कर्तव्य निश्चित हो गया, तब विपिन ने यह भी निश्चय कर लिया कि अज्ञान के साथ किसी तरह का समझौता करके काम करना अब ठीक न होगा। उसमें केवल समय ही नष्ट होगा। जो उचित समझ पड़े, उसे ज़बरदस्ती करना-कराना होगा। उसका आदर्श और बंधु नवकिशोर भी इसीलिये उसका इतना श्रद्धा-भाजन है। वह क्या उस आदर्श को केवल श्रद्धा की दृष्टि से देखेगा ही, उसके आदर्श पर काम नहीं करेगा? कभी नहीं। अगर वह अपने मत के अनुसार काम भी नहीं कर सका, तो जानना चाहिए कि वह अपने मत पर श्रद्धा नहीं रखता। वह मनुष्य नहीं, नराधम है, जिसका कहना और करना एक नहीं है।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

कल से जो निंदा की स्याही विपिन के चारो ओर उछल रही थी, उसकी पर्वा न करके, वह नित्य की तरह, स्वाभाविक भाव से ही, अपनी पाठ-सभा में आकर उपस्थित हुआ। उसने आकर देखा, आज पाठ-सभा की कोई तैयारी नहीं है। न तो बिछौना ही बिछा है, और न कोई सुननेवाली ही देख पड़ती है। केवल कुछ जवान औरतें उस दालान के आस-पास मुस्किराती हुई इधर-उधर घूमती-फिरती देख पड़ती हैं। वे कौतूहल के साथ यह देख रही थीं कि इतनी हलचल के बाद भी विपिन रोज़ की तरह पढ़ने-सुनाने आता है कि नहीं, और वह बेहया औरत अपना काला मुँह दिखाने निकलती

है कि नहीं। विपिन को आते देखकर सभी को बड़ा कौतूहल मालूम पड़ा। सबकी आँखों में हँसी की झलक झलक उठी।

विपिन ने खूब सप्रतिभ भाव धारण करके क्षमा से पूछा—"अरे क्षमा, तुम लोग इधर-उधर घूम-फिरकर क्या कर रही हो? पढ़ने के लिये मैं आ गया, मगर यहाँ अभी तक फ़र्श भी नहीं बिछा। जाओ, बिछौना बिछवाओ। मैं जाकर मा को बुलाए लाता हूँ।"

विपिन अपनी मा की तलाश में गया। क्षमा आदि युवतियाँ एक दूसरे के मुँह की ओर ताककर अपने कल-हास्य से उस स्थान को प्रतिध्वनित करती हुई बिछौना बिछवाने की तैयारी करने लगीं।

विपिन ने अपनी मा के कमरे में जाकर पुकारा—"मा!"

पुरखिन ने कहा—"क्या है?"

विपिन—"तुम आज पाठ-सभा में क्यों नहीं गईं?" कहता हुआ भीतर पहुँचा।

विपिन के इस प्रश्न के उत्तर में पुरखिन ने गंभीर भाव से कहा—"ना, रोज़-रोज़ पढ़ना-सुनना अच्छा नहीं लगता।"

बिनी (विपिन की छोटी बहन) ने विपिन के पैरों से लिपटकर, उसके मुँह की ओर ताककर कहा—"दादा, मैं चलूँगी। मैं रानी-बेटी हूँ, मा पाजी है।"

विपिन ने झुककर बिनी को प्यार करके कहा—"ना, मा को भी रानी-बेटी की तरह चलना पड़ेगा। यों नहीं जायँगी, तो तू पकड़कर ले चलना।"

बिनी अपनी मा के दोनो हाथ पकड़कर घसीटती हुई कहने लगी—"पाजी ललकी कहीं का! पलने नहीं चलेगी? पलने चल।"

इस स्नेह के कौतुक ने पुरखिन के रूखे भाव को नष्ट कर दिया।

उन्होंने अपने पुत्र और कन्या के मुँह की ओर देखकर हँसकर कहा—"तुम चलो, मैं पीछे से आती हूँ।"

विपिन हँसता हुआ, बिनी को गोद में लेकर, पाठ-सभा में पहुँचा। वहाँ जाकर उसने देखा, और सब औरतें आकर बैठी हैं, मगर मालती और चाची-अम्मा नहीं आईं। लज्जा और संकोच को ज़बरदस्ती ठेलकर विपिन ने कहा—"मालती नहीं आईं? चलो बिनी, मालती और चाची को भी बुला लावे।"

बिनी ने विपिन के गले से लिपटकर कहा—"ना-ना, बले दादा! मा बकेगी!"

बिनी के मना करने पर भी, उसे गोद में लिए, विपिन मालती को बुलाने चला, और उससे बिनी आनंदित ही देख पड़ी।

विपिन ने चाची के कमरे के पास जाकर पुकारा—"चाची-अम्मा!"

चाची ने कहा—"आओ भैया।"

विपिन कमरे के भीतर गया। चाची बैठी माला जप रही थीं; मालती उनके पास ही चुपचाप बैठी थी। मालती ने एक बार आँख उठाकर विपिन की ओर देखा, और वैसे ही सिर झुका लिया। उसके गुलाबी गालों में अनार के फूल का-जैसा रंग दौड़ गया।

उसी दृष्टि से विपिन को मालती की लज्जा का पता लग गया। पहले दिन की घटना याद आ जाने से विपिन भी लज्जा और संकोच से अप्रतिभ हो गया। विपिन ने अपना जी कड़ा करके चाची से कहा—"चाची-अम्मा, आज अभी तक तुम महाभारत सुनने नहीं गईं? शायद महाभारत की कथा तुम्हें अच्छी नहीं लगती?"

चाची ने कहा—"भैया, ऐसा कौन पापी होगा, जिसे महाभारत की कथा अच्छी नहीं लगेगी। मुझे तो बहुत अच्छी लगती है। एक तो महाभारत की कथा, फिर तुम पढ़ते हो, अच्छी नहीं

लगेगी ? लेकिन भैया, मैं अब किसी झंझट में नहीं पड़ूँगी; सबसे अलग रहूँगी। तुमने दया करके मुझे अपने यहाँ आश्रय दिया है, इतना ही यथेष्ट है।"

चाची की आँखों में आँसू भर आए।

विपिन ने हँसकर कहा—"चाची-अम्मा, यह क्या कहती हो ? मैंने तुम्हें आश्रय दिया है ? पहले तुम अपने घर में अकेली थीं, अब वहाँ से आकर अपने लड़के के पास रहती हो, इतना ही अंतर है। यह घर भी तो तुम्हारा ही है चाची-अम्मा। यहाँ आकर भी सबसे अलग अकेली ही रहोगी ? यह नहीं होगा, चलो।"

चाची-अम्मा ने स्नेह-पूर्ण, आँसू-भरी दृष्टि से विपिन की ओर देखकर कहा—"मैं नहीं जाऊँगी भैया। अभी जप करने बैठी हूँ; जप करना बाक़ी है।"

विपिन ने कहा—"अच्छा, तुम जप समाप्त करके जाना। लेकिन मालती तो ख़ाली बैठी है। उन्हें तो जप नहीं करना है ? मालती, तुम चलो।"

मालती चुपचाप सिर झुकाए बैठी रही। चाची-अम्मा ने अर्थ-पूर्ण दृष्टि से विपिन की ओर देखा। मतलब यह था कि इस तरह चारों ओर चनाव चलते रहने पर भी मालती कैसे जा सकती है ? क्षोभ और लज्जा के मारे विपिन का मुँह लाल हो उठा। तो भी ज़बरदस्ती अपने को सँभालकर विपिन ने सहज भाव से ही कहा—"इसीलिये तो मालती को और भी जाना चाहिए चाची-अम्मा। प्रकाश को पाप ही भय करता है। जो निर्दोष है, वह अपवाद की परवा नहीं करता। कहावत है, 'कर, तो डर नहीं।'—चलो मालती, तुम्हें चलना ही पड़ेगा।"

मालती का मुख, अरुणोदय से शतदल पद्म की तरह, सलज्ज स्मित-हास्य से प्रफुल्लित हो उठा। आँखों के ऊपर बड़ी-बड़ी पलकों

का घूँघट डालकर मृदु कंपित कंठ से मालती ने कहा—"आप चलिए, मैं आती हूँ।"

बिनी विपिन की गोद से उतरकर मालती का हाथ पकड़कर खींचती हुई कहने लगी—"मालती दीदी, बले दादा बुलाते हैं, तलो।"

मालती बिनी को गोद में लेकर विपिन के पीछे चल दी, चाची-अम्मा सन्नाटे में आकर चुपचाप बैठी हुई माला जपने लगीं।

विपिन ने लौट आकर देखा, सब औरतें उसी की अपेक्षा में बैठी हैं। बड़ी बहू भी आ गई हैं। विपिन ने अपने आसन पर बैठकर कहा—"कल से सिर्फ़ मैं ही नहीं पढ़ूँगा, तुम लोगों को भी पढ़ाऊँगा। तुम लोगों को पढ़ना होगा।"

बड़ी बहू ने कहा—"छी-छी, तू यह क्या कहता है? औरतों को पढ़ना नहीं चाहिए। औरतें पढ़ने-लिखने से विधवा होती हैं, बदनाम होती हैं, उनका चाल-चलन ख़राब हो जाता है।"

इतना कहकर उन्होंने अर्थ-पूर्ण दृष्टि से मालती की ओर देखा। पुरखिन की दृष्टि का अनुसरण करके सभी की नज़रें मालती के ऊपर पड़ीं। मालती ने एक बार विपिन की ओर चकित, करुण दृष्टि से देखकर सिर झुका लिया।

विपिन ने माता की ओर उलाहने की दृष्टि से देखकर कहा—"यह तुमसे किसने कहा कि औरतें लिखना-पढ़ना सीखने से ही विधवा हो जाती हैं, उनका चाल-चलन ख़राब हो जाता है? देखो, कलकत्ते की लगभग सभी औरतें पढ़ी-लिखी हैं। उन्हें उनके मर्दों ने ही तो पढ़ना-लिखना सिखाया है? तो क्या यह समझना चाहिए कि मर्द लोग अपनी मौत की तैयारी कर रहे हैं?"

जया ने पुरखिन का पक्ष-समर्थन करते हुए कहा—"जो लोग इसे नहीं मानते, उनके यहाँ ऐसा नहीं होता। जो लोग मानते हैं, उन्हीं के यहाँ यह बात होती है।"

विपिन ने हँसकर कहा—"तब तो इसकी बहुत ही सहज तरकीब है ! तुम लोग भी न मानो।"

पुरखिन ने आपत्ति के स्वर में कहा—"ना-ना, हम हिंदुओं के यहाँ ऐसे अनाचार नहीं फलते। देखो, मेरे देवर (चाची-अम्मा के पति) इन बातों को नहीं मानते थे, छोटी बहू को पढ़ाने लगे थे। फिर उसका क्या फल हुआ ? छोटी बहू की तक़दीर फूट गई ! फिर हम लोगों को पढ़-लिखकर करना ही क्या है ? ज़मींदारी भी नहीं देखनी, नौकरी भी नहीं करनी। इसके सिवा पढ़ने-लिखने से बुराई यह होती है कि पढ़ी-लिखी औरतें अक्सर ईसाई हो जाती हैं, मेमों की नक़ल करने लगती हैं। कुर्सी पर बैठती हैं, दिन रात किताबें ही पढ़ा करती हैं, घर-गिरस्ती के काम-काज भूल जाती हैं, रोटी करना, बरतन माँजना, चौका देना, यहाँ तक कि बाल-बच्चों को देखना-सुनना भी मिसरानी और नौकर-चाकरों के हाथ में सौंप दिया जाता है। और, उसका नतीजा यह होता है कि कुछ ही दिनों में गिरस्ती चौपट हो जाती है। जिनका काम दोनों वक़्त रसोई करना, घर-भर को खिलाना-पिलाना और गिरस्ती की देख-भाल करना है, वे लिख-पढ़कर क्या करेंगी ?"

विपिन ने कहा—"हाँ, यह ठीक है कि रसोई वग़ैरह करना और गिरस्ती को सँभालना ही औरतों का मुख्य काम है। लेकिन लिख-पढ़कर ये सब काम किए जायँ, तो और भी अच्छी तरह, शऊर के साथ, किए जा सकते हैं। पढ़ी-लिखी औरत और भी अच्छी तरह अपने बच्चों का लालन-पालन कर सकती है। तुम कहती हो कि जो औरतें पढ़ती-लिखती हैं, वे ही घर-गिरस्ती के कामों में हाथ नहीं लगातीं ; लेकिन यह तुम्हारी भ्रांत धारणा है। जो औरतें काम नहीं करना चाहतीं, वे पढ़ी-लिखी न होने पर भी नहीं करतीं। मैं तो देखता हूँ, अक्सर बड़े घरों की बहू-बेटियाँ न तो पढ़ती-लिखती ही हैं, और

न कुछ काम-धंधा ही करती हैं। तुम्हारे ही घर में इतनी औरतें हैं, भला बताओ, कौन कितना काम करती है? काम तो करती नहीं हैं, हाँ, लोगों की बुराई-चुग़ली-निंदा का ही बाज़ार गर्म रखती हैं। अगर ये सब पढ़-लिखें, तो फ़ुरसत के समय अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़कर जी बहलावेंगी; जिनसे इनके विचार अच्छे, ऊँचे और उदार बनेंगे। उस हालत में चुग़ली-निंदा-परपंच करने की न तो प्रवृत्ति ही होगी, और न समय ही मिलेगा। इसके सिवा पढ़ने-लिखने से मनुष्य का ज्ञान भी बढ़ता जाता है। अपढ़ अवस्था में आदमी को जिन बातों का कुछ मतलब ही नहीं समझ पड़ता, पढ़ने-लिखने से उनमें कितने ही विचित्र मतलब भरे हुए देख पड़ते हैं। कहाँ तक मैं तुम्हारे आगे पढ़ने-लिखने के लाभ और उपकार पढ़ूँ! पढ़ा-लिखा मनुष्य ख़ुद सोचना-विचारना सीखता है, असल धर्म और मंगल को पहचान ले सकता है, उसका मन पवित्र, उन्नत और हृदय उदार होता है। और, तुमने जो कहा कि हम लोगों को पढ़-लिखकर क्या करना है? ज़मींदारी देखना है या नौकरी करना? सो इसके बारे में मेरा यह कहना है कि जी चाहे या ज़रूरत पड़े, तो पढ़ी-लिखी स्त्री यह भी कर सकती है। मालती ही को ले लो। उनके कोई नहीं है, पराए घर में आकर उठते-बैठते दुष्ट लोग उनका अपमान करते हैं। ऐसी अवस्था में पढ़ी-लिखी होने के कारण अगर वह किसी कन्या-पाठशाला में पढ़ाने की नौकरी कर लें, और स्वाधीन भाव से अपनी जीविका चलावें, तो उसमें क्या हर्ज है? और, उधर चाची को देखो, अगर वह पढ़ी-लिखी होतीं, तो आप ही अपनी ज़मींदारी देखतीं, और किसी को उनकी ज़मींदारी देखने का कष्ट न उठाना पड़ता।"

मालती और चाची-अम्मा के प्रति पुरखिन के दुर्व्यवहार की बात प्रकारांतर से स्मरण करा देने के कारण पुरखिन विपिन पर

मालती ने झुककर विपिन को प्रणाम करना चाहा। विपिन ने बीच ही में उसे रोक लिया। वह दोनो हाथों से उसे हृदय से लगाकर उसके गुलाबी गालों पर बार-बार प्रणय-मुद्रा अंकित करने लगा। तब लज्जा ने आकर मालती की दोनो आँखों पर अपना अधिकार जमा लिया; जैसे लज्जावती-लता स्पर्श पाकर संकुचित हो गई, जैसे मोतियोंवाली सीपें बंद हो गईं, जैसे अस्त हो रहे सूर्य की शेष किरण को हृदय में रखकर दो कमल-कुसुम संपुटित हो गए! उषा के अरुण राग ने उस समय सारे घर को नव-विवाह की आनंद-दीप्ति से भर दिया था; मालती की हँसी के समान वह लालिमा विपिन के भीतर और बाहर के समान ही उस घर को विवाह के रंग से रंगीन बनाकर विपिन की अनिर्वचनीय भावना और वासना को उज्ज्वल, प्रकाश-पूर्ण कर रही थी।

प्रणय-वेदना की ताड़ना के मारे आपसे आकर अपने को अर्पण कर देने से उत्पन्न लज्जा ने मालती की चेतना को जैसे ढक लिया था। दुर्लभ प्राप्ति को पाकर होनेवाले आनंद ने विपिन को भी विमूढ़ बना दिया था। एकाएक उनका वह सुख का नशा उतर गया। उन्होंने देखा, पुरखिन और चाची, दोनो आकर दरवाज़े के सामने खड़ी स्तब्ध-सी होकर उनकी ओर कठोर दृष्टि से ताक रही हैं।

विपिन ने मालती का हाथ पकड़कर, उनके सामने आकर, उन्हें प्रणाम किया।

पुरखिन ने चिल्लाकर कहा—"छोटी बहू, कोई इस तरह बदला लेता है?"

चाची ने उनके इस कथन पर ध्यान न देकर कठोर स्वर में [illegible] से कहा—"विपिन, तुम्हारा मुझे बड़ा विश्वास था। तुम दोनो बाप-बेटों ने मिलकर मेरी दौलत भी ले ली, और इज़्ज़त भी।"

विपिन ने क्षुब्ध-पूर्ण स्वर में कहा—"चाची, तुम्हारा ख़याल

रावत है। मालती मेरी स्त्री है; मैं मालती से ब्याह करूँगा।"

चाची ने पुरखिन की ओर फिरकर कहा—"दीदी, तुम जेठजी से कहकर मुझे काशी भेज दो। मैं अब इस घर में नहीं रहूँगी।"

पुरखिन गरजकर कह उठीं—"तुम्हारी मनोकामना पूरी हो गई! अब क्यों रहोगी।"

देखते-ही-देखते घर-भर की सब औरतें आकर वहाँ जमा हो गईं। हरिविहारी ने तेज़ी से आकर कहा—"पालकी आ गई है, तुम अभी दूर हो। तुमने सोचा है कि इस तरह षड्यंत्र रचकर हरिविहारी राय को अपने क़ाबू में करोगे? मगर हरिविहारी राय दबने का पात्र नहीं है। तुम फ़ौरन् निकल जाओ।"

इसी समय प्रभु के परिवार में होनेवाले इस विप्लव की ख़बर न जाननेवाला वृद्ध दुबे तुलसीकृत रामायण पढ़ रहा था—

प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहि सुमंगल-चार,
इक प्रबिसहि इक निर्गमहि, भीर भूप-दरबार।

हरिविहारी इतना कहकर तेज़ी के साथ वहाँ से चल खड़े हुए।

"अम्मा, इस घर में मेरे रहने की मियाद पूरी हो गई। अच्छा, तो हम जाते हैं।" इतना कहकर, मालती को साथ लेकर, विपिन ने माता को प्रणाम किया। उसके बाद चाची अम्मा ने भी रोते-रोते पुरखिन से कहा—"दीदी, मैं जन्म-भर के लिये तुम्हारे चरण छोड़े जाती हूँ। मेरे लिये तुम्हें बहुत दुःख भोगने पड़े। जाने या बिना जाने, इच्छा से या अनिच्छा से, मैंने जो कुछ अपराध किए हों, उन्हें माफ़ करके मुझे जाने की आज्ञा दो।"

पुरखिन इसका कुछ जवाब न देकर, दूसरी तरफ़ मुँह करके, धनुष की टंकार की तरह बज उठीं, और बोलीं—"जो मेरा सर्वनाश किए जा रहा है, उसका भी भला न हो; वह लोक और परलोक न बने। भगवान् हैं, वही देखेंगे।"

नाराज़ हो उठीं। उन्होंने कहा—"तुझे तो दिन-रात सिर्फ़ मालती और चाची की ही चिंता रहती है। सभी बातों में उन्हीं की मिसाल दिया करता है। तू जाकर उन्हीं को पढ़ा-लिखा, हम लोगों को क्यों उसमें घसीटता है।"

इतना कहकर पुरखिन ने मुँह फुला लिया।

विपिन ने हँसकर कहा—"उन्हें तो पढ़ाऊँ-लिखाऊँगा ही, लेकिन तुम लोगों को भी नहीं छोड़ूँगा। मैं तुम्हारा ही तो लड़का हूँ! जानती तो हो, तुम अपनी धुन की कैसी पक्की हो!"

विपिन की स्नेह-पूर्ण बातों से पुरखिन का वह भाव दूर हो गया। उन्होंने कुछ प्रसन्न होकर कहा—"तेरा लड़कपन क्या कभी न जायगा? सदा बच्चों का-जैसा हठ ही करता रहेगा!"

जया ने पुरखिन को प्रसन्न देखकर विपिन की प्रसन्नता प्राप्त करने के इरादे से कहा—"अच्छा विपिन, मैं तो विधवा हूँ, मुझे तो कोई चिंता नहीं है, मैं तुमसे पढ़ूँगी।"

विपिन ने घृणा-पूर्ण दृष्टि से केवल एक बार जया की ओर देखकर दूसरी ओर मुँह फेर लिया, और कहा—"क्षमा, तुम सबको पढ़ना होगा। समझीं? कल से ही पढ़ाई शुरू होगी। तुम लोगों ने तो कुछ पढ़ा-लिखा भी था। याद है, या एकदम शुरू से पढ़ोगी?"

विपिन की उपेक्षा की परवा न करके जया ने ख़ूब उत्साह के साथ कहा—"मैं और क्षमा दीदी पहली किताब से ही शुरू करेंगी। और सब औरतें कुछ-कुछ जानती भी हैं।"

विपिन के कहा—"कल से मैं अपनी पाठशाला खोलूँगा। घर की बहुएँ अगर मुझसे पढ़ने में शरमाएँ, तो उन्हें मालती पढ़ावेगी।—मालती, तुम क्या पढ़ोगी? तुम्हें जिस किताब की ज़रूरत हो, और जो किताब पढ़ने का जी चाहे, वह मेरी लाइब्रेरी से लाकर पढ़ा करो।"

विपिन को इस तरह ज़ोर करके मालती के साथ अपने परिचय और बातचीत को सहज बनाते देखकर सब औरतें जी में जल उठीं। मगर मालती प्रसन्न हो उठी। उसने कुछ सिर हिलाकर विपिन की बात पर अपनी सम्मति प्रकट की। विपिन प्रसन्नता-पूर्वक महाभारत पढ़ने लगा।

इसी समय रोहिणी ने आकर कहा—"बहूजी, दुबेजी ने कहा है कि बड़ी बहू से कह दो, छप्परबंद आ गया है।"

बड़ी बहू ने कहा—"हाँ, इस गऊ के रहने की दालान के पास एक छप्पर बनाकर डाल देने के लिये कह दे।"

विपिन ने पूछा—"वहाँ छप्पर क्या होगा अम्मा?"

बड़ी बहू ने कहा—"सौर होगी। पाँचू की मा के लड़का होने-वाला है कि नहीं।"

पाँचू की मा ने और भी घूँघट लंबा करके सिर झुका लिया।

विपिन ने कहा—"कैसा सर्वनाश! घर की सारी गंदगी जहाँ बहती है, उसी बड़ी मोहरी के पास सौर होगी! जहाँ गोबर की बदबू बसी हुई है, बड़े-बड़े मच्छड़ भन-भन किया करते हैं, बड़े-बड़े डाँस सताते हैं, वहीं बच्चा पैदा होगा! यह तो एकदम मार डालने की तदबीर है!"

पुरखिन ने विस्मित होकर कहा—"क्यों, इसमें मार डालने की तदबीर क्या है? यह तो पुरानी रीति है। तू कहाँ पैदा हुआ था?"

इसके बाद अपने पहलौठी के मृत पुत्र को स्मरण करके, एक लंबी साँस लेकर पुरखिन ने कहा—"वह अभागा पुलिन, विनोद और विनी वग़ैरह सब इसी जगह पैदा हुए हैं।"

विपिन ने कहा—"यह तो तुम ठीक कहती हो। लेकिन यह भी तो सोचो कि उसका नतीजा क्या हुआ? मुझे जन्म देकर ही मेरी माता तीन दिन बाद मर गई। वह तो मेरी ज़िंदगी थी, इससे तुमने

मुझे सौर से उठाकर अपनी गोद में आश्रय दिया। इसी से अब बैठा हुआ तुम्हारे साथ बहस कर रहा हूँ। तुम न आश्रय देतीं, और मैं उसी सौर में पड़ा रहता, तो अब तक मेरा नाम भी मिट गया होता।"

पुरखिन ने व्यग्र होकर कहा—"चुप-चुप, यह क्या बक रहा है! तेरी लाख बरस की उमर हो!"

विपिन ने हँसकर कहा—"सो अम्मा, तुम डरो नहीं। फ़िलहाल मुझे मरने के लिये उतना आग्रह नहीं है। मैं अभी बहुत दिन जीता रहूँगा, और इसी तरह तुम्हें दिक़ करूँगा।"

पुरखिन ने स्नेह-पूर्ण दृष्टि से विपिन की ओर देखकर कहा—"तू मुझे दिक़ कर; मैं ख़ुशी से तेरा उत्पात सहूँगी। यमराज का ही उत्पात नहीं सहा जाता। ईश्वर करे, किसी शत्रु को भी पुत्र-शोक न सहना पड़े।"

विपिन ने हँसकर कहा—"यमराज को न्योता देकर तुम लोग ख़ुद ही बुलाती हो, और जब यमराज आकर अपनी भेंट ले जाते हैं, तब रो-रोकर जान देती हो! जगत् में नए आनेवाले बटोहियों की अभ्यर्थना करने के लिये जैसी जगह पर जैसा घर (सौर) तुम लोग बनवाती हो, उसे देखकर ही प्राण सूख जाते हैं! मैं इस घर का पहला अतिथि हूँ। मेरे अहोभाग्य थे, जो मा के मर जाने पर भी मुझे दूसरी स्नेहमयी मा मिल गई, और मैं यमराज के हाथ से छुटकारा पा गया। लेकिन मेरे बाद जो लोग इस घर में आए हैं, उनकी दशा तो देखो। पुलिन उसी सौर में रहने से ऐसा बीमार पड़ा कि उसकी जान पर ही बीती। बारह बरस तक किसी तरह जीता ज़रूर रहा, लेकिन वह उसकी ज़िंदगी मरने से भी बदतर थी। उसके सिवा बिनी और विनोद को देखो, सींक-जैसे हाथ-पैर हैं, और महीने-भर में दो दिन भी उनकी तबियत

अच्छी नहीं रहती ! बिनी और विनोद जैसे ताड़-पत्ते के बने हुए सिपाही हैं !"

बिनी मालती की गोद से विपिन की गोद में आकर कहने लगी—"बले दादा, मैं छिपाई हूँ !"

विपिन ने उसे गले से लगाकर कहा—"इन सब आनंदमय बालकों में और भी स्फूर्ति देख पड़ती, अगर ये अच्छी जगह में बाल्य-काल बिताते, साफ़ आब-हवा में बढ़ने पाते !"

पुरखिन ने कहा—"तू चाहे जो कह, सौर तो सदा से ऐसी ही जगह में होती आई है।"

विपिन ने कहा—"जिनके यहाँ और जगह नहीं है, उनके यहाँ हो, तो ठीक भी है। वे लोग ऐसी जगह सौर करने का कुफल भोगने के लिये विवश हों, तो कोई उपाय नहीं है। लेकिन तुम्हारे यहाँ क्या जगह की कमी है, जो मोहरी पर छप्पर डालकर उसमें लड़के-बालों को रक्खा जाय ? जो लड़के प्राण से प्यारे हैं, जिन्हे कलेजे से लगा लेने को जी चाहता है, उनकी अभ्यर्थना एक दुर्गंध-पूर्ण स्थान में, मोहरी के ऊपर, की जायगी ! छीः !"

पुरखिन ने खीझकर कहा—"तो क्या तेरी राय यह है कि ठाकुर-द्वारे में लड़का पैदा हो !"

विपिन ने स्थिर और शांत भाव से ही कहा—"हाँ, ठाकुरद्वारे में न सही, लेकिन ठाकुरद्वारे की तरह साफ़-सुथरी और पवित्र जगह में ही लड़के-बालों का जन्म होना चाहिए।"

पुरखिन ने कहा—"यह सब मलिच्छपना मेरी ज़िंदगी में नहीं हो सकेगा। मेरे मर जाने पर तेरी जो ख़ुशी हो, सो करना।"

विपिन ने ज़ोर देकर कहा—"ना अम्मा, यह न होगा। तुम्हारी ज़िंदगी में ही तुम्हें मेरी इच्छा के अनुसार काम करना पड़ेगा। वैसी सौर में मैं किसी के बाल-बच्चा न होने दूँगा।"

पुरखिन ने हैरान होकर कहा—"मेरे घर में तो निराले में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ सौर बनाई जाय। मेरे घर में ठाकुरजी हैं; मैं अपने घर में यह सब अनाचार न देख सकूँगी। यह सब अनाचार कभी नहीं फलेगा।"

विपिन ने कहा—"अम्मा, ठाकुर-देवता ही तो लड़का-बाला देते हैं। यह तो उन्हीं का आशीर्वाद है। तुम अपने रहने का घर नहीं ख़ाली कर दे सकतीं, तो मैं अपना कमरा ख़ाली कर दूँगा। मैं जिस कमरे में सोता हूँ, उसी में सौर की जाय।"

पुरखिन ने बहुत ही नाराज़ और विस्मित होकर कहा—"विपिन, तेरी सभी बातें अनोखी हैं। तू ही क्या दुनिया-भर से निराला है? कुछ पागल तो नहीं हो गया! तेरे सोने के कमरे में लड़का होगा, तो तू भला कहाँ सोवेगा।"

विपिन—"मैं अपने पढ़ने के कमरे में सोऊँगा।"

पुरखिन—"वहाँ तेरी किताब रखने के लिये ही जगह नहीं है, पलँग कहाँ पड़ेगा।"

विपिन—"पलँग की ज़रूरत नहीं है। मैं आराम-कुर्सी पर ही लेट रहूँगा।"

पुरखिन ने परास्त होकर कहा—"उस घर में दाई आवेगी, हलालख़ोरिन आवेगी, और सब छुएगी?"

विपिन ने कहा—"हलालख़ोरिन तो रोज़ ही तुम्हारा पाख़ाना धोने आती है। उसमें कुछ दोष नहीं होता?"

पुरखिन ने कहा—"वह तो एक बार आती है, और उसके चले जाने पर गोबर डालकर पानी से सब राह पवित्र कर दी जाती है।"

विपिन ने कहा—"मेरे कमरे में भी तो एक बार ही आवेगी? उसके बाद तुम्हारा जी चाहे, गोबर और पानी से उसी तरह पवित्रता कर लेना।"

पुरखिन ने कहा—"बस, उसके एक बार आने से ही सब काम हो जायगा ? सौर में ज़च्चा के पास कौन रहेगा ? ज़च्चा और बच्चा को कौन देखेगा ? ज़च्चा को पानी, हरीरा वग़ैरह कौन देगा ? नहान कौन डालेगा ? तेल की मालिश कौन करेगा ?"

विपिन ने कहा—"ओह ! बस, तुम्हारी पवित्रता देख ली ! वही हलालफ़ोरिन, जिसके चलने से धरती तक अपवित्र हो उठती है, अपने हाथ से ज़च्चा को खाने की चीज़ देगी ? वाह, तुम्हारा आचार-विचार भी ख़ूब है ! उसके पास रहने से, भोजन की चीज़ें छूने से धर्म नष्ट न होगा ?"

पुरखिन ने कहा—"तुमसे बेकार की बहस करके सिर में दर्द कौन पैदा करे ! अरे कह तो दिया, सौर शुद्ध मानी गई है। उसमें हलाल-फ़ोरिन के छूने से, उसके हाथ का खाने से धर्म नहीं नष्ट होता।"

विपिन ने ज़ोर से हँसकर कहा—"यह कहो ! तुम्हारे शास्त्र की महिमा भी अपरंपार है। उसके विधानों की बारीकी हम लोगों की छोटी-सी बुद्धि में नहीं आ सकती। तुम लोगों ने ही उस शास्त्र को गढ़ लिया है, इसी से जब जैसा चाहिए, तब वैसा ही विधान ले लो। लेकिन अम्मा, तुम्हारा शास्त्र चाहे जो कहे, हम अपनी आँखों से देखते हैं कि भगी-चमार लोग कितने गंदे रहते हैं। वे गंदे रहने के कारण ही तो अछूत माने गए हैं ! उसपे तो यह अच्छा होगा कि तुममें से कोई एक आदमी सौर में ज़च्चा के पास रहे। क्षमा, मोक्षदा, जया वग़ैरह कितनी ही औरतें घर में बेकार बैठी गप-शप लड़ाया करती हैं। दासियाँ भी कम नहीं हैं। फिर हलालफ़ोरिन को वहाँ रखने की क्या ज़रूरत है ?"

पुरखिन ने कहा—"मगर सौर के भीतर तो कोई रह नहीं सकता। जो रहेगा, वह अशुद्ध हो जायगा, और गंगा में नहाए बिना शुद्ध न होगा।"

विपिन ने कहा—"मैं गंगा नहला लाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेता हूँ ! बताओ, सौर में कौन रहेगा ? चमा, तुम रहोगी ? मोक्षदा, तुम रहोगी ?"

सब चुप हो गईं। किसी को हामी भरते न देखकर मालती ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें ऊपर उठाकर, शांत स्वर से कहा—"मुझे रहने दिया जाय, तो मैं रह सकती हूँ।"

विपिन निराश हो चला था; इसी बीच में मालती के आश्वासन देने से वह उत्साहित हो उठा। उसने आनंद और कृतज्ञता के साथ एक बार मालती की ओर देखकर प्रफुल्लता के साथ कहा—"वह देखो अम्मा, मुझे आदमी मिल गया। अब तुम्हारी कोई आपत्ति मैं नहीं सुनूँगा। जा रोहिणा, दुबे से कह दे कि अब छपरबंद की कोई ज़रूरत नहीं है।"

"जो तेरा जी चाहे, सो कर !" कहकर, क्रोध से भरी हुई पुरखिन वहाँ से उठकर चल दीं। विपिन को शायद वह क़ाबू में कर लेतीं, लेकिन गले पड़कर मालती ने उनकी सब चाल मिट्टी कर दी। मालती के ही कारण अपनी हार होते देखकर पुरखिन का मन मालती के ऊपर एकदम नाराज़ हो उठा।

उस दिन विपिन की पाठ-सभा फिर नहीं जमी। विपिन ने मालती से कहा—"आओ मालती, मैं तुम्हें अपने पुस्तकालय की सैर करा लाऊँ।"

मालती के चारो ओर हलचल की आँधी जितनी ही गहरी होती जाती थी, विपिन उतना ही मालती की ओर आकृष्ट होता जाता था। आज मालती के साथ अपने मत की एकता देखकर विपिन का अनुराग-पक्षपाती चित्त मालती को अपना परम आत्मीय समझने लगा। उधर मालती भी विपिन की सत्प्रवृत्ति देखकर हृदय से विपिन को चाहने लगी। वह श्रद्धा और प्रीति की दृष्टि से विपिन

को देखने लगी, और उसका चित्त विपिन के गुणों पर रीझकर उसकी ओर आकृष्ट होने लगा। मालती उधर विपिन के साथ उसका पुस्तकालय देखने गई, इधर क्षमा आदि सब औरतें ज़ोर से ठहाका मारकर हँसने लगीं। उस हँसी का भाव यह था कि कैसी बेहया औरत है! किसी की शरम भी नहीं है!

बाईसवाँ परिच्छेद

चंडी-मंदिर में बैठा निवारण मुखर्जी एक नरियली में तमाखू पी रहा है। उसके पास ही एक कुल्हड़ में तमाखू और एक टूटी हाँडी में कोयला रक्खा है। निवारण लगातार सुल्फ़ा भरता, और दम-भर में दम मारकर उसे ख़ाक कर देता है। फिर दूसरा जमाता है। खाँसी के मारे बेदम हो-होकर कफ के ढेर उगल रहा है, मगर तमाखू पीना बंद नहीं होता।

शीत-काल की संध्या का अंधकार धीरे-धीरे घना होता आ रहा है। रसोई के छप्पर से धुआँ निकलकर उस घर के ऊपर चक्र बाँध रहा है। किंतु हेमंत की हिम-मंथर, अलस वायु उस धुएँ को लेकर ऊपर नहीं उठ सकती, वह आँगन में लगे हुए एक नीम के पौदे के सिर पर पगड़ी की तरह उस धुएँ के लच्छों को लपेटती जा रही है। घास के ऊपर कुछ झींगुर अपनी कर्कश रट से उस संध्या-काल के सन्नाटे को जैसे आरे से चीर रहे हैं। एक कठफोड़वा (लंबी चोंचवाला) पक्षी रह-रहकर किसी डाल पर 'ठक-ठक ठकर-ठकर'-शब्द करके मौन संध्या के ध्यान को जैसे उचटा रहा है।

निवारण ने पुकारा—"अरे गोबरा, ओ गोबरा!"

घर के भीतर से विरक्ति-व्यंजक रूखे स्वर में उत्तर मिला—"क्या है? क्यों चिचिया रहे हो? हर घड़ी एक ही धुन है—गोबरा, गोबरा!"

निवारण ने भी कुपित होकर कहा—"अरे संध्या हो गई—कुछ होश भी है! आरती करने कब जायगा?"

श्रीमान् गोवर्द्धनाचार्यजी कस-कसकर गाँजे की टिकिया मलते हुए बाहर आकर फूटे गले से कहने लगे—"रोज़-रोज़ मुझसे न जाया जायगा—समझ गए! तुम क्यों नहीं जाते? आज कहारों की पंचायत है, कहरवा-नाच होगा, और मोची टोले में नौटंकी का नगाड़ा ठनकेगा—मैं वहाँ तमाशा देखने जाता हूँ।"

निवारण ने प्रार्थना-नम्र स्वर में कहा—"अरे, नाच और नौटंकी तो रात-भर होती रहेगी। ज़रा जाकर घंटा हिलाकर, आरती घुमाकर पहले नैवेद्य और बियालू का सामान घर में लाकर पटक दे, फिर चाहे जहाँ जाकर मर!"

गोव०—"मैं रोज़-रोज़ जाता हूँ, एक दिन तुम ही क्यों नहीं हो आते?"

निवा०—"अरे, एक तो अब मुझसे उतनी बड़ी आरती नहीं उठती, दूसरे आरती और नैवेद्य के मंत्र भी मुझे मालूम नहीं हैं।"

गोव०—"मैं ही क्या रुस्तम का साला हूँ? मुझे हां क्या चारो वेद याद हैं?"

निवा०—"अरे, अभी तू जवान है, आरती दो-चार दफ़े घुमाने में तुझे उतनी तकलीफ़ न होगी। मैं बूढ़ा हूँ, घंटेवाला हाथ चलता है, तो आरतीवाला नहीं चलता, और आरतीवाला हाथ चलता है, तो घंटेवाला नहीं चलता।"

गोव०—"अजी, रहने दो। वहाँ कोई इन बातों को देखने-सुनने आता है; घंटा बजाकर, दो-एक फूल फेककर चले आना।"

निवा०—"तूने तो कह दिया कि जाओ, घंटा बजाकर चले आओ; मगर सच तो यह है कि मैं विपिन गुंडे के डर से वहाँ जाने की हिम्मत नहीं करता। किशोर और विपिन को देखते ही मेरा

कलेजा धड़कने लगता है; प्राण काँप उठते हैं। मुझ पर उनकी नज़र ऐसी टेढ़ी पड़ती है कि मेरा ख़ून पानी हो जाता है। उस पर और आफ़त यह हो गई कि मैंने भट्टाचार्य को समाज से अलग कर दिया है। इससे विपिन और भी मेरे ख़ून का प्यासा हो रहा है। क्या जाने, ठाकुरद्वारे में अकेला पाकर कहीं मुझे ठोक न दे।"

गोव०—"तुम्हें ठोक सकता है, और मुझे शायद नहीं ठोक सकता—क्यों?"

निवा०—"अरे, ठोक तो तुझे भी सकता है; लेकिन तू अभी जवान है, दो-चार हाथ खा लेने से तेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। अगर तेरा कोई हाड़ भी टूट गया, तो वह अभी जुड़ जायगा। लेकिन मेरे बूढ़े हाड़ ठहरे। तनिक भी औचट-चपेट पड़ गई, तो मैं जन्म-भर के लिये बेकार हो जाऊँगा।"

गोव०—"ना बाबा, मैं न हाड़ तुड़वाऊँगा, न जुड़वाऊँगा। तुमने पहले क्या समझकर भट्टाचार्य को समाज से अलग किया था? क्या मेरी ही हड्डी-पसली तुड़वाने के लिये ही यह काम कर बैठे हो? अगर इस तरह उनसे डरकर रहना है, तो फिर उन्हें समाज से अलग ही क्यों किया? इससे फ़ायदा क्या हुआ?"

निवा०—"फ़ायदा नहीं हुआ? एक तीर से दो पंछी मारे कि नहीं? उधर भट्टाचार्य से बदला ले लिया, उसे नीचा दिखा दिया, और इधर ज़मींदार के घर की पुरोहिती भी हाथ लग गई। भगवान् की कृपा से उनके नैवेद्य का सामान रोज़ इतना घर आता है कि तेरी मा को उस दिन से संध्या के समय चूल्हा नहीं जलाना पड़ा! प्रसाद, नैवेद्य, भोग, सीधा वग़ैरह नित्य इतना आता है कि खाते-खाते अजीरन हो गया! तब भी कहता है, फ़ायदा क्या हुआ?"

गोव०—"ख़ैर, फ़ायदा चाहे जितना हुआ हो, आज मैं नहीं जा सकता। यहाँ मैं खड़ा तुमसे बक-बक कर रहा हूँ, उधर नौटंकी शुरू

हो गई होगी। जानते हो, यह नौटंकी ख़ास हाथरस से बुलाई गई है! जाता हूँ, अभी गाँजा बनाने में दस-पंद्रह मिनट लग जायँगे!"

इतना कहकर और उत्तर की राह न देखकर गोवर्द्धन वहाँ से चल खड़ा हुआ। इधर निवारण उसे नालायक़, पाजी, नमकहराम वग़ैरह विशेषणों से याद करता हुआ अपना क्रोध निकालने लगा। अंत को निवारण ने हुक्क़ा रखकर अलगनी पर से राम-नामी दुपट्टा उठाकर ओढ़ा, और कोने से अपनी फटे बाँस की लाठी उठाकर हाथ में ली। उसके बाद अपने नौकर को पुकारने लगा—"कन्हैया—ओ कन्हैया!"

"जी, आया" कहकर, सानी से सने दोनो हाथ साफ़ करता हुआ, कन्हैया हाज़िर हुआ। उसके पैर घुटने तक गोबर में सने थे। वह गोशाला साफ़ करके गउओं की सानी कर रहा था।

निवारण ने उससे कहा—"अरे, जल्दी से लालटेन तो जला दे! मुझे ज़मींदार बाबू के यहाँ ठाकुरजी की आरती करने जाना है।"

कन्हैया लालटेन जलाने चला गया। निवारण खड़े-खड़े कहने लगा—"दुहाई है मैया काली! जय बाबा लक्ष्मी-जनार्दन! विपिन का सामना न हो! दुहाई है बाबा, जय हो मैया की! ख़ैरसल्लाह से घर लौट आऊँगा, तो महावीर बाबा, तुम्हारा ढाई दमड़ी का प्रसाद चढ़ऊँगा। श्रीहरि—श्रीहरि! मधुसूदन—नारायण! दुर्गा—दुर्गतिहारिणी! इसीलिये तो मैं देवी-देवतों का ध्यान नहीं करता! ध्यान करते ही कलेजा मुँह को आने लगता है, हाथ-पैरों में सनसनी चढ़ आती है, बेधड़क होकर कोई भी काम नहीं किया जाता। राम-राम! मगर नहीं, ना-ना, इस समय ऐसी बात मुँह से निकालना घोर पाप है! देवतों ही के भरोसे जान पर खेलकर शत्रु के मुँह में जा रहा हूँ। देवता ही मेरी रक्षा और सहायता करेंगे। दुर्गा-दुर्गा! मधुसूदन-मधुसूदन!"

इतने में कन्हैया एक चौकोनी, पुराने ढंग की लालटेन के भीतर मिट्टी के तेल की कुप्पियां जलाकर रख गया। लालटेन में एक तरफ़ का शीशा नदारद था। उस तरफ़ पुराने बंगवासी पत्र का थोड़ा-सा हिस्सा फाड़कर लेई से चिपका दिया गया था। उसके दूसरे पहलू का शीशा था तो सही, लेकिन उसका ऊपर का हिस्सा टूटा था, और बाक़ी शीशा भीतर धँसकर हिल रहा था। उसकी बग़ल का शीशा चिटका हुआ था, और चौकठे से उसके अलग होने में बहुत देर नहीं थी। केवल एक तरफ़ का शीशा समूचा था। लालटेन के भीतर इतना रेंड़ी और मिट्टी का तेल गिर-गिरकर जम गया था—कीचड़-सी मची हुई थी। कुप्पियों से रोशनी की अपेक्षा धुआँ ही अधिक निकल रहा था। कन्हैया ने लालटेन लाकर निवारण के हाथ में दी। निवारण ने लालटेन हाथ में लेते ही कहा—"एँ: ! यह क्या लगा लाया है ? गोबर है क्या ?"

कन्हैया ने सब दाँत बाहर निकालकर कहा—"एँ ! गोबर नहीं है, भीगी हुई खली होगी ! मैं सानी कर रहा था कि नहीं !"

निवारण ने जामे से बाहर होकर कहा—"ए: ए: ! पाजी-अहमक़-साले ! हाथ धोकर नहीं काम कर सकता था ? ला-ला, फटा-पुराना चिथड़ा या कोई काग़ज़ दे। राम-राम ! हाथ भर-भर गया !"

कन्हैया ने काग़ज़ लाकर दिया। उससे हाथ और लालटेन पोंछकर निवारण ठाकुरजी की आरती करने चला। जाते समय फिर कई बार दुर्गा और मधुसूदन का नाम लेना नहीं भूला।

घर से बाहर निकलते ही दरवाज़े के पास पड़े हुए सूखे पत्तों के ढेर पर कुछ खड़खड़ाहट हुई। असल में वह एक सियार था, जो निवारण की आहट पाकर उस ढेर से निकलकर भागा। एक कोई बड़ा पक्षी पेड़ से उड़कर निवारण की खोपड़ी पर से निकल गया। एक कोई जानवर दूर पर भयानक शब्द से चिल्ला उठा।

निवारण अपने मन में कहने लगा—राम-राम। सभी असगुन अलच्छन देख पड़ते हैं! पत्तों में जो खड़खड़ाहट हुई थी, वह ज़रूर साँप था। दाहनी ओर सियार, ऊपर गिद्ध, सामने किसी विकट जीव का भयंकर शब्द! एकदम चार-चार असगुन नज़र आते हैं! मधुसूदन-मधुसूदन! आज ज़रूर विपिन के हाथ से अपमान, गाली या मार खाना बदा है! ज़मींदार का लड़का होना चाहिए साची-विनायक या गोबर-गनेस, लेकिन विपिन तो बाप-रे-बाप, जैसे ताँतियाँ भील का चेला है! अरे बाबा, तू ज़मींदार का लड़का है, तुझे चाहिए कि आराम से ग़लीचे पर पड़े-पड़े यार-दोस्तों से हँसी-मसख़री कर, मज़े से मुश्की तमाखू फूँक। बहुत कर, तो गाड़ी पर बैठकर, गौहरजान या मलका बीबी को बग़ल में बिठाकर, कलकत्ते में क़िले के मैदान की हवा खा, या ठेठर की सैर कर! मगर विपिन ऐसा गँवार या हरामज़ादा है कि उसे यह कोई शौक़ ही नहीं! जो करेगा, सो अनोखा! बैट-बॉल खेलेगा, डंबल हिलावेगा। अरे, मैं भी कैसा अहमक़ हूँ, बेकार की बातें सोच-सोचकर अपना दिमाग़ ख़राब कर रहा हूँ। कैसा बुरा अभ्यास है कि घड़ी-भर राम-नाम नहीं जप सकता। दुर्गा-दुर्गा! हरि-हरि! नारायण-नारायण!

अंदर की ड्योढ़ी पर आकर निवारण ने देखा, अंदर का बूढ़ा दरबान दुबे अपनी दाढ़ी के बीच से दो हिस्से करके, उस पर ताव देता हुआ अपनी मौज में पढ़ रहा है—

सुमिरत रामहि तजहि जन तृन-सम विषय-विलासु;
रामप्रिया जगजननि सिय कछु न आचरजु तासु।

निवारण ने आकर भय-विजड़ित स्वर में कहा—"नमस्कार दुबेजी! छोटे राजा कहाँ हैं?"

दुबे—"नमस्कार निवारन बाबू! छोटे-राजा तो अभी-अभी कहीं निकलकर गए हैं। भट्टाचार्य बाबू के घर गए होंगे।"

निवारण ने आश्वस्त होकर अंतःपुर के दरवाज़े पर से पुकारा—"रोहिणी!"

रोहिणी दूध औटा रही थी। उसने उफन रहे दूध को चिमचे से चलाते-चलाते कहा—"कौन है?"

निवारण—"मैं हूँ निवारणचंद्र। ठाकुरजी की आरती करने आया हूँ।"

रोहिणी के पास ही एक और दासी मसाला पीस रही थी। दूर पर और दो टहलुई तरकारी काट रही थीं। रोहिणी ने हड़बड़ाकर कहा—"सँवलिया, सँवलिया, तू ज़रा दूध तो देख, मैं पुजारी बाबा को ठाकुरद्वारे में पहुँचा आऊँ। जिसे देखो, वही रोहिणी को पुकारता है। जैसे रोहिणी के सिवा और कोई आदमी ही घर में नहीं है।"

रोहिणी निवारण के बुलाने से होनेवाले हार्दिक आनंद को छिपाकर, जैसे बहुत ही अनिच्छा के साथ सँवलिया को अपना काम सौंपकर, वहाँ से सिधारी। रोहिणी की प्रकृति निवारण की प्रकृति से बहुत मिलती थी। दोनो ही कुटिल, कुकर्मी, पर-छिद्रान्वेषी और परपंची थे। रोहिणी निवारण से घर-भर का परपंच करती थी, और निवारण भी इस तरह सब टोह पा जाता था। इसी से निवारण की आवाज़ सुनकर रोहिणी को बड़ा आनंद हुआ।

निवारण ड्योढ़ी के बाहरवाले आँगन में खड़ा था। रोहिणी ने जाकर कहा—"आइए।"

रोहिणी के पीछे जाते-जाते निवारण ने कहा—"क्यों रोहिणी, तुम्हारे राजभवन की ख़बर क्या है? कोई नई ख़बर भी है?"

रोहिणी—"हमारे यहाँ ख़बरों की भी भला कमी है? नित नई ख़बर रहती है। छोटे राजा सब औरतों को पढ़ा-लिखा रहे हैं, सोने के कमरे में सौर का ठिकाना किया गया है। पंडितजी, सन्नाटे में

आकर मेरी तरफ़ क्या देख रहे हो ? मैं क्या झूठ कहूँगी ? तुम्हारी ही देह छूकर कहती हूँ, सब सच है, इसमें रत्ती-भर भी झूठ नहीं।"

निवारण—"ऐं ! तू कहती क्या है ? बड़ी बहू ने कुछ नहीं कहा ? वह भी नहीं मना करतीं ?"

रोहिणी—"हमारी बहू-रानी ने ही तो सब बिगाड़ रक्खा है ! सौत के लड़के के इतने दुलार कोई भी करता है ! अच्छा, तुम्हीं न एक दफ़ा बड़े राजा से कहो। सब धरम नास हो रहा है ! एकदम संड-भंड किरिस्तानी मामला हो रहा है !"

निवारण—"हाँ, सो कहना तो पड़ेगा ही। ऐसे अनाचार हो रहे हैं ! इसके सिवा यह भी तो सुन पड़ता है कि विपिन नवकिशोर के घर अभी तक बराबर जाता-आता है। वह समाज से अलग कर दिया गया है, मगर विपिन उसका संसर्ग नहीं छोड़ता। यह भी समाज-भर का अपमान करना है ! इसका कुछ उचित उपाय तो करना ही पड़ेगा।"

रोहिणी—"हाँ, जाते क्यों नहीं ! किशोर तो छोटे राजा का यार है ! जान से बढ़कर प्यारा है !"

निवारण ने गंभीर होकर, चिंतित भाव से कहा—"हूँ ! अच्छा, तुम बता सकती हो रोहिणी, किसकी सौर विपिन के सोने के कमरे में होगी ? उसी मालती लौंडिया की तो नहीं ?"

रोहिणी ने हँसकर कहा—"ना, ना, अभी तो ऐसा नहीं हुआ। लेकिन हाँ, होने में अधिक देर भी नहीं जान पड़ती। फ़िलहाल पाँचू की मा की बारी है।"

निवारण—"ओह ! अच्छा, उसके ऊपर विपिन को इतनी हमदर्दी क्यों है ?"

रोहिणी—"क्या जाने भई, इसके भीतर क्या मामला है !"

"हरि हो, मधुसूदन, तुम्हारी इच्छा !" कहकर निवारण ने पैर धोए, और फिर ठाकुरद्वारे के भीतर गया।

रोहिणी ने कहा—"तब तक आप आरती कीजिए, मैं जया बीबी से कह आऊँ कि ठाकुरजी का भोग और आपकी बियालू दे जायँ।"

ठाकुरद्वारे में और किसी को न देखकर निवारण को शांति मिली। वह चटपट आरती जलाकर ज़ोर से घंटा हिलाने लगा। शंख का जल इधर-उधर छिड़ककर उसने जल्दी से आरती का काम समाप्त कर दिया। शंका यह थी कि कहीं कोई आ न जाय, और आरती करने में उसकी मूर्खता का भंडा न फूट जाय।

ठाकुर का भोग और पुजारी की बियालू का सामान लेकर जया आई। उसने पुकारकर रोहिणी से कहा—"रोहिणी, ज़रा यहाँ पानी डालकर चौका तो लगा दे।"

रोहिणी चौका लगा रही थी, जया थाली में भोग और बियालू का सामान लिए खड़ी थी, निवारण मुखर्जी शंख लिए उसे प्राणपण-शक्ति से बजा रहे थे, इसी समय विपिन वहाँ आकर ज़ोर से अट्टहास कर उठा।

उसके उस अट्टहास से सब एकदम चौंक पड़े। रोहिणी के हाथ से पानी का लोटा, जया के हाथ से थाली और निवारण के हाथ से शंख, तीनों चीज़ें एक साथ झनझनाहट के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

विपिन ने हँसते-हँसते कहा—"वाह! वाह! ठाकुरजी की तक़दीर बहुत ही अच्छी देख पड़ती है! नंदकिशोर स्मृतिरत्न के बदले निवारण मुखर्जी ने और चाची-अम्मा के बदले जया ठाकुरानी ने ठाकुर की सेवा का काम पाया है! और, उस पर रोहिणी भी आकर उसमें शामिल हो गई है! एकदम अग्रहस्पर्श-योग देख पड़ता है।"

विपिन फिर ठहाका मारकर ज़ोर से हँसने लगा।

झनझनाहट सुनकर "एं, क्या हुआ! क्या हुआ!" कहती हुई

बड़ी बहू वहाँ आकर उपस्थित हो गईं। ठाकुरद्वारे के भीतर जाकर देखा, निवारण, जया और रोहिणी, तीनो आदमी चित्र-लिखित से खड़े हैं, और सामने खड़ा हुआ विपिन हँस रहा है।

घूँघट काढ़कर, धीमे स्वर में पुरखिन ने पूछा—"ऐं! जया, यह सब सामान तुमने कैसे फेंक दिया? अब क्या होगा! ठाकुरजी का भोग काहे का लगाया जायगा! रोहिणी, तू खड़ी हुई क्या देख रही है? फ़र्श-भर में पानी की कीचड़ हो रही है; इसे साफ़ कर।"

किसी से ज़रा हिला भी नहीं गया। उनके कानों में विपिन की व्यंग्य की हँसी प्रलय-काल के भैरव-विषाण की प्रतिध्वनि की तरह गूँज रही थी—"हा! हा! हा!"

विपिन ने हँसते-हँसते कहा—"अम्मा, ठाकुरजी ऐसे शुद्ध आचार-वाले लोगों के हाथ से कुछ नहीं खायँगे, इसी से उन्होंने भोग की थाली उलट दी है। जहाँ निवारण मुखर्जी पुजारी हैं, जया ठकुरानी भोग लानेवाली हैं, और रोहिणी सेवा-दासी है, वहाँ खाने को आदमी का ही जी न चाहेगा, ठाकुरजी तो ठाकुरजी ही हैं! अगर तुम लोग ख़ुद ठाकुरजी की सेवा नहीं कर सकतीं, तो पाप का बोझ बढ़ाने के लिये घर में ठाकुरजी का झंझट क्यों लगा रक्खा है? ठाकुरजी भी क्या तुम्हारे ज़मींदारी-सरिश्ते के गुमाश्ते हैं, जो तुम्हारा हुकुम सुनेंगे, और तुम्हारे हाथ उठाकर दिए प्रसाद को पाकर कृतार्थ हो जायँगे?"

पुरखिन ने धीमे स्वर में कहा—"ये क्या अलच्छन की बातें बक रहा है विपिन? तुम लोग ठाकुर-देवता भी नहीं मानते!"

विपिन ने ऊँचे स्वर में कहा—"ठाकुर-देवता मानता हूँ, इसी से तो इन लोगों का पाखंड और अनाचार मुझसे नहीं देखा जाता! जिनका मुँह देखने से भी पाप होता है—"

"अँः, क्या करता है ! जा-जा, तू यहाँ से जा !" कहती हुई पुरखिन ने विपिन को ज़बरदस्ती ठेलकर ठाकुरद्वारे के बाहर निकाल दिया। विपिन हँसते-हँसते वहाँ से चल दिया।

पुरखिन ने जया से कहा—"जाओ, उस कोठरी से कल की बनाई हुई अनूठी मिठाई निकालकर ठाकुरजी के भोग को ले आओ, और पुजारीजी के लिये पक्का सीधा निकाल दो। ये पूरियाँ नौकर-चाकर खा लेंगे।"

निवारण ने इधर-उधर ताककर देखा कि विपिन खड़ा है या गया। जब विपिन नहीं देख पड़ा, तब उसके मुँह से बोल फूटा। उसने कहा—"सीधा निकालने में देर होगी। मुझे एक बहुत ज़रूरी काम है, मैं ठहर नहीं सकूँगा, अभी जाऊँगा। मधुसूदन-मधुसूदन !"

निवारण इस यम-पुरी से भागकर बाहर जाय, तो उसके जान में जान आवे। उसे जान पड़ता था, अभी किसी दीवार को अपने वज्र-सदृश अट्टहास से विदीर्ण करके विपिन नृसिंह-मूर्ति से प्रकट होने चाहता है, और वह अभी अपने नाख़ूनों से उसका पेट फाड़कर ख़ून चूस लेगा !

पुरखिन ने कहा—"अच्छा, तो मैं आपका सीधा या बियालू बनवाकर दुबे के हाथ आपके घर भेज दूँगी। आप बस भोग लगा दीजिए।"

पुरखिन के साथ जया और रोहिणी वहाँ से चली गईं। निवारण अकेला, आँधी में केले के पत्ते की तरह, काँपता हुआ बैठा मधुसूदन-मधुसूदन जपने लगा।

---

*

तेईसवाँ परिच्छेद

भोग लगाने के बाद अंदर की ड्योढ़ी से बाहर निकलने पर निवारण की चिंता-शक्ति फिर फिर आई। वह विपिन के व्यंग्य और अट्टहास को स्मरण करके दाँत पीसकर, आँखें चढ़ाकर, आप-ही-आप कहने लगा—"हूँ! इसका बदला मैं अगर न लूँ, तो—"

निवारण क़सम खाते-खाते रुक गया। उसने सोचा, ज़मींदार के लड़के विपिन को नीचा दिखाना कोई सहज काम नहीं है।

निवारण टूटी हुई लालटेन हाथ में लिए, फटी हुई लाठी फटफटाता हुआ, हरिविहारी बाबू के बैठकख़ाने में पहुँचा। उस समय हरिविहारी बाबू भोजन के लिये जाने के पहले भूमिका के तौर पर बोतल और गिलास लिए हाज़मे का अर्क़ पी रहे थे।

हरिविहारी ने निवारण को आया हुआ देखकर कहा—"क्यों काका, इतनी रात को कैसे दर्शन दिए? बड़ा जाड़ा है! ज़रा-सी लोगे क्या?"

हरिविहारी ने सफ़ेद शीशे के ग्लास में वह अर्गवानी रंग ढाल-कर निवारण को दिखाया। निवारण का चित्त उस समय भीतर से प्रसन्न नहीं था। इसी से उसने ऐसी लोभनीय वस्तु के निमंत्रण की उपेक्षा करके कहा—"ना भैया, इतने आदर की ज़रूरत नहीं है। भीतर महल से अपमानित हो आने पर बाहर के बैठकख़ाने का आदर मुँह चिढ़ाना-सा जान पड़ता है। मैं कहने आया हूँ कि कल ठाकुरजी की पूजा के लिये और आदमी तलाश कर लेना। मुझसे यह काम नहीं हो सकेगा।"

हरिविहारी ने व्यस्त होकर कहा—"क्यों-क्यों? हुआ क्या?"

निवारण—"अंत को क्या बुढ़ापे में मार खाऊँ? तुम बड़े आदमी ठहरे, सब कर सकते हो भैयाजी। तुम्हारे लिये तो ये

सब बातें एक दिल्लगी हैं। हमारे ही-जैसे ग़रीब आदमियों के लिये पाप हैं !"

हरिविहारी एकांत-वासी जीव ठहरे ! संसार की कुछ भी खोज-ख़बर नहीं रखते। किसी से अधिक मिलते-जुलते भी नहीं। खाने या सोने के लिये, सिर्फ़ दो दफ़े, घर के भीतर जाते हैं; बाक़ी दिन-भर बैठक में गाव के सहारे बैठे तमाखू की चिलमें जलाया करते हैं। उनका सुख-दुख का साथी बस एक रामधन कहार है। ज़मींदारी का सब काम-काज दीवानजी देखते हैं। जब दीवानजी को बहुत ही ज़रूरत जान पड़ती है, तब वही अपने मालिक के पास सलाह लेने आते हैं। अलस-प्रकृति और संग से विरक्त मालिक हरिविहारी बाबू आपसे किसी काम में हस्तक्षेप नहीं करते। उन्हें यह डर लगा रहता है कि कहीं उन्हें ख़ुद कोई चेष्टा न करनी पड़े, ख़ुद कोई नया बंदोबस्त न करना पड़े। इसी भय से किसी प्रचलित व्यवस्था में रद्दोबदल करने का साहस उन्हें नहीं होता। भट्टाचार्य को समाज से अलग करने में हरिविहारी को कोई असुविधा इसलिये नहीं हुई कि निवारण ने उनका सब काम सँभाल लिया। इस समय उमा निवारण को फटी-फटी बात करते और इस्तीफ़ा देते देखकर हरिविहारी चिंतित हो उठे। उन्होंने कहा—"अरे, हुआ क्या, सो तो पहले कहो।"

निवारण ने कहा—"तुम्हारे बेटे साहब की—भैयाजी—तुम्हारे लायक़ बेटे साहब की सब करतूत है ! बी० ए०, एम्० ए० पास हो गए हैं, ज़मींदार के लड़के हैं, इसी से अहंकार के मारे ज़मीन पर पैर नहीं रखते। मुझे आज मारते-मारते छोड़ा। वह तो बड़ी बहू आ गईं, इसी से जान बच गई ! क्यों भाई, मैंने क्या अपराध किया है ? तुम लोगों के ठाकुर की पूजा करनेवाला कोई न था ; मैं मित्रता का ख़याल करके पूजा करने लगा—बस, यही तो मेरा अपराध है !

अच्छा भाई, तुम मारने को तैयार हो, तो मैं कल से नहीं आऊँगा !"

हरिविहारी ने आँखें बंद किए किए कहा—"ना-ना, ऐसा न करना। विपिन कहीं तुम्हारा अपमान कर सकता है ? अगर उसने कुछ अनुचित व्यवहार किया है, या तुम्हें कोई कड़ी बात कहकर बेअदबी की है, तो मैं उसे धमका दूँगा। फिर वैसा नहीं करेगा।"

निवारण का साहस बढ़ गया। उसने कहा—"तुम्हें मेरी बात का यक़ीन न हो, तो बड़ी बहू से, जया से, रोहिणी से पूछ देखो। ये सब वहीं मौजूद थीं। इन्हीं से पूछो, मेरा क्या अपराध था, जो इन सबके सामने विपिन ने मेरा ऐसा अपमान किया ! ऐसा अपमान किया कि कभी किसी ने किसी का न किया होगा। बस. जूतों से मारना-भर बाक़ी रह गया। बड़ी बहू ने आकर मुझे बचाया, नहीं तो आज तुम्हारे घर में ब्रह्म-हत्या हो जाती !"

हरिविहारी ने कहा—"नहीं काका, तुम कुछ चिंता न करो ; मैं उसे ख़ूब अच्छी तरह डाँट दूँगा। तुम जिस तरह पूजा करते हो, उसी तरह किए जाओ। अब विपिन तुम्हें कभी कुछ नहीं कहेगा।"

निवारण ने कहा—"विपिन मुझे अब कुछ कहे या न कहे, मैं तो अब तुम्हारे यहाँ यों भी नहीं आ सकूँगा। तुम गाँव के ज़मींदार हो, हमारे सिरमौर हो ! लेकिन भैयाजी, धर्म तो सबसे बड़ी चीज़ है ! तुम्हें ख़ुश करने के लिये, या तुम्हारी नाराज़ी के डर से, धर्म और जाति को तो हम नहीं छोड़ सकते।"

हरिविहारी ने खीझकर कहा—"क्यों, और क्या हुआ ?"

निवारण ने कहा—"यह पूछो कि क्या नहीं हुआ ! तुम्हारे घर में औरतों का स्कूल खुला है, सोने के कमरे में सौर बनाई गई है, जो समाज से अलग कर दिए गए हैं, उनके यहाँ का आना-जाना बना हुआ है। अब म्लेच्छपने में और बाक़ी क्या है ?

सब बातें एक दिल्लगी हैं। हमारे ही-जैसे ग़रीब आदमियों के लिये पाप हैं!"

हरिविहारी एकांत-वासी जीव ठहरे! संसार की कुछ भी खोज-ख़बर नहीं रखते। किसी से अधिक मिलते-जुलते भी नहीं। खाने या सोने के लिये, सिर्फ़ दो दफ़े, घर के भीतर जाते हैं; बाक़ी दिन-भर बैठक में गाव के सहारे बैठे तमाख़ू की चिलम जलाया करते हैं। उनका सुख-दुख का साथी बस एक रामधन कहार है। ज़मींदारी का सब काम-काज दीवानजी देखते हैं। जब दीवानजी को बहुत ही ज़रूरत जान पड़ती है, तब वही अपने मालिक के पास सलाह लेने आते हैं। अलस-प्रकृति और संग से विरक्त मालिक हरिविहारी बाबू आपसे किसी काम में हस्तक्षेप नहीं करते। उन्हें यह डर लगा रहता है कि कहीं उन्हें ख़ुद कोई चेष्टा न करनी पड़े, ख़ुद कोई नया बंदोबस्त न करना पड़े। इसी भय से किसी प्रचलित व्यवस्था में रद्दोबदल करने का साहस उन्हें नहीं होता। भट्टाचार्य को समाज से अलग करने में हरिविहारी को कोई असुविधा इसलिये नहीं हुई कि निवारण ने उनका सब काम सँभाल लिया। इस समय उसी निवारण को फटी-फटी बात करते और इस्तीफ़ा देते देखकर हरिविहारी चिंतित हो उठे। उन्होंने कहा—"अरे, हुआ क्या, सो तो पहले कहो।"

निवारण ने कहा—"तुम्हारे बेटे साहब की—भैयाजी—तुम्हारे लायक़ बेटे साहब की सब करतूत है! बी० ए०, एम्० ए० पास हो गए हैं, ज़मींदार के लड़के हैं, इसी से अहंकार के मारे ज़मीन पर पैर नहीं रखते। मुझे आज मारते-मारते छोड़ा। वह तो बड़ी बहू आ गईं, इसी से जान बच गई! क्यों भाई, मैंने क्या अपराध किया है? तुम लोगों के ठाकुर की पूजा करनेवाला कोई न था; मैं मित्रता का ख़याल करके पूजा करने लगा—बस, यही तो मेरा अपराध है!

अच्छा भाई, तुम मारने को तैयार हो, तो मैं कल से नहीं आऊँगा !"

हरिविहारी ने आँखें बंद किए किए कहा—"ना-ना, ऐसा न करना। विपिन कहीं तुम्हारा अपमान कर सकता है ? अगर उसने कुछ अनुचित व्यवहार किया है, या तुम्हें कोई कड़ी बात कहकर बेअदबी की है, तो मैं उसे धमका दूँगा। फिर वैसा नहीं करेगा।"

निवारण का साहस बढ गया। उसने कहा—"तुम्हें मेरी बात का यक़ीन न हो, तो बड़ी बहू से, जया से, रोहिणी से पूछ देखो। ये सब वहीं मौजूद थीं। इन्हीं से पूछो, मेरा क्या अपराध था, जो इन सबके सामने विपिन ने मेरा ऐसा अपमान किया ! ऐसा अपमान किया कि कभी किसी ने किसी का न किया होगा। बस-जूतों से मारना-भर बाक़ी रह गया। बड़ी बहू ने आकर मुझे बचाया, नहीं तो आज तुम्हारे घर में ब्रह्म-हत्या हो जाती !"

हरिविहारी ने कहा—"नहीं काका, तुम कुछ चिंता न करो ; मैं उसे ख़ूब अच्छी तरह डाँट दूँगा। तुम जिस तरह पूजा करते हो, उसी तरह किए जाओ। अब विपिन तुम्हें कभी कुछ नहीं कहेगा।"

निवारण ने कहा—"विपिन मुझे अब कुछ कहे या न कहे, मैं तो अब तुम्हारे यहाँ यों भी नहीं आ सकूँगा। तुम गाँव के ज़मींदार हो, हमारे सिरमौर हो ! लेकिन भैयाजी, धर्म तो सबसे बड़ी चीज़ है ! तुम्हें ख़ुश करने के लिये, या तुम्हारी नाराज़ी के डर से, धर्म और जाति को तो हम नहीं छोड़ सकते।"

हरिविहारी ने खीझकर कहा—"क्यों, और क्या हुआ ?"

निवारण ने कहा—"यह पूछो कि क्या नहीं हुआ ! तुम्हारे घर में औरतों का स्कूल खुला है, सोने के कमरे में सौर बनाई गई है, जो समाज से अलग कर दिए गए हैं, उनके यहाँ का आना-जाना बना हुआ है। अब म्लेच्छपने में और बाक़ी क्या है ?

तुम्हारे प्यारे पुरोहित को अलग करके मैंने ही बड़ी भारी ग़लती की ! मुझे ही समाज से अलग होकर रहना चाहिए था !"

हरिविहारी ने विस्मित होकर कहा—"ऐं, मेरे घर में इतनी बातें हो गईं, और मुझे ख़बर भी नहीं ! रामधन, जा, विपिन को बुला तो ला।"

निवारण ने घबराकर कहा—"ना, ना, भैया, यह क्या ग़ज़ब करते हो ! तुम्हारी ही दुहाई है, आज रात को विपिन से कुछ भी न कहना ! वह समझेगा, मैंने ही तुममे लगाया-बुझाया है। वह ऐसा गँवार लड़का है कि बिगड़कर मेरी खोपड़ी तोड़े बिना नहीं रहेगा ! दुहाई है भाई, धर्म साक्षी है, मेरा कहा मानो, नहीं मेरी जान नहीं बचेगी। मैं तुमसे और कुछ नहीं कहता। मैं ख़ुद ही अलग होकर रहूँगा। मधुसूदन-मधुसूदन !"

हरिविहारी ने कहा—"अच्छा, अभी रहने दो। मैं फिर विपिन से समझाकर कहूँगा।"

निवारण चटपट अपनी फटी हुई लाठी लेकर उठ खड़ा हुआ।

हरिविहारी ने कहा—"मगर तुम जिस तरह पूजा करने आते थे, उसी तरह आते रहना।"

इसका कुछ जवाब न देकर "मधुसूदन-मधुसूदन !" कहता हुआ निवारण वहाँ से सरपट भागा।

हरिविहारी की बैठक के नीचे के खंड में एक साधारण लंबी-चौड़ी कोठरी थी। ज़मींदार-परिवार के आश्रित, आत्मीय, अनात्मीय, सब आदमी उसी कोठरी में जमा होते थे, ताश-चौसर खेलते थे, गाँजे-चरस पर दम लगाते थे, दुनिया-भर की निंदा और परपंच करके जी बहलाते थे। निवारण ने ऊपर से उतरकर, नीचे उसी कोठरी के दरवाज़े पर जाकर, धीरे से पुकारा—"भैया शिवचरण !"

शिवचरण पुरखिन का भांजा लगता था। पाँचू उसी का लड़का

था। शिवचरण उस समय निराले में शक्ति की उपासना करने बैठा था। निवारण की आवाज़ सुनते ही चपपट शराब की बोतल छिपाकर, शराब से जिसका अभिषेक हो चुका था, वह हाथ चट से मूछों पर रगड़कर, शिवचरण ने कहा—"क्या है ? कौन है ?"

निवारण ने स्नेहार्द्र स्वर में कहा—'मैं हूँ भैया, मैं !"

शिवचरण दोनो हाथ से खुली हुई लाँग खोंसता और "कौन, मुखर्जी ? इतनी रात को कैसे पधारे ?" कहता हुआ बाहर निकल आया।

निवारण ने उसके कंधे पर हाथ रखकर, उसे और भी एकांत की ओर खींच ले जाकर, कहा—"तुमसे मुझे एक बात कहनी है। तुम लोग तो हम लोगों को बूढ़ा-ठूढ़ा समझकर मानते ही नहीं हो। लेकिन हम बूढ़ों से किसी की बुराई होते देखी नहीं जाती—ऐसी बुरी आदत है ! अगर देखते हैं, किसी का सर्वनाश हो रहा है, तो अपनी जान देकर भी उसे उस सर्वनाश से बचाने की कोशिश करते हैं। भैया, तुम बहुत ही भले और ज़रूरत से ज़्यादा सीधे हो। क्या बनता है, क्या बिगड़ता है, इसकी तुम्हें ज़रा भी ख़बर नहीं रहती। मगर तुम पर ऐसी विपत्ति आते देखकर मुझसे नहीं रहा गया। देखो, इसी से, सिर्फ़ तुम्हारे ही ख़याल से, इतने जाड़े में, रात को दौड़ा आया हूँ, उस पर आज हँफनी अलग सताए हुए है।"

निवारण इतना कहकर ज़ोर-ज़ोर हाँफने लगा।

भूमिका सुनकर ही शिवचरण की जान सूख गई ! कौन-सी विपत्ति है बाबा ! उस दिन उसने एक असामी से 'पोत' की मद में पाँच रुपए तेरह आने लेकर, सरकारी बक्स में न डालकर, अपनी टेंट में खोंस लिए थे। तभी से बेचारे के मन में शांति नहीं थी; कलेजा धक-धक कर रहा था। और, सच तो यह है कि उसी बेचैनी को दूर करने के लिये इस समय वह शराब की बोतल खोलकर बैठा था।

वही चोरी क्या पकड़ ली गई ? ग़रीब शिवचरण कुछ भी उत्तर न दे सका। भय-कातर दृष्टि से मुखर्जी महाशय के मुँह की ओर ताकने लगा।

निवारण ने कहा—"तुमने सुना है, तुम्हारी ब्राह्मणी की सौर दुमंज़िले पर, विपिन बाबू के सोने के कमरे में, होनेवाली है ?"

शिवचरण के जान में जान आई। ख़ैर, रुपयों के उड़ा डालने का मामला नहीं है ! लेकिन शिवचरण की समझ में यह न आया कि सौर वहाँ होने में क्या विपत्ति है। शिवचरण ने कहा—"हाँ, सुना तो था कि आज सौर के बारे में कुछ नया इन्तिज़ाम हुआ है।"

निवारण ने कहा—"एकाएक तुम्हारी ब्राह्मणी के ऊपर विपिन की इतनी नेक-नज़र क्यों हुई है, कुछ समझते हो ? अगर अपनी जाति और धर्म बचाना चाहते हो, तो अपनी स्त्री को लेकर अपने गाँव भाग जाओ। आज ही बड़े राजा से जाकर कहो, बहू रानी के पास जाकर रोओ-धोओ—पैर पकड़ो, और बोरिया-बसना बाँधकर चल दो। नहीं तो सर्वनाश हो जायगा !"

निवारण की बातचीत से शंकित होकर शिवचरण ने कहा—"इस समय पूरा दसवाँ महीना है। किस तरह जा सकता हूँ ?"

निवारण ने दम-भर सोचकर कहा—"अच्छा, नहीं जा सकते, तो न जाओ। लेकिन बड़े राजा और बड़ी बहू से जाकर कहो कि विपिन के सोने के कमरे में किसी तरह सौर नहीं हो सकती। और, अपनी ब्राह्मणी को भी सिखा दो कि वह इसके लिये किसी तरह राज़ी न हो। जाओ, अभी बड़े राजा के पास जाओ। वहाँ इस समय और कोई नहीं है, अच्छा मौक़ा है।"

निवारण ने शिवचरण को खींच ले जाकर सीढ़ी पर ज़बरदस्ती चढ़ा दिया। शिवचरण को इधर-उधर करके ऊपर चढ़ते देखकर निवारण अपने घर को चल दिया।

शिवचरण ने जाकर देखा, हरिविहारी भोजन के लिये भीतर जाने को तैयार खड़े हैं। वह कमर में धोती लपेटते हुए स्लीपर पहन रहे थे। शिवचरण ने पुकारा—"मामाजी!"

हरिविहारी ने कहा—"क्या है रे?"

शिवचरण ने सिटपिटाकर डरते-डरते कहा—"सुनता हूँ, विपिन ने अपने सोने के कमरे में सौर होने का इंतिज़ाम किया है। यह बात कैसे होगी?"

हरिविहारी ने कहा—"जा-जा, मैं सब ठीक कर दूँगा। जहाँ सदा से सौर होती आई है, वहीं होगी।"

शिवचरण और कुछ न कह सका। वह धीरे-धीरे उतरकर, उसी कोठरी में जाकर अपने पहले के काम में मशग़ूल हो गया।

हरिविहारी भीतर जा रहे थे। पीछे रामधन कहार उनका पान का डिब्बा और गुड़गुड़ी लिए आ रहा था। बैठक और ज़नाने के बीच की राह में जया खड़ी थी। उसने धीमे स्वर में कहा—"सुने जाओ।"

हरिविहारी ने पास जाकर, हँसकर कहा—"कौन, जया? क्या है? बहुत दिन के बाद आज देख पड़ी। कुछ कहेगी?"

जया ने अभिमान-गद्गद स्वर में कहा—"मैं अब तुम्हारे घर में नहीं रह सकूँगी। मुझे काशी भेज दो। विपिन उठते-बैठते मेरा अपमान करता है, आवाज़े कसता है। मैं अब इस घर में एक दिन भी नहीं रहूँगी।"

हरि०—"जा-जा पगली। काशी जाने की ज़रूरत न होगी। मैं विपिन को डाँट दूँगा।"

इसके बाद एक दृष्टि में बहुत कुछ अतीत इतिहास का आभास देखकर दोनो अपनी-अपनी राह चले गए।

बार-बार विपिन की शिकायत सुनते-सुनते हरिविहारी खीझ उठे

थे। वह भीतर पहुँचकर अपने सोने के कमरे में एक पलँग पर बैठे। पुरखिन भी आकर बैठ गईं। हरिविहारी ने कहा—"मैंने सुना है, विपिन औरतों को पढ़ाने-लिखाने का इंतिज़ाम कर रहा है, दुमंज़िले पर, अपने सोने के कमरे में, सौर होने की तैयारी कर रहा है। क्या यह सच है?"

पुरखिन ने उदास भाव से कहा—"हाँ, विपिन अब की जब से कलकत्ते से आया है, न-जाने कैसा उदास-उदास रहता है; सदा अनमना देख पड़ता है, जैसे चिड़चिड़ा और ज़िद्दी हो गया है, वैसे ही नित नई बातें सोचा करता है। इसके सिवा जब से यह करम-फुटही मालती आई है, तब से घर में घड़ी-भर शांति नहीं रहती। एक दफ़े नवकिशोर को बुलाकर फँसाना चाहा था, अब विपिन की घात में है। लड़के जवान ठहरे, ब्याह अभी तक हुआ नहीं। अगर जवान और ख़ूबसूरत औरत को देखकर उनका चित्त चंचल हो उठे, तो उसमें अचरज ही क्या है! लेकिन तू विधवा ठहरी; तुझे न सोचना चाहिए कि इस तरह बेहयापन के साथ मर्दों से बात-चीत करूँगी, तो लोग क्या कहेंगे!"

हरिविहारी ने आँखें बंद किए-किए, पान चबाते-चबाते कहा—"तो दोनो (मालती और उसकी मौसी) को घर से निकाल बाहर कर दो; झगड़ा मिट जाय!"

पुरखिन ने कहा—"बाप रे! विपिन अनर्थ न कर डालेगा! वह तो चाची के लिये जान देने को तैयार है। वह यों ही चाची का बड़ा भगत था, उस पर उनकी परी-सी सुंदरी बहन की लड़की आ गई है। लच्छनों से तो यही जान पड़ता है कि विपिन के ऊपर मालती के रूप का जादू चल गया है।"

हरिविहारी ने कहा—"अच्छा, मैं विपिन के ही द्वारा उन्हें घर से निकाल बाहर करूँगा।"

पुरखिन ने कहा—"मगर, मेरी समझ में, अब जल्दी से विपिन का ब्याह कर देना ठीक होगा। विपिन अब परमेसुर की दया से सयाना हुआ। ब्याह न करना अच्छा नहीं।"

हरिविहारी ने कहा—"हूँ! अच्छा, मैं कल-परसों में ही इसका सब ठीक-ठाक कर डालूँगा। झिनुकपाता के ज़मींदार हरीश चटर्जी ने अपनी लड़की के साथ विपिन का ब्याह करने के लिये मुझे चिट्ठी लिखी है।"

हरिविहारी साधारणतः काम-काज के झंझट से अलग ही रहना पसंद करते थे; लेकिन अगर कभी, किसी कारण से, कोई काम करने पर आमादा हो जाते थे, तो फिर दम-भर की देर भी उन्हें असह्य हो उठती थी। विपिन का ब्याह करना ज़रूरी है, अच्छा, कल ही सब ठीक हो जायगा, हरीश चटर्जी की लड़की मौजूद है!"

पुरखिन ने प्रसन्न हो कहा—"यह काम जल्दी हो सके, तो अच्छा!"

चौबीसवाँ परिच्छेद

सबेरे का समय था। विपिन अपनी लाइब्रेरी में बैठा पढ़ रहा था। पुरखिन ने आकर पुकारा—"विपिन!"

विपिन चटपट किताब रखकर, खड़ा होकर बोला—"क्यों अम्मा?"

पुरखिन ने हँसकर कहा—"सबेरे-सबेरे तुझे एक अच्छी ख़बर सुनाने आई हूँ! तेरा ब्याह पक्का हो रहा है। आज वह सब बातचीत पक्की करके चिट्ठी लिख देंगे।"

विपिन ने चिंतित होकर कहा—"अम्मा, यह शुभ कर्म कहाँ पक्का कर रही हो? वह दुधमुही बच्ची आकर तुम्हारे लड़के का खिलौना बन सकेगी न?"

पुरखिन ने कहा—"ना-ना, तू तो सभी बातों में मसख़री करने लगता है ! तू अब परमेसुर की दया से सयाना हुआ है, हम लोग क्या ऐसे अहमक़ हैं कि दुधमुही पाँच-सात बरस की लड़की तेरे गले बाँध देंगे ? यह लड़की ख़ूब होशियार, ख़ूबसूरत और सयानी है। झिनुकपाता के ज़मींदार हरीश बाबू की लड़की है। वे लोग जब ख़ुद लिखते हैं कि लड़की आठ-नव बरस की है, तो ज़रूर वह दस-ग्यारह बरस की होगी; इससे कम किसी तरह नहीं हो सकती।"

विपिन ने ख़ूब गंभीर भाव से उत्तर दिया—"ओह ! तब तो अब वह ऐसी हो गई है कि घर में कुआँरी रक्खी नहीं जा सकती ! लेकिन अम्मा, मैं तो अभी ब्याह करना नहीं चाहता।"

पुरखिन ने कहा—"पहले सब हाल तो सुन ले, उसके बाद कहना कि मैं तो अभी ब्याह करना नहीं चाहता। हरीश बाबू के सिर्फ़ वही लड़की है, और कोई बाल-बच्चा नहीं है। अगर उसने कोई लड़का गोद नहीं लिया, और यही होना बहुत संभव है, तो सब ज़मींदारी तेरी ही है। लड़की रूप में लच्छमी और गुनों में सरस्वती है। ख़ूब पढ़ी-लिखी है। विद्यासागर का बनाई वह कौन-सी पुस्तक है, हाँ, कथामाला—कथामाला पढ़ती है। तू जैसी चाहता है, वैसी ही है।"

विपिन ने हँसकर कहा—"यह सब सुनकर भी तो मेरा जी नहीं चाहता अम्मा। तुम बाबूजी से कहो कि मैं अभी ब्याह नहीं कर सकूँगा।"

पुरखिन ने कहा—"तू कैसा भोंदू है लड़के ! तेरा ब्याह हो गया होता, तो अब तक कई लड़कों का बाप होता ! तू क्या हमारी कोई अभिलाषा पूरी न होने देगा ? अरे भाई, तू कैसी लड़की चाहता है, बता तो सही ! तुम लोग अँगरेज़ी पढ़-पढ़कर चाहते हो कि बीस-पचीस बरस की लड़की से ब्याह हो। हम हिंदुओं के यहाँ इतनी

उमर की कुआँरी लड़की तो मिल ही नहीं सकती। जो लड़कियाँ हैं, उन्हीं में कोई सयानी लड़की देखकर ब्याह किया जायगा।"

विपिन ने वैसे ही हँसकर कहा—"सबको ब्याह करना ही चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है। मैं छोटी लड़की से ब्याह कभी नहीं करूँगा। और, अम्मा, ब्याह करने की ज़रूरत ही क्या है? हम दोनो मा-बेटे अभी बड़े मज़े में हैं। मैं अभी अकेला ही तुमसे झगड़ा करता हूँ, हठ करता हूँ, ज़िद्द करता हूँ। मैं एक और हिस्सेदार लाकर क्यों अपने सुख का साझी बनाऊँ? मालूम नहीं, उस अपरिचित, अज्ञात, नए आदमी का मिज़ाज कैसा होगा। क्या तुम यह चाहती हो कि एक तीसरा आदमी आकर हम दोनो मा-बेटों के बीच दीवार की तरह खड़ा होकर एक को दूसरे से अलग कर दे?"

विपिन की बातों से प्रसन्न होकर पुरखिन ने कहा—"यह तो तू ठीक कहता है; बहुत जगह ऐसा ही देखने में आता है। लेकिन अगर तू अपने को सँभाले रहे, औरत को अपने क़ाबू में रक्खे, तो बहू आकर कुछ नहीं कर सकती। अगर वह हम मा-बेटों को अलग करना भी चाहे, तो उसके किए कुछ नहीं हो सकता।"

विपिन ने हँसकर कहा—"लेकिन तुम्हीं तो कहती हो अम्मा, मन या मति मेरी बिगड़ जाय, तो फिर क्या करोगी? इसी से कहता हूँ अम्मा, हम मा-बेटे अभी अच्छे हैं। ब्याह-वाह का उत्पात न खड़ा करो।"

पुरखिन ने कहा—"ना-ना, यह भी कहीं हो सकता? जनम-भर कोई कुआँरा रह सकता है? जिस उमर की जो बात है, उस उमर में वह बात न होने से अच्छा नहीं लगता; लोग हँसने लगते हैं। फिर, तू क्या सदा दुधमुहे बच्चे की तरह मा की गोद में ही लेटा रहेगा? तू इधर ब्याह नहीं करना चाहता, उधर लोग कहते हैं—'लड़के के सगी मा तो है ही नहीं, ब्याह कौन करे? सौतेली

मा से और क्या आशा की जा सकती है ! सगी मा होती, तो अब तक कब का ब्याह हो गया होता !' तू ही बता, ये बातें सुनकर मुझे कष्ट नहीं होता ?"

विपिन ने कहा —"इसमें कष्ट होने की कौन-सी बात है अम्मा ? लोगों को बकने दो। तुम भी जानती हो, और मैं भी जानता हूँ कि तुम्हीं मेरी मा हो। लोगों का जो जी चाहे, कहें।"

पुरखिन ने कहा— "ना-ना, लोक-निंदा बड़ी बुरी चीज़ है। ख़ास भगवान् रामचंद्र को लोक-निंदा के डर से सती सीता को त्याग देना पड़ा था। मेरा कहा मान ले बेटा, ब्याह करने के लिये राज़ी हो जा।"

विपिन ने कहा—"ना अम्मा, यह किसी तरह नहीं हो सकता। असल बात जानती हो, क्या है ? जहाँ तुम्हारी राय होगी, वहाँ मेरी राय न होगी, और जहाँ मेरी राय होगी, वहाँ ब्याह करना तुम लोग पसंद नहीं करोगे। इसी से कहता हूँ, ब्याह की चर्चा ही न चलाओ। सब लोग ब्याह करते हैं मैं नहीं करूँगा, तो क्या किसी की उससे कुछ हानि है।"

पुरखिन की बड़ी अभिलाषा थी कि विपिन का ब्याह हो, छोटी-सी बहू घर आवे, उसे देखकर वह अपनी आँखों को कृतार्थ करे। उस अभिलाषा की पूर्ति में ज़बरदस्त रुकावट पड़ते देखकर, खीझकर पुरखिन ने कहा—"जो तेरी ख़ुशी हो, सो कर ; मैं अब तेरी किसी बात के बीच में नहीं पड़ूँगी— तुझसे किसी बात के लिये नहीं कहूँगी। उनसे जाकर कहे देती हूँ कि तुझे जो अच्छा समझ पड़े, सो करो ; मैं नहीं जानती।"

इतना कहकर पुरखिन उठ खड़ी हुई। वह जाने के लिये तैयार थीं, इसी समय घुरुआ कहार शेमीज़ों और बॉडियों की एक गठरी लेकर उपस्थित हुआ।

पुरखिन ने कहा—"इस गठरी में क्या है रे ?"

विपिन ने कहा—"ये सब शेमीजें मैंने कलकत्ते से मँगवाई हैं। कुछ बाँडी भी हैं। एक-एक औरत के लिये बारह-बारह हैं। जब धोती बदलो, तब शेमीज भी बदल डालो। धोती के साथ शेमीज भी धो डाली जाया करें। धुली हुई शेमीज पहनने में तो कोई दोष नहीं है ?"

पुरखिन ने कहा—"सिला हुआ कपड़ा पहनकर न तो ठाकुरजी की पूजा की तैयारी की जा सकती है, और न चौके में ही जाया जा सकता है। तूने क्या सबको मालती समझ लिया है ? उसी हरामज़ादी, चंचल ने आकर तुझे बिगाड़ रक्खा है। अब मैं समझ गई कि तू ब्याह क्यों नहीं करना चाहता। जाती हूँ अभी छोटी बहू के पास। जब तक हरामज़ादी मालती को झाड़ू मारकर घर से निकाल न दूँगी, तब तक पानी नहीं पिऊँगी।"

पुरखिन क्रोध से झनककर चलीं। विपिन ने कातर दृष्टि से अपनी मा के मुँह की ओर देखकर गद्गद स्वर में कहा—"अम्मा, अपने आश्रित, निराश्रय आदमी का अपमान करने से पाप होता है। उन्हें अगर तुम अपने घर से निकाल दोगी, तो तुम्हारा कल्याण न होगा। उन्हीं के साथ मैं भी तुम्हारे घर से निकल जाऊँगा।"

पुरखिन ने चिल्लाकर कहा—"क्या ! तू मुझे गाली देता है, पाप होगा, कल्याण न होगा ! मैं अगर तेरी मा होती, तो तू कभी ऐसी बात मुँह से नहीं निकाल सकता !"

इसके उत्तर में विपिन कुछ नहीं कह सका। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। उसने करुण स्वर में पुकारा—"अम्मा !"

पुरखिन ने उस मातृ-संबोधन का अर्थ नहीं समझा। उन्होंने विपिन के अश्रु-मलिन-मुख की ओर फिरकर भी नहीं देखा, और चली गईं।

भाव-प्रवण और जोशीले विपिन का अभिमानी, कोमल हृदय माता के तिरस्कार से व्यथित हो उठा। वह तकिए पर मुँह रखकर बालक की तरह रोने लगा। वह सबके सब तरह के तिरस्कार को अग्राह्य कर सकता है, किंतु उसकी माता जो उसके स्नेह और भक्ति के ऊपर व्यर्थ संदेह का वार कर गई, उसकी वेदना उसके लिये असह्य हो उठी।

रोते-रोते उसे ख़याल आया कि उधर उसकी माता चाची और मालती को न-जाने कौन-कौन कड़ी बातें सुना रही होंगी। विपिन चटपट आँसू पोछकर चाची के कमरे की तरफ़ चला।

विपिन के पहुँचने के पहले ही पुरखिन चाची के पास जाकर अपने जी का बुख़ार निकाल चुकी थीं। पुरखिन ने उनके पास जाकर तीव्र स्वर में केवल इतना ही कहा था—"छोटी बहू, अपनी बहन की लड़की को लेकर मेरे घर में तुम्हारा रहना नहीं हो सकता। तुम और तुम्हारी बहन की लड़की, दोनो अपनी राह देखो!"

इतना कहकर पुरखिन वहाँ से चल खड़ी हुईं। चाची को इस नाराज़ी का कारण पूछने का भी संमय नहीं मिला।

विपिन जब पहुँचा, उस समय चाची और मालती दोनो सन्नाटे में बैठी थीं। विपिन को देखकर चाची की आँखों से आँसू बहने लगे। मालती भी सिर झुकाए आँसुओं को रोकने की चेष्टा करने लगी। उधर विपिन के भी तुरंत रोके हुए आँसू एकत्र और उच्छ्वसित होकर बाहर निकलने के लिये ज़ोर करने लगे।

तीनो आदमी चुप थे। जो पराए गलग्रह थे, उन्हें चले जाने की आज्ञा हुई है, इसमें किसी की शिकायत नहीं की जा सकती। इसी कारण चाची-अम्मा को विपिन से कुछ कहना नहीं था। मा ने क्या कहा—क्या नहीं कहा, यह जाने बिना विपिन भी कुछ

नहीं कह सकता था। विपिन ने बड़े कष्ट से आँसुओं को रोककर कहा—"चाची-अम्मा, अम्मा क्या कुछ कह गई हैं?"

चाची ने कहा—"हाँ भैया, हमसे और जगह जाने के लिये कह गई हैं। हम अब काशी जायँगी। सुनते हैं, वहाँ माता अन्नपूर्णा के प्रभाव से कोई भूखा नहीं रहने पाता।"

विपिन के आँसू रोके नहीं रुके। विपिन ने चटपट रूमाल से आँसू पोछकर कहा—"चाची-अम्मा, तुमने बहुत सहा है, एक महीने-भर और मेरे कहे से बरदाश्त कर लो। इस एक महीने में या मैं तुम्हारी ज़मींदारी तुम्हें फिरवा दूँगा, और या तुम्हारे ही साथ घर छोड़कर मैं भी चला जाऊँगा।"

चाची ने आँसू पोछकर स्नेह-गद्गद स्वर में कहा—"छि भैया! मेरे लिये तुम अपने मा-बाप से विरोध करोगे, तो मुझे बड़ा दुःख होगा। बेटा, मेरा कहा मानो; मा-बाप को दुखी मत करो। मेरे लिये तुमने बहुत कुछ किया। भगवान् ही मुझ अभागिन से विमुख है। मुझे बचाने के लिये तुम मा-बाप से बिगाड़ कर अपनी हानि कभी न करना। मेरे कारण अगर तुम्हारी तनिक भी हानि होगी, या तुम्हें कष्ट पहुँचेगा, तो उसका मुझे ज़िंदगी-भर सोच रहेगा।"

विपिन ने दृढ़ता के साथ कहा—"यह तो मैं तुम्हारे लिये कुछ नहीं करता चाची-अम्मा, धर्म की रक्षा के लिये करता हूँ। इसमें अगर किसी को कष्ट या दुख हो, तो वह उसे सहना पड़ेगा! मैं इसे क्या कर सकता हूँ? तुम एक महीने और चुप रहो; उसके बाद अगर कुछ न हुआ, या ज़रूरत हुई, तो मैं ख़ुद तुम्हें काशी ले चलूँगा। मैंने इतना पढ़ा-लिखा है चाची-अम्मा, इससे यह भरोसा है कि कमाकर तुम दोनों का पालन कर सकूँगा। बाबूजी ने जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त मुझे करना ही पड़ेगा। बाबूजी को मैं कभी ऋणी नहीं रहने दे सकता।"

चाची का हृदय स्नेह-रस से आर्द्र हो उठा। वह आँखें मूँदकर नारायण से विपिन के कल्याण की प्रार्थना करने लगीं। उनके मुँह से कोई बात न निकल सकी।

विपिन की वीर पुरुष की-सी दृढ़ता और स्त्री की-सी कोमल प्रकृति देखकर मालती का भी हृदय प्रीति-सरस कृतज्ञता से परिपूर्ण हो उठा। मालती ने स्नेह-पूर्ण दृष्टि से देखकर नीरव भाषा में विपिन का अभिनंदन किया।

पचीसवाँ परिच्छेद

पुरखिन जिस समय बड़े-राजा को पुत्र की अबाध्यता और प्रतिकूलता की ख़बर देने के लिये बहुत ही उतावली होकर चटपटा रही थीं, बड़े राजा के पास उनकी ओर से भीतर आने के लिये बुलावे-पर-बुलावा जा रहा था, ठीक उसी समय विपिन की आनंद-चंचल गति के कारण होनेवाला स्लीपरों का फटर-फटर शब्द पुरखिन के कानों में पहुँचा। विपिन ने पुकारा—"अम्मा!"

पुरखिन कोई उत्तर न देकर, मुँह हाँड़ी की तरह फुलाकर, खिड़की से बाहर तालाब की तरफ़ ताकती हुई खड़ी रही। विपिन ने भीतर आकर माता के पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया। पुरखिन ने उदास और प्रश्न-पूर्ण दृष्टि से विपिन की ओर देखा। विपिन ने हँसते-हँसते कहा—"अम्मा, मैं पास हो गया। अव्वल दर्जे में पास हुआ हूँ।"

पुरखिन के मन की खीझ, क्रोध और उदासी, सब बात-की-बात में कपूर की तरह उड़ गई। मुख-मंडल आनंद से उज्ज्वल हो उठा। माता पुत्र के सब अनाचार, विरुद्ध आचरण और बेअदबी को भूल गई। उद्धत अभियोग शांत हो गया। फिर चारो ओर प्रशांत

प्रसन्नता का भाव फैल गया। पुरखिन ने चिल्लाकर कहा—"अरे, ओ लछिमिन, सबसे कह आ कि मेरा विपिन पास हो गया। रोहिणी, ओ रोहिणी, दुबे से जाकर कह दे कि दीवानजी से रुपए लेकर दस रुपए के बताशे और पचीस रुपए के बेसन के लड्डू ले आवे। ठाकुरजी का और महावीरजी का प्रसाद चढ़ाया जायगा। अरे, ओ क्षमा, ठाकुरद्वारे में जाकर गोवर्द्धन से कह दे कि चले न जायँ, आज ठाकुरजी का डबल भोग लगाया जायगा।"

घर-भर में आनंद-कलरव मच गया। हरएक शख़्स ख़ुशी से चिल्लाता हुआ दूसरे को ख़बर देने दौड़ने लगा। सब औरतें पुरखिन को घेरकर उनसे अपना-अपना 'हक़' माँगने लगीं। किसी ने बनारसी साड़ी, किसी ने सोने के कड़े, किसी ने दुशाला और किसी ने मोहनभोग और खीर की दावत माँगी।

विपिन ने हँसते-हँसते पुरखिन से कहा—"अम्मा, मेरा विश्वास है कि गोबरा के हाथ की पूजा भगवान् कभी नहीं स्वीकार करेंगे। उससे मेरा कल्याण के बदले अकल्याण ही होगा।"

पुरखिन ने व्यस्त होकर कहा—"चुप-चुप! ऐसी बात भी कोई कहता है? तेरी लाखों बरस की उमर हो! एक बाल भी कभी बाँका न हो।"

विपिन—"ऐसे ब्राह्मण से धनुआ मोची लाख दर्जे अच्छा और शुद्ध है। गोबरा भी ब्राह्मण है!"

पुरखिन—"अरे चुप-चुप! वह सुन पावेगा, तो उसे कष्ट होगा। आज ख़ुशी के दिन किसी का जी न दुखाना चाहिए।"

विपिन—"तो फिर अम्मा, आज मेरी ख़ातिर से भट्टाचार्य काका को बुलाओ, वह आकर पूजा करें। चाची-अम्मा को ठाकुरजी की पूजा का प्रबंध सौंपो। उत्सव अगर करना है, तो इस तरह करो। शुद्ध

ब्राह्मण भट्टाचार्य काका के आशीर्वाद से उत्सव का आरंभ हो। सब तरफ़ का मनोमालिन्य और उदासी मिटा दो।"

पुरखिन ने कहा—"अरे, कौन है, ज़रा छोटी बहू को तो जाकर बुला लाओ। मालती को भी बुला लाना।"

विपिन ने ख़ुश होकर कहा—"चाची को मैं बुलाए लाता हूँ अम्मा!"

विपिन चाची को बुलाने गया। मगर चाची-अम्मा पहले ही विपिन के पास होने की ख़बर पाकर आप ही कमरे से बाहर निकल आई थीं, और सबके आनंद के बीच अपने लिये भी कुछ जगह कर लेने के लिये संकोच-कुंठित भाव से चेष्टा कर रही थीं। विपिन ने कमरे में जाकर देखा—मालती अकेली फ़र्श पर धोती का आँचल बिछाए लेटी हुई है। उस समय उसके मुख-चंद्र पर घूँघट नहीं था। वस्त्र शरीर पर शिथिल होकर पड़ा हुआ था—अंग अनावृत-से थे। बड़े-बड़े केशों की राशि फ़र्श पर बिखरी पड़ी थी। इस अनावृत सौंदर्य पर नज़र पड़ते ही विपिन मुग्ध हो गया। वह लज्जित और स्तब्ध होकर खड़ा हो गया। मालती चटपट उठी, और फुर्ती से वस्त्र ठीक करके सँभल बैठी।

दम-भर तक दोनो चुप रहे। लज्जित, स्मित हास्य के साथ मालती की ओर देखकर विपिन ने पूछा—"चाची-अम्मा कहाँ है?"

मालती ने चकित और वक्र दृष्टि से एक बार विपिन की ओर देखकर, सिर झुकाकर कहा—"उधर ही गई हैं।"

विपिन—"तुमने सुना, मैं पास हो गया?"

मालती—"हाँ, सुना है।"

विपिन—"अम्मा तुम्हें बुलाती हैं, चलो।"

मालती ने मुस्किराकर, प्रसन्न दृष्टि से विपिन की ओर देखकर कहा—"आप चलिए, मैं आती हूँ।"

विपिन आनंद की अधिकता से विह्वल होकर वहाँ से जाने में विलंब कर रहा था, इसी समय नवकिशोर ने आँधी की तरह उस जगह आकर वज्र के समान कर्कश कंठ से कहा—"विपिन, विपिन, सुना, क्या अत्याचार हो गया है!"

नवकिशोर की आँखें क्रोध से लाल और चढ़ी हुई थीं, नथने फड़क रहे थे। उसका वह उद्धत भाव और वीर-मूर्ति देखकर मालती भय के मारे सिमट गई, और विपिन का मुँह सूख गया। विपिन ने जिह्वा के संयोग से सूखे ओठों को तर करके कहा—"क्यों, क्या हुआ?"

नवकिशोर ने वैसे ही आकाश-भेदी स्वर में कहा—"तुम्हारे काका, काका!—उन्होंने नीच, नालायक निवारण के कहने से कालीतारा को अपने घर से निकाल दिया है!"

विपिन के जैसे काठ मार गया। उसके मुँह से बोल नहीं निकला। नवकिशोर उसी तरह कहने लगा—"सोच क्या रहे हो! अपने भाई-बंधु के पाप का प्रायश्चित्त तुम्हें ही करना होगा। काली-तारा के प्रसव-वेदना होने की खबर सुनकर निवारण मँझले बाबू (हरिविहारी के छोटे भाई) के पास गया, और उसने कहा—'कालीतारा को घर से निकाल न दोगे, तो हम सब तुम्हें समाज के बाहर कर देंगे।' मँझले बाबू ने भी सुशील विद्यार्थी की तरह उस असहाय अबला को उस बुरी दशा में नौकर से धक्के दिलाकर घर के बाहर कर दिया। यही धर्म है! यही समाज है! ये ही समाज के मुखिया हैं? तुम लोग निवारण को इतना डरते हो कि वह सरासर अन्याय करता-कराता है, और तुममें प्रतिवाद करने का साहस नहीं है! लो, अब विलंब करने का समय नहीं है। कालीतारा को खोजकर ले आओ। अपने घर में लाने का साहस न हो, तो मेरे घर में ले जाना। मुझे अभी नवीनगर जाना है। वहाँ

का थानेदार यह कहकर कि वहाँ के स्कूल में बम बनाया जाता है, राजद्रोह की शिक्षा दी जाती है, असमत नाम के विद्यार्थी को पकड़ ले गया है। गाँव के लोगों ने ख़ौफ़ के मारे पाठशाला में अपने लड़के भेजना बंद कर दिया है। इसीलिये मैं अभी जाऊँगा। कालीतारा का भार तुम्हारे ऊपर है। देखो, कर्तव्य की अवहेला न करना!'

नवकिशोर विपिन का हाथ पकड़े वेग से बाहर चला गया। मालती चुपचाप सन्नाटे में अकेली वहीं खड़ी रही।

मालती ने कुछ देर बाद बाहर आकर देखा, घर-भर में जैसे एक अज्ञात अमंगल की छाया-सी पड़ी हुई है। सभी के मुखों पर विषाद छाया हुआ है। सबकी दृष्टि चकित, चंचल और उत्सुक हो रही है। सभी चुप हैं। आनंद-उत्सव के सूत्र-पात में ही सब भरभंड हो गया। महराजिन रसोई करते-करते चूल्हे पर से बटुई उतारे बैठी है। जो तरकारी काट रही थी, वह चाक़ू हाथ में लिए अवाक् खड़ी है। जया पूजा की तैयारी कर रही थी। वह चंदन रगड़ती-रगड़ती चली आई, और पुरखिन से कहने लगी--"बड़ी बहू, बड़ी बहू, गोवर्द्धन तो पूजा करते-करते किशोर के मुँह से अपने बाप का नाम सुनते ही जान लेकर भागे। ठाकुरजी वैसे ही नीचे उतारे रक्खे हुए हैं। अब पूजा कौन करेगा—भोग कौन लगावेगा?"

पुरखिन सुनकर भी चुप होकर निरुपाय भाव से खड़ी रहीं। सब लोगों के प्राण और सब चेष्टा जैसे किसी मंत्र के प्रभाव से संरुद्ध और स्तब्ध हो गई है।

बिनी भी आज अनर्गल बकबक नहीं करती; एक कोने में अकेली, पैर फैलाए अपनी गुड़िया को हाथ से ठोक-ठोककर सुला रही है। लेकिन बच्चों को सुलाने के गीत उसके भी मुँह से नहीं निकलते।

विनोद भी अकारण ही इधर से उधर उछलता-कूदता नहीं फिरता। वह भी बिनी के पास चुप बैठा है।

मालती ने आकर बिनी को गोद में ले लिया। बिनी उसके गले से लिपटकर धीरे-धीरे कहने लगी—"मालती दीदी, तुप-तुप, दादा थाकुल गुच्छा है, मालेगा।"

मालती ने विनोद का हाथ पकड़कर उसे उठाकर कहा—"तुम मेरे कमरे में चलो, हम सब चलकर खेलें।"

बिनी और ज़ोर से मालती का गला पकड़कर उसे रोकने की चेष्टा करके बोली—"ना-ना, मालती दीदी, फिल दादा थाकुल आ दायगा।"

मालती दोनो को लेकर वहीं बैठ गई। पुरखिन खड़ी-खड़ी अर्थ-हीन, उदास दृष्टि से उनकी ओर ताकती रहीं।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

पता लगाने से विपिन को मालूम हुआ कि कालीतारा कल शाम के बाद निकाली गई है। आज दोपहर हो चुकी है। एक तो दुस्सह जाड़े की रात, उस पर शीघ्र ही बच्चा होनेवाला! मालूम नहीं, काली-तारा ने किस तरह, कहाँ, किस मुसीबत में इतना समय बिताया होगा। वह कल से भूखी-प्यासी न-जाने कहाँ पड़ी है। कोमल-हृदय विपिन का हृदय करुणा, लज्जा, घृणा और क्रोध से परिपूर्ण हो उठा। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

उसका जी चाहता था कि वह अपने चाचा को जाकर इस कुकर्म और हृदय-हीनता के लिये खूब कड़ी-कड़ी बातें सुना आवे; दुष्ट निवारण का सिर दोनो हाथों से दबाकर चूर-चूर कर दे! लेकिन खेद यही है कि समय नहीं है! सबसे पहले उस अभागिन को खोजना है! सब लोग कैसे निठुर हैं! एक साथ दो प्राणियों की हत्या करने को तैयार हो गए! किसी को दया नहीं! ये मनुष्य

हैं ! धिक्कार है ! यों ही सोचता हुआ विपिन पागल की तरह चारो ओर कालीतारा का पता लगाने लगा।

ज़मींदार का लड़का विपिन नहाना-खाना छोड़कर दोपहर की कड़ी धूप में राह-राह उसी अभागिन को खोजता फिर रहा था, जिसे समाज ने निंदित और त्याग करने योग्य समझ रक्खा था।

विपिन को इस तरह व्याकुल भाव मे राह-राह भटकते और दौड़-धूप करते देखकर बहुत लोग उसके साथ हो लिए। नौकर-चाकर, सिपाही-पायक वग़ैरह चारो ओर दौड़-धूप करने लगे। किंतु कोई भी कुछ ख़बर न पा सका।

रात को हरिविहारी के भाई ने कालीतारा को निकाल दिया था। उस समय वह केवल एक धोती ही पहने थी, और बच्चा होने की बहुत शीघ्र सभावना थी। एक तो प्रसव-वेदना, और उस पर इतना बड़ा अत्याचार ! कालीतारा ने कातर और भीत होकर सोचा कि आज ज़मीदार बाबू के मंदिर में चलकर पड़ रहूँ। मंदिर में एक नौकर रहता था। उसने देखा, मंदिर की ड्योढ़ी में चबूतरे के ऊपर पड़ी हुई एक स्त्री कराह रही है। उसने कालीतारा को पहचानकर भी वहाँ रहने नहीं दिया, निकाल दिया। मगर इसमें उस बेचारे का कुछ दोष नहीं था। उसने सोचा, जिसे उसके मालिकों ने घर से बाहर निकाल दिया है, उसे उन्हीं के मंदिर में रहने देना बड़ी भारी बेवक़ूफ़ी होगी। बल्कि इसकी ख़बर मालिकों तक पहुँच जायगी, तो उसकी नौकरी पर भी आफ़त आ जायगी। परंतु इस समय विपिन को इस तरह व्याकुल होकर कालीतारा को खोजते देखकर उसने समझा कि उसने उस समय उस असहाय अबला को बेदर्दी के साथ मृत्यु के मुख में ढकेलकर अच्छा नहीं किया। भय और पछतावे के मारे उसका मुँह सूख गया। कालीतारा की कुछ ख़बर न पाकर इस तरह विपिन को दोपहर के घाम में इधर-उधर

भटकते देखकर उसका जी चाहता था कि जो कुछ वह जानता है, सो विपिन से कह दे; मगर यह सोचकर उसकी हिम्मत न पड़ती थी कि अगर विपिन पूछेगा कि तूने उसे क्यों रात को मंदिर से निकाल बाहर किया, तो वह क्या जवाब देगा?

बहुत देर तक अपनी दुबिधा के साथ तर्क करके उसने यह ठीक किया कि वह जो कुछ जानता है, सो साफ़-साफ़ कह देगा।

भगवानदीन इस तरह निश्चय करने के बाद, भीड़ को ठेलकर, आगे बढ़कर-विपिन के सामने आया, और उस नमस्कार करके खड़ा हो गया। विपिन ने अन्यमनस्क-उदास भाव से कल के पुतले की तरह उसे प्रतिनमस्कार किया। किंतु आज स्वाभाविक मधुर हास्य के साथ कुशल-प्रश्न नहीं किया।

भगवानदीन ने हाथ जोड़कर कहा—"हुज़ूर, मुझसे एक क़सूर हो गया है।"

विपिन ने चुपचाप जिज्ञासा-पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा। भगवानदीन कहने लगा—"कल रात को मालूम नहीं, किस समय कालीतारा मंदिर के भीतर आकर ड्योढ़ी के चबूतरे पर पड़ रही थी। मैंने यह सोचकर कि कहीं मंदिर अपवित्र न हो जाय, या आप लोग नाराज़ न हों, सबेरे उसे यहाँ से निकाल बाहर किया। मुझे अब अपने किए पर बड़ा पछतावा हो रहा है। मैंने बहुत बुरा किया।"

उत्सुकता से उत्तेजित होकर विपिन ने पूछा—"तुमने क्या यह देखा था कि वह किधर गई?"

भगवानदीन ने कहा—"हाँ, वह इस आम की बग़िया के भीतर होकर उस जंगल की तरफ़ शायद गई थी।"

विपिन ने व्यग्र भाव से अपने आदमियों से कहा—"आओ, जल्दी एक पालकी ले आओ।" इतना कहकर वह ख़ुद दौड़ता हुआ आम की बग़िया के भीतर होकर उसी जंगल की ओर चला।"

कँटीले जंगली पेड़ों में उसकी धोती फँस-फँसकर फटने लगी। कुर्ते के टुकड़े उड़ गए। पैरों में काँटे गड़ गए। शरीर में खरोंचे लग गए। मगर विपिन को इसका कुछ ख़याल ही नहीं था। निश्चित रूप से यह कोई नहीं जानता कि वह उसी जंगल में है, तो भी बराबर विपिन और उसके आदमी उसे खोज रहे थे। अकस्मात् विपिन के सब आदमी चिल्ला उठे—"है, है, यहीं पर है।"

विपिन झाड़ियों को नाँघता-फाँदता आगे बढ़ा। जाकर देखा, जंगल के भीतर एक पेड़ के नीचे थोड़ी-सी साफ़ जगह है, जिसमें फ़र्श की तरह हरी-हरी घास लगी हुई है। उसी जगह कालीतारा ख़ून से तर, अर्द्ध-मूर्च्छित अवस्था में पड़ी है, और उसकी छाती के ऊपर एक बालक धूप से कुम्हलाया हुआ पड़ा है। बालक बहुत ही सुंदर है, जैसे एक खिला हुआ लाल कमल का फूल हो, और उसके ऊपर किसी ने लाल चंदन लगा दिया हो। उस जगह तमाम छोटी-बड़ी लाल-काली चींटियाँ जमा हैं। सियार, कुत्ते, गिद्ध आदि मांसाहारी जीवों को अभी तक ख़बर नहीं हुई थी, यही कुशल थी।

विपिन ने चटपट अपना कुर्ता उतारकर उस बालक के शरीर में लपेट दिया, और उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। विपिन को अपना कुर्ता उतारकर बालक के लपेटते देखकर नौकर-चाकरों के अँगोछे, पगड़ी और चादरें विपिन के आगे उपस्थित होने लगीं। विपिन ने भगवानदीन से इशारा किया, उसने अपनी चादर से कालीतारा को ढक दिया।

दम-भर में पालकी भी आ गई। विपिन ने वह बच्चा भगवानदीन की गोद में दे दिया। गोद की गरमी पाकर और हिलने-डुलने से इतनी देर के बाद वह बालक ज़ोर से रोने लगा।

एक बार बालक की ओर देखकर, कालीतारा के पास ज़मीन पर घुटनों के बल बैठकर, विपिन ने पुकारा—"चाची!"

ऐसे सम्मान और करुणा के साथ और कभी किसी ने कालीतारा को नहीं बुलाया था। कालीतारा ने क्षीण स्वर में कहा—"क्या है भैया ? तुम कौन हो ?"

उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

विपिन ने कहा—"चाची, मैं विपिन हूँ। पालकी लाया हूँ, घर चलो।"

कालीतारा ने बड़े कष्ट से आँखें खोलकर कहा—"घर ?"

विपिन—"हाँ चाची, मेरे घर चलो।"

काली०—"मुझे घर ले जाकर क्या करोगे भैया ? थोड़ी देर में मौत मेरे सब कष्टों को मिटा ही देगी, तुम इतना कष्ट करके क्यों आए भैया ? यह काला मुँह मैं लोगों को किस तरह दिखाऊँगी ?"

विपिन ने भगवानदीन की गोद से बच्चे को लेकर, कालीतारा को दिखाकर कहा—"चाची, इस निरपराध, असहाय बालक के लिये तुम्हें जीना ही पड़ेगा।"

कालीतारा के मातृ-हृदय में संतान को देखते ही पुत्र-स्नेह उमड़ पड़ा। उसने व्याकुल होकर कहा—"लाओ बेटा, इसे मेरी छाती पर लिटा दो। यह मेरा बड़ी लज्जा का, बड़े दुःख का और बड़े सुख का बच्चा है ! यह मेरा सर्वस्व और प्राण है !"

विपिन ने बच्चे को उसकी मा की छाती पर लिटा दिया। कालीतारा ने उसे छाती से लगा लिया। आँखें बंद किए, सुख के आवेश से उत्पन्न अलस, शिथिल भाव से कालीतारा ने पूछा—"बेटा विपिन, लड़का है या लड़की ?"

विपिन ने कहा—"लड़का है चाची। कमल के फूल-जैसा सुकुमार और सुंदर है।"

कालीतारा उसी तरह आँखें बंद किए अस्पष्ट स्वर में आप-ही-

आप कहने लगी—तेरी हत्या न कर सकने से ही तो आज मुझे यह लांछना भोगनी पड़ी ! अभागे, अगर आया है, तो इस अभागिन की गोद सूनी करके भाग न जाना। तेरे ही लिये मैं जियूँगी, सब लज्जा, निंदा और ग्लानि सहूँगी, और जियूँगी।

इस स्नेह-करुण दृश्य को देखकर विपिन की आँखों में आँसू भर आए। उसने आँसुओं से गद्गद स्वर में कहा—"चाची, उठो, चलो घर चलें।"

विपिन का इशारा पाकर कहारों ने पालकी कालीतारा के पास लाकर रख दी। कालीतारा ने उठने की चेष्टा की, मगर कमज़ोरी के मारे उठ नहीं सकी; बेहोश होकर वहीं गिर पड़ी।

विपिन ने फुर्ती से उस बालक को उठाकर नौकर की गोद में दे दिया। विपिन की आज्ञा से चार-पाँच आदमियों ने बेहोश कालीतारा को उठाकर पालकी पर लिटा दिया। कहार पालकी लेकर तेज़ी से चले, विपिन भी उनके साथ दौड़ता हुआ चला। गाँव के भीतर पहुँचकर विपिन ने भगवानदीन से कहा—"जाओ, डॉक्टर को साथ लेकर अभी हमारे घर में आओ। डॉक्टर से मेरा नाम कह देना।"

गाँव की राह में लोगों की भीड़ लगी हुई थी। मर्द-औरत, लड़के-बूढ़े, सभी जमा थे—घरों में कोई नहीं रह गया था। सब लोग हरएक जगह जमा होकर—मर्दों में मर्द और औरतों में औरतें—यही चर्चा कर रहे थे। बहुएँ, जो बाहर नहीं निकल सकती थीं, किवाड़ों की फाँक में आँख लगाए कौतूहल के साथ बाहर देख रही थीं। भीड़ में कोई विपिन की बड़ाई कर रहा था, कोई निंदा कर रहा था, और कोई-कोई रसिया आदमी तरह-तरह की दिल्लगियाँ कर रहे थे। चारो ओर इसी पर बहस और इसी की चर्चा हो रही थी।

निवारण और गोवर्द्धन, दोनो बाप-बेटे घर के भीतर कौतूहल के मारे छटपटा रहे थे—साहस करके बाहर नहीं आ सकते थे। क्या जाने, विपिन या नवकिशोर का सामना हो जाय! वे भी बहुतों की तरह किवाड़ों की आड़ से झाँक-झाँककर तमाशा देख रहे थे।

विपिन जो उधर से निकला, तो उसे अपने घर की ओर ताकते देखकर निवारण ने फुर्ती से अपने किवाड़े बंद कर लिए। लेकिन उस समय विपिन का लक्ष्य और किसी ओर नहीं था, मन में और कोई ख़याल नहीं था।

पालकी जैसे भीतर महल की ड्योढ़ी पर पहुँची, वैसे ही दरबान दुबे ने आगे बढ़कर, हाथ जोड़कर विपिन से कहा—"हुज़ूर, बड़े राजा साहब का हुकुम है कि भीतर कोई ग़ैर आदमी न जाने पावे। मुझको हुकुम मिला है कि मैं आपसे कह दूँ।"

विपिन ने वृद्ध की ओर देखकर कहा—"तुम अपने कर्तव्य का पालन कर चुके। अब जाकर बाबूजी से कह दो कि मैंने मना किया, मगर विपिन ने नहीं माना।"

विपिन ने घूमकर देखा, जो आदमी उसके साथ थे, वे सब बड़े मालिक की असम्मति जानकर ख़ौफ़ के मारे खिसक जाने का उद्योग कर रहे हैं। विपिन ने आँखें लाल करके, उग्र भाव से, आज्ञा के स्वर में, कहा—'खड़े तमाशा क्या देख रहे हो? इन्हें पकड़ाकर ऊपर ले चलो!'

डर के मारे सबके मुँह सूख गए! मगर करते क्या, विपिन की आज्ञा भी नहीं टाल सकते थे। सब कालीतारा को उठाने के लिये खड़े रहे। विपिन ने घुरुआ कहार से कहा—"घूरू दादा, जाओ, दौड़कर मेरे बिछौने में से एक तोशक उठा लाओ।"

घुरुआ ने तोशक लाकर बिछा दी। विपिन और अन्य कई आद-

मियों ने मिलकर कालीतारा को पालकी के बाहर निकालकर उसी तोशक पर लिटा दिया ; उसके बाद बड़ी सावधानी से कालीतारा को लेकर महल के भीतर चले ।

महल के भीतर सब औरतें निर्जीव कठ-पुतली की तरह चुप खड़ी थीं । आज ठाकुरजी की पूजा नहीं हुई, भोग नहीं लगा, रसोई नहीं बनी । किसी ने कुछ खाया-पिया भी नहीं । बच्चे फूल की तरह मुरझा गए हैं । कोई-कोई बच्चा ज़मीन पर ही लेटकर सो गया है । जैसे यह कोई जादू का महल है । सब आदमी पत्थर की मूरतें हैं ; किसी में जान नहीं है ।

विपिन को आँगन में आते देखकर ही पुरखिन कहने लगीं—"विपिन, विपिन, क्या करता है ? तेरी कैसी अक्किल है ? कहाँ का पाप कहाँ ले आया है ? वह सुनकर बहुत नाराज़ हो रहे थे । अरे विपिन, विपिन, सुन तो सही । नहीं सुनता, तो जा, जो तेरा जी चाहे, सो कर ! अच्छी आफ़त है भाई ! अरे, सुन तो सही, उसे कहाँ लिए जा रहा है ? ऊपर लिए जा रहा है ! मैया रे, घिन भी नहीं है ! ये सब गंदे कपड़े पहनाए उसे तुम लोग ऊपर लिए जा रहे हो ! राम-राम ! बिलकुल भरिष्ट कारख़ाना कर डाला ! धरम नास कर दिया !—रोहिणी, ओ रोहिणी, जल्दी दौड़कर जा, उन्हें बुला ला, आकर विपिन की करतूत देखें—"

विपिन ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ; किसी की तरफ़ आँख उठाकर देखा भी नहीं । वह कालीतारा को साधे अपने कमरे में ले गया । तब एक-एक करके घर की सब औरतें आकर कमरे के दरवाज़े पर जमा होने लगीं । विपिन ने 'दराज़' खोलकर रपंज, साबुन और तौलिया निकाला । उसके बाद 'स्टोव' जलाकर एक बाल्टी लेकर आप ही पानी लाने के लिये चला । वह सब पर इतना खीझा हुआ था कि किसी से कोई सहायता करने के लिये कहने को उसका

जी ही न चाहता था। उसे बाल्टी लेकर पानी लाने के लिये जाते देखकर घुरुआ ने उसके हाथ से बाल्टी ले ली, और वह पानी लाकर ख़ुद उसे गरम करने लगा।

विपिन ने घुरुआ से कहा—"घूरू दादा, देखता हूँ, इतने आदमियों में सिर्फ़ तुम्हें मुझसे सहानुभूति है। अच्छा, पानी गरम हो गया होगा, उसे उतारकर ज़रा-सी चाय भी बना डालो। और, थोड़ा-सा दूध गरम कर लो। घर में कोई दूध न दे, तो अहीर के घर से दाम देकर ले आओ।"

इधर विपिन का अभिमानी, तेजस्वी और हठी मन क्षोभ और अभिमान के मारे सबको छोड़कर स्वतंत्र भाव से काम करने के लिये उत्सुक होता था, लेकिन उधर वैसे ही दम-भर के बाद सबको दबाकर ख़ुद विजयी होने के लिये उद्यत हो उठता था। विपिन ने दरवाज़े की ओर देखा, क्षमा, मोक्षदा, जया, पाँचू की मा वग़ैरह सब औरतें कमरे के भीतर झाँककर तमाशा देखने के लिये ठेला-ठेली कर रही हैं; किंतु विपिन के ख़ौफ़ से कोई आगे नहीं बढ़ सकती।

विपिन ने तीव्र स्वर में कहा—"क्षमा, ऊँट की तरह गर्दन बढ़ा-बढ़ाकर क्या झाँक रही हो? ऐसा ही कौतूहल हुआ है, तो कमरे के भीतर आकर रोगी की सेवा-टहल करो। मोक्षदा, जाओ तो, चटपट थोड़ा-सा दूध गरम कर लाओ।"

मोक्षदा वहाँ से भागने का सुयोग पाते ही भाग खड़ी हुई। लेकिन और सब स्त्रियाँ न तो वहाँ से भाग ही सकती थीं, और न विपिन के पास जाकर उसकी सहायता ही कर सकती थीं। वे विवर्ण मुख लिए हत-बुद्धि-सी होकर जहाँ-की-तहाँ खड़ी ही रहीं।

घुरुआ ने गरम जल चूल्हे पर से उतारकर रख दिया। तब

विपिन ने कहा—"इन(कालीतारा)की सफ़ाई का काम भी क्या हम मर्दों को ही करना पड़ेगा ? तुम इतनी औरतें खड़ी-खड़ी एक स्त्री की बेइज़्ज़ती देखा करोगी ?"

सब औरतें चुप खड़ी रहीं। कोई भी यह काम करने के लिये आगे नहीं बढ़ी। मालती सबके पीछे खड़ी थी। उसने आगे आकर विपिन से कहा—"आप बाहर जाइए, मैं सब कर लूँगी।"

विपिन ने प्रशंसा-पूर्ण स्नेह की दृष्टि से मालती की ओर देखा। उसने देखा, इस विषम विभ्राट् के बीच में भी उसके मुख पर स्थिरता और गभीरता के चिह्न मौजूद हैं; वह युवती होकर भी वृद्धा स्त्रियों की तरह आत्मस्थ है। विपिन ने चटपट ट्रंक खोलकर अपने कई कपड़े और कपड़े पट्टियों के लिये निकाल दिए। क़ैंची, सेफ़्टी पिन, सुई-डोरा, साबुन वग़ैरह सब सामान रखकर विपिन कमरे के बाहर चला गया। घुरुआ भी उसके साथ चल दिया। मालती ने कमरे के भीतर जाकर किवाड़े बंद कर लिए।

विपिन ने घुरुआ से कहा—"जाओ देखो, डॉक्टर आते हैं, या नहीं।"

पुरखिन ने कहा—"ऐसे आदमी का तो मरना ही अच्छा! डॉक्टर के बुलाने की ज़रूरत क्या है?"

जया ने कहा—"हाँ, सो तो है ही। मरने से ही उसकी लाज ढकी रहेगी।"

विपिन ने केवल एक बार क्रूर दृष्टि से जया की ओर देखा; किसी से कुछ कहा नहीं। आज उसके मन की हालत ऐसी नहीं थी कि वह किसी से बहस करता। पाँच-सात मिनट के बाद घुरुआ डॉक्टर को लेकर हाज़िर हुआ। सब औरतें आड़ में चली गईं। विपिन ने पुकारा—"मालती, काम हो गया? डॉक्टर साहब आए हैं।"

मालती ने कमरे के भीतर से कहा—"हाँ, सब हो गया। अब तो

कुछ-कुछ होश भी आ चला है। आप ज़रा भीतर आइए। यह बिछौना बदल देना चाहिए। और सब ठीक है।"

डॉक्टर के साथ विपिन ने भीतर पहुँचकर देखा, मालती ने ज़च्चा और बच्चा, दोनो को ख़ूब साफ़ करके साफ़ कपड़े पहना दिए हैं। मैले और गंदे कपड़े एक तरफ़ ढेर हैं।

विपिन, डॉक्टर, घुरुआ और मालती ने काली तारा को उठाकर दूसरे साफ़ बिछौने पर सुला दिया। विपिन ने घुरुआ से कहा—"तुम गरम दूध का इंतिज़ाम करो।"

घुरुआ दूध लेने गया। डॉक्टर रोगी को देखने लगे। डॉक्टर ने देख-भालकर कहा—"रोगी बहुत कमज़ोर है। इन्हें अच्छी तरह गरमी पहुँचाइए, और थोड़ा-थोड़ा गरम दूध पिलाइए। मैं अपने घर से दवा भेज दूँगा। वह दवा दो-दो घंटे के बाद चार-चार बूँद करके पिलाना। शाम के वक़्त और एक दफ़े अपने आदमी से रोगी का हाल कहला भेजना।"

डॉक्टर वहाँ से उतरकर जब बाहर आए, तो विपिन को इशारे से अपने पास बुलाकर चुपके-चुपके कहा—"हालत बड़ी ख़राब है। मन की चिंता, घबराहट, शीत, अनाहार, रक्त-हानि वग़ैरह ने मिलकर रोगी के देह-यंत्र को कमज़ोर और बेकाम कर दिया है। रोगी बहुत अधिक जिए, तो शाम तक जी सकता है। फिर भी 'जब तक श्वासा, तब तक आशा।' आप कोई आदमी भेजिए, मैं दवा दे दूँगा; वहाँ पिलाइए। शाम को हाल हो, सो कहला भेजिएगा; या मुझे ही बुला लीजिएगा।"

विपिन ने घुरुआ को दवा लाने के लिये डॉक्टर के साथ भेजा, और जाते समय उससे कह दिया—"घुरू दादा, दुबे से कह देना, बिदेसिया डोम की औरत को बुला लावें। वह आकर इन गंदे कपड़ों को ले जायगी, और यह जगह भी साफ़ कर देगी।"

विपिन ने मालती से कहा—"तुम इन्हें ज़रा-ज़रा दूध पिलाओ; मैं सेंकने के लिये आग ले आऊँ।"

विपिन ने बाहर आकर देखा, भोंदू की मा खड़ी है। विपिन ने उससे कहा—"भोंदू की मा, जा, दौड़कर रसोई घर से लोहे की अँगीठी में आग ले आ, और रामधन से कह दे कि मुझे यहाँ थोड़ा-सा कोयला लाकर दे जाय।"

पुरखिन ने आकर कहा—"अरे विपिन, तू नहाय-खायगा भी, या दिन-भर यही सब करता रहेगा? सब लोग भूखों मर रहे हैं, उन्हें खाने-पीने देगा या नहीं?"

विपिन ने कोमल स्वर में कहा—"तुम सब लोग जाकर नहाओ-खाओ अम्मा। मुझे अभी खाने-पीने की फ़ुरसत नहीं है।"

पुरखिन ने कहा—"यह भी कहीं हो सकता है कि तेरे बिना खाए-पिए हम लोग खा-पी लें? पहले खा ले, फिर चाहे जो करना। आ, चल।"

विपिन ने वैसे ही स्वर में कहा—"ना अम्मा। एक आदमी लोगों की लापरवाही और अत्याचार से दो दिन का भूखा पड़ा मर रहा है, और मैं उसे छोड़कर खाने जाऊँगा? अपने लड़के को इतना नीच न समझना अम्मा।"

मालती ने धीरे से कहा—"मैं तो इन्हें देखने के लिये यहाँ हूँ, आप तब तक भोजन कर आइए।"

विपिन ने दृढ़ प्रतिवाद के स्वर में कहा—"ना-ना, खाने-पीने के लिये तो बहुत समय मिलेगा। मैं अगर घंटे-दो घंटे की देर करके भोजन करूँगा, तो उससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा; लेकिन इधर सेवा में कुछ भी त्रुटि होने से एक आदमी की जान ही चली जायगी।"

इसी बीच में भोंदू की मा आग की अँगीठी ले आई। उसने वह अँगीठी दूर से कमरे के भीतर रख दी; जैसे वह कमरा नरक से भी

बढ़कर अपवित्र है, और उसमें पैर रखते ही वह जन्म-भर के लिये अशुद्ध हो जायगी। विपिन ने वह अँगीठी खिसका दी। मालती कपड़े की पोटली गरम करके रोगी के अंगों को सेंकने लगी।

आहार और गरमी पाकर कालीतारा का कष्ट कुछ कम हुआ। उस समय उसे जान पड़ने लगा, जैसे सबकी दृष्टि उसके हृदय की छिपी हुई लज्जा को खोल-खोलकर बहुत ही निर्मम उपहास के साथ देख रही है। उसे मालूम पड़ा, जैसे संसार-भर के लोग उसे हँस रहे हैं, लानत-मलामत कर रहे हैं, भला-बुरा कह रहे हैं। वह आँखें मूँदे पड़ी रही। उसके मुँह से कोई बात नहीं निकल सकती थी।

घुरुआ ने डॉक्टर के यहाँ से दवा लाकर दी। बिदेसिया की औरत आकर कमरे को साफ़ करके फ़ेनाइल डालकर धो गई। रामधन थोड़े-से कोयले लाकर रख गया। घुरुआ आग दहँकाने लगा। चारो ओर सब प्रबंध ठीक देखकर विपिन का सरल चित्त फिर प्रसन्न हो उठा। इसी समय हरिविहारी बाबू की खड़ाऊओं का शब्द सुन पड़ा। हरिविहारी ने आकर बाहर ही से पुकारा—"विपिन!"

विपिन ने कमरे के बाहर जाकर कहा—"क्या है बाबूजी?"

हरिविहारी ने क्रोध-पूर्ण स्वर में कहा—"यह सब क्या हो रहा है? उसे अभी मेरे घर से निकाल बाहर करो!"

विपिन ने धीर भाव से शांत स्वर में कहा—"शायद निकाल बाहर करने की ज़रूरत न होगी। वह कुछ ही घंटों की मेहमान है।"

हरिविहारी ने वैसे ही रूखे स्वर में कहा—"ना-ना, यहाँ मरने की ज़रूरत नहीं। जहाँ का पाप है, वहीं जाकर मरे."

विपिन का जी चाहा कि कह दे—तो फिर आप सब लोग कहाँ मरेंगे? किंतु उस इच्छा को दबाकर उसने कहा—"इस अवस्था में उसे और कहाँ लेकर जाऊँ?"

हरिविहारी ने कहा—"राह में फेंक आओ। तुम्हारी भी कैसी अक्ल है! पराया बोझ अपने सिर पर लाद लाए!"

विपिन ने कहा—"लेकिन यह तो ठीक पराया बोझ नहीं है। मेरे ही चाचा का लड़का है। मैं लोक और धर्म, दोनो के अनुसार उसकी रक्षा करने के लिये बाध्य हूँ।"

हरिविहारी और उनका छोटा भाई, दोनो जुदा थे। दोनो में हिस्से-बाँट के कारण मन-मैली भी चली आती थी। इसी से हरिविहारी अपने भाई से कोई लगाव नहीं रखते थे। दोनो भाई परस्पर एक दूसरे को ग़ैर से बढ़कर--बल्कि शत्रु ही—समझते थे।

हरिविहारी ने विरक्ति-पूर्ण स्वर में कहा—"एँ:, तुम तो बड़े भारी पंडित हो गए हो! लोक और धर्म, दोनो के अनुसार एक हरामी लड़के की रक्षा करने के लिये बाध्य हो! वाह, दो-तीन अँगरेज़ी की किताबें क्या पढ़ ली हैं, सबको मूर्ख ही समझने लगे हो! मैं कहे देता हूँ, मेरे घर में यह कुछ न हो सकेगा, इसे हटाओ!"

विपिन को भी क्रोध चढ़ आया। लेकिन उसने क्रोध को दबाकर, शांत भाव से कहा—"इस घर में मेरा भी कुछ अधिकार है; उसी अधिकार से मैं इसे रक्खूँगा।"

हरिविहारी के सिर से पैर तक जैसे आग लग गई। उन्होंने कहा—"क्या कहा! तेरी इतनी मजाल! मेरे रहते तेरा क्या अधिकार है? तू सीधी तरह न मानेगा, तो मैं अभी अपने आदमियों से उसे निकाल बाहर कराऊँगा।"

विपिन काठ की तरह स्तब्ध और अवाक् होकर पिता की ओर ताकता रहा। अंत को उसने कहा—"अच्छा, आज रात-भर रहने दीजिए। कल उसकी लाश के साथ मैं भी आपके घर से चला जाऊँगा। और, अगर वह नहीं मरी, अच्छी रही, तो भी उसे लेकर और कहीं चला जाऊँगा। आज रात को न निकालिए।"

विपिन की आँखों से आँसू की धारा बह चली। यह देखकर हरिविहारी किंकर्तव्य-विमूढ़-से हो गए। उन्होंने अपना भाव बदलकर स्नेह के स्वर में कहा—"तो—तो तुम्हें किसने क्या कहा, जो तुम रो रहे हो? तुम्हारी जो ख़ुशी हो, करो, मैं नहीं जानता।"

इतना कहकर हरिविहारी बाबू वहाँ से चल दिए। पुरखिन को बड़ी आशा थी कि हरिविहारी के आते ही विपिन को लाचार होकर यह सब अनाचार, अधर्म बंद कर देना पड़ेगा। किंतु युद्ध के प्रारंभ में ही योद्धा को पीठ दिखाकर भागते देख हताश होकर वह वहीं बैठ गईं।

विपिन ने कमरे के भीतर जाकर, कालीतारा के मुँह के पास झुककर पूछा—"चाची, अब कैसी हो? कुछ आराम है?"

कालीतारा की आँखों के कोने से दो बूँद आँसू ढुलक पड़े। उसने आँखें कुछ खोलकर कहा - "मेरे अच्छे होने या न होने से अब क्या लाभ-हानि है बेटा? मेरा समय पूरा हो आया है। लाओ, बच्चे को मेरी छाती पर लिटा दो।"

मालती ने बच्चे को उसकी छाती पर लिटा दिया। कालीतारा ने 'आः' कहकर घड़ी-भर आँखें बंद किए-किए पुत्र-स्पर्श का अनुभव किया। उसके बाद आँखें खोलकर मालती की ओर देखकर उसने कहा—"नहीं जानती, तुम कौन हो बेटी। तुम चाहे जो हो, इस जन्म में ज़रूर मेरी मा थीं।—बेटा विपिन, तुम मेरे बच्चे को देखना। अपनी माता के पाप से यह निष्पाप निरपराध बच्चा न कष्ट पावे।"

विपिन ने अपने आँसू पोंछते-पोंछते कहा—"चाची, यह तुम क्या कह रही हो? तुम जियोगी, और आप अपने लड़के को देखो-सुनोगी।"

कालीतारा की आँखें फैल गईं, और मुख विवर्ण हो गया। उसने

बड़े कष्ट से कहा—"ओः! कलेजे के भीतर न-जाने क्या हो रहा है! दम घुट रहा है—साँस नहीं ली जाती!"

विपिन ने चटपट दवा ढालकर कालीतारा को पिलाई। फिर वह थोड़ी देर तक चुप पड़ी रही। विपिन ने घुरुआ से कहा—"जाओ, डॉक्टर को बुला लाओ।

कालीतारा तैल-हीन दीपक की तरह क्रमशः निष्प्रभ होने लगी धीरे-धीरे मृत्यु-काल के सब लक्षण देख पड़ने लगे। उसकी आँखें बंद हो चलीं; देह एक बार काँपकर एकदम जड़-सी हो गई; साँस का चलना भी बंद हो गया।

मालती ने चटपट बच्चे को कालीतारा के ऊपर से उठाकर अपनी गोद में ले लिया। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। विपिन ने भी एक लंबी साँस लेकर कहा—"भगवान्!"

विपिन आँखें मूँदकर स्तब्ध होकर जहाँ-का-तहाँ बैठा रहा।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

थोड़ी देर के बाद बच्चा रो उठा। तब विपिन को जैसे होश आया। उसने आँसू पोंछकर सब औरतों को संबोधन करके कहा—"इस असहाय जीव की मा तो इसे छोड़ गई। अब तुममें कौन दयावान् है—कौन इसकी मा बनेगी?"

सब चुपचाप खड़ी रहीं। किसी ने साँस तक नहीं ली। विपिन ने फिर कहा—"बोलो-बोलो, कौन इस अनाथ बच्चे का भार लेकर पुण्य-संचय करने को तैयार है?"

तब पुरखिन ने कहा—"वह आफ़त कौन अपने सिर लेगा? कौन इस झंझट में पड़ेगा? इसे मैं बैरागियों के अखाड़े में भेज दूँगी। वहाँ बैरागिनें भी रहती हैं, वे ही इसे पालेंगी।"

विपिन ने वेदना-मिश्रित तिरस्कार के स्वर में कहा—"अम्मा, तुम्हें ऐसी निठुर बात कहना नहीं सोहता। मेरी मा जिस दिन मुझे छोड़कर मरी थीं, उस दिन तो तुमने ही मुझे अपनी गोद में आश्रय दिया था! मुझे तो तुमने बैरागियों के अखाड़े में नहीं भेज दिया था अम्मा?"

विपिन की आँखों में आँसू भर आए। पुरखिन ने भी चोट खाकर कहा—"ज़रा इस पागल की बातें तो सुनो! तुझे मैं कैसे बैरागियों के अखाड़े में भेजती? तू हमारे वंश का दुलारा, आँखों का तारा था! बड़े दुःख का पहलौठी का लड़का था! तेरी और इसकी बराबरी!"

विपिन ने कहा—"मुझमें और इस बच्चे में बहुत अधिक अंतर नहीं है अम्मा। यह भी मेरे चाचा का लड़का है, मेरा भाई है। तुम कोई न स्वीकार करो, लेकिन मैं स्वीकार करूँगा, यह मेरा भाई है। मेरे शरीर में जिस वंश का रक्त है, इसके शरीर में भी उसी वंश का रक्त है। मैं इसे किसी तरह लावारिस की तरह छोड़ नहीं सकूँगा। इसकी मा मरते समय इसे मुझे सौंप गई है। मैं अपने प्राण देकर भी इसकी रक्षा करूँगा। लेकिन अपने प्राण देकर भी मैं इसके माता के अभाव को पूरा नहीं कर सकूँगा, यही मुश्किल है। इसी से पूछता हूँ कि कौन पुण्यात्मा इस पर दया करके इसकी माता बनेगी?"

फिर सब औरतें चुप रहीं। विपिन ने एक-एक करके सबके मुँह की ओर देखा। उसकी दृष्टि के सामने किसी की दृष्टि नहीं ठहर सकी। किसी ने उसकी प्रार्थना नहीं स्वीकार की। विपिन ने क्षोभ-पूर्ण स्वर में कहा—"तो क्या यहाँ कोई ऐसा एक भी आदमी नहीं है, जिसके हृदय में दया और ममता हो? कोई अपने स्नेह से इस असहाय, निरपराध बच्चे की रक्षा नहीं करेगा? आख़िर को क्या

मुझे इसके लिये कोई नीच जाति की धाय ही नौकर रखनी पड़ेगी ?"

तब मालती ने साहस करके धीरे-धीरे सिर उठाकर विपिन की ओर देखा। उस दृष्टि से स्नेह जैसे बरस रहा था, करुणा जैसे उमड़ी पड़ती थी। लेकिन अभय-भाव के साथ ही संकोच, विनय और अपने महत्त्व को छिपाने की चेष्टा भी पूर्ण मात्रा में झलक रही थी। उस दृष्टि में करुणा से उत्पन्न आग्रह भरा हुआ था; लेकिन वाह-वाही लूटने की व्यग्रता का नाम भी नहीं था। विपिन का मन अश्वस्त हो उठा। वह आशा-पूर्ण और कृतज्ञता-भरी दृष्टि से मालती की ओर ताकने लगा।

मालती ने एक बार चकित दृष्टि से सबकी ओर देख लिया। उसने देखा, कोई भी विपिन की प्रार्थना स्वीकार करने को राज़ी नहीं है। वह सिर झुकाए, धीर स्वर में कहने लगी—"मैं इसे पालूँगी। मेरे जीवन में तो और कोई काम नहीं है, और कोई अवलंबन नहीं है। मैं यही काम करूँगी, यही मेरे जीवन का अवलंबन होगा। लेकिन इसके लिये दूध का प्रबंध आपको ही करना होगा।"

विपिन ने उत्साहित होकर कहा—"उसके लिये क्या चिंता है ? उसका बंदोबस्त मैं कर दूँगा। तो आज से यह असहाय बच्चा तुम्हारा है।

मालती चुपचाप बैठी रही। वह अपने मन में सोचने लगी, अच्छा हुआ, जैसे मैं सबकी घृणा का पात्र हूँ, वैसे ही सबकी घृणा का पात्र यह बच्चा मुझे मिला।

मालती के मन का यह भाव आलोचना में लगी हुई घर की और औरतों के मन में भी उठा। वे इस विषय को लेकर आंदोलन, व्यंग्य और विद्रूप करने लगीं।

बच्चे के बारे में निश्चित होने पर विपिन उस लाश को ठिकाने

लगाने के लिये प्रबंध करने की चिंता में लगा। कौन इस लाश को मसान तक ले जायगा? इस पतित स्त्री की लाश को गाँव का कोई भला आदमी या ब्राह्मण छूने के लिये राज़ी न होगा, यह तो निश्चय है। हाय-हाय! ऐसे अवसर पर नवकिशोर गाँव में नहीं है। वह होता, तो विपिन और वह, दो ही जने लाश को मसान तक ले जाते, और सब काम ठीक हो जाता।

विपिन ने घुरुआ से कहा—"घूरू दादा, जाओ, ड्योढ़ी में और मंदिर में जो ब्राह्मण नौकर हैं, उनसे मेरी तरफ़ से कहो कि उन्हें मसान चलना होगा। एक बार कह देना, ज़ोर न देना; जिसका जी चाहेगा, वह आवेगा। और, भट्टाचार्य काका को भी ख़बर दे देना।"

घुरुआ चला गया। विपिन उस लाश के पास ही बैठा रहा। शाम होने में थोड़ी ही देर बाक़ी रह गई। आज उसने अभी तक स्नान-भोजन कुछ भी नहीं किया। घर में और किसी ने भी उसके कारण, और मुर्दा घर में पड़ा रहने की वजह से, कुछ खाया-पिया नहीं। विपिन के इस काम से सभी उसके ऊपर असंतुष्ट थे। सबसे बढ़-कर असंतोष माधवी के ऊपर था। मसल ही मशहूर है—"धोबी से जीतें नहीं, गधे के कान उमेठें।" किसी को इस बारे में रत्ती-भर भी संदेह न था कि सबको नीचा दिखाने और विपिन की प्रसन्नता प्राप्त करने ही के लिये माधवी आप ही से सब काम कर रही है। सब-का यही कहना था कि हमने बहुत औरतें देखी हैं, लेकिन ऐसी मर्दों के सिर चढ़नेवाली, मर्दों के ऊपर आप से गिर-गिर पड़नेवाली, औरत नहीं देखी!

संध्या हो गई; अँधेरा घना हो आया। पुरबिन ने जया से कहा—"जाओ, घर में दिया बालकर सँझवाती तो कर दो। एक तो आज ठाकुर का भोग नहीं लगा, उस पर सँझवाती भी क्या न होगी?—सब तरफ़ अलच्छन-ही-अलच्छन देख पड़ते हैं! जब से माधवी

का पैरा घर में आया है, तब से जैसे घर की सुख-शांति सब जाती रही है।"

विपिन ने तिरस्कार और उलाहने के स्वर में कहा—"अम्मा, तुम कैसी बातें कर रही हो!"

पुरखिन ने कहा—"मैं तो मुँह-देखी बातें करना नहीं जानती। सच कहने में डर काहे का?—क्षमा, मोक्षदा, जाओ, सब कोठरियों और कमरों में दिया दिखाकर देहली में पानी डाल आओ।—अच्छी आफ़त है, घर में पराया मुर्दा ताककर बैठो! ठीक किसी ने कहा है—'कहाँ का मुर्दा, और नानामऊ का घाट!'"

जया, क्षमा, मोक्षदा और पाँचू की मा उठ गईं। पाँचू की मा को जाते देखकर पुरखिन ने कहा—"बहू, तुम एक लोहे का छल्ला उँगली में डाल लो, घर में मुर्दा पड़ा है। तुम्हारे पेट में बच्चा है, तुम सावधानी से रहो। मुर्दा ले जाते समय तुम उधर न देखना। बल्कि तुम ठाकुरद्वारे में जाकर बैठो। अकेले डर लगे, तो मोक्षदा को अपने साथ ले जाओ।"

थोड़ी दूर जाकर ही जया ने कहा—"तुमने मालती की बातें देख लीं! कैसी गले पड़नेवाली औरत है बाबा! विपिन के मा हैं, हम लोग भी मा के ही बराबर हैं, हम सब थीं, और चाची थीं। हममें से कोई क्या उस लड़के को सँभालता ही नहीं! क्या कोई उस बच्चे को इस तरह पड़ा रहने देता—उसे यों ही मर जाने देता! लेकिन मालती से रहाइस नहीं हुई, चटपट बोल उठी—'मैं इस बच्चे की देख-रेख करूँगी।' जैसे इसी को उस बच्चे का बड़ा दरद है, और किसी को नहीं! सच किसी ने कहा है कि 'आप मियाँ माँगते और खड़े दरबार!' अपने खाने-पीने का तो सुभीता नहीं है, पराए टुकड़ों पर आकर पड़ी है, और पराए बच्चे को पालने का इतना शौक है!"

क्षमा ने कहा—"सच तो है बहन। मालती सभी बातों में अपने को सबसे बढ़कर दिखाना चाहती है। सच तो यह है कि यह सब विपिन को बस में करने की चाल है! विपिन से बातचीत करने का बहाना ढूँढ़ती ही फिरती है।"

मोक्षदा ने कहा—"यह सब उमर का दोष है जी।"

पाँचू की मा ने कहा—"ऐसी बेहया औरत तो और नहीं देखी! जवानी की उमर क्या और किसी के हुई ही नहीं, सिर्फ़ मालती ही के जवानी चढ़ी है? हम सब भी तो कभी जवान थीं। मेरा ही गुलाब का-जैसा रंग था; जब से पाँचू हुआ, तब से ऐसा रंग हो गया है। तुम तो देख चुकी हो। लेकिन मैंने तो कभी अपने रूप का घमंड करके ऐसी 'अति' नहीं की कि धरती पर पैर ही न रक्खा हो, या मर्दों की खोपड़ी पर चढ़कर उनसे बातचीत की हो।"

मोक्षदा ने कहा—"सो चाहे जो कहो बहू, मालती ख़ूबसूरत तो ज़रूर है।"

क्षमा ने मुँह मटकाकर कहा—"ख़ूबसूरत पत्थर है! आँखें दोनो बैल की-जैसी बाहर निकली पड़ती हैं; नाक तीन हाथ ऊँची है! हम सब उससे साँवली ज़रूर हैं, लेकिन हमारे मुँह की गढ़न उससे कहीं अच्छी है!"

जया ने मटककर कहा—'तुमने सुना नहीं, गोरा चमड़ा सब ऐबों को हर लेता है? लोग गोरा चमड़ा देखकर ही लट्टू हो जाते हैं!"

इस तरह मालती की निंदा करते-करते दिया जलाया गया। जया ने कहा—"जा तो क्षमा, सब कोठरियों में दिया दिखा आ, और मोक्षदा, तू चौखटों पर पानी डाल आ।"

क्षमा और मोक्षदा ने कहा—"ना भाई, हम अकेली नहीं जा सकेंगी। घर में मुर्दा पड़ा हुआ है, रोंगटे खड़े हो रहे हैं। तुम भी हमारे साथ चलो जया मौसी।"

तब चमा, मोक्षदा, जया और पाँचू की मा, चारो जनी राम-राम कहती सब कोठरियों में दिया दिखाती और चौखटों में पानी डालती हुई विपिन के कमरे में लौट आईं।

पुरखिन ने दीपक का प्रकाश देखकर हाथ जोड़े और बार-बार राम-राम, भगवान्-भगवान् कहना शुरू किया।

मोक्षदा विपिन के कमरे की चौखट में पानी छोड़ने चली। पुरखिन ने कहा—"हाँ-हाँ-हाँ—यह क्या करती है? इस चौखट में अभी पानी न डाल। मुर्दा निकल जाने पर गोबर से लीपकर पानी डाला जायगा।—कोठे पर इसकी मौत हुई है, इसकी गति कहाँ बन सकती है। ऐसे आदमियों की ऐसी मौत तो होती ही है! ऊपर मरी है, भूत होकर आसमान में फिरती रहेगी!"

विपिन ने कहा—"अम्मा, ये सब पुराने ख़याल की बातें हैं। कोठे पर मरने से ही कोई भूत नहीं हो सकता, और इसके सिवा भूत तो कोई चीज़ ही नहीं है।"

पुरखिन जानती थीं कि विपिन से बहस करके जीतने की आशा नहीं है। इसी से वह चुप रहीं।

इसी समय घुरुआ ने आकर कहा—"कोई भी इस मुर्दे को कंधा देना या छूना नहीं चाहता। सभी कहते हैं कि ऐसी औरत की लाश छूने से उन्हें अपनी बिरादरी से निकल जाना पड़ेगा। सिर्फ़ भगवानदीन सुकुल और महीपति तेवारी आए हैं। भट्टाचार्यजी ने भी आने को कहा है।"

इसी समय सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते भट्टाचार्य ने कहा—"मैं आ गया हूँ भैया विपिन! मुर्दे को ले जाने का क्या प्रबंध हुआ?"

विपिन ने कहा—"आदमी ही नहीं मिलते भट्टाचार्य काका!"

पुरखिन कह उठीं—"बैरागियों के अखाड़े में ख़बर देने से बहुत लोग मिल जायँगे। उन्हें खिलाने-पिलाने में ख़र्च करना पड़ेगा,

और कुछ नगद भी शायद देना पड़े। मगर इससे क्या, ख़र्च तो करना ही पड़ेगा। अपने दरवाज़े का मैला साफ़ ही करवाना पड़ता है!"

इस अनोखी उपमा से विपिन और भी जल उठा। उसने उत्तेजित होकर कहा—"नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। मैं बैरागियों को कभी नहीं लाश छूने दूँगा।"

भट्टाचार्य ने कहा—"क्यों भैया? इसमें तुम्हें क्या आपत्ति है? क्या मुर्दे को भी छूत का विचार है?"

विपिन ने कहा—"यह बात नहीं है। मैं इसे इस शव का अपमान समझता हूँ! यह मैं किसी तरह नहीं होने दे सकता। इस शव का अपमान करने का अधिकार किसी को नहीं है। मैं किसी तरह यह बात नहीं स्वीकार कर सकता कि इन्होंने कोई पाप किया था। अगर इनसे कोई पाप भी बन पड़ा हो, तो उसमें इनका कोई दोष नहीं है। बच्चे की रक्षा करने के लिये इन्होंने अपने मानसिक बल का जैसा परिचय दिया है, उसे देखकर इन्हें धन्य कहना चाहिए! अपने प्राण दे दिए, मगर बच्चे की हत्या करने को राज़ी नहीं हुईं।—घूरू दादा, बुलाओ तो भगवानदीन और महीपति को, हम तीन जने ही किसी तरह मसान तक लाश को ले जायँगे।"

भट्टाचार्य ने कहा—"चलो भैया, चौथा मैं भी तो हूँ।"

विपिन ने कहा—"ना-ना, आप वृद्ध हैं, आपको कष्ट होगा। हम तीन जने ही ले जायँगे।"

भट्टाचार्य ने हँसकर कहा—"भैया, शरीर वृद्ध है तो क्या हुआ, आत्मा तो वृद्ध नहीं है? मुझे कष्ट होगा या न होगा, इसे मैं ही ख़ूब समझ सकता हूँ। और, यह महीपति तेवारी भी तो मुझसे कम वृद्ध नहीं हैं? महीपति के शरीर की लटक रही खाल की ओर देखकर विपिन को हँसी आ गई।"

चारो आदमी कालीतारा के शव को उठाकर मसान ले चले। उसके सदा के लिये संसार से बिदा होते समय किसी ने एक बार विलाप नहीं किया—किसी के हृदय में तनिक भी वेदना नहीं हुई। सिर्फ़ मालती ने एक बार सबसे छिपाकर आँचल से आँसू पोंछे, और उस बालक को छाती से लगा लिया।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

विपिन चौरहद लाश को लेकर जब घर के बाहर निकले, तब गाँव के अनेक आदमी कंधा देने के लिये आग्रह प्रकट करने लगे। गाँव के ज़मींदार को ख़ुद कंधा देते देखकर सबका उत्कट धर्म-भाव दब गया, समाज-च्युत होने का भय जाता रहा। मतलब यह कि ख़ूब धूम के साथ ही लाश मसान पहुँची, और उसका दाह-कर्म हुआ

इधर घर के भीतर से मुर्दा निकल जाने पर पुरखिन ने कहा—"रोहिणी, तू और भोंदू की मा, दोनो मिलकर इस कमरे को साफ़ करके धो डालो, और जहाँ लाश पड़ी थी, वहाँ गोबर का चौका लगा दो।"

रोहिणी ने नाक सिकोड़कर, मुँह मटकाकर कहा—"मुझसे तो इस जाड़े में नहाया-धोया नहीं जायगा! भोंदू की मा से हो सके, तो वह करे।"

भोंदू की मा ने भी कहा—"मुझसे तो और भी नहीं हो सकता। तीन दिन से जूड़ी में भुगत रही हूँ।"

पुरखिन ने बिगड़कर कहा—"तुम सब नहीं कर सकोगी, तो फिर क्या मैं करूँ?"

मालती ने कहा—"बड़ी मौसी, मैं सब साफ़ किए देती हूँ।"

पुरखिन ने मालती की बात का कुछ उत्तर नहीं दिया। मालती

ने तत्परता के साथ सब जगह पानी डालकर, झाड़ू से धोकर साफ़ कर दिया।

पुरखिन बोलीं—"अजी ए मेमसाहब! गोबर तो डाला ही नहीं? लछमी-चरित्र में लिखा है—

लछमी का बास आँवले में शख पद्म गोबर में;
और लछमी सदा रहें धोए नए बस्तर में।

तुम सब तो सास्त्र-वास्त्र कुछ मानती नहीं हो। लेकिन हम तो तुम्हारी तरह मेमसाहब नहीं हैं?"

मालती चटपट गोबर लाकर लीपने लगी।

तब पुरखिन ने कहा—"तुम इस लड़के को लेकर कहाँ रहोगी? तुम तो विपिन ही के कहने पर चलती हो! सोने के कमरे को सौर बना ही डाला!"

मालती ने कहा—"यह कमरा जब सौर हो चुका है, तो मैं इसी में रहूँगी।"

पुरखिन ने कहा—"तो फिर विपिन कहाँ रहेगा?"

मालती ने हँसकर कहा—"यह तो वह ख़ुद ही जानें, जिन्होंने जान-बूझकर सोने के कमरे को सौर बनाया है।"

मालती को हँसते देखकर पुरखिन जल उठीं। उन्होंने तीव्र स्वर में कहा—"तुम्हारे पास कौन रहेगा? छोटी बहू?"

चाची चटपट रूखे स्वर में कह उठीं—"हाँ: ! छोटी बहू को तो और कुछ काम-काज नहीं है, जो सौर ताककर बैठेंगी? मुझे पूजा-पाठ, ध्यान-जप करना है। मैं सौर ताककर नहीं बैठ सकूँगी।"

मालती ने देखा, समस्या जटिल है। उसे ताककर कोई बैठेगा नहीं, और अकेले रहने पर भी बदनामी और निंदा होगी। यह ख़याल होते ही उसकी तेजस्वी प्रकृति विद्रोही हो उठी। उसने कहा—"मैं यहाँ अकेली ही रहूँगी।"

सब औरतें अवाक् होकर इस साहसिका के मुँह की ओर ताकने लगीं।

रोहिणी ने व्यंग्य के स्वर में कहा—"सो रहेंगी तो डर ही क्या है ? छोटे राजा तो इस पास की कोठरी में ही रहेंगे।"

मालती सब समझ गई, और समझकर ही खूब निश्चित और स्वाभाविक भाव से उस बच्चे के खाने-पीने और सोने का प्रबंध करने लगी।

मालती को इस तरह लोकापवाद के भय की परवाह न करते देखकर पुरखिन सन्नाटे में आ गई। उनके मुँह से कोई बात नहीं निकली। चाची ने चटपट मालती की रक्षा के लिये कहा—"सो इसको तो इसी कमरे में रहना ही पड़ेगा। यहाँ सौर हो चुकी है, अब और जगह हो नहीं सकती। न होगा, मैं इस पास की कोठरी में रहूँगी। और, जीजी, तुम कह देना, कोई दासी इस दालान में सो रहेगी।

पुरखिन ने इस बात का कुछ उत्तर न देकर कहा—"जाकर देखूँ, ठाकुरजी का क्या इंतिज़ाम होगा। नहीं मालूम, किसके हाथों उनकी गति होगी।"

यह सुनकर मालती को ऐसी हँसी आई कि वह एकाएक उस बच्चे को अत्यंत मनोयोग के साथ दूध पिलाने लगी। ठाकुरजी की गति की चिंता मनुष्य को है, जो सबकी ख़बर लेते हैं!

पुरखिन ने रोहिणी से कहा—"जा, दुबे से कह दे कि बाहर के मंदिर के पुजारी हाराधन को बुला दे; निवारण और गोवर्धन तो अब इस घर में आवेंगे ही नहीं। छी-छी! आजकल के लड़के ऐसे हैं कि ब्राह्मण-देवता नहीं मानते! ब्राह्मण के क्रोध या सराप का भी ख़ौफ़ उनको नहीं है!—अरे ओ भोंदू की मा, बाहर के दरवाज़े के पास एक घड़े में पानी भरके रख दे। आग, लोहा,

और नीम की टहनी भी रख दे। विपिन जब लौटकर आवेगा, तो नीम के पत्ते चबाकर, पैर से आग और पानी छूकर, लोहा लेकर भीतर आवेगा।—शायद वह इन सब बातों को माने ही नहीं! लेकिन वह माने या न माने, हमको तो करना ही पड़ेगा। जा-जा, उसका क्या ठीक है, आते ही भीतर घुस आवेगा।"

दिन-भर की अशांति के बाद फिर घर में शांति देख पड़ने लगी। ठाकुरद्वारे में घंटा-शंख बजा, आरती हुई, भोग लगा। घर में चूल्हा जला। लड़के खा-पीकर सोने की तैयारी करने लगे। बिनी दिन-भर के बाद अपनी मा की गोद में जाने के लिये रोने लगी। पुरखिन ने कहा—"ठहर जा, मैं सब देख-सुन आऊँ, विपिन के खाने को, ठाकुरजी के भोग को, और पुजारी की बियालू को कुछ किया गया या नहीं।"

जया ने कहा—"दुधमुही लड़की शाम को मा के बिना कैसे रह सकती है? तुम इसे गोद में लेकर बहलाओ। उधर का सब इंतिज़ाम मैं किए आती हूँ।"

जया को अकेले जाने देखकर चाची अम्मा भी उसके साथ गईं। पुरखिन ने बिनी को गोद में लेकर कहा—"तुझे गोद में लेकर बैठे रहने से तो मेरा काम नहीं चल सकता। मुझे तो सभी तरफ़ देख-भाल करनी है। चल, ठाकुरद्वारे की दालान में चलकर बैठूँ, वहाँ से सब तरफ़ की देख-भाल कर सकूँगी। मालती, तुम यहाँ अकेली रह सकोगी? हम सब तुमसे बहुत दूर तो रहेंगी ही नहीं।"

आज पहलेपहल पुरखिन से इतना-सा सदय व्यवहार पाकर मालती ने अपने को कृतार्थ समझा। वह चटपट कह उठी—"हाँ बड़ी मौसी, तुम जाओ, मैं यहाँ अकेली रहूँगी।"

तब पुरखिन उठकर ठाकुरद्वारे की दालान में गईं।

दम-भर के बाद ही विपिन मसान से लौटकर आ गया। वह सीधा भीतर चला आ रहा था, पुरखिन ने कहा—"हाँ-हाँ-हाँ, ज़रा यहीं खड़ा हो जा। वह आग और पानी पैर से छू ले, लोहा कमर में लगा ले, नीम के पत्ते खोंट ले। तब भीतर आ।"

विपिन उस समय इतना थका हुआ था कि उसने बिना प्रतिवाद के इन सब अर्थ-हीन रीतियों का पालन कर डाला।

पुरखिन ने विपिन से कहा—"बैठ-बैठ, यहीं बैठ जा।"

विपिन अपनी माता के पास बैठ गया।

पुरखिन पुत्र के बालों में अंगुलि-संचालन करके बोलीं—"यह क्या! सिर अभी तक भीगा हुआ है, अच्छी तरह सिर भी नहीं पोंछा! सर्दी के दिन हैं, भीगा सिर लिए सोवेगा, तो तबियत न ख़राब हो जायगी?"

पुरखिन अपने दुपट्टे के आँचल से विपिन का सिर पोंछने लगीं। विपिन ने लाख कहा कि रहने दो, बस, हो गया, लेकिन उसकी बात कौन सुनता है। ख़ूब अच्छी तरह पुत्र का सिर पोंछकर पुरखिन ने कहा—"छोटी बहू, विपिन के लिये थोड़ी-सी मिठाई ले आओ, खाकर पानी तो पी ले।"

विपिन—"अभी मैं कुछ नहीं खाऊँगा। रसोई बन जाने दो। बस, रोटी-दाल ही खाऊँगा।"

पुरखिन—"अरे दिन-भर पानी भी नहीं पिया। उस पर इतनी मेहनत की है, गला सूख गया होगा। जब तक रोटी बनती है, तब तक कुछ खाकर पानी तो पी ले। न मिठाई खाने को जी चाहे, शरबत ही पी ले।"—"छोटी बहू, देखो तो, खाने को तैयार हो गया। हो गया हो, तो विपिन आकर खा ले, और सो रहे।—हाँ विपिन, तू सोवेगा कहाँ?"

विपिन—"अपने कमरे में।"

पुरखिन—"वहाँ तो सौर हो चुकी, मालती उस बच्चे को लेकर रहेगी।"

विपिन—"तो मैं अपनी लाइब्रेरी की कोठरी में सोऊँगा।—अरे रोहिणी!"

रोहिणी ने सामने आकर कहा—"क्या छोटे राजा?"

विपिन—"जा, घुरुआ से कह दे कि लाइब्रेरी की कोठरी में जो बड़ा कोच पड़ा है, उसके ऊपर मेरा बिछौना बिछा दे।"।

पुरखिन ने कहा—'तू उस कोठरी में कैसे रहेगा? चारो तरफ़ किताबें ठसी हुई हैं। सीलन और किताबों की गंध आती है। वहाँ तुझे नींद कैसे आवेगी?"

विपिन—"ख़ूब नींद आवेगी अम्मा। किताबों की गंध हम लोगों के लिये चंदन की सुगंध से बढ़कर है।"

पुरखिन अपने लड़के की 'धुन' को अच्छी तरह पहचानती थीं। उन्होंने फिर कुछ नहीं कहा। विपिन भोजन करने चौके पर गया।

भोजन करने के बाद विपिन सोने गया। राह में अपने सोने के कमरे के दरवाज़े पर पहुँचकर विपिन ठिठक गया। उसने देखा, मालती अकेली बैठी है। विपिन ने स्नेह-पूर्ण स्वर में पूछा—"मालती, अकेली हो?"

मालती ने हँसकर कहा—"अब तो मैं अकेली नहीं हूँ। भगवान् ने मुझे एक साथी भेज दिया है।"

कल्याण-रूपिणी स्नेहमयी जननी की तरह मालती बच्चे को गोद में लिए बैठी थी। उसके मुख-मंडल पर एक अपूर्व महिमा की ज्योति झलक रही थी। विपिन मुग्ध दृष्टि से उस अपूर्व सौंदर्य को निहारने लगा। उस समय वह ऐसा तन्मय हो गया कि आपे में ही नहीं रहा।

विपिन को इस तरह एकटक अपनी ओर ताकते देखकर मालती ने कुंठित और संकुचित होकर कहा—"रात बहुत गई है, अब आप सोने जाइए।"

विपिन अनिच्छा के साथ धीरे-धीरे अपनी लाइब्रेरी की कोठरी में चला गया।

उनतीसवाँ परिच्छेद

कालीतारा का लड़का भी नहीं जिया।

उसकी चिकित्सा, सेवा-टहल, दवा-पथ्य वग़ैरह की व्यवस्था करने के लिये कई दिन तक विपिन को आठो पहर मालती के पास ही रहना पड़ा था! बच्चे की मृत्यु हो जाने पर मालती को बड़ा दुःख हुआ। उस पर उसे अपने लड़के की-सी ममता हो गई थी। वह व्याकुल होकर हर घड़ी रोया ही करती थी। विपिन जानता था, घर में कोई मालती को सांत्वना देनेवाला नहीं है। यह जानकर वह मालती को सांत्वना देने के लिये नई-नई अच्छी-अच्छी किताबें लाकर देता और उसे समझाने-बुझाने की चेष्टा करता था।

पुरबिन ने विपिन का यह हाल देखकर शंकित होकर एक दिन हरिविहारी से कहा—"तुम तो कुछ देखते-सुनते ही नहीं। विपिन मालती ही के पास हर घड़ी बना रहता है। उसका ब्याह न कर देने से एक दिन पछताने के सिवा और कुछ हाथ नहीं लगेगा!"

हरिविहारी ने एक चिट्ठी दिखाकर कहा—"झिनुकपाता के ज़मींदार हरीश बाबू ने यह चिट्ठी लिखी है। वह माघ-महीने में ही अपनी लड़की का ब्याह कर देना चाहते हैं। माघ-सुदी नवमी

के दिन एक लग्न है। उसी लग्न में विपिन का ब्याह हो जायगा। क्यों, तुम्हारी क्या राय है ?"

पुरखिन ने उत्साहित होकर कहा—"हाँ, बस, उसी लग्न में ब्याह कर दो। शुभ काम में देर करना ठीक नहीं। मालती भी अच्छी आफ़त आ गई है! उसके मारे नाक में दम है!"

हरिविहारी ने कहा—"कई दफ़े तो कह चुका हूँ कि घर-से निकाल बाहर कर दो।"

पुरखिन न कहा—"बाप रे! यह कैसे हो सकता है? लड़का अनर्थ कर देगा! वह भी उसी के साथ घर छोड़कर चला जायगा!"

हरिविहारी ने कहा—"हें:, घर छोड़कर चले जाना क्या सहज है?"

पुरखिन ने कहा—"ना-ना, तुम विपिन को नहीं पहचानते। वह बड़ा ज़िद्दी है। उसे छेड़ने की ज़रूरत नहीं है। जल्दी से उसका ब्याह कर दो। बहू आकर आप सब ठीक कर लेगी।"

हरिविहारी ने कहा—"अच्छा ज़रा विपिन को बुलाओ तो, उससे ब्याह के बारे में ज़रा बातचीत करूँगा।"

उधर से एक ख़रगोश का बच्चा गोद में लिए बिनोद निकला। वह उछलता हुआ जा रहा था। पुरखिन ने उसे पुकारकर कहा—"अरे ओ बिनोद, अपने दादा को बुला ला।"

बिनोद उछलता हुआ जाकर विपिन को बुला लाया।

विपिन आकर खड़ा हुआ। लेकिन कुछ बोला नहीं, थोड़ी देर तक अपेक्षा करके विपिन ने कहा—"आपने क्या मुझे बुलाया है?"

हरिविहारी ने कहा—"हाँ। मैंने यह कहने के लिये बुलाया है कि तुम दिन-रात घर में बैठे-बैठे क्या करते हो? थोड़ा-बहुत ज़मींदारी का काम देखो।"

विपिन ने कहा--"आप कहें, तो देख सकता हूँ। लेकिन मैं किसी कर्मचारी का अन्याय नहीं देख सकूँगा। मुझे ज़मींदारी का काम सौंपिएगा, तो मैं दीवान से लेकर मुहर्रिर तक सब चोरों को मुनासिब सज़ा दिए बिना नहीं छोड़ूँगा। असामियों के ऊपर शासन के नाम से अभी जो अत्याचार किया जाता है, वह मैं किसी तरह नहीं होने दूँगा। यह सब अधिकार मुझे मिले, तो मैं ज़मींदारी का इंतिज़ाम अपने हाथ में ले सकता हूँ।"

हरिविहारी ने कहा—"इन बातों के बारे में पीछे देखा जायगा। अभी काम तो शुरू करो। कल से कचहरी में जाकर बैठा करो।"

विपिन—"बहुत अच्छा" कहकर जाने लगा।

हरिविहारी ने कहा—"सुनो। मैंने झिनुकपाता गाँव के ज़मींदार हरीश चटर्जी की लड़की के साथ तुम्हारा ब्याह ठीक कर लिया है। माघ-सुदी नवमी की लग्न है। तुम्हें जो कुछ दरकार हो, उसकी एक लिस्ट बनाकर दीवानजी को दे देना।"

विपिन ने विस्मित होकर कहा—"मेरा ब्याह! इतनी जल्दी!"

हरिविहारी ने कहा—"हाँ, इसमें आश्चर्य क्या है? तुम तो इस तरह चौंक पड़े, जैसे तुमको फाँसी की ख़बर सुनाई गई!"

विपिन ने शांत स्वर में, किंतु दृढ़ता के साथ कहा—"मगर मैं तो अभी ब्याह नहीं कर सकूँगा।"

हरिविहारी ने कहा—"क्यों? इसमें कठिन बात क्या है? पुरुष-परंपरा से सारे संसार के आदमी जिस काम को करते आ रहे हैं, उसे तुम क्यों नहीं कर सकोगे? तुम्हें ब्याह करना ही पड़ेगा।"

विपिन ने कहा—"ब्याह तो मैं करूँगा, लेकिन झिनुकपाता में नहीं।"

हरिविहारी ने रूखे स्वर में कहा—"क्यों?"

विपिन—"मैंने सुना है, वह लड़की बहुत छोटी है।"

हरिविहारी ने हँसकर कहा—"इसी बुद्धि का तुम्हें इतना घमंड है? अरे वह लड़की क्या सदा इतनी ही बड़ी बनी रहेगी? छोटी लड़की ही तो समय पाकर बड़ी होती है, या मा के पेट से ही बड़ी लड़की पैदा होती है—मैं हरीश बाबू को ज़बान दे चुका हूँ। तुमको वहीं ब्याह करना पड़ेगा।"

विपिन ने दृढ़ स्वर में कहा—"मगर मैं ऐसा नहीं कर सकूँगा।"

विपिन का जो चाहा कि कह दे, मैं मालती से ब्याह करूँगा। लेकिन फिर उसने सोचा, यह तो अभी जाँचा ही नहीं कि मालती के मन का भाव क्या है? मालती मेरे साथ ब्याह करने को राज़ी भी होगी या नहीं, यह जाने बिना ऐसी बात मुँह से निकाल बैठना ठीक न होगा। अतएव उस इरादे को रोककर विपिन ने निश्चय कर लिया कि पहले यह जानना चाहिए कि मालती का इरादा क्या है? वह अपना ब्याह करेगी या नहीं? और करेगी, तो मेरे साथ करने को राज़ी है या नहीं।

विपिन और कुछ न कहकर वहाँ से चल दिया। हरिविहारी और पुरखिन, दोनो विपिन के इस आचरण से अवाक् होकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

दम-भर के बाद पुरखिन ने कहा—"वह पागल है, उसकी बात पर तुम ध्यान न दो। सब ठीक कर डालो। झख मारकर उसे यहीं ब्याह करना पड़ेगा।"

हरिविहारी विपिन के इस व्यवहार से अपना अपमान समझकर मन-ही-मन गरज रहे थे। उन्होंने कहा—"हाँ, ठीक कहती हो। मैं अभी जाकर दीवानजी से ब्याह का सब इंतिज़ाम करने के लिये कहता हूँ।"

हरिविहारी बाहर बैठक में चल दिए। थोड़ी ही देर में गाँव-भर में यह ख़बर फैल गई कि माघ-सुदी नवमी को विपिन का ब्याह है।

माघ-सुदी नवमी के आने में दिन ही कितने हैं। ब्याह की तैयारी फुर्ती के साथ होने लगी। कितने मन चुकती के लड्डू बनेंगे, कितना मसाला कूटा-पीसा जायगा, कौन दीवार में 'लिखना' रक्खेगा, कौन क्या काम करेगा, किसे क्या पुरस्कार मिलेगा, इन बातों की आलोचना हरिविहारी बाबू के अंतःपुर में सरगर्मी के साथ होने लगी। पुरखिन चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगीं—"अरे जमादार को बुला लाओ, आकर सब सामान लिख ले जाय, और कलकत्ते से मँगवाने का जल्दी इंतिज़ाम करे। रोहिणी, अहीर के यहाँ दूध-दही का बयाना आदमी के हाथ भेज दे। बसी हलवाई को बुलाओ, घर में कहाँ भट्ठी खोदी जायगी, सो आकर देख ले। मछलीवाली को भी बुलवा ले, उससे मछलियों के रातिब के लिये कह दिया जाय। बिदेसिया की बहू से कह दे कि वह दरवाज़े पर हाज़िर रहे। बारी से बुलाकर दस हज़ार पत्तलों और दोनों के लिये कह दो। अरे अब बहुत दिन नहीं हैं, सब काम चटपट फुर्ती के साथ करना होगा।—अरे जाओ, सब मुँह बाए खड़ी क्या हो?—लेकिन ब्याह कराने बरात के साथ कौन जायगा? भट्टाचार्य तो समाज से बाहर कर दिए गए हैं। अच्छा, उनसे (हरिविहारी से) कहूँगी कि भट्टाचार्य को समाज में मिला लें। वह जो कहेंगे, उसे कौन टाल सकता है? समाज के सिरधरा तो वही हैं! मुझे यही ख़याल है कि भट्टाचार्य घर के पुराने पुरोहित हैं, उनके बिना जी नहीं मानेगा।—और, अगर ऐसा न हो सका, तो फिर नदिया से किसी भारी पंडित को ब्याह कराने के लिये बुला लिया जायगा।—मगर मुश्किल तो यह है कि अब दिन कुछ नहीं हैं। आज ही कल के बीच में सब इंतिज़ाम

कर डालना होगा। मैं अकेली क्या-क्या देखूँ ? सब काम मुझी को देखने पड़ेंगे ! और कोई उतनी ख़ूबी से देख-भाल कर भी तो नहीं सकता ! छोटी बहू, तुम्हें भी भई मेरा हाथ बटाना पड़ेगा। विपिन का ब्याह है, तुम ग़ैर की तरह क्या हाथ समेटे अलग ही बैठी रहेगी ? जाओ-जाओ, तुम सब देखो-भालो। मालती कहाँ है ? वह तो उस लड़के के ही रंज में दीवानी हो रही है ; जैसे उसी के पेट का लड़का था ! वह ऊपर का काम-धंधा तो देख सकती है।"

पुरखिन इसी तरह लगातर बक रही थीं। वह दिन-भर में दस दफ़े ठाकुरजी के सामने जाकर, हाथ जोड़कर प्रार्थना कर आती थीं कि हे नारायण, यह शुभ काम अच्छी तरह हो जाय, ऐसी दया करो। मैं आपको सवा मन का परसाद चढ़ाऊँगी। सोने के कड़े बनवाकर पहनाऊँगी।

संपूर्ण आनंद-कोलाहल के ऊपर बिनी के कोमल कंठ की बाँसुरी बड़े ही ऊँचे स्वर में बज रही थी। वह उछल-उछलकर कहती-फिरती थी—"अले, बले दादा का ब्याह होगा, बहू आवेगी। बला मजा होगा, बला मजा होगा।"

विनोद उचकता हुआ आया, और अपनी मा के गले से लिपटकर कहने लगा—"अम्मा, बड़े दादा का ब्याह हो रहा है, मेरा कब होगा ?"

पुरखिन ने हँसकर कहा—"अब की तू सहबाला बनेगा। उसके बाद, जब दादा के बराबर सयाना होगा, तब तेरा भी ब्याह होगा।"

विनोद के हृदय का आनंद जैसे उमड़ पड़ा। वह उछल-उछलकर घर-भर में यह कहता हुआ घूमने लगा—"अरे, मैं सहबाला बनूँगा ! दादा के साथ ब्याह करने जाऊँगा !"

बिनी मुँह फुलाकर, गंभीर भाव से कहने लगी—"मेला भी ब्याह होगा, बल आवेगा, बाजे बजेंगे—झय्यम-झय्यम-झय्यम !"

आज सभी आनंद मना रहे हैं ; लेकिन जिसका ब्याह है, उसका मुँह बहुत ही उदास है ; असाढ़ की अमावस की रात के समान अंधकारमय है। अपने विवाह की आशंका से उसका मुँह उतर गया है।

विपिन पिता के पास से लौटकर सीधा अपनी लाइब्रेरी में चला गया। आज वह इतना उद्विग्न हो रहा था कि माजती से मुलाक़ात भी नहीं कर सका। आराम-कुर्सी पर लेटकर उसने हाथ के पास जो किताब पाई, उसी को खोलकर आँखों के सामने रख लिया। सारी किताब के पन्ने उसे अपने मन के ही समान आदि से अंत तक काले-काले दाग़ों से भरे देख पड़े—बहुत खोजकर भी उसे उनमें कोई शृंखला या कुछ अर्थ नहीं मिला। पुस्तक के पन्नों पर दृष्टि रखकर वह इस दैव-दुर्विपाक से छुटकारा पाने के अनेक प्रकार के उपाय सोचने लगा। लेकिन उसे उनमें से कोई भी उपाय संभव और सहज नहीं जान पड़ता था।

वह सोचने लगा, इस समय क्या कर्तव्य है ? जब जीवन-मरण की समस्या सामने है, तब लज्जा-संकोच करने से काम नहीं चल सकता। देर करना भी ठीक नहीं है। माजती से अपने हृदय का सब हाल कह देना ही ठीक है। उसके सिवा और कोई मेरी रक्षा नहीं कर सकता। वह अगर मुझसे ब्याह करने को राज़ी हुई, तब तो अच्छी ही बात है। नहीं तो ? देखा जायगा। भविष्य की व्यवस्था भविष्य आप ही कर लेगा। इस समय अगर यहाँ नवकिशोर होता, तो बड़ा अच्छा होता ! नवकिशोर को एक चिट्ठी क्यों न लिख दूँ ? वह आकर शायद कोई अच्छा उपाय ढूँढ़ निकाले।

यों सोचकर विपिन नवकिशोर को चिट्ठी लिखने बैठा।

उधर रोहिणी के पेट में तलाबेली पड़ी थी। छोटे राजा का ब्याह है—इतनी बड़ी अच्छी ख़बर मालती को सुनाए बिना रोहिणी कैसे रह सकती थी? आहा! सभी लोग आनंद मना रहे हैं, और बेचारी मालती पराए लड़के के शोक में अकेली एक कोने में पड़ी है! रोहिणी का स्वाभाविक सदय हृदय इस बात को कैसे सह सकता था? उसने चटपट मालती के कमरे के पास आकर, एक बार दराज़ से झाँककर देखा कि विपिन तो वहाँ नहीं है। जब उसने देखा, विपिन नहीं है, तब हँसते-हँसते किंवाड़े खोलकर, दरवाज़ा पकड़कर खड़ी हो गई।

रोहिणी के आनंद की यह अधिकता देखकर मालती का हृदय काँप उठा, मुँह सूख गया। रोहणी के खिले हुए दाँतों के बीच कौन-सा विष बाहर निकलने की अपेक्षा में है, यही मालती शून्य दृष्टि से देखने लगी।

रोहिणी ने धीमे स्वर में कहा—"सुनती हो दीदी, बड़ी अच्छी ख़बर है!"

मालती ने साँस रोककर, भय से काँपते हुए स्वर में पूछा—"क्या ख़बर है?"

रोहिणी ने आँखें मटकाकर, गर्दन हिलाकर कहा—"हमारे छोटे राजा का ब्याह है!"

मालती का मुँह एकदम फीका पड़ गया—मुर्दे का-सा, रक्त-हीन विवर्ण हो गया। मालती ने चेष्टा करके हँसकर, उत्साह के साथ, पूछा—"कब है? कहाँ है?"

रोहिणी ने कहा—"यही आठ-दस दिन के बाद माह-सुदी नवमी को है। झिनुकपाता के ज़मींदार की लड़की के साथ होगा। लड़की तुमसे भी बढ़कर ख़ूबसूरत है। छोटे राजा ने उसे ख़ूब पसंद किया है।"

मालती कुछ ठीक न कर सकी कि इसका क्या जवाब दे। उसकी समझ में न आया कि इस आनंद-समाचार को सुनकर उसका हृदय क्यों फटा जाता है—आँखों में आँसू क्यों उमड़े पड़ते हैं! उसने बड़े कष्ट से ज़बरदस्ती हँसकर कहा—"ऐसे आनंद के दिन में मुझे ही आनंद मनाना नहीं बदा है! विधाता ने ऐसा कुछ कर दिया कि मुझे यहीं अकेले पड़े रहना होगा!"

मालती का गला भर आया—आँखों में आँसू भर आए। वह सोचने लगी, रोहिणी यहाँ से दूर हो, मैं रोकर अपना जी हलका करूँ।

इसी समय विपिन के पैरों की आहट सुन पड़ी। रोहिणी जान लेकर वहाँ से भागी। मालती आँसू पोंछकर, संभलकर, चटपट एक किताब खोलकर, उसी के ऊपर झुककर बैठ गई।

विपिन कमरे के भीतर आया। तब भी मालती ने सिर नहीं उठाया। विपिन ने पुकारा—"मालती!"

अब मालती अपने को नहीं सँभाल सकी। वह फफककर रो उठी। विपिन ने घबराकर पूछा—"मालती, मालती, तुम रो क्यों रही हो?"

मालती इस प्रश्न का क्या उत्तर दे? वह ख़ुद ही ठीक नहीं जान सकी थी कि क्यों रो रही है।

विपिन समझा, शायद किसी ने मालती को कुछ कड़ी बात कही है। यही निश्चय करके उसने कहा—"देखो मालती, मुझे ख़ूब मालूम है कि मेरे घर के लोग तुम्हें भला-बुरा कहकर कष्ट दिया करते हैं। किंतु इस अत्याचार को रोकने का केवल एक ही उपाय है, और वह उपाय तुम्हारे ही हाथ में है।"

मालती ने अश्रु-प्रवाह से धुँधली दृष्टि विपिन की ओर डालकर, जिज्ञासा के भाव से देखा।

विपिन कहने लगा—"मैं जो तुमसे कहना चाहता हूँ, वह शायद मुझे न कहना चाहिए; तो भी बिना कहे मुझसे रहा नहीं जाता। अगर तुम समझना कि मैं कुछ अनुचित कह रहा हूँ, तो मुझे क्षमा करना। और, मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे भूल जाना। मैं भी भूल जाने के लिये प्राण-पण से चेष्टा करूँगा—"

मालती की समझ में नहीं आता था कि विपिन इस तरह की भूमिका करके क्या कहना चाहता है। उसने फिर सिर उठाकर विपिन की ओर देखा।

जब असल बात कहने का समय आया, तब विपिन सिटपिटा गया। उसे नहीं सूझता था कि किस तरह अपने हृदय का हाल मालती के आगे कहे। मालती और विपिन के बीच में एक ऐसा अंतर था कि विपिन बिना किसी संकोच के उससे अपने प्रेम का हाल नहीं कह पाया था। विपिन ने कुछ इधर-उधर करके एकाएक कह डाला—"मेरे ब्याह की बातचीत हो रही है—"

इतना कहकर ही विपिन को जान पड़ा कि वह बहुत ही बेतुकेपन से अपना वक्तव्य शुरू कर रहा है।

मालती के हृदय में जैसे किसी ने भाला मार दिया। उसने अपने हृदय को दृढ़ करके कहा—"हाँ, मैं सुन चुकी हूँ।"

विपिन ने उत्सुक होकर कहा—"जानती हो मालती, मैं किसे अपनी स्त्री होने के योग्य समझता हूँ?"

मालती का दम जैसे घुटने लगा। उसे जान पड़ा, जैसे हृदय के सौ टुकड़े हो जायँगे। वह काठ की तरह कठिन होकर बैठी रही। विपिन दम-भर चुप रहा। मालती का कोई उत्तर न पाकर वह फिर कहने लगा—"मालती, क्या तुम मुझे अपनाओगी? मेरी सह-धर्मिणी बनोगी?"

मालती चुपचाप निश्चल बैठी रही। विपिन ने मालती को चुप,

देखकर, साहस और आशा पाकर, मालती का हाथ अपने हाथ में लेकर प्रार्थना के स्वर में कहा—"तो क्या मालती, तुम्हें मेरी प्रार्थना स्वीकार है ? बोलो, जल्दी बोलो।"

आशा और आनंद से, प्रेयसी रमणी के प्रथम कर-स्पर्श से विपिन के शरीर में बिजली-सी दौड़ गई; ख़ून ज़ोर से चक्कर मारने लगा। मानसिक उत्तेजना से जैसे उसका सारा देह-यंत्र सजीव, सजग होकर मालती की स्वीकार-वाणी—सिर्फ़ हाँ—सुनने के लिये एकाग्र व्याकुलता से उन्मुख हो उठा। विपिन के आवेश-मत्त पीड़न से मालती का हाथ लाल हो उठा, और दुखने लगा।

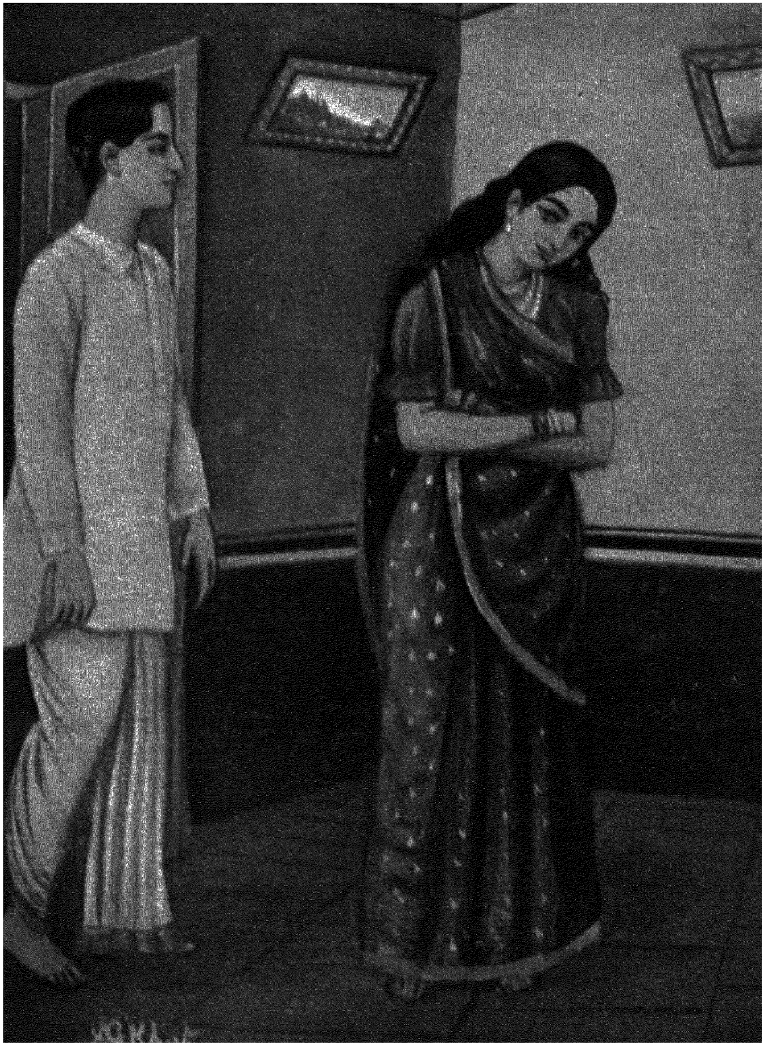
मालती ने धीरे-धीरे विपिन के हाथ से अपना हाथ छुड़ाकर, शांत भाव से, दृढ़ स्वर में कहा—"नहीं।"

इस अप्रत्याशित उत्तर को सुनकर विपिन सन्नाटे में आ गया। वह चुपचाप काठ के पुतले की तरह खड़ा रहा। उसकी आँखों के आगे अंधकार-सा छा गया। आज दम-भर में एक 'नहीं' ने उसकी इतने दिन की संचित आशा को मिट्टी में मिला दिया!

विपिन ने दम-भर चुप रहकर कहा—"मालती, मेरी प्रार्थना का क्या यही आख़िरी फ़ैसला है, या और एक बार इस पर विचार करके देखोगी ?"

मालती को मालूम पड़ने लगा, जैसे विपिन की दृष्टि से सकरुण वेदना से भरा हुआ प्रणय बरस रहा है, जैसे विपिन के कंठ-स्वर से उसके हृदय के आँसू निकल रहे हैं, और वह जैसे सब अंगों से उसकी आर्द्र स्पर्श का अनुभव कर रही है।

मालती ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में नीरव सांत्वना भरकर विपिन की ओर देखा, और कहा—"मैंने ख़ूब सोच-विचार कर ही यह उत्तर दिया है।"



शांत भाव से, दृढ़ स्वर में कहा—"नहीं।"

(पृष्ठ २६४)

हटा नहीं सकता था। बहुत देर तक दोनो जने चुप रहे; उसके बाद विपिन एकाएक वहाँ से उठकर चल दिया।

विपिन के चले जाते ही मालती तकिए पर मुँह रखकर फफक-फफककर रोने लगी। इसी समय चाची वहाँ आईं, और मालती को इस तरह रोते देखकर अवाक् होकर खड़ी रहीं। मालती को उनके आने की ख़बर ही नहीं हुई। बहुत देर तक मालती का रोना देखकर विरक्ति और विस्मय के साथ उन्होंने कहा—"मालती, तेरी सभी बातें दुनिया से निराली हैं! इस तरह रो क्यों रही है? तूने तो उस बच्चे को अपने पेट से पैदा नहीं किया था? फिर उसके लिये इस तरह रोती-धोती क्यों है?"

चाची की आहट पाते ही मालती चटपट आँसू पोंछकर इस तरह बैठ गई, जैसे वह रो ही नहीं रही थी।

चाची ने कहा—"न-जाने किसका लड़का था, तूने उसे सिर्फ़ दो दिन पाला ही तो था। फिर उसके लिये इस तरह रोने-धोने की क्या ज़रूरत है? विपिन का ब्याह है! चल, तू भी काम-काज कर। इस तरह अकेले बैठकर रो-धो मत।"

मालती चुप रही। उसके उठने का कोई लक्षण न देखकर, खीझकर चाची ने कहा—"अच्छी ज़िद्दी लड़की है तू! ऐसी लड़की तो मैंने कहीं नहीं देखी! मुझे जलाने ही के लिये क्या तू आई है!"

इतना कहकर चाची चली गईं। किंतु उनके हृदय में मालती के दुःख की समवेदना के आघात से जो दुःख का तार झनकार उठा था, उसके कारण उनकी आँखों से आँसू भी बह चले।

तीसवाँ परिच्छेद

इधर जिस समय मालती इस तरह रो-धो रही थी, उस समय उधर विपिन मलिन मुख लिए, तेज़ी से पैर रखता हुआ, निवारण मुखर्जी के घर की ओर जा रहा था।

निवारण उस समय चंडी-मंडप में फटी हुई चटाई बिछाए, बहुत ही मैली एक छोटी-सी तकिया गोद में रक्खे, उसी पर झुका हुआ, अफ़ीम की मौज में तमाखू पी रहा था। उसका पुत्र गोवर्द्धन दूसरी चिलम जमाते-जमाते कह रहा था—"हूँ: ! ऐसी ही भारी तो तुम्हारी क्षमता है ! सब तुम्हारी हेकड़ी देख ली ! विपिन और किशोर, दोनो ने मिलकर हम लोगों को इतना हैरान कर रक्खा है, नाक में दम है ! राह चलते रोंगटे खड़े होते हैं ! डर लगता है, कहीं मिल न जायँ, और सिर फोड़ डालें ! बाप रे ! उस दिन भगवान् ही ने बचाया ! मैं तो समझा था, आज किशोर के हाथ से जान ही गई !"

निवारण ने कहा—"ठहर तो जा, इसका बदला न ले लूँ, तो मेरा नाम ही नहीं ! नवकिशोर को समाज के बाहर कर दिया है—"

गोवर्द्धन बीच ही में बोल उठा—"हूँ: ! खूब अलग किया है ! भट्टाचार्य और किशोर, दोनो मज़े से हरिविहारी के घर जाते हैं, और गाँव-भर के लोग उनसे संबंध बनाए हुए हैं ! इसी को समाज से बाहर होना कहते हैं ?"

निवारण ने कहा—"अरे, ठहर तो जा। मसल है, 'सबर में मेवा फलता है।' विपिन ज़मीदार का लड़का ठहरा, वह क्या सहज में दबाया जा सकता है ? उसे नीचा दिखाना क्या सहज काम है ? मगर मेरा भी नाम निवारण है ! देखना, क्या करता हूँ ! पहले

तो मैं यह ब्याह ही न होने दूँगा। झिनुकपाता के ज़मींदार को ऐसी पट्टी पढ़ाऊँगा कि वह यह ब्याह ही नहीं करेगा। बरात लौटेगी, और विपिन की शिशुपाल की-जैसी दुर्दशा होगी। बच्चा जब ब्याह करने के लिये पहुँचेंगे, तो देखेंगे, उस लड़की का ब्याह हो गया। बच्चा को अपना-ऐसा मुँह लेकर लौटना पड़ेगा? मैं हरीश बाबू को गुम-नाम चिट्ठी लिख भेजूँगा कि विपिन बेधरम है! वह मुसलमानों के साथ बैठकर मुर्ग़ी के अंडे खाता है! उसने एक विधवा औरत घर में डाल रक्खी है। और भी दो-चार ऐसी ही बातें आज रात को सोचकर लिखूँगा। हरीश चटर्जी कट्टर सनातनधर्मी है। ये बातें सुनकर वह कभी अपनी लड़की से विपिन का ब्याह नहीं करेगा। उसके बाद बरात लौट आने पर इसी बहाने विपिन को समाज से अलग कर देना सहज हो जायगा। बाप बेटे के लिये अपने ऊपर आफ़त नहीं आने देगा, और विपिन को हरिविहारी ज़रूर अपने घर से निकाल देगा। यह मैं ज़रूर-ज़रूर करूँगा।"

इसी समय विपिन वहाँ पहुँचा।

विपिन को देखते ही निवारण ऐसा चौंक पड़ा, जैसे अकस्मात् उसके सिर पर वज्र-पात हो गया हो, हुक्के पर से चिलम उलट पड़ी; चारो तरफ़ आग छिटक गई। गोवर्द्धन ईंट से कोयले तोड़ रहा था। विपिन को देखते ही वह ऐसा भयभीत हो गया कि कोयले की जगह अपने हाथ पर ही ईंट दे मारी। दोनो का मुँह सूख गया। किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली; दोनो ही काठ के पुतले की तरह चुप बैठे रहे। आग गिर पड़ने से तकिया और चटाई, दोनो जल रही थीं; पर किसी को उधर नज़र उठाकर देखने का भी साहस नहीं होता था।

विपिन ने उनके इस भय-विह्वल भाव पर कुछ ध्यान न देकर, ऊँचे स्वर से कहा—"मुखर्जी, मुझे समाज से अलग कीजिए। मैं

मुसलमानों के साथ उनके यहाँ की रोटी खाता हूँ। आप लोग जिसे धर्म मानते हैं, उसे मैं बिलकुल नहीं मानता।"

मालती से कोरा जवाब पाकर विपिन ने जो चोट खाई थी, उस चोट की वेदना को वह किसी के आगे प्रकट नहीं कर सकता था। यहाँ तक कि उस वेदना को अपने आत्मा के निकट प्रकट करने में भी उसे संकोच मालूम पड़ रहा था। इसीलिये उसका चित्त और एक नई चोट खाकर, अपनी वेदना का स्पष्ट अनुभव करने के लिये, व्यग्र हो उठा था। इसीलिये विपिन ने चटपट अपने चिर-शत्रु निवारण के पास आकर इस तरह अपने समाज-बहिष्कृत होने के लिये व्याकुलता प्रकट की। मगर निवारण को इस रहस्य की क्या ख़बर थी! वह अपने मन में कहने लगा—सर्वनाश हो गया! इस छौंडे ने ज़रूर हमारी बातचीत सुन ली है!

फिर भी साहस करके निवारण ने कहा—"हें-हें-हें-हें-हें, तुम्हें भला मैं कैसे समाज से बाहर कर सकता हूँ भाई? तुम्हीं लोग तो हमारे समाज का सर्वस्व हो? जवानी में सभी से थोड़ा-बहुत अनाचार हो जाता है; सभी का पैर फिसल जाता है। वह—उसका क्या नाम—अवस्था का दोष है—समझे भैया? अवस्था अधिक होने पर—समझे कि नहीं—सब दोष सुधर जायँगे।"

विपिन ने कहा—"किसी तरह मैं सुधर नहीं सकता मुखर्जी? यह आशा न कीजिएगा। और, जवानी का धर्म कहकर मुझे तो आप रिहाई दे रहे हैं, लेकिन किशोर के साथ यह रियायत क्यों नहीं की? वह भी तो बूढ़ा नहीं था? फिर उसे क्यों अलग कर दिया? मुझे भी आप समाज से बाहर कर दीजिए, दोहाई है आपकी—मुझे निराश न कीजिए।"

निवारण ने कहा—"ऍं-ऍं-ऍं, यह कैसे हो सकता है? किशोर की और तुम्हारी बराबरी? हें-हें, वह है—समझे कि नहीं—एक

साधारण ब्राह्मण का लड़का, और तुम ठहरे—उसका क्या नाम—राजराजेश्वर ज़मींदार के लड़के ! सो—सो—उसका क्या नाम—तुम अगर कहो, तो भट्टाचार्य को—समझे कि नहीं—आज ही समाज में मिला लूँ ।"

विपिन ने कहा—"ना-ना-ना, ऐसा काम कभी न करना मुखर्जी ! आपके साथ एक दल में रहने की अपेक्षा जाति से अलग रहना लाख दर्जे अच्छा है । दोहाई है आपकी, मुझे भी अलग कर दीजिए । बाबूजी को समझा-बुझाकर राज़ी कीजिए—वह किसी तरह मुझे अपने घर से निकाल बाहर करें । और, इसकी भी कोशिश आपको करनी पड़ेगी कि मेरा यह ब्याह न हो । इन दोनो कामों को आप अनायास कर सकते हैं ।"

निवारण ने अपने मन में कहा—अरे, इसने तो, जान पड़ता है, सभी बातें सुन लीं ! ग़ज़ब हो गया !"

निवारण ने प्रकट में कहा—"राम-राम ! शुभ कर्म में मना मैं—समझे कि नहीं—भौंजी कहीं मार सकता हूँ ? उसका नाम क्या—तीन पन बीत गए हैं, चौथा पन आया है, मौत के मुँह में पैर लटकाए बैठा हूँ—इस उमर में मैं ऐसा पाजीपन करूँगा ? तुम मुझे इतना बड़ा पापी समझते हो भैया ? फिर मेरी क्षमता ही कितनी है, जो मैं तुम्हारा ब्याह रोक दूँ ? राम-राम !"

विपिन—"आपकी क्षमता तो शैतान से भी बढ़ी हुई है मुखर्जी ! शायद कस्तूरी-मृग या शाप-ग्रस्त हनुमान् की तरह, आपको अपने गुणों का, अपनी क्षमता का ज्ञान नहीं है । लेकिन आपकी महिमा हम लोगों से तो छिपी नहीं है । आप एक चिट्ठी-भर लिख भेजें; बस, मेरा ब्याह बंद हो जायगा ।"

निवारण—"हरे-हरे ! मैं इतना बड़ा पाजी नहीं हूँ भैया—समझे कि नहीं—यह भी कोई बात है ? राम-राम ! मैं इधर

चिट्ठी लिखकर भेजूँ, और—समझे कि नहीं—उधर दूसरे ही दिन तुम्हारे बाप के आदमी आकर मेरा सर्वनाश कर डालें—और क्या ! इतना बड़ा मूर्ख भी मैं नहीं हूँ !"

विपिन—"आहा ! आप चिट्ठी में अपना नाम ही क्यों लिखिएगा ? गुम-नाम चिट्ठियाँ भेजने का भी तो आपको खूब अभ्यास है !"

निवारण—"हें-हें-हें—उसका नाम क्या है—जानते हो, ये सब लोगों की रची हुई बातें हैं भैया ! कोई किसी का भला नहीं देख सकता—लोग मुझे बेकार ही बदनाम करते हैं ! गुम-नाम चिट्ठी ! शिव-शिव !"

विपिन—"तो आप किसी तरह मुझ पर यह अनुग्रह नहीं करने के—क्यों ?"

निवारण ने अपने मन में कहा—"बच्चा, तुम जब इस ब्याह को न करने के लिये इतने व्यग्र हो रहे हो, तब मैं किसी तरह इसमें भाँजी नहीं मार सकता। मैं तो तुम्हें छकाना-भर चाहता हूँ ! तुम्हारी इच्छा है कि यह ब्याह न हो, तो मैं यही ब्याह कराकर तुम्हें छकाऊँगा। लेकिन ससुर की इतनी बड़ी ज़मींदारी तुम्हें मिलेगी, यही एक असह्य बात है ! ख़ैर, देखा जायगा, इसकी भी दवा मेरे हाथ में है। हरीश बाबू से कह-सुनकर उन्हें लड़का गोद लेने के लिये राज़ी कर लूँगा ; जमींदारी तुम्हारे हाथ नहीं लगने दूँगा। बल्कि जहाँ तक होगा, अपने छोटे लड़के को ही हरीश बाबू का पोष्य-पुत्र बनाऊँगा।"

निवारण को चुप देखकर, चिढ़कर विपिन ने कहा—"सोचते क्या हो मुखर्जी ! क़साई को हत्या करने में संकोच आज यह नया देख रहा हूँ।"

निवारण ने कहा—"ना भैया, इस बुढ़ापे में ऐसा अधर्म मुझसे

नहीं हो सकेगा। तुम चाहे गालियाँ दो, चाहे जो करो—समझे कि नहीं—यह काम मुझसे नहीं हो सकता!"

विपिन—"अच्छा, तो जाने दीजिए, मैं और कोशिश करूँगा।"

इतना कहकर विपिन चल दिया। विपिन के चले जाने पर भी कुछ देर तक पिता-पुत्र, दोनो चुपचाप काठ के पुतले की तरह बैठे रहे। कुछ देर बाद, जब विपिन के चले जाने का पूरा निश्चय हो गया, निवारण ज़रा हिला-डुला, और गोवर्द्धन धीरे से खाँसा। निवारण ने हाथ का इशारा करके, धीमी आवाज़ में कहा—"देख तो, देख तो, लौंडा चला गया, या नहीं। कहीं हमारी बातें सुनने के लिये छिपा तो नहीं है!"

गोवर्द्धन ने सिर हिलाते-हिलाते कहा—"हाँ, तुम यहाँ जान बचाए बैठे रहो, और मेरी जान फ़ालतू है कि मैं उसे देखने जाऊँ, जिसमें वह मेरा टेटुआ पकड़कर दबा दे! तुम्हीं उठकर क्यों नहीं देख आते?"

निवारण ने कहा—"अरे, नहीं-नहीं, कुछ डर नहीं है। वह होगा भी, तो कुछ बोलेगा नहीं। उसे मार-पीट करनी होती, तो आते ही ढोल की तरह धमाधम पीटने लगता!"

इस बात को युक्ति-संगत समझकर गोवर्द्धन उठा। उसने धीरे-धीरे आँगन में उतरकर, द्वार के पास जाकर देखा, विपिन का कहीं पता भी नहीं था। तब उसने पिता से कहा—"अरे वह चला गया।"

उस समय निवारण की हिम्मत फिर आई। वह खड़े होकर धोती की फेंट लपेटने लगा। लाँग खुल गई थी, निवारण ने बाएँ पैर से उसे उठाकर यथास्थान खोंस लिया। विपिन के अनुपस्थित होने का निश्चय हो जाने पर निवारण आप-ही-आप कहने लगा—

हूँ ! अब ज़रा हरिविहारी के पास हो आना चाहिए। लड़के के कहने-सुनने से कहीं वह इस ब्याह के संबंध को नामंज़ूर न कर दे।

तब अपने पुराने साथी, महामैले, हज़ार जगह से रफ़ू किए हुए, सुदामा के समय के पुराने चादरे को कंधे पर डालकर, धनुष की तरह झुके हुए स्लीपर के जोड़े को पैरों में पहनकर, कोयले के रंग का चिरकुट अँगोछा और फटे बाँस की लाठी हाथ में लेकर निवारण ने हरिविहारी के घर की ओर यात्रा की।

घर के बाहर निवारण का नौकर कन्हैया टूटी हुई दीवार की मरम्मत कर रहा था। उसने मालिक को देखकर, दाँत निकालकर कहा—"बाबूजी, कहाँ जाते हो ? आपने कड़ुआ तेल मँगाने को कहा था, सो—"

निवारण आग-बबूला हो गया। साले, पाजी, मैं शुभ काम से जा रहा था, तूने तेल का नाम ले लिया ! हरामज़ादे, आज तुझे मारे बिना नहीं छोड़ूँगा ! यह कहता हुआ निवारण लाठी उठाकर उसे मारने को दौड़ा।

कन्हैया दीवार के पास खड़ा था। इधर निवारण और उधर दीवार ! भागने का उपाय न देखकर निवारण की लाठी का वार बचाने के लिये कन्हैया ने एक छोटा-सा छप्पर, जो उसी दीवार का था, दोनो हाथों से उठा लिया, और उसी की आड़ में छिपकर अपनी रक्षा करने लगा। निवारण ने आगे बढ़कर लाठी के कई हूले मारे। दो-एक हूले कन्हैया तो बचा गया, लेकिन एक बार लाठी का सिरा छप्पर के भीतर घुस जाने से और निवारण के लकड़ी खींचने से कन्हैया उस छप्पर के झोंक को नहीं सँभाल सका। वह छप्पर उसके हाथों से छूट गया, और ज़ोर से निवारण के ऊपर आ रहा। निवारण एक तो वृद्ध था, दूसरे उसे यह ख़याल न था कि

छप्पर इस तरह उसके ऊपर आ पड़ेगा। ग़फ़लत में वह छप्पर ऊपर आ पड़ने से निवारण धरती पर लेट गया, और छप्पर उसके ऊपर आ गया। छप्पर छोटा होने पर भी निवारण को पीस डालने के लिये काफ़ी था। निवारण ज़ोर से चिल्लाने लगा। कन्हैया डर के मारे मालिक को उसी हालत में छोड़कर अपने घर को लंबा पड़ा।

उधर से हीरालाल धोबी कपड़ों की गठरी लिए जा रहा था। उसे मुखर्जी की यह दशा देखकर तरस आ गया। उसने चटपट अपनी गठरी फेंक दी, और छप्पर उठाकर अलग रख दिया। कहावत है—'खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे।' निवारण ने उठते ही कन्हैया को सामने न देखकर अपना क्रोध हीरालाल पर ही निकालना शुरू कर दिया। उसने उठते ही हीरालाल के गाल पर दो-तीन थप्पड़ जमा दिए। हीरालाल भौंचका-सा रह गया। वह अपने अज्ञात अपराध को जानने के लिये निवारण के मुँह की ओर ताकने लगा।

निवारण ने जामे से बाहर होकर कहना शुरू किया—"साले! तेरी इतनी मजाल! तूने धोबी होकर मुझे छू लिया! मैं शुभ काम के लिये जा रहा था; तू मेरे सामने क्यों आया?"

हीरालाल ने अप्रतिभ होकर, अपराधी की तरह दोनो हाथ जोड़कर कहा—"मालिक, मैं नहीं जानता था कि आप कहीं जा रहे हैं। मैं यह जानता, तो कभी आपके सामने न आता। क़सूर हुआ मालिक, माफ़ कीजिए।"

निवारण ने धूल झाड़ते-झाड़ते कहा—"जा बे जा, माफ़ कर दिया।"

हीरालाल की जान बची। बाप रे! ब्रह्मकोप क्या साधारण बात है!

गोलमाल सुनकर गोवर्द्धन बाहर निकल आया। सब हाल देख-सुनकर उसने कहा—"ज़रा बैठ जाओ, ठहरकर जाना।"

निवारण दम-भर वहीं ठहरकर दुर्गा-दुर्गा, हरि-हरि कहता हुआ वहाँ से चला।

विपिन निवारण के घर से भट्टाचार्य के घर गया था। वहाँ से लौटकर उसने देखा, हीरालाल भागता हुआ आ रहा है।

विपिन ने हँसकर कहा—"क्यों हीरालाल, मामला क्या है? तुम्हारा मुँह क्यों सूखा हुआ है?"

हीरालाल ने हाथ जोड़कर सब हाल कहा। विपिन ने आँखें लाल करके कहा—"निवारण पाजी ने तुम्हें उपकार करने के बदले में बेकार मारा, और तुमने चुपचाप मार सह ली? तुमने भी उसके दो थप्पड़ क्यों नहीं जमा दिए?"

हीरालाल ने दाँतों से जीभ काटकर कहा—"राम-राम! ऐसी बात न मुँह से निकालो भैया! मेरी भला इतनी मजाल है! वह बराम्हन ठहरे, मैं नीच जाति हूँ! पहले जनम में न-जाने कितने पाप किए थे, जो अब की धोबी के घर पैदा होकर मैल धो रहा हूँ! अब पाप करने से न-जाने कौन गति होगी!"

विपिन ने कहा—"यही तो तुम लोगों की भूल है! जाति में ऊँच-नीच क्या है? काम की छुटाई-बड़ाई तो लोगों की गढ़ी हुई है! तुम सब आप ही ऐसे दुष्ट पापियों से दबकर अपनी मिट्टी पलीद किए हुए हो! जो लोग ब्राह्मणों के कर्म करते हैं, या भले आदमी हैं, उनसे दबना—उनके हाथ जोड़ना तो मुनासिब है; लेकिन निवारण और गोबरा-जैसे ब्राह्मण-नामधारी चांडालों से दबना सरासर ग़लती है! निवारण और गोबरा-जैसे कुकर्मी ब्राह्मणों से तुम नीच जाति के लोग लाख दर्जे अच्छे हो! ब्राह्मण हैं भट्टाचार्य काका और नवकिशोर, जिनके पैरों पर सिर रखना बड़े भाग्य की

बात है ! निवारण गोबरा बाँरह भी ब्राह्मण हैं ?—चलो, लौट चलो—मैं खड़ा रहूँगा, तुम निवारण के दो-चार लातें जमा देना। छप्पर के नीचे दबा पड़ा था, तुमने उसके नीचे से निकालकर उपकार किया। उसके बदले में धन्यवाद देने के बदले थप्पड़ मारे !—चलो तो—"

हीरालाल ने कहा—"ना भैया, मैं ब्राह्मण से झगड़ा नहीं करूँगा।"

इतना कहकर हीरालाल वहाँ से नौ दो ग्यारह हुआ।

विपिन गुस्से से भरा हुआ जिस समय दुबारा निवारण के घर गया, उस समय निवारण अपने पूर्व-जन्म के पुण्य से घर पर न था; वह हरिविहारी के बैठकखाने में पहुँच चुका था।

निवारण को देखकर, गुड़गुड़ी को नल फ़र्श पर रखकर हरिविहारी ने कहा—"आओ-आओ चाचा, तुम्हारी बड़ी उमर है। मैंने अभी तुम्हारी याद ही की थी।"

निवारण ने उदासीन भाव दिखाकर कहा—"ना भैया, इस संसार में जीते रहने में कोई सुख नहीं है। जिस ज़माने में लोग जाति-विचार नहीं मानते, धर्म नहीं मानते, ब्राह्मण-देवता नहीं मानते, उस ज़माने में जीने से मरना ही अच्छा !"

हरिविहारी ने हँसकर कहा—"मरने पर भी छुटकारा कहाँ है ? यमलोक है, यमराज हैं, यम-दूत हैं, सैकड़ों नरक और उनकी हज़ारों यातनाएँ हैं ! हमारे-तुम्हारे भाग्य में स्वर्ग तो बदा ही नहीं—यह निश्चित है ! उससे तो यहाँ रहकर आराम से आनंद करना ही अच्छा है ! फिर पुनर्जन्म मानिए, तो भी इसका क्या ठिकाना कि हम लोग दूसरे जन्म में ब्राह्मण ही होंगे, या मनुष्य ही होंगे ? उससे तो मेरी समझ में जब तक यहाँ रहें, तभी तक अच्छा। इसमें लाभ के सिवा हानि नहीं है। इस जन्म के सुख-दुःख का अभ्यास हो

गया है। नए जन्म में नया झंझट अपने सिर लादने की क्या ज़रूरत है ?"

निवारण ने खोसें निकालकर कहा—"हें-हें-हें, कहा तो तुमने ठीक भैया। हज़ार हो, राजा की बुद्धि है कि नहीं ! मगर हाँ—उसका क्या नाम—धर्म की हानि सुनने से मन को बड़ा कष्ट होता है—समझे ! इसी से खेद के मारे मुँह से मरने की बात निकलती है; नहीं तो जीना किसे नहीं अच्छा मालूम पड़ता ? यही देखो न, थोड़ी देर हुई—उपका नाम क्या है—विपिन भैया मेरे घर में जाकर—समझे कि नहीं—कहने लगे, मैं मुर्ग़ी खाता हूँ—उसका नाम कौन ले—वही निषिद्ध मांस खाता हूँ, मुसलमानों का जूठा खाता हूँ ! रामचन्द्र ! रामचंद्र ! तुम्हीं बताओ, ये बातें सुनकर बुख़ार चढ़ आता है कि नहीं ?"

हरिविहारी ने इस प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर उलटे प्रश्न किया—"क्यों-क्यों ? आज अकस्मात् विपिन तुम्हारे घर क्यों गया था ? और तो कभी नहीं जाता !"

निवारण ने चुटकी बजाकर जँभाई लेते-लेते कहा—"आ-हा-हा-हा—वही तो कहने तुम्हारे पास दौड़ा आया हूँ भैया ! विपिन ने मेरे पास जाकर कहना शुरू किया कि दादाजी, मैं तो बाबूजी से कह नहीं सकूँगा, आप ज़रा जाकर कहिए कि मैं यह ब्याह जीते-जी कभी नहीं करूँगा। मेरा पक्का इरादा मालती से ब्याह करने का है। मैंने कहा, अरे पागल, यह भी कहीं हो सकता है ? ब्याह पक्का हो गया है; तुम्हारे बाप वचन दे चुके हैं। अब तुमको यह क्या पागलपन सवार हुआ है ? मेरे यों कहने पर विपिन एकदम आग-बबूला होकर कहने लगा—आप एक दफ़े जाकर उनसे कह तो दीजिए। अगर वह नहीं सुनेंगे, तो फिर मैं देख लूँगा ! जिस ब्याह में—उसका क्या नाम—भट्टाचार्य काका पुरोहित न होंगे,

नवकिशोर बराती न होगा, वह ब्याह मैं कभी नहीं करूँगा ! मैं गुम-नाम चिट्ठी लिखकर हरीश बाबू के पास भेज दूँगा कि मैं वही निषिद्ध मांस खाता हूँ, मुर्ग़ी खाता हूँ, मुसलमानों का जूठा खाता हूँ !—कहने से तुमको विश्वास न होगा भैया, वह जामे से बाहर हो रहा था। मालूम पड़ता था, मार ही बैठेगा ! यह हाल देखकर—समझे कि नहीं—मैंने हामी भर ली कि अच्छा, मैं जाकर तुमसे कहूँगा। तब—उसका नाम क्या है—वह कुछ शांत होकर किशोर के घर की तरफ़ चला गया। मैं झटपट तुम्हें ख़बर देने इधर आया हूँ। सावधान ! देखो, यह शुभ कर्म किसी तरह टलने न पावे। इस संबंध में तुमको अच्छी ज़मींदारी मिल जायगी। विपिन को ज़रूर किशोर के बाप ने भड़काया है, और विपिन भी ज़रूर मालती के रूप पर रीझ गया है ! देखो भैया, कहीं अंत को विपिन मालती से ही न ब्याह कर बैठे; क्योंकि वह धर्म को तो मानता नहीं है—विधवा-विवाह शास्त्र के विरुद्ध है, इस पर उसे विश्वास ही नहीं है ! भैया, तुम चाहे बुरा मानो, मगर मुझे तो मुँह-देखी बात नहीं कर आती, किशोर की संगति में पड़कर विपिन चौपट हुआ जाता है !'

हरिविहारी चिंतित होकर अन्यमनस्क भाव से कहने लगे—"मैंने तुमको इसलिये बुलाया था कि भट्टाचार्य को समाज में ले लिया जाय। लेकिन तुम्हारे मुँह से यह हाल सुनकर मेरे मन में खटका पैदा हो गया। वह गँवार गोविंदकिशोर छोकरा विपिन को बहँकाकर न-जाने क्या अनर्थ करनेवाला है। अच्छा, तो फिर अभी भट्टाचार्य को समाज से बाहर ही रहने देना चाहिए। क्यों, तुम्हारी क्या राय है ?"

निवारण ने मन-ही-मन ख़ुश होकर कहा—"और नहीं तो

क्या ? अभी भट्टाचार्य को समाज में मिला लोगे, तो भट्टाचार्य के दिमाग़ हो जायगा कि मेरे बिना हरिविहारी राय का काम ही नहीं चल सकता। और, किशोर का भी हौसला बढ़ जायगा, समझेगा, मेरा कोई क्या बना सकता है ! समझे ?"

हरिविहारी ने कहा—"लेकिन विपिन के ब्याह में पुरोहित का क्या होगा ? तुम भी तो उतना पढ़े-लिखे नहीं हो।"

निवारण ने कहा—"एँ: ! पुरोहित के लिये क्या चिंता है ? भाटपाड़े में हज़ार पुरोहित-पंडित हैं। चाहे दर्जन-भर बुला लो।"

हरिविहारी ने उत्साहित होकर कहा—"तुमने ख़ूब कहा चाचा। अच्छा, तो दीवानजी से सलाह करके तुम जो मुनासिब समझो, वह प्रबंध कर दो।"

निवारण—"यह भी तुम्हारे कहने की बात है ? यह तो हमीं लोगों का कर्तव्य है।"

काम-काज और इंतिज़ाम के झंझट से अलग रहना पसंद करनेवाले हरिविहारी यह जानकर निश्चिंत हो गए कि उन्हें कुछ कोशिश नहीं करनी पड़ेगी। दम-भर के बाद हरिविहारी ने कहा—"लेकिन विपिन को किस तरह समझाया जाय ? वह लड़का बड़ा ज़िद्दी और अपनी धुन का पक्का है, यह तो तुम भी जानते ही हो।"

निवारण ने कहा—"तुमसे उसका हठ क्या चल सकता है। तुम उसे अकेले में बुलाकर पहले समझाओ ; अगर इस तरह न माने, तो धमकाओ-डराओ ; कहो—कहा न मानेगा, तो घर से निकाल दूँगा, त्याज्य-पुत्र कर दूँगा। एक काम और करो, छोटी बहू और उनकी बहन की लड़की मालती को कहीं दूर भेज दो। छोटी बहू की ही यह सब शरारत है। भट्टाचार्य की सलाह से विपिन को फँसाकर अपने क़ाबू में करने के लिये ही छोटी बहू ने मालती को

बुलाकर रक्खा है !—लेकिन ख़बरदार भैया, विपिन को यह न मालूम होने पावे कि मैंने आकर तुम्हें यह सलाह दी है। उसे यह ख़बर लग जायगी, तो फिर मेरी कुशल नहीं। किशोर वग़ैरह पाजी लौंडे कहते क्या हैं कि गो-वध का पाप होने के डर से ही वे मेरी जान नहीं लेते। सो ठीक ही है, गऊ और ब्राह्मण एक ही हैं। शास्त्र में ही लिखा है—'गोब्राह्मणहिताय च।' लेकिन आज-कल के लौंडे अँगरेज़ी पढ़कर जब गऊ को ही निगल जाने हैं, तब हम ब्राह्मणों की हत्या करने से कब बाज आवेंगे।—दोहाई है भैया, विपिन के आगे मेरा नाम न लेना।—हाँ, और एक काम करो, मुझे बलिक झिनुकपाता भेज दो; मैं वहाँ जाकर यह देख-भाल करूँगा कि कोई किसी तरह हरीश बाबू को भड़काने न पावे।"

हरिविहारी ने ख़ुश होकर कहा—"हाँ-हाँ, बहुत अच्छी सलाह है। तुम दीवानजी से सौ रुपए ख़र्च-वर्च के लिये लेकर कल ही रवाना हो जाओ। दीवानजी के नाम मैं रुक्का लिखे देता हूँ।"

हरिविहारी ने एक काग़ज़ की स्लिप पर दीवानजी के नाम निवारण को सौ रुपए देने का हुक्म लिख दिया। निवारण वह रुक्का लेकर, 'हरिजी तुम्हारी इच्छा' कहकर उठ खड़ा हुआ। इस तरह एक तीर से अनेक चिड़िया मारकर शैतान का अवतार निवारण प्रसन्नता-पूर्वक अपने घर को चला गया।

निवारण के चले जाने पर हरिविहारी ने अपने ख़ास नौकर रामधन से कहा—"जा तो, ज़रा छोटे राजा को बुला ला।"

रामधन जाकर विपिन को बुला लाया।

विपिन ने बैठकख़ाने में आकर कहा—"क्या आपने मुझे बुलाया है बाबूजी?"

हरिविहारी ने कहा—"हाँ। तुम यह सब क्या लड़कपन कर रहे

हो ? ब्याह नहीं करूँगा—ब्याह की बातचीत में भाँजी मार दूँगा—हरीश बाबू को भड़का दूँगा—यह सब क्या है ?"

विपिन ने कुछ उत्तर नहीं दिया। हरिविहारी कहने लगे—"लायक़ लड़के की तरह बाप का कहा मानकर ब्याह कर आओ; उसके बाद तुम्हारा जो जी चाहे, सो करना; कोई मना नहीं करेगा। मगर एक ब्याह तो करना ही पड़ेगा।"

विपिन ने कहा—"मुझे माफ़ कीजिए, मैं यह ब्याह किसी तरह नहीं कर सकता।"

हरिविहारी ने क्रुद्ध होकर, गरजकर कहा—"मैंने सुना है, तू छोटी बहू की बहन की लड़की के लिये पागल हो रहा है। यह सब छोटी बहू की ही कारसाज़ी है। अभी मैं उन दोनो को घर से बाहर निकलवाए देता हूँ।"

विपिन ने कहा—"आपने चाची का सर्वस्व बेईमानी करके ले लिया है। आप उनका पालन करने के लिये बाध्य हैं। मैं आपको यह अन्याय किसी तरह नहीं करने दूँगा। आप उन्हें निकाल देंगे, तो मुझे भी आपका घर छोड़कर उन्हीं के साथ जाना पड़ेगा!"

हरिविहारी एकदम पागल की तरह चिल्लाकर कहने लगे—"क्या मेरे मुँह पर ही जवाब देता है! जा, तू भी मेरे घर से दूर हो! मुझे डराता क्या है! आज ही, अभी, निकल जा!"

अभिमानी विपिन की आँखों में आँसू भर आए। उसने आँसुओं से गद्गद स्वर में कहा—"अच्छा, ऐसा ही होगा। मैं आज ही निकल जाऊँगा।"

बाधाओं को लाँघकर अपने इरादे पर पक्के रहें। उन्हें मेरे पास से दूर ले जाओ नारायण !"

इसी समय हरिविहारी की खर्राटों के साथ पुरखिन की आँखों का शब्द सुनाई पड़ा।

पुरखिन जब पुत्र से हार गई, तब स्वामी के पास जाकर रोने-धोने लगीं। उन्होंने स्वामी से कहा—"मेरे विपिन को तुम घर से निकाले देते हो; मैं इस सूने घर में किस तरह रह सकूँगी ? मुझे भी भेज दो।"

हरिविहारी ने कहा—"अरे, तुम पागल हो गई हो ? विपिन कहाँ जायगा ? वह कहीं भी न जायगा, तुम निश्चिन्त होकर बैठो।"

पुरखिन ने कहा—"उसका सब सामान बाँधा जा चुका है, और तुम कहते हो कि वह कहीं न जायगा। तुम निठुर पत्थर हो, निश्चिंत रह सकते हो, लेकिन मा का हृदय कैसे मान सकता है, कैसे निश्चिंत रह सकता है ?"

हरिविहारी ने ज़रा सोचकर कहा—"चलो, मैं अभी एक ही बात में विपिन का जाना बंद किए देता हूँ। वह फिर जाने का नाम भी नहीं लेगा।"

पुरखिन आश्वस्त होकर स्वामी के साथ पुत्र की कोठरी के दरवाज़े पर आईं। उनका हृदय आनंद और आशा से परिपूर्ण हो उठा। अपने मन में वह सोचने लगीं कि पुत्र पिता के कहने से जब जाना बंद कर देगा, तब वह उससे क्या-क्या कहकर स्नेह का उलाहना देंगी।

हरिविहारी ने पुत्र से कहा—"विपिन, मेरे ऊपर बिगड़कर चले तो जा रहे हो, लेकिन मेरी चीज़ों पर तो तुम्हारा अनुराग काफ़ी देख पड़ता है। घर-भर की सभी चीज़ें तो तुमने बाँध ली हैं। मैं कहे देता हूँ, मेरी कोई भी चीज़ तुम नहीं ले जा सकोगे।"

विपिन ने अवाक् होकर पिता की ओर देखा। उसके बाद कहा—"अच्छी बात है। मैं सिर्फ़ एक धोती पहनकर चला जाऊँगा।"

हरिविहारी ने सोचा था, उनकी यह ज़मींदारी चाल बिलकुल ही अमोघ अस्त्र है। वह विपिन से कोई चीज़ न लेकर जाने को जब कहेंगे, तो फिर विपिन घर से कहीं न जायगा। लेकिन विपिन की दृढ़ता देखकर उनका वह भ्रम दूर हो गया। इसके बाद पुत्र से घर में रहने के लिये अनुरोध भी नहीं किया जा सकता। अतएव पुत्र के निकट संपूर्ण रूप से पराजित होकर गृहिणी के निकट तिरस्कार पाने के भय से हरिविहारी चुपचाप वहाँ से खिसक गए।

पुरखिन यह हाल देखकर, विपिन का हाथ पकड़कर रोने लगीं; उनसे और कुछ न बन पड़ा। विपिन भी रोने लगा। बहुत देर तक आँसू बरसाने के बाद पुरखिन ने कहा—"पुरखा की तो मति मारी गई है। क्या कहते हैं, क्या करते हैं, इसका कुछ ठीक नहीं। झटपट आए, मैं समझी कि समझाने आए हैं। उनकी बुद्धि तो अभी से सठिया गई है!—बेटा, तुझे मेरे सिर की क़सम, मेरा कहा मान। मा-बाप की बात को भी कोई बुरा मानता है! वह तेरे बाप ही तो हैं। उन्होंने ग़ुस्से में आकर अगर तुझे कुछ कहा हो, तो उसका कुछ ख़याल मत कर। उनकी तरफ़ से मैं तुझसे माफ़ी माँगती हूँ।"

विपिन ने आँसू पोंछकर कहा—"यह क्या कह रही हो अम्मा! इससे मेरा अकल्याण होगा। बाबूजी के बकने से बिगड़कर मैं नहीं जाता। लेकिन अम्मा, घर की किसी चीज़ को अब मैं अपने काम में नहीं ला सकता। स्नेह का दान अयोग्य को भी अधिकारी बना देता है। बच्चा जब पैदा होता है, तब वह अयोग्य और अक्षम होता है; लेकिन माता के अपरिमित दान—स्नेह के सहज होने से

ही उसे लेने में उसे लज्जा नहीं होती। किंतु जो कोई देने के अहंकार से ही दान करे, तो वह दान मनुष्यत्व को घटा देता है—उससे देनेवाले और लेनेवाले, दोनों के मनुष्यत्व की हानि ही होती है।"

पुरखिन—"तो तू अपने बाप-दादे की सब जायदाद छोड़ देगा?"

विपिन—"बाप-दादे की होने से क्या होता है अम्मा? जहाँ स्नेह का संबंध देने-लेने का जमा-ख़र्च निकालता है, वहाँ विषय (जायदाद) विष हो उठता है। इस संपत्ति में अब मेरा अधिकार नहीं है। मैं अपना हिस्सा बिनी और विनोद को लिख दूँगा।"

पुरखिन—"छी, बेटा, तू यह सब क्या पागलपन कर रहा है? जा, तू कुछ दिन काशी की तरफ़ घूम आ। मैं पूस के महीने में आने के लिये अब कुछ नहीं कहूँगी। तो क्या तू कल ही जायगा? तुझे क्या-क्या चाहिए, बोल मैं सब इंतिज़ाम कर दूँ।"

विपिन—"कल ही जाऊँगा अम्मा। लेकिन इंतिज़ाम कुछ नहीं करना होगा। मैं केवल एक धोती, कुर्ता और कोट पहनकर ही जाऊँगा; इस घर की कोई भी चीज़ नहीं छुऊँगा।"

पुरखिन—"फिर वही पागलपन किए जाता है! अच्छा, तू बाप की चीज़ें न ले, मेरी चीज़ तो ले सकता है? तू यह समझ कि मैं तुझे, अपने बाप के घर से जो मुझे मिला है, उसमें से ख़रच के लिये दे रही हूँ। और, तुझे भी तो इनाम में तीन-तीन गाँव मिले हैं।"

विपिन—"वे गाँव मैंने किशोर की पाठशाला को दान कर दिए।"

पुरखिन—"ऐं! तीन-तीन ताल्लुक़े पाठशाला को दान कर दिए[illegible]ला, तेरी जो ख़ुशी हो, सो कर। तेरे सिर पर अलक्ष्मी की छाया है, दरिद्र का छत्र है। अपना सर्वनाश अगर तू अपने हाथों करे, तो हम उसके लिये क्या कर सकते हैं!"

पुत्र की इतनी बड़ी नासमझी से विस्मित, स्तब्ध, क्षुब्ध और क्रुद्ध होकर बड़ी बहू वहाँ से तेज़ी के साथ चल दीं।

घुरुआ ने पूछा—"तो क्या कल ही जाना ठीक है छोटे राजा ?"

विपिन ने कहा—"हाँ, घूरू दादा।"

घुरुआ फिर पोटली-पोटले बाँधने में लग गया। विपिन ने कहा—"यह सब सामान बाँधने की ज़रूरत नहीं है घूरू दादा। मुझे कुछ दरकार नहीं है।"

घुरुआ सामान बाँधते-बाँधते बोला—"तुम्हें दरकार न होगी, मुझे तो दरकार है।"

विपिन ने कहा—"ना, ना, तुझे नहीं जाना पड़ेगा। मैं अकेला ही जाऊँगा।"

घुरुआ ने कहा—"मुझे जाना होगा या नहीं, सो मैं तुमसे अधिक जानता हूँ। तुमको पाल-पोसकर इतना बड़ा किसने किया है ? घुरुआ जब मरेगा, तभी तुमसे जुदा होगा, बीच में नहीं।"

विपिन इस स्नेहशील भृत्य के स्नेह के दावे को अस्वीकार न कर सकने के कारण चुप होकर बैठा रहा।

इसी समय बिनी आकर विपिन की गोद में फाँद पड़ी, और बोली—"बड़े दादा, अम्मा कहती थी कि कलकत्ते भादे दा रहे हो। अम्मा झोती है, मैं नहीं दाने दूँगी।"

यह कहकर वह विपिन के गले से लिपट गई। विपिन भी उसे छाती से लगाकर रोने लगा। बालिका बाहर देख आई थी कि मा रो रही है, भीतर आकर बड़े भाई को भी रोते देखा। कुछ उसकी समझ में न आया, और वह भी अस्फुट वेदना से व्याकुल होकर रोने लगी। विपिन आँसू पोंछकर उसे सांत्वना देने लगा। बालिका फूल-फूलकर रोते-रोते उसकी गोद में ही सो गई।

इकतीसवाँ परिच्छेद

विपिन पिता के पास से लौटकर सीधा अपनी लाइब्रेरी में गया। वहाँ उसने देखा, घुरुआ बैठा ऊँघ रहा है। विपिन ने आकर वेदना से कातर स्वर में पुकारा—"घूरू दादा!"

घुरुआ ने चौंककर कहा—"क्या है भैया?"

विपिन ने कहा—"मैं कलकत्ते जाऊँगा। मेरा सब सामान बाँध-बूँधकर ठीक कर दो।"

घुरुआ विपिन के मुँह की ओर देखकर सन्नाटे में आ गया। वह कुछ न कहकर धीरे-धीरे वहाँ से चल दिया। विपिन आराम-कुर्सी पर लेटकर आकाश-पाताल सोचने लगा। वह कहाँ जायगा, क्या करेगा, किस जगह उसे तनिक भी सांत्वना मिलेगी? वह इस चिंता में जितना ही डूबा, उतना ही उसे देख पड़ा कि वह अथाह और अपार है। उसके पिता सिर्फ उसी के कारण चाची, मालती को घर से बाहर निकाल देना चाहते हैं। विपिन सोचने लगा—वह घर से चला जायगा, तो चाची और मालती के ऊपर यह विपत्ति नहीं आवेगी। उसने निश्चय कर लिया कि उसे घर छोड़कर जाना ही पड़ेगा।

घुरुआ ने चटपट पुरखिन से जाकर कहा—"बहू रानी, छोटे राजा का न-जाने क्या हो गया है? मुँह पर जैसे किसी ने स्याही पोत दी हो! मुझसे कहा—'घूरू दादा, मैं कलकत्ते जाऊँगा, मेरा सामान बाँध दो।'"

पुरखिन ने चिंतित होकर कहा—"क्या हुआ, तू कुछ नहीं जानता?"

घुरुआ ने कहा—"नहीं। अभी रामधन आकर बाबूजी के पास उन्हें बुला ले गया था। वहाँ से लौटकर आए, तो मुझे यह हुक्म दिया।"

पुरखिन ने कहा—"अच्छा, बुला तो रामधन को। सुनूँ तो क्या हुआ!"

घुरुआ रामधन को बुला लाया। रामधन ने आकर सब हाल कहा। पुरखिन ने सब सुनकर कहा—"मुझसे अब नहीं सहा जाता भाई। मेरे नाक में दम हो रहा है। कहाँ तो यह था कि चार दिन में बहू आवेगी, हँसी-ख़ुशी होगी, कहाँ साहबज़ादे बैरागी होकर घर ही छोड़े चले जाते हैं! कैसी बुरी घड़ी में माजती इस घर में आई थी कि घड़ी-भर को चैन नहीं! चलूँ, देखूँ, विपिन कहाँ है।"

पुरखिन ने लाइब्रेरी में प्रवेश करके कहा—"बेटा विपिन।"

विपिन मा को देखते ही उठ खड़ा हुआ। बहुत रोकने पर भी उसकी आँखों से बड़े-बड़े आँसू टप-टप गिर पड़े। पुरखिन ने उसे स्नेह-पूर्वक खींचकर अपनी छाती से लगा लिया। विपिन मा की छाती में सिर रखकर अभिमान और दुःख से बालक की तरह फफक-फफककर रोने लगा। पुरखिन की भी आँखों से आँसुओं की धारा विपिन के मस्तक पर शुभ आशीर्वाद और सांत्वना के रूप में गिरने लगी। दम-भर इस तरह रोने के बाद पुरखिन ने कहा—"बेटा विपिन, तू क्या यह लड़कपन कर रहा है बेटा। आप भी कष्ट पाता है, और सबको कष्ट देता है। तू पहले तो ऐसा नहीं था।"

विपिन ने कहा—"अब मैं तुम लोगों को कष्ट नहीं दूँगा अम्मा। अब जन्म-भर के लिये जाता हूँ!"

पुरखिन ने कहा—"छी! यह तू क्या कह रहा है? तू हमारी आँखों का तारा दुलारा बेटा है। पहलेपहल तुझी को गोद में लेकर मैं मा बनी थी। मुझे छोड़कर तू चला जायगा!"

विपिन ने कहा—"क्या करूँ अम्मा, तुम्हें छोड़कर मैं कभी

कहीं बहुत दिन तक नहीं रह सका अम्मा। लेकिन अब रहना ही पड़ेगा। भाग्य मुझे तुमसे अलग कर रहा है। मेरा हृदय फट जायगा, मगर फिर भी जाना ही पड़ेगा।"

पुरखिन—"छी बेटा, ऐसी भी बात कोई कहता है। तू मुझे छोड़कर कहाँ जायगा?"

विपिन—"जाना ही पड़ेगा। बाबूजी की आज्ञा है। और, यहाँ रहने से भी तो कोई लाभ नहीं है। यहाँ रहकर मैं तुम्हें हैरान ही तो करता रहता हूँ। अब की जब से मैं घर आया हूँ, तब से मेरे ही कारण तुम लोगों को सुख-शांति नहीं है। मेरा मत जब तुम्हारे मत से नहीं मिलता, और उसके कारण तुम्हें कष्ट भोगना पड़ता है, तब मेरा दूर हो जाना ही अच्छा।"

पुरखिन—"तेरे शत्रु दूर हों! अकल्याण दूर हो! तू क्यों दूर होने लगा। तू चिरजीवी होकर इसी तरह मुझे खिझाता रह। इसी में मुझे आनंद है, इसी में मुझे सुख है।"

विपिन इस स्नेह के आगे हार स्वीकार कर रहा था। लेकिन वैसे ही उसे ख़याल हो आया कि पास ही कमरे में मालती है। उसने दम-भर चुप रहकर दृढ़ स्वर में कहा—"नहीं अम्मा। अब मैं इस घर में नहीं रह सकता; मुझे अन्यत्र जाना ही पड़ेगा।"

पुत्र की दृढ़ता देखकर पुरखिन सन्नाटे में आ गईं। उन्होंने कहा—"विपिन, तुझे देखकर हा मैं पुत्र-शोक भूल गई थी। मुझे रोते देखते ही तू रोने लगता था, इसी से मैं कभी खुलकर नहीं रोई। मुझे रुलाकर अगर अब तू जा सकता है, तो जा। तू चाहे जहाँ रह, मेरे आशीर्वाद से तेरा मंगल ही होगा।—तेरी तबियत अगर उचटा हो, तो तू कुछ दिन न हो, और ही कहीं जाकर रह। लेकिन इस पूस के महीने में कहीं कोई घर छोड़कर बाहर जाता है? लोग इस महीने में कुत्ते-बिल्ली को भी घर से नहीं निकलने

देते, और तू बाप-मा का दुलारा लड़का घर छोड़कर बाहर जायगा ? तुझे ऐसा कौन-सा दुःख है ?"

विपिन—"अम्मा, जो खुद ही अलक्षण है, उसके सगुन की क्या जरूरत। अब मैं घर में नहीं रह सकूँगा अम्मा।"

पुरखिन—"तेरी जो खुशी हो, सो कर। तू अगर सचमुच मेरे पेट का लड़का होता, तो कभी इस तरह मुझे दुःख न दे सकता।"

इतना कहकर परिपूर्ण वेदना से आँसू पोंछती हुई पुरखिन वहाँ से चल दीं। विपिन भी अकेले बैठकर मानसिक यंत्रणा से अधीर हो आँसू बहाने लगा।

इधर इसी बीच में घर भर में यह समाचार फैल गया कि बड़े बाबू ने विपिन को घर से निकाल दिया, और वह कलकत्ते जा रहा है। अंतःपुर की स्त्रियाँ अज्ञात आशंका से विह्वल होकर, अपने-अपने हाथ के असमाप्त कामों को छोड़कर स्तब्ध भाव से एक दूसरे का मुँह ताकने लगीं। पुरखिन जब आँसू पोंछती हुई अपने कमरे में जाकर बेवक्त लेट रहीं, तब चाची विपिन की और रोहिणी मालती की तलाश में चल दी।

चाची ने आकर देखा, विपिन गंभीर भाव से उदास और चुप बैठा है। उन्होंने कहा—"भैया विपिन, हम लोगों को छोड़कर तुम कहाँ जाओगे ?"

विपिन ने मलिन हँसी हँसकर कहा—"क्या करूँ चाची अम्मा, कुछ ऐसी ही बात आ पड़ी है कि अब यहाँ रहना नहीं हो सकता।"

चाची—"यह कैसी बात है बेटा ? तुम्हारा घर है, तुम इस घर के मालिक हो, तुम्हारा रहना क्यों नहीं हो सकता ? तुम चले जाओगे, तो हम किसके भरोसे रहेंगी ? हम-ऐसी अभागिनों का भी तो खयाल करो बेटा !"

विपिन—"मैंने खूब सोच-विचारकर देख लिया। चाची अम्मा,

मेरे आने से ही कई तरह के झगड़े उठ खड़े हुए हैं। कारण यही है कि मेरे मत से किसी का मत नहीं मिलता। मेरे चले जाने से फिर शांति हो जायगी। अगर तुम्हें कोई सतावे, तो तुम मेरे पास चली आना। यद्यपि मैं आप निराश्रय हूँ, तो भी मेरे आश्रय में तुम सुख से नहीं, तो शांति से अवश्य रह सकोगी।"

चाची—"लेकिन भैया, मैं केवल अपने ही स्वार्थ की बात नहीं कहती। दीदी तुम्हें प्राण से भी बढ़कर चाहती हैं। उनकी दशा क्या होगी? ऐसी सौतेली मा मैंने नहीं देखी, और मिलना भी कठिन है।"

विपिन—"चाची अम्मा, मैं अपनी मा की प्रकृति और स्नेह क्या जानता नहीं? तो भी जाना ही होगा।"

चाची—"रहना क्या इतना कठिन है भैया?"

विपिन—"हाँ चाची अम्मा। बाबूजी कहते हैं, झिनुकपाता गाँव में मुझे ब्याह करना पड़ेगा। मुझे करना नामंजूर है, इसीलिये उनकी आज्ञा है कि मैं घर से चला जाऊँ।"

चाची—"तो तुम जेठजी की आज्ञा के अनुसार झिनुकपाता में ब्याह कर क्यों नहीं लेते? उसमें ऐसी कौन कठिनाई है?"

विपिन—"कठिनाई बड़ी भारी है चाची अम्मा। जिसमें अपना मन प्रसन्न न हो, वह काम कभी न करना चाहिए। अपने मा-बाप की ज़िद रखने के लिये एक दुधमुही बालिका का सर्वनाश करने का मुझे क्या अधिकार है?"

चाची—"तो जेठजी से समझाकर क्यों नहीं कहते? वह तुम्हारी पसंद की लड़की तलाश करेंगे।"

विपिन ने हँसकर कहा—"ऐसा होने का उपाय नहीं है चाची। जैसे मेरी पसंद है, वैसे ही पात्री की भी पसंद है। मेरे पसंद करने से कोई मुझे भी पसंद कर ले, ऐसा कोई नियम नहीं है। मुमकिन

है, जिसे मैं पसंद करूँ, वह मुझे नापसंद करे। इसी कारण मैंने वह चेष्टा छोड़ दी है।"

चाची—"औरत की जाति की पसंद-नापसंद क्या है?"

विपिन ने हँसकर कहा—"इसी कारण तो मेरे मत से तुम्हारे मत की नहीं पटती। तुम औरतों को मनुष्य ही नहीं समझतीं। लेकिन उनमें भी भले-बुरे का विचार करने की शक्ति है, पसंद-नापसंद है। उनके भी हृदय है। उनके भी जी है।"

चाची—"क्या जानूँ भैया! तुम्हारे बराबर पंडित तो मैं हूँ नहीं। जो अच्छा समझो, सो करो। तुम जैसे लड़के को भी भला संसार में कोई लड़की पसंद न करेगी, जिसने पुरबले जनम में बहुत कुछ तपस्या की होगी, वही तुम्हें पा सकती है।"

इतना कहकर, विषण्ण मन से लंबा साँस लेकर चाची वहाँ से चल दीं।

पास के कमरे में मालती सब बातें सुन रही थी।

इसी समय रोहिणी ने आकर, दाँत निकालकर दबी आवाज़ में कहा—"दीदी तुमने सुना? छोटे राजा कलकत्ते चले जा रहे हैं!"

मालती ने तीक्ष्ण दृष्टि से उसके मुँह की तरफ़ देखकर रूखे स्वर में कहा—"हाँ सुना है। सो जा रहे हैं तो मुझे क्या?"

रोहिणी ने गाल में हाथ देकर, बनकर कहा—"ओ मैया, ऐसे सुंदर हमारे छोटे राजा घर-दुआर छोड़े चले जा रहे हैं। इससे तुम्हें कष्ट नहीं होता?"

मालती ने दृढ़ स्वर में कहा—"ना। तुम्हारे छोटे राजा मेरे कौन हैं? मैं न बहुत दिनों से उनके यहाँ हूँ, और न अच्छी तरह उनसे मेरी जान-पहचान ही है। फिर मुझे उनके जाने से कष्ट क्यों होने लगा? मैं उनकी कौन हूँ? हाँ, सिर्फ़ यही ख़राब मालूम पड़ता है कि एक आदमी बिगड़कर घर से चला जा रहा है, बस।"

रोहिणी एकदम हताश हो गई। वह बड़ी आशा करके आई थी कि मालती यह ख़बर सुनत ही फफक-फफककर रोने लगेगी—कटी मछली की तरह तड़पने लगेगी। लेकिन इसका कोई लक्षण न देख पड़ा। उलटे मालती को ऐसी लापर्वाही दिखाते देखकर रोहिणी की सब धारणा उलट-पुलट गई। वह अत्यंत अप्रसन्न मन लेकर वहाँ से चल खड़ी हुई।

पास की कोठरी में ज्यों-ज्यों सामान बाँधा और कसा जाने लगा, त्यों-त्यों मालती के मन पर जैसे कोई चोट पहुँचाने लगा। आज वह फिर अपने को निराश्रय समझने लगा। अब किसी तरह वह अपने आँसुओं को नहीं रोक सकती थी। क्रमशः उसका मुख उमड़े हुए आँसुओं से वर्षणोन्मुख मेघ की तरह अंधकाराच्छन्न हो उठा। चढ़े हुए सितार की तरह उसकी हृत्तंत्री वेदना से झनझना उठी। बात करने में गला काँपने लगा। संध्या के समय जब विपिन की यात्रा की सब तैयारी प्रायः संपूर्ण हो आई, तब उस समय मालती अपने को किसी तरह सँभाल नहीं सकी। अंत को वह रो दी। वह आँसू पोंछकर जितना ही अपने को सँभालने की चेष्टा करती थी, उतना ही आँसुओं का सागर-सा उमड़ा आता था।

संध्या के समय रोहिणी उस कमरे में दिया जलाने आई। मालती चटपट आँसू पोंछकर, ओंठ-से-ओंठ दबाकर बैठ गई। रोहिणी ने देखा, मालती का चेहरा संध्या-काल के कमल-सा तमतमाया और उतरा हुआ है। उस चेहरे के ऊपर दीपक की सुनहली आभा अस्त होनेवाले सूर्य के कर-स्पर्श की तरह छिटकी हुई पड़ रही थी। रोहिणी मुग्ध दृष्टि से उधर देखती ही रह गई; हाथ से दीपक रखना भी भूल गई। कुछ देर तक इस तरह ताकते रहने के बाद रोहिणी सरीखी स्त्री को भी मालती पर करुणा आ गई। उसने सांत्वना के स्वर में कहा—"दादी, तुम सोच करो, छोटे

राजा का जाना शायद नहीं हो सकेगा। बड़ी रानी बड़े राजा से कहने गई हैं।"

अब मालती के लिये अपने को सँभाल रखना असंभव हो गया। वह उच्छ्वसित होकर रो उठी। रोहिणी के सामने अपनी यह दुर्बलता प्रकट हो पड़ने से मालती को जितनी ही लज्जा मालूम पड़ने लगी, उतना ही रुलाई को रोकना उसके लिये कठिन हो उठा। तब उसने रोते-रोते ही कहा—"कलमुही, तू दूर हो मेरे सामने से! तू मुझे क्यों इस तरह दिक करती और जलाती है? मैंने तेरी क्या बुराई की है? मैं तेरे छोटे राजा की ख़बर नहीं सुनना चाहती! तू मेरा अपमान न कर। मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ, तू जा! तू जा!"

रोहिणी अवाक् होकर थोड़ी देर तक मालती की ओर ताकती रही, उसके बाद दीपक रखकर चली गई। वह नहीं समझ सकी कि मालती के ऐसे व्यवहार का क्या अर्थ है? वह नहीं ठीक कर सकी कि मालती का यह हाल देखकर उसे रोना चाहिए, नाराज़ होना चाहिए, या हँसना चाहिए! उसने निष्कपट भाव से यह स्वीकार किया कि ऐसी रहस्यमय, जटिल चरित्रवाली औरत उसने कभी कहीं नहीं देखी। घर की सब औरतों ने भी इसे उसकी सरलता और सत्यवादिता का निदर्शन मानकर उसके इस मंतव्य का सर्वथा समर्थन और अनुमोदन किया।

मालती ने जब सुना कि विपिन के जाने में रुकावट डाली जा रही है, और सभी लोग उसे इस इरादे से निवृत्त करने के लिये तरह-तरह की कोशिशें कर रहे हैं, तब उसके हृदय में एक अस्वीकृत आनंद का भाव उच्छ्वसित हो उठा। जब क्रमशः उस उल्लास और आनंद के अनुभव को अस्वीकार करना असंभव हो उठा, तब हाथ जोड़कर, ऊपर की ओर देखकर वह ईश्वर से प्रार्थना करने लगी—"हे जगत्पिता, वह न रहें, न रहें। उनके मन में बल दो, वह सब

पास के कमरे में बैठी हुई मालती के कान इधर ही लगे हुए थे। उसने जब देखा कि विपिन का जाना नहीं रुका, तब दुःख और आनंद के घात-प्रतिघात से उसकी अजब हालत हो गई। उसे ऐसा जान पड़ने लगा कि उसका हृदय जैसे फटकर सौ टुकड़े हो जायगा। वह रात-भर रोती रही। उसकी आँखें और मुँह लाल हो उठा। इस समय रह-रहकर उसे यही ख़याल होने लगा कि विपिन उसी के लिये देश-त्यागी हो रहा है!

रात-भर दुर्भावना में जागकर, बहुत ही तड़के, मालती अपने कमरे से बाहर निकलकर बरामदे में खड़ी हुई।

उस समय भी देव-कन्या उषा ने आकर आकाश के आँगन से सारी रात के झड़े हुए बासी तारागण-रूप फूलों को झाड़ू से बहार-कर सोने का चौका नहीं लगाया था। ज़मींदार-भवन के भीतर के तालाब के किनारे पर के पीपल के पेड़ पर अभी-अभी बुलबुल, दोयल, श्यामा वग़ैरह पक्षियों ने जगकर अपनी चहँक से 'प्रकृति' को जगाना शुरू किया था। प्रकृति उस समय भी कुहासे की चादर से मुँह ढके चुपचाप सो रही थी। तालाब के स्वच्छ जल के बिल्लौरी फ़र्श पर हलके पैर रखती हुई हवा ने उस समय भी नाचना नहीं शुरू किया था। बड़ा भारी तालाब वन-देवी का बड़ा आईना-सा देख पड़ता था। घने सब्ज़ रंग का भारी फ़्रेम उसके चारो ओर था। बैंगनी रंग का आकाश उस समय भी निद्रा में अचेत था; उसके हृदय के स्पंदन और नाड़ी की गति के समान ग्रह और तारागण दप दप कर रहे थे। पश्चिम आकाश के सिरे पर नींबू के रंग की पाल उड़ाता हुआ चंद्रमा उस समय भी अ[redacted]कार में चला जा रहा था। उस समय वृद्ध दरबान दुबे तालाब के किनारे फूलों की बगिया में पूजा के लिये फूल चुनता हुआ उदात्त स्वर में भजन गा रहा था—

ऐ यार, तुझे न जावें भूल।
पात-पात मे तुही रँगीले,
तुही रंगीले फूल ॥ ऐ यार० ॥

मालती एकाग्र हो साँस रोककर सुनने लगी। विपिन जागकर पास ही लाइब्रेरी की कोठरी में यात्रा की तैयारी कर रहा था। मालती विपिन की कोठरी की ओर एक पैर आगे बढ़ाती थी, और फिर रुक जाती थी। इस तरह कुछ देर तक दुविधा में इधर-उधर करके वह विपिन की कोठरी के द्वार पर पहुँचकर स्थिर भाव से खड़ी हो गई। विपिन उसे देखकर, अवाक् होकर उसकी ओर ताकने लगा।

मालती ने लज्जा-जड़ित स्वर में कहा—"आपका जाना क्या बिलकुल ही निश्चित है?"

विपिन ने गंभीर भाव से कहा—"हाँ।"

मालती—"कब लौटिएगा?"

विपिन—"इस घर में अब लौटकर आना असंभव है। यही मेरी अगस्त्य-यात्रा है।"

मालती ने सिर झुकाकर, कोमल स्वर में कहा—"मैं आपके साथ चलूँगी।"

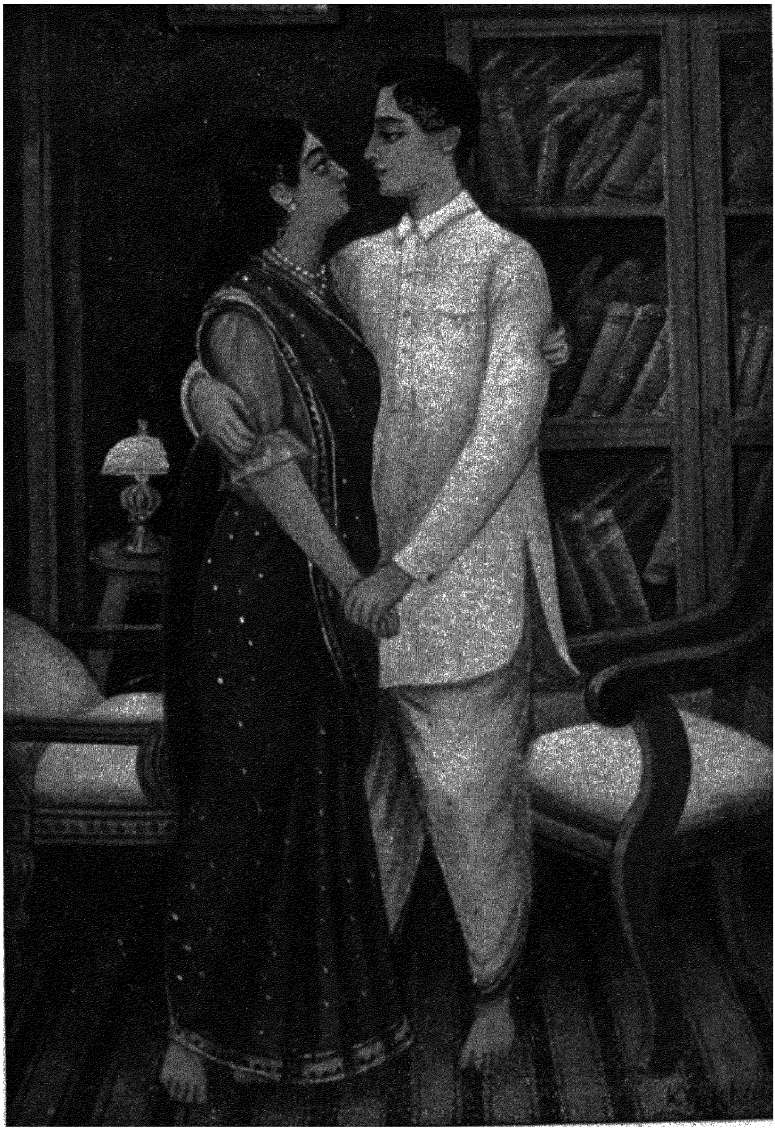
विपिन ने विस्मित होकर पूछा—"तुम कहाँ जाओगी मालती?"

मालती—"आप जहाँ ले जायँ।"

विपिन ने मालती की ओर ताकते-ताकते, आगे बढ़कर, उसका हाथ पकड़कर कहा—"तो फिर कल मुझे तुमने वैसा रूखा जवाब देकर इतना कष्ट क्यों दिया?"

मालती ने कोमल स्वर में कहा—"मैंने सोचा था, मेरे कारण आपको अपने मा-बाप न छोड़ने पड़ें।"

विपिन ने जोश के साथ कहा—"तो मैंने आज सबको छोड़कर तुम्हें पाया मालती? अब तक मैं तुम्हारा मूल्य समझ नहीं सका था।"



वह दोनो हाथों से उसे हृदय से लगाकर उसके गुलाबी गालों पर बार-बार प्रणय-मुद्रा अंकित करने लगा।

चाची अम्मा ने कहा—"हाँ दीदी, भगवान् हैं, और वह सब देखते हैं। मैंने अगर कभी तुम्हारे अनिष्ट की कामना की हो, तो मेरा यह लोक तो बिगड़ ही गया है, परलोक में भी मेरी दुर्गति हो। मैं तीर्थ जाती हूँ, तीर्थ की ओर मुँह करके यह बात कहती हूँ, अगर मेरा कुछ दोष इसमें हो, तो बाबा विश्वनाथ मुझे अपने चरणों में जगह न दें।"

पुरन्धिन ने फिर कुछ नहीं कहा। पुत्र के आसन्न वियोग की आशंका से माता की आँखों में आँसू नहीं आए, मुँह से एक बार निषेध की वाणी भी नहीं निकली। पुत्र के बारंबार विद्रोह करने से माता का मन भी उससे ऐसा विमुख हो उठा था! विधवा का ब्याह! इतना बड़ा अनाचार कहीं कभी किसी ने देखा-सुना नहीं। आज आँखों के आगे प्रत्यक्ष देखकर घर के सब आदमी एकदम सन्नाटे में आ गए।

इसी समय विनी ने आकर, मालती का हाथ पकड़कर, मुँह ऊपर उठाकर, आदर के साथ पूछा—"मालती दीदी, तेजा ब्याह है? बले दादा के छाथ तू छुछलाल दाती है? मैं भी तेले छाथ छुछलाल तलूँदी!"

यों कहकर, गर्दन टेढ़ी करके वह मालती की सम्मति की अपेक्षा करने लगी। मालती ने गोद में उठाकर उसका मुँह चूम लिया। मालती की आँखों में आँसू भरे हुए थे।

विनोद उछलते-फाँदते आकर, "मालती दीदी, तुम मेरी भौजी हो! मैं भौजी का सहबाला हूँ!" कहकर, चीत्कार करने और मालती तथा विपिन के चारो ओर चक्कर लगाने लगा।

हाय! बच्चे नहीं जानते कि यह विवाह आनंद के द्वारा अभिनंदित नहीं, दुःख के द्वारा अभिशप्त है। इस विवाह में मंगल के बाजे नहीं बजे; अंतःपुर की स्त्रियों ने 'परछन' करके वर-वधू की

अभ्यर्थना नहीं की; किसी ने वर-वधू को देखकर प्रसन्न मन से आशीर्वाद नहीं दिया। लेकिन, तो भी यह विवाह है।

पालकी के पास आकर, बिनी को गोद से उतारकर मालती उस पर बैठ गई। बिनी भी दौड़कर पालकी पर चढ़ने जा रही थी; रोहिणी ने उसे पकड़कर गोद में ले लिया। उधर विनोद को भोंदू की मा ने गिरफ़्तार कर लिया। बिनी और विनोद, दोनो दासियों की गोद में क़ैद होकर छुटकारे के लिये छटपटाने और चिल्लाने लगे—"मैं जाऊँगा, मैं जाऊँगा, दादा का ब्याह देखने मैं जाऊँगा।"

पालकी पर मालती और चाची सवार हुईं। हाथो पर विपिन चढ़नेवाला ही था, इसी समय नवकिशोर आकर मौजूद हो गया, और बोला—"क्यों विपिन, ठीक समय ही पर आ गया न?" नवकिशोर को देखकर विपिन का हृदय फिर उत्साहित हो उठा। जो कुछ ढीलापन आ गया था, वह सहारा पाकर दूर हो गया।

उन लोगों ने यात्रा की। इस दोपहर के समय, पूस के महीने में, वे घर से भूखे-प्यासे चल दिए; किसी ने उनसे कुछ खा-पी लेने के लिये अनुरोध भी नहीं किया। उन्होंने ख़ाली पेट और भरा हुआ दुःख लेकर यात्रा की। विपिन वग़ैरह सब चुप थे; कोई एक दूसरे की तरफ़ आँख उठाकर देखता भी नहीं था। सब अपनी-अपनी चिंता में चूर थे। उस समय संपूर्ण प्रकृति मध्याह्न के विश्राम में निस्तब्ध हो रही थी। सिर्फ़ विनोद और बिनी की तीक्ष्ण चीत्कार-ध्वनि विवाहोत्सव की शहनाई के शब्द की तरह दूर पर सुनाई पड़ रही थी। क्रमशः वह भी क्षीण-से-क्षीणतर होकर स्वजन-संबंध की क्षीण स्मृति के समान लीन हो गई। उस समय विपिन और मालती, दोनो अपने-अपने मन में सोच रहे थे कि यही हमारा ब्याह है! कैसा भीषण और करुण यह उत्सव है!

बत्तीसवाँ परिच्छेद

रेलवे स्टेशन पर आकर विपिन ने चाची से कहा—"चाची-अम्मा, हम लोगों के साथ तुम भी कलकत्ते चलो। हमारी गिरिस्ती का प्रबंध जमाकर फिर वहाँ से काशी चली जाना।"

चाची ने रूखे स्वर में कहा—'अब मैं संसार से कुछ संबंध नहीं रखने की। मैं काशी पहुँचे बिना जल-ग्रहण भी नहीं करूँगी।"

नवकिशोर ने कहा—"तो फिर चाची, उस पार के प्लेटफार्म पर चलो। काशी की गाड़ी आने का समय आ गया।"

चाची उठकर खड़ी हो गईं। विपिन और मालती ने प्रणाम करके उनके चरणों की रज अपने मस्तक में लगाई।

इस समय चाची की सब कठोरता आँखों के जल में बह गई। उन्होंने मालती और विपिन, दोनों की ठोढ़ी छूकर चुंबन किया। उसके बाद विपिन के हाथ में मालती का हाथ रखकर, आँसू बहाते-बहाते कहा—"अपना मान, अपनी इज़्ज़त, अपना सर्वस्व मैं तुम्हारे हाथ में सौंपे जाती हूँ भैया। तुम इसकी इज़्ज़त रखना।"

विपिन और मालती की आँखें भी सूखी नहीं रहीं।

विपिन ने कहा—"चाची-अम्मा, अम्मा ने तो हम लोगों को कुछ आशीर्वाद दिया ही नहीं, तुम भी क्या हम लोगों को छोड़कर जाने के समय आशीर्वाद नहीं दोगी?"

चाची ने बहुत देर तक चुप रहकर कहा—"आशीर्वाद देती हूँ, मैंने जैसे दुःख पाया है, वैसे ही तुम सुख पाओ।"

चाची और कुछ नहीं कह सकीं, रोते-रोते नवकिशोर के साथ चल दीं। विपिन और मालती, दोनों स्तब्ध होकर इस शाप के समान भयानक आशीर्वाद के बारे में सोचने लगे।

तेंतीसवाँ परिच्छेद

विपिन और मालती कलकत्ते में आकर तारक के घर में ठहरे, और काशी से नवकिशोर के आने की राह देखने लगे। यहाँ मालती पराए ज़नाने में थी, विपिन वहाँ आकर उससे भेंट नहीं कर पाता था। नवकिशोर भी पास नहीं था। विपिन के मन में एक शांतिमय घर की अतीत स्मृति और एक संभवपर गृहस्थाश्रम की सुखमयी कल्पना रह-रहकर केवल चोट पहुँचाती थी, उसे व्याकुल और व्यस्त बना रही थी। इस अवस्था में मालती और नवकिशोर, दोनो के साथ से छूटकर विपिन बहुत घबरा रहा था; उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। उसके ऊपर दिन भर तारक के साथ तर्क कर-करके उसका मन और भी क्लांत हो पड़ता था। तारक अपनी प्राण-पण चेष्टा से यह समझाना चाहता कि विधवा-विवाह हमारे देश की प्रथा नहीं है -- यह विलायत की रीति है। जिस देश में विधवा का चरम आदर्श पति की लाश के साथ जल मरना है, जिस देश में विधवा कहने से ही एक प्रणय-शीला ब्रह्मचारिणी का बोध होता है, उस देश में ऐसा अनाचार व्यभिचार का ही नामांतर माना जायगा।

विपिन ने खीझकर, लज्जित होकर एक दिन उससे कहा—"माफ़ करो भाई, मैं तुम्हारे साथ बहस नहीं करता। बहस को तो तुम किशोर के लिये ही उठा रक्खो; उसी के साथ तुम्हारी खूब पटेगी। मैं केवल यही कहना चाहता हूँ कि स्त्रियों ही के वक्त तुम लोग इतनी कड़ी नज़र क्यों रखते हो? मर्दों के वक्त क्यों नहीं रखते? मर्द चौदह ब्याह कर ले, तो भी दोष नहीं है; लेकिन बाल-विधवा, जिसने पति को देखा भी नहीं, अगर फिर ब्याह कर ले, तो सारा दोष-ही-दोष है? यह कैसा न्याय है?"

तर्क का सुयोग पाकर तारक बहुत ही उत्साहित हो उठा। वह

सीधा होकर बैठ गया, और बोला—"मर्द और औरत की क्या बराबरी ? प्रकृति ने ही उन्हें जुदे-जुदे साँचे में ढाला है, जो नारी संतान की जननी होती है, उसका एकनिष्ठ होना क्या आवश्यक नहीं है ?"

विपिन—"यह मैंने माना। लेकिन जो विधवा है, उसका फिर ब्याह होने से एकनिष्ठता नहीं नष्ट होती। ख़ासकर जो कुमारी के ही समान अपने समग्र हृदय के अछूते प्रेम का अर्घ्य साजे हुए उसकी सार्थकता के लिये किसी सुपात्र की अपेक्षा कर रही है, उसके लिये भी क्या यही व्यवस्था है ?"

तारक—"हाँ, निश्चय ही। प्रकृति का नियम क्या कभी जुदे-जुदे लोगों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है ? नियम नियम ही है। उस तरह की विधवा को उसी नियम के अनुकूल अपना हृदय बनाना पड़ेगा। उसके दुर्बल होने से आदर्श तो नहीं हीन हो सकता ? आदर्श सदा उच्च रहता है, और मनुष्य का मन सदा नीचगामी हुआ करता है। उस मन को वासनाओं से संग्राम करके उस उच्च स्थिति में पहुँचाना होगा। इसी में तो उसका गौरव है !"

विपिन—"यह तो प्रकृति का नियम नहीं, समाज का शासन है। सभी को ज़बरदस्ती आदर्श तक पहुँचाने से क्या फल होता है, सो तो हम समाज के भीतर नित्य ही देख पाते हैं। इसके सिवा, मान लो, जो ऐसी असहाय और निराश्रय विधवाएँ हैं, जिन्हें अच्छी तरह सुख से रहने की इच्छा है, पर सुबीता नहीं है, उनका क्या उपाय होगा !"

तारक ने ज़ोर देकर कहा—"इसके क्या माने कि जो निराश्रय हैं, वे निरुपाय भी हैं ? हमारे देश की संन्यासिनी क्या हैं ? एकदम निराश्रय होकर भी कितनी बड़ी सती-साध्वी हैं ! तुम्हें मैं दिखाऊँगा, प्रत्यक्ष दिखाऊँगा कि विधवा साध्वी-संन्यासिनी किन्हें कहते हैं।

तुमने श्रीप्रेमानंद स्वामी का नाम तो सुना ही होगा ? साक्षात् देवता हैं ! श्रीकृष्णचैतन्य देव का अवतार हैं ! मैं तुम्हें आज ही उनके दर्शन कराने ले चलूँगा। वहाँ चलकर देखोगे कि वह नर-नारियों के कैसे श्रेष्ठ और उत्तम आदर्श का प्रचार कर रहे हैं। वह मेरे गुरुजी हैं।"

इतना कहकर, आँखें मूँदकर, अपने मांस-शून्य कंकाल-सार दोनो हाथ जोड़ और मस्तक में लगाकर तारक ने गुरुजी को भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया। गुरुजी के स्मरण में मग्न होने से उसका तर्क थम गया।

तारक ने दम-भर बाद कहा—"उनके दर्शन करने चलोगे ?"

विपिन ने पूछा—"कहाँ रहते हैं ?"

तारक—"इस समय उनका आश्रम खड़दह में गंगा-तट पर ही है; उसे आनंदाश्रम कहते हैं। सचमुच ही वह आनंदाश्रम है। आहा, कैसा मनोरम पवित्र स्थान है ! पहुँचते ही जी चाहता है कि संसार-सुख को तिलांजलि देकर गुरुजी के चरणों में पड़े रहें !"

विपिन ने हँसकर कहा—"वहाँ जाने से अगर मन की हालत ऐसी हो जाती है, तो भाई, मेरा जाना नहीं हो सकता।"

तारक ने गंभीर भाव से कहा—"अरे भाई, संसार का माया-मोह कहीं इतनी जल्दी मिट सकता है ? मुक्ति का मार्ग इतना सहज नहीं है। श्रीगुरुदेव की विशेष कृपा हुए बिना उनके चरणों में स्थान नहीं मिलता।"

विपिन ने फिर वैसे ही हँसकर कहा—"अगर इस अधम पर उनकी विशेष कृपा हो पड़े, तो ?"

तारक—"इसके लिये तुम मत डरो। वैसा सौभाग्य तुम्हारा नहीं हो सकता।"

विपिन—"ठीक कहते हो न कि वैसा सौभाग्य न होगा ? अगर हुआ, तो उसके ज़िम्मेदार तुम हो !"

तारक—"हाँ जी हाँ, कह तो रहा हूँ। आओ, चलो।"

तारक विपिन का हाथ पकड़कर चलने के लिये घसीटने लगा। विपिन हँसते-हँसते तैयार होकर गुरुजी को देखने के लिये तारक के साथ चला। तारक का तर्क कोंच-कोंचकर, विपिन के आबाल्य-संचित संस्कार को उसका-उसकाकर उसे बड़ा ही दुविधा में डाल रहा था। विपिन ने दुविधा में पड़े हुए इधर-उधर झाँकते रहे अपने मन को नवीन दृश्य के दर्शन से एकाग्र और सुश्रृंखलित करने के लिये बड़े आनंद से तारक के साथ जाना स्वीकार कर लिया।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

अहीरीटोले के घाट से एक डोंगी भाड़ा करके विपिन और तारक ने यात्रा की। वे यथासमय खड़दह में, आनंदाश्रम के घाट में, उतरे। घाट बहुत लंबा-चौड़ा और संगमरमर का था। जल के तले तक सीढ़ियाँ चली गई थीं। बर्फ़ की तरह शुभ्र, सुंदर घाट की शिलाओं के ऊपर गंगा का जल कलरव करता हुआ जैसे नाच रहा था। सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचते ही विपिन ने देखा, एक बहुत मनोहर, सुसज्जित, पुष्प-परिपूर्ण, सुरुचि-संगत, बड़ा भारी बाग़ है। कहीं कदंब-कुंज, कहीं बकुल-वीथी, कहीं कुरबक की क्यारियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही हैं। बीच-बीच में गुलाब, बेला, चमेली, जुही, मालती आदि सुगंधित फूलों के खेत हैं। केवड़े के पेड़ हज़ारों की संख्या में लगे हुए हैं। एक छोर पर एक लता-मंडित एकांत स्थान है। उसके भीतर जाने की राह में संगमरमर की मेहराब से सुशोभित

द्वार है। उस मेहराब के ऊपर, पत्थर पर, सुनहले अक्षरों में, लिखा हुआ है—"केलिकुंज"। बीच-बीच में दूब की हरियाली आँखों में ठंडी सलाई-सी फेर देती है। पैरों में झाँझ और गले में घुँघरू पहने दो हरिण-शावक चंचल भाव से इधर-उधर दौड़ते फिर रहे हैं। ताल-तमाल-कुंज के बीच कई मोर टहल रहे हैं। वह शांत, नीरव आश्रम-वाटिका सैकड़ों पक्षियों के आनंद-संगीत से रह-रहकर गूँज उठती है। जगह-जगह सफ़ेद पत्थर के हौज़ों के भीतर से फुहारे छूट रहे हैं—उनमें उछलनेवाला जल अपनी उज्ज्वल आभा से दर्शक के मन को मुग्ध बना देता है। वहाँ से हटने को जी नहीं चाहता। इतने बड़े बाग़ में कहीं पर अनावश्यक घास नहीं निकली, कहीं पर एक भी सूखा पत्ता नहीं पड़ा है। जैसे एक सुंदर चित्र-पट हो। इस विस्तृत उद्यान के बीच में एक तसवीर-सा सुंदर भवन बना हुआ है। आदि से अंत तक 'आइवी' लता उसे ढके हुए है। यह घर भी बहुत बड़ा है। फाटक पर लिखा हुआ है—"गोलोक-धाम"। घर के भीतर जाने की राह में ही एक कोठरी है; वहाँ जूते उतारकर रख देने पड़ते हैं। उस कोठरी के पास ही हौज़ है; उसमें एक मछली के मुँह से निकलकर जल गिरता है। उसके ऊपर भी सुनहले अक्षरों में लिखा है—"वैतरणी"। उस भवन में और भी अनेक हौज़ हैं। उनसे बाहर पानी निकलने की नालियों में कोई गोमुखी है, कोई मगर-मुखी है, कोई शत-धारा है। उनमें किसी का नाम भोगवती है, किसी का नाम मंदाकिनी है, किसी का नाम अलकनंदा है।

विपिन और तारक ने यथास्थान जूते उतारकर, वैतरणी में पैर धोकर उस भवन के भीतर प्रवेश किया। उस भवन का फ़र्श सफ़ेद और काले पत्थरों के टुकड़ों से मंडित था। बीच-बीच में शत-दल

पद्म का आकार बना हुआ था। खंभे विचित्र और संगमरमर के थे। छत में बड़े-बड़े झाड़ लटक रहे थे। जलाने के चित्र-विचित्र कमल और लालटेनें उस स्थान की शोभा बढ़ा रही थीं। हरएक कोठरी में गेरुए कपड़े पहने शिष्यों की मंडली धर्म-ग्रंथ पढ़ रही थी। कोई रोगी की सेवा कर रहा था। कोई धर्म के विषयों की आलोचना कर रहा था। लेकिन वह आलोचना उद्धत भाव से तर्क करके नहीं, शांत भाव से धीमे स्वर में होती थी।

विपिन और तारक संगमरमर की सीढ़ियाँ चढ़कर दुमंज़िले पर पहुँचे। दुमंज़िले के एक हिस्से में ठाकुरद्वारा था। ठाकुरद्वारा गंगाजी की ओर था; वहाँ से गंगाजी की धार के दर्शन अच्छी तरह होते थे। बरामदे में खड़े होने से गंगा की धारा और उसके उस पार का मनोहर दृश्य बहुत दूर तक देखा जा सकता था। ठाकुरद्वारे के सामने लिखा था—"वैकुंठ-धाम"। भीतर राधा-कृष्ण की मूर्ति थी, जिसका नाम था राधाकांत। कई चेलियाँ ठाकुर की पूजा, आरती, भोग आदि की तैयारी कर रही थीं। वे भी चुपचाप, लेकिन प्रसन्न देख पड़ती थीं। तारक ने मूर्ति को प्रणाम किया; विपिन ने भी देखादेखी प्रणाम किया। वह इस शांत, नीरव, सुंदर आश्रम में अपने मानसिक विरोध को महत्व नहीं दे सका।

तारक वहाँ से विपिन को गुरु के दर्शन कराने ले चला। एक तो गुरु, उस पर संन्यासी; उनके पास जाने में किसी के लिये रोक-टोक नहीं थी। इसी कारण वहाँ के दरवाज़ों में ज़ंजीर तक नहीं थी।

विपिन ने जाकर देखा, एक बड़ी भारी दालान है; जिसमें एक सिरे से दूसरे सिरे तक मोटा, नरम ग़लीचा बिछा है। छत में रंग-रंग के सुंदर, बड़े-बड़े झाड़ लटक रहे हैं; दीवार में विचित्र पत्ते-फूल-फल अंकित हैं। बीच-बीच में देशी-विदेशी पौराणिक चित्र हैं। गोपाल-जननी यशोदा के पास ही ईसा की माता मेरी का चित्र है। महा-

भारत, रामायण आदि के पौराणिक दृश्यों के पास ही योरप के श्रेष्ठ शिल्पियों के अंकित चित्र शोभायमान हैं। तसवीरों के ऊपर दीवार में, विचित्र ढंग की लिखावट में, अँगरेज़ी, फ़ारसी और संस्कृत के श्रेष्ठ वचन लिखे हुए हैं। उस दालान के एक सिरे पर एक बड़ा भारी शीशम की लकड़ी का पलँग है; उसका बिछौना और मसहरी सब रेशमी है। हर दरवाज़े पर चौड़े हाशिए के शाल के पर्दे पड़े हैं। पास की कोठरी में एक बड़ी भारी लाइब्रेरी है, जिसमें विभिन्न भाषाओं की छपी और हाथ की लिखी पोथियों का संग्रह है। सब पुस्तकें सुशृंखला के साथ रक्खी हैं। दालान के बीच में और एक ऊनी ग़लीचा बिछा है। उस पर गुरुजी बैठे हैं। उनके सामने कुछ आए हुए लोग उपस्थित हैं।

आए हुए लोगों में कोई शोकातुर है, कोई जगत् के कृतघ्न आचरण से चोट खाए हुए है, कोई दारिद्र्य-पीड़ित है। सभी यहाँ सांत्वना पाने की आशा से आए हैं। कोई-कोई आत्मा, इहकाल, परकाल, पुनर्जन्म, प्रेततत्व आदि अतींद्रिय विषयों की मीमांसा करने आया है। गुरुजी हँस-हँसकर सबके साथ शांत-धीर भाव से आलोचना कर रहे हैं। कितने ही लोग कितने ही अद्भुत प्रश्न करते हैं, तो भी गुरुजी नाराज़ नहीं होते हैं। उनका मुख-मंडल प्रसन्न और हास्य से उज्ज्वल ही देख पड़ता है।

गुरुजी की अवस्था चालीस के भीतर ही है। उज्ज्वल-श्याम रंग है। सुकोमल और सुश्री मूर्ति है। मूछ, दाढ़ी और सिर के बाल सब मुड़े हुए हैं। मुख पर औरतों के ढंग का उज्ज्वल लावण्य झलक रहा है। वह एक रेशमी गेरुआ कपड़ा पहने हैं। सिर पर गेरुए रंग की रेशमी पगड़ी है। गुरुजी की आँखें सुंदर और बड़ी-बड़ी हैं; उनमें तीक्ष्ण बुद्धि जैसे भरी पड़ी है। वे आँखें उनके हृदय की तरह, आईने की तरह, प्रशांत और निर्मल हैं। उनका मुख संयम-

निष्ठा की दीप्ति से उद्भासित हो रहा है ; वह दृढ़ता-पूर्ण होने पर भी सदा हास्य-मधुर रहता है। इस अद्भुत और सुंदर पुरुष को देखकर विपिन ने अपने मन में कहा—हाँ, यह बेशक कोई महा-पुरुष और गुरु होने के योग्य हैं !

श्रद्धा, संभ्रम और भक्ति से मुग्ध विपिन प्रणाम करके एक किनारे बैठ गया।

इतनी सब विलास-सज्जा देखकर भी विपिन के मन में किसी तरह का संदेह या दुविधा नहीं पैदा हुई। उसे जान पड़ने लगा, इस अद्भुत पुरुष के चारो ओर इस तरह सौंदर्य और संपत्ति का समावेश ही उपयुक्त है।

गुरुजी ने मुस्किराकर, कुछ सिर झुकाकर विपिन और तारक की अभ्यर्थना की, और उसके बाद तारक से पूछा—"क्यों जी संसारा-नंद, यह कौन हैं ?"

तारक ने हाथ जोड़कर, बहुत ही नम्रता के साथ कहा—"यह मेरे एक मित्र हैं। नाम है विपिनविहारी राय-चौधरी। यह एम्० ए०-पास हैं। आपके दर्शन करने आए हैं।"

गुरुजी ने हँसकर कहा—"भाई, मैं एम्० ए०-पास लोगों को बहुत डरता हूँ। वे सिर्फ़ बहस करने के लिये ही आते हैं। विपिन बाबू, मैं आपसे पहले ही कहे रखता हूँ, ये सब लोग आपसे कहेंगे कि मैं एक बड़ा भारी अवतार—मत्स्य-वराह-कच्छप के दल से बहुत उच्च—यहाँ तक कि शायद साक्षात् श्रीभगवान् ही—हूँ। लेकिन मैं जो इस बात को स्वीकार नहीं करता, सो केवल मेरी लीला है ! आप इन बातों पर तनिक भी विश्वास न करें। मैं आप लोगों ही की तरह एक साधारण मनुष्य हूँ। मैं पाप-पुण्य, लालसा-वैराग्य आदि से परिपूर्ण बहुत ही साधारण जीव हूँ। मगर हाँ, हरएक मनुष्य की चिंता-प्रणाली में थोड़ा-सा अंतर होता है। मुझे जो

बात सत्य और मंगलमय प्रतीत होती है, वही मैं लोगों को बतलाता हूँ। कोई उस मत को ग्रहण करता है, कोई नहीं करता। महाप्रभु ईसा कह गए हैं—You shall know the truth and the truth shall make you free. यह सत्य कैसा सत्य है, यह भी महाप्रभु ईसा स्पष्ट रूप से ही कह गए हैं—Then shall ye know, that I do nothing of myself; but as my father hath taught me. I speak these things. And He that sent me is with me; the Father hath not left me alone. इस बोध का जो भरपूर आनंद है, जिस आनंद से मेरा हृदय परिपूर्ण हो उठता है, उसे मैं अकेले संभोग न कर सकने के कारण अपने भाई-बहनों को बाँट देता हूँ। इस अपार आनंद का प्रचार करने के सिवा मेरे जीवन का और कोई उद्देश्य नहीं है। मैं संसार-त्यागी नहीं, घोर कृपण और संसारासक्त हूँ! यह समझकर मुझसे तर्क कीजिएगा।"

गुरुजी के दोनो नेत्र उज्ज्वल हास्य की आभा से परिपूर्ण हो उठे। विपिन ने जन्म से लेकर अब तक ऐसा मोहन-चरित्र-द्योतक मुख-भाव नहीं देखा था। मुख की हरएक रेखा जैसे उनके चित्त के गहरे ज्ञान, मन की सरलता, बुद्धि की तीक्ष्णता और चरित्र की दृढ़ता को पुकार-पुकारकर कह रही थी। विपिन ने एकदम मुग्ध होकर कहा—"प्रभो, मैं मूर्ख हूँ। विश्वविद्यालय ने केवल कुछ किताबें पढ़ने की छाप मेरे नाम में लगा दी है। ज्ञान मुझे कुछ भी नहीं हुआ। मैं तर्क करने नहीं आया। शिष्य की तरह जिज्ञासु होकर आया हूँ। मुझे अनुग्रह करके बता दीजिए कि मनुष्य का कर्तव्य क्या है, धर्म क्या है? मैं किस व्रत का पालन करके यथार्थ मनुष्य हो सकता हूँ? और आप दया करके मुझे 'आप' कहकर संबोधन न करें।"

गुरुजी हँस-हँसकर मनुष्य के धर्म और कर्तव्य की व्याख्या करने लगे। भाषा की कैसी प्रचंड शक्ति थी—कैसा ओजस्वी प्रकाश था! कहने का कैसा अपूर्व, मनोहर ढंग था! स्वर का कैसा गांभीर्य और माधुर्य था! जटिल बातों को सुलझा-सुलझाकर सरल करके समझाने की कैसी अपूर्व निपुणता थी! गुरुजी का संपूर्ण व्याख्यान एक सुमधुर, ताल-लय-छंद-स्वर से युक्त संगीत-सा सुनाई पड़ रहा था। वह हँसी के समान स्वच्छ और मनोहर था। विपिन मुग्ध होकर गुरुजी की ओर ताक रहा था, मोहाविष्ट की तरह उनकी बातें सुन रहा था। गुरुजी क्या कह रहे हैं, इस पर उसका विशेष ध्यान नहीं था। अच्छी तरह ध्यान देकर उसे समझने की, उस पर विचार करने की शक्ति ही जैसे विपिन में नहीं रह गई थी। वह केवल गुरुजी के वचनों के प्रबल प्रवाह का संगीत सुन रहा था, गुरुजी की हास्योज्ज्वल, सुंदर, प्रफुल्ल मूर्ति निहार रहा था।

ठाकुरजी की आरती शुरू हुई; शंख-ध्वनि हुई। गुरुजी चुप हो रहे। वह सबको साथ लेकर राधाकांत की आरती देखने गए। विपिन को ठाकुरजी की आरती का प्रकाश गुरुजी के नेत्रों की उज्ज्वल दीप्ति के आगे मलिन जान पड़ने लगा। प्रकाश, सुगंध और आनंद के अपूर्व समारोह के साथ आरती हो गई। स्वामीजी हाथ जोड़कर, ऊपर नेत्र करके, परम पुलकित भाव से गाने लगे—

जय प्रभु, प्रेम-पारावार;
मिटत नानिहु ताप सेवत, छुटत विषय-विकार।
रहत तुम मह मगन जोगी, चहत स्रुति को सार;
लहत ब्रह्मानंद निरमल, बहत दृग जल-धार।
गर्ब करि ज्ञानी गए थकि, नाहि पायो पार;
होत जिहिपै लहर, सोइ तरि जात यह संसार।

विपिन तन्मय होकर सुनने लगा। वह स्वर कैसा तीक्ष्ण और

कैसा मधुर था ! गुरुजी का मधुर कंठ-स्वर भाव की लहरों से लहरा रहा था। वह स्वर कहीं पर अपने सौभाग्य-गर्व से पुलकित, कहीं पर वेदना से परिपूर्ण, और कहीं पर विनय से एकदम विगलित था ! संगीत-रस की धारा उस घर में गूँजकर, जैसे छत को फोड़कर, आकाश में जाकर, वायु में छिटकी पड़ती थी ! गंगाजी भी जैसे उस गान के तालों पर नाचती हुई अथाह सागर से मिलने चली जा रही थीं !

स्वामीजी ने गान समाप्त करके साष्टांग प्रणाम किया। उनके साथ उसी तरह सबने प्रणाम किया। विपिन यह ख़याल कर रहा था कि यह प्रणाम यथेष्ट नहीं है, सारा हृदय चरणों पर लुटा देना ही ठीक होगा। इसके बाद गुरुजी ने अपने हाथ से सबको प्रसाद बाँटा। विपिन का हृदय एकदम गलकर जैसे अश्रु-जल के रूप में परिणत हुआ जा रहा था।

विपिन स्वप्नाविष्ट-सा हो रहा था। तारक उसे एक तरह से ज़बरदस्ती ही वहाँ से खींचकर ले आया। घर में आकर विपिन गुरुजी के व्याख्यान की बातें सोचने की चेष्टा करने लगा। नींद उचट जाने के बाद जैसे स्वप्न की कोई बात स्पष्ट नहीं याद आती, सब बातें धुँधली-सी नज़र आती हैं, चेष्टा करके स्मरण करने पर भी बायस्कोप के चित्रों की तरह पीछे का दृश्य उपस्थित होता और पहले का दृश्य ग़ायब हो जाता है, वैसे ही विपिन को भी गुरुजी की बातें सिलसिलेवार नहीं याद आती थीं। उनके टुकड़े किसी तरह जोड़कर विपिन केवल इतना ही समझ सका कि स्वामीजी ने कहा है—वैराग्य-मूलक प्रेम ही धर्म है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने को किसी विशेष देश-काल के भीतर संकीर्ण रूप से न देखे। वह अपने को विश्व-वासी समझे। अतीत और अनागत, सभी समयों के सभी लोगों के साथ प्रेम-योग स्थापन करने से ही क्षुद्र संकीर्णता नष्ट हो जाती है, और शांत वैराग्य से हृदय परिपूर्ण हो

उठता है। मनुष्यों में परस्पर कोई भेद नहीं है। सब जातियाँ और सब वर्ण उसी एक अद्वितीय परम पुरुष का प्रकाश हैं। अहंकार ही मोह को उत्पन्न करता है; प्रवृत्ति ही भेद-भाव की जननी है। नारी स्वर्गीय पदार्थ है, उसकी पूजा करनी चाहिए। भोग के द्वारा उसे कलुषित करना सर्वथा अनुचित है। यह देवता है। जो ईश्वर सौंदर्य का आदि प्रस्रवण (झरना) और परम सुंदर हैं, स्त्रियाँ उन्हीं सौंदर्य सूर्य की समुज्ज्वल किरणें हैं। हम लोग लालसा का चश्मा लगाकर देखते हैं, इसी से स्त्रियाँ रंगीन भोग की वस्तु देख पड़ती हैं। किंतु वास्तव में नारी-जाति शुभ्र, उज्ज्वल, पवित्र है। सभी स्त्री-पुरुष समान रूप से प्रेम के पात्र हैं। स्त्री-पुरुष के भेद से अगर प्रेम-भाव का तारतम्य घटित हो, तो जानना चाहिए कि वहाँ अपना चित्त निर्मल नहीं है। असल प्रेम जीवात्मा और परमात्मा में है! जीवात्मा राधा है, और परमात्मा श्रीकृष्ण। इसी से श्रीकृष्ण राधा-कांत हैं। हृदय-कमल के मंच पर उनका नित्य-निरंतर मिलनोत्सव जारी है। विचित्र भाव और विचित्र ढंग से वह मिलनोत्सव होता है। प्रकृति के ह्रास-ह्रास सुंदर दिनों में उस आनंद का आभास पाया जाता है। जो लोग अपनी ही आत्मा से क्रीड़ा करते हैं, आत्मरत हैं, वे समझ सकते हैं कि झूलन का उत्सव, रास का उत्सव कोई बाहर का सामयिक उत्सव नहीं है; हृदय के भीतर नित्य-निरंतर जीवात्मा और परमात्मा का महामहोत्सव संपन्न हो रहा है। जीवात्मा और परमात्मा के इस प्रेम-योग को मनुष्य विश्व-बोध और आत्मबोध के भीतर ही प्राप्त करता है।

विपिन सोचने लगा—तो क्या यह सब संसार माया है, मिथ्या है? मालती मेरी कोई नहीं है? हम विश्व की संपत्ति हैं? विश्व हमारे विरह में रो रहा है? नवकिशोर के लौटकर आने के पहले एक बार स्वामीजी से अपना सब हाल कहना चाहिए।

देखूँ, क्या कहते हैं। नवकिशोर ज़बरदस्ती अपना मत मनवाना चाहता है; किंतु स्वामीजी शांत भाव से, युक्ति के साथ, सब समझा देते हैं। मैं नवकिशोर से शीघ्र स्वामीजी का हाल नहीं कहूँगा। उससे कह दूँगा, तो वह तर्क की धूल उड़ाकर किसी भी राह को अच्छी तरह देखने नहीं देगा।

चारों ओर के घात-प्रतिघात से ज़मींदार का लड़का विपिन अत्यंत विह्वल और मोह को प्राप्त हो रहा था। जिसे कँगारू के बच्चे की तरह माता के गर्भ से निकलकर भी माता के पेट की बाहरी थैली में बंद रहने का ही अभ्यास हो गया था, सदा पराए भरोसे रहने की ही आदत हो गई थी, जो पराई सहायता के बिना आहार-विहार या विश्राम-विनोद कुछ नहीं कर सकता था, वह विपिन जब अपनी चिंता में चूर होकर, राह भूले हुए बटोही की तरह, व्याकुल हो रहा था, उसी समय नवकिशोर काशी चला गया, और मालती पराए ज़नाने में रहने के कारण उससे अलग हो गई। इसका फल यह हुआ कि वह अपने को अत्यंत असहाय और अकेला समझकर ऊबने लगा। इसी अवस्था में प्रेमानंद से उसकी भेंट हो गई। स्वामीजी के प्रबल व्यक्तित्व का प्रभाव विपिन के ऊपर अच्छी तरह पड़ा। विपिन को जैसे एक सहारा मिल गया। उसी दिन से वह नित्य स्वामीजी के आश्रम में जाने लगा। स्वामीजी आज ईडन-गार्डन में, कल टाउन-हाल में, परसों किसी थिएटर-गृह में व्याख्यान देते फिरते थे, और विपिन भी सैकड़ों-हज़ारों मुग्ध-दृष्टियों की ईर्षा का पात्र होकर छाया की तरह स्वामीजी के पीछे लगा रहता था।

एक दिन स्वामीजी को निराले में पाकर विपिन ने विस्तार के साथ अपनी सारी रामकहानी कह सुनाई। स्वामीजी आँखें मूँदे चुपचाप सब सुनते रहे। विपिन का वक्तव्य समाप्त हो जाने के

दम-भर बाद "राधाकांत !" कहकर, एक साँस छोड़कर, स्वामजी ने आँखें खोलीं। उसके बाद विपिन की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा—"भैया, मैं तो तुमसे पहले ही कह चुका कि प्रेम ही धर्म है ! तुम महाभाग्यशाली हो, इसी से राधाकांत ने तुम्हारे हृदय में ऐसा प्रबल प्रेम दिया है। तुम उस प्रेम को एक धारा से भोग की मरु-भूमि में क्यों बहाओ ? उससे तुम्हारा क्या लाभ है, और जगत् को ही क्या लाभ होगा ? तुम उस प्रेम को हृदय-हिमाचल से गंगा की धारा के समान सहस्र धाराओं से बहा दो, वह विश्व-भर के मानव-महासागर में जाकर मिल जाय ! वह सार्थक हो, धन्य हो ! मुझे मालती साक्षात् राधा-रानी का विकास जान पड़ती है। उसने सब कलंक सिर पर लेकर तुम्हें जो वरण किया है, तो उसका वह अपूर्व, अमल प्रेम क्या केवल तुम्हारे अपने भोग से कलुषित करने के लिये है ! ना-ना, यह बात कभी नहीं है। तुम दोनो आध्यात्मिक योग से घनिष्ठ बनो ; विश्व तुम्हारे प्रेम का प्रसाद पाकर धन्य हो जायगा। यही तुम्हारा मार्ग है। आत्मा केवल अस्तित्व-मात्र नहीं है। आत्मा ज्ञान, प्रेम और आनंद की खान है। पृथ्वी ने कितने ही युग युगांतर तक तपस्या करके आत्मा को पाया है। आत्मा पृथ्वी के अंधकार का प्रकाश है, मरु-भूमि का 'बेसिस' है ! आत्मा को पाकर पृथ्वी की श्री फिर गई है। सागर-पर्यंत पृथ्वी के समस्त धन, रत्न आदि का भोग एक तरफ़ है, और आत्मा एक तरफ़। आत्मा की तुलना में भोग अकिंचित्कर, तुच्छ पदार्थ है ! वेदांत-शास्त्र कहता है, आत्मा एकाधार में अस्ति, भाति और प्रिय, इन तीनो साधनों का धन है। अस्ति अर्थात् आत्मा की स्थिर प्रतिष्ठा, भाति अर्थात् आत्मा का ज्ञान-प्रकाश, और प्रिय अर्थात् आत्मा का प्रेमामृत। इसी से हिंदू-धर्म का श्रेष्ठ साधन तत्त्व है आत्मानं विद्धि (आत्मा को जानो)। उसके

बाद आत्मा से प्रेम करो, देह से नहीं; अपनी भोग-लालसा को प्रेम का पात्र मत बनाओ। तालाब में जैसे काई-सेवार वग़ैरह जम जाने से उसका जल व्यवहार के योग्य नहीं रहता, वैसे ही प्रवृत्ति का प्रक्षेप लगने से आत्मा की उज्ज्वलता नष्ट हो जाती है। गंदे तालाब को साफ़ करने से जैसे फिर स्वच्छ जल प्राप्त होता है, वैसे ही विवेक, वैराग्य और संयम के द्वारा आत्मा की कीचड़ दूर करने की आवश्यकता होती है। ऐसा किए बिना आत्मा साधक के भोग में नहीं आ सकती। आत्मरति को ही आत्मा की चरम रति जानो। भाषा के भीतर जैसे अलंकार, व्याकरण, काव्य, साहित्य, सब कुछ आ जाता है, वैसे ही समग्र आत्मा में ज्ञान, प्रेम, आनंद, वीर्य, सब कुछ है। भाषा पर अधिकार करने के लिये जैसे पहले व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, व्याकरण को शुष्क, नीरस कहकर छोड़कर एकदम काव्य पढ़ना शुरू करने से जैसे सब बिगड़ जाता है, काव्य का रस किसी तरह हृदयंगत नहीं होता, वैसे ही साधन के द्वारा प्रकृत आत्मा का प्रेम प्राप्त किए बिना प्रेम भी व्यर्थ हो जाता है। तुम अगर यथार्थ रूप से माधवी पर प्रेम करना चाहते हो, तो उसकी आत्मा के साथ अपनी आत्मा का योग स्थापित करो, अपनी भोग-लालसा को कम करो। तुम भाग्यवान् हो! अवश्य भाग्यशाली हो! ऐसा सर्वस्व खो देनेवाला प्रेम राधाकांत को अर्पण करके तुम अपने को धन्य बनाओ!"

गुरुजी फिर आँखें मूँदकर ध्यानस्थ हो गए। विपिन स्तब्ध भाव से बैठा रहा। स्वामीजी के इस तत्त्व-ज्ञान के उपदेश ने उसकी आँखों के आगे आकाश-पाताल को उलट-पुलटकर गन-गन करके घुमाना शुरू कर दिया।

गुरुजी ने आँखें खोलकर कहा—"भैया, तुम फ़ुरसत के समय इन बातों पर विचार करके देखना।"

विपिन स्वामीजी के पैरों की धूल माथे से लगाकर चुपचाप चल दिया। विपिन के मन के ऊपर स्वामीजी की बातें जैसे उसे काट-काटकर अंकित होने लगीं। स्वामीजी ने मालती को त्याग करने के लिये नहीं कहा, और भी गंभीर भाव से यथार्थ रूप से उसे प्यार करने का राह बता दी, इसी ख़याल ने विपिन को मुग्ध कर लिया। उसे जान पड़ने लगा, सचमुच देश-विदेश के इतिहास और काव्य में यही बात तो देखी जाती है कि सौंदर्य और प्रेम जहाँ सब कुछ ढककर वासना के संकीर्ण घेरे में घूम-घूमकर भरा है, जहाँ मंगल-कर्म में, किसी बड़े कार्य में अपने को नहीं व्याप्त कर सका, वहीं अंत को निदारुण दुःख के प्रलयकारी आघात से उस भीषण प्रेम का नागपाश छिन्न हो गया है। अपने भोग का सुर जो विश्व-संगीत के सुर को अतिमात्रा में आच्छन्न करके अपने को ही एकांत प्रबल बना ले, तो वह भोग तो मृत्यु का ही नामांतर है! विपिन को जान पड़ने लगा कि वास्तव में ही यदि वह मालती को प्यार करता है, तो उसे पवित्र और सुंदर रखकर ही प्यार करना होगा, अपनी वासना की कीचड़ में आत्मा को आच्छन्न, मलिन करके नहीं। किंतु मालती बड़ी ही सुंदरी है! यह 'अठारह वसंत की एक माला' क्या एक दिन के लिये भी गले में डाल लेने से अन्याय होगा? जो मिलन क्षुधातुर मृत्यु के समान है, उसकी भूख क्या नहीं मिटेगी? जीवन-सूत्र में जो गुत्थी पड़ती जाती है, वह क्या नहीं सुलझेगी? ना-ना, इस विषय की चिंता करना अब व्यर्थ है।

विपिन राह में चलते चलते आँखें मूँदकर कहने लगा—गुरुदेव, गुरुदेव, अज्ञान-तिमिरांध को मार्ग दिखाओ। उसके बाद हाथ जोड़कर प्रणाम करते-करते कहने लगा—

अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया;
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

विपिन प्रेमानंद स्वामी की आकर्षणी शक्ति के फेर में पड़कर, मंत्र-स्तंभित की तरह होकर, विश्व-संसार को भूल बैठा था ; लेकिन संसार उसे नहीं भूला था।

विपिन जब मालती को लेकर चला आया, तब हरिविहारी बाबू और पुरखिन, दोनो पुत्र के लौटने के लिये व्यग्र हो उठे। पुरखिन ने दुर्बल के बल और अनाथ के नाथ लक्ष्मी-जनार्दन भगवान् के लिये नित्य १०८ तुलसी-पत्र और डबल भोग की व्यवस्था कर दी। साथ ही रामलाल ओझा को बुलाकर डाइन मालती की तरफ़ से विपिन का मन फिराने के लिये ग्रह-शांति की भी तैयारी की जाने लगी। ओझाजी ने मौक़ा देख ऐसी लंबी-चौड़ी फ़र्द लिखकर दी कि उसमें दो-तीन सौ रुपए लग गए। सोने के धतूरे के फूल, अरुण-वर्ण अश्व, नील वस्त्र, कंबल, कस्तूरी और नव-रत्न आदि सामग्री संग्रह करने के लिये आदमी दौड़-धूप करने लगे।

हरिविहारी ने अपनी बुद्धि के भाँड़ निवारण को बुलाकर "अब क्या कर्तव्य है ?" इस बारे में सलाह पूछी। निवारण ने सलाह दी, मालती के जेठ को लिखा जाय कि विधवा का विवाह कुल-त्याग में ही शामिल है। इसमें उनके कुल का कलंक और वंश का अपमान है। उन्हें चाहिए कि इस काम को रोकें। रुपए जितने लगेंगे, सो हरिविहारी राय ख़ुद देंगे। साथ ही विपिन को चिट्ठी में यह लिखा जाय कि अगर वह मालती को पसंद करता है, तो उसे अपने पास रक्खे ; लेकिन उससे ब्याह नहीं कर सकेगा। अगर करेगा, तो वह त्याज्य-पुत्र कर दिया जायगा।

इस सत्परामर्श से आनंदित होकर हरिविहारी ने ख़ुद दोनो जगह चिट्ठियाँ लिख भेजीं। विपिन की चिट्ठी में ख़ुद अपनी बुद्धि

खर्च करके उन्होंने और एक लाइन जोड़ दी कि विपिन अगर शीघ्र घर लौट न आवेगा, तो वह निवारण के पुत्र पटला के साथ बिनी का ब्याह कर देंगे।

विपिन का चित्त जिस समय संसार और संन्यास के बीच झोंके खा रहा था, ठीक उसी समय उसे पिता के हाथ की लिखी चिट्ठी मिली। एक तो वह भाव-प्रवण, उत्तेजनाशील प्रकृति का आदमी था ही, उसके ऊपर प्रेमानंद के प्रबल प्रभाव ने उसे पूर्ण रूप से अपने क़ाबू में कर लिया था। ऐसी ही अवस्था में वह चिट्ठी पाकर विपिन लज्जा और घृणा से एकदम पागल-सा हो उठा। उसने उत्तर में पिता को जो चिट्ठी लिखी, उसे पढ़कर हरिविहारी के समान अलस, निश्चेष्ट आदमी भी ख़ुद उद्योगी होकर, वकील को बुलवाकर विपिन को त्याज्य-पुत्र करने की तैयारी करने लगा।

विपिन पिता के साथ बिलकुल सब संबंध तोड़कर एक तरह से निश्चिंत हो गया। कभी-कभी माता के लिये उसका मन भीतर से मचलने लगता था; किंतु वह उसे दबाकर सोचता था कि गुरुदेव ही उसे एक-एक करके बंधन से मुक्त कर रहे हैं। धीरे-धीरे सब पहलू ठीक हो जायँगे। कभी-कभी बिनी के भाग्य का ख़याल करके उसकी आँखों में आँसू भर आते थे; लेकिन वह यह सोचकर अपना समाधान कर लेता था कि उसके मा-बाप ही अगर उसके साथ शत्रुता का आचरण करें, तो वह कब तक लड़-झगड़कर उसकी रक्षा कर सकता है! ना-ना, इन सब चिंताओं के लिये अब अवकाश नहीं है। इससे केवल चित्त-विक्षेप ही होगा, केवल अशांति ही होगी, केवल आध्यात्मिक अवनति ही होगी। वैराग्यमेवाभयम्—वैराग्य ही अभय-पद और चरम सुख है।

मालती का जेठ अब तक अपनी भावज की ओर से एकदम उदासीन और निश्चिंत था। इस समय हरिविहारी का पत्र पाकर, जितने रुपए

लगें, उतने रुपए पाने की आशा से, एकाएक उसके हृदय में अपनी भावज के प्रति ममता और कुल-मर्यादा के प्रति सतर्कता अत्यंत कठोर भाव से जाग उठी। वह पता लगाता हुआ तारक के घर पहुँचा। संध्या से कुछ पहले गेरुए रंग की एक मलीदे की चादर सिर से ओढ़े, दरवाज़े के किनारे एक बेंच पर बैठा हुआ तारक माला जप रहा था। झोली के छेद से उसकी श्वेत तर्जनी सीधी बाहर निकली हुई थी। उँगली में अष्टधातु का बना हुआ पवित्र छल्ला चमक रहा था। इसी समय मालती का जेठ मुकुंद एक काला कश्मीरे का कोट पहने और ऊपर से एक अलवान ओढ़े आकर उपस्थित हुआ। उसने आते ही पूछा—"महाशय, क्या यही तारक बाबू का घर है?"

तारक—"हाँ। आप क्या चाहते हैं? आपका आना—"

मुकुंद—"आप मुझे पहचान नहीं सकेंगे। मैं बारासात से आ रहा हूँ। आपसे एक ज़रूरी काम है।"

इतना कहकर कोट और अलवान दोनों हाथ से कमर के पास समेटकर मुकुंद तारक के पास उसी बेंच पर बैठने लगा। तारक ने घबराकर कहा—"हूँ-हूँ-हूँ! यह क्या करते हो—यह क्या करते हो!"

मुकुंद सिटपिटाकर चारों तरफ़ देखते देखते कहने लगा—"क्यों, क्या हुआ? मुझे कुछ बातें करनी हैं, इसी से ज़रा बैठूँगा।"

तारक ने कहा—"आप देखते नहीं, मैं माला जप रहा हूँ?"

मुकुंद—"तो इससे क्या? मैं भी तो ब्राह्मण हूँ।"

तारक—"आप ब्राह्मण हैं, इससे क्या? पैर में जूते तो हैं! जूते पहने मेरी माला छू लीजिएगा?"

मुकुंद—"जी, मैं आपकी माला तो यों भी न छूता। मेरी बातें थोड़ी ही हैं; मैं खड़े-ही-खड़े कह डालूँगा। मैंने सुना है, मथुरापुर के ज़मींदार के लड़के विपिन बाबू यहाँ हैं।"

तारक—"हाँ, हैं तो।"

मुकुंद—"उनके साथ एक औरत भी है ?"

तारक—"हाँ, उसका नाम मालती है । विपिन उससे ब्याह करने को कहता है ।"

मुकुंद—"मैं उसी मालती का जेठ हूँ । मैंने अपनी भावज को घर मे न रखकर निकाल क्यों दिया था, यह भी आप जानते है ? मैं क्या अपने भाई का औरत को दो रोटियाँ नहीं दे सकता था ? मैं क्या ऐसा क़साई हूँ ? लेकिन वह ऐसी है कि कोई भला आदमी उसे अपने घर में जगह नहीं दे सकता । मेरी बात आपकी समझ में आई ?"

तारक का माला जपना बंद हो गया । उसने विस्मित होकर, अपने बैठे हुए गालों को और भी पिचकाकर कहा—"ऐं ! आप कहते क्या हैं ? वह तो देखने में ख़ूब सीधी-सादी-भली औरत जान पड़ती है ।"

मुकुंद ने कहा—"यही तो, इसी बात में तो उसकी बहादुरी है । कोई उस पर संदेह भी नहीं कर सकता ।"

तारक—"तो आप क्या करना चाहते हैं ?"

मुकुंद—"मैंने जब सुना कि उसने आपके घर में आकर अड्डा जमाया है, तो सोचा कि निश्चय उस भले आदमी ने बिना जाने ऐसी नष्ट औरत को अपने परिवार में स्थान दिया है । लेकिन हमें तो उसे धोखा देना, या उसका धर्म जान-बूझकर नष्ट होने देना, मुनासिब नहीं है । यद्यपि अपने घर का कलंक अपने मुँह से कहते अपना ही सिर नीचा होता है, किंतु—"

तारक चटपट कह उठा—"ना-ना-ना, आपने यह बहुत ही अच्छा काम किया । आप—हें-हें—इस तरह खड़े क्यों हैं ? बैठिए-बैठिए । अब तो मैं माला नहीं जप रहा हूँ । अच्छा, मैं यह बात विपिन से कहूँगा ।"

मुकुंद ने बेंच पर बैठकर कहा—"कहूँगा नहीं, उस औरत को

अपने घर से निकाल बाहर कीजिए। अच्छा, तो मैं आपसे एक गोपनीय बात खुलासा करके ही कहूँ? आप मुझे भले आदमी जान पड़ते हैं, इसी से मैं नहीं चाहता कि आप किसी तरह की आफ़त में पड़ें।"

आफ़त का नाम सुनते ही तारक के होश-हवास जाते रहे। तथापि दाँत निकालकर उसने कहा—"हाँ-हाँ-हाँ, आपने ठीक अनुमान किया, मैं एकदम निहायत भला आदमी, एकदम गऊ हूँ। संसार के दाँव-पेंच मैं कुछ भी नहीं समझता। आफ़त की बात आपने क्या कहीं? सुनकर मेरे तो जैसे बुख़ार चढ़ आया। दोहाई है आपकी—मैं आपका नाम नहीं जानता—मालती के जेठजी, मुझ ब्राह्मण की जान बचाइए!"

मुकुंद ने गंभीर भाव धारण करके कहा—"इसीलिये तो अपनी गाँठ का पैसा ख़र्च करके मैं इतनी दूर आया हूँ—सुनिए, मैं सब खोलकर ही कहता हूँ। मैंने पुलीस-अदालत में नालिश की है कि विपिन मेरी भावज को फुसलाकर घर से निकाल लाया है। और, हाईकोर्ट में दरख़्वास्त दी है कि यह ब्याह रद्द हो जाय, और मालती मेरे घर में जाकर रहे। हज़ार हो, वह मेरे घर की बहू तो है ही। इस तरह चौदह ब्याह करती फिरेगी, तो उससे हमारी ही नाक तो कटेगी। लोग कहेंगे, यह मुकुंद मजूमदार के भाई की औरत है! क्यों साहब, ठीक है न? इसी से कहता हूँ, आप अपने घर में उसे रक्खेंगे, तो पुलीस आपको भी ले डूबेगी।"

तारक पुलीस और अदालत के नाम से डर उठा। उसने मुकुंद का हाथ पकड़कर कहा—"ना-ना, महाशय, आपकी दोहाई है! आप तो ब्राह्मण हैं, लाइए, मैं आपके चरणों की रज मस्तक से लगाऊँ। आप मेरे घर में पुलीस का हंगामा न कराइएगा। मैं आज रात को ही उन दोनों को निकाल बाहर करूँगा।"

मुकुंद ने कहा—"सो तो मैं जानता हूँ कि आप ज़रूर उन्हें आज ही निकाल बाहर करेंगे ; क्योंकि इज़ार हो, आप भले आदमी हैं। लेकिन आपको एक काम और करना पड़ेगा। वे कहाँ जाते हैं, क्या करते हैं ; इसकी भी ख़बर आपको रखनी पड़ेगी। नहीं तो, पुलिस जब उनका पता नहीं पावेगी, तब मैं कह दूँगा कि आप ही ने उन्हें कहीं छिपा रक्खा है। समझ गए न ?"

तारक ने कहा—"हाँ-हाँ, ख़ूब समझ गया। मैं ज़रूर उनकी ख़बर रक्खूँगा।"

मुकुंद—"अच्छा, तो आप बैठिए। मैं जाता हूँ।"

इतना कहकर मुकुंद खड़ा हो गया। तारक भी उठकर खड़ा हो गया, और बोला—"एक बात कहते डर मालूम होता है। इस अधम के घर में कुछ जल-पान कर लीजिए, तब न जाइए ?"

मुकुंद ने कहा—"ना-ना, आज रहने दो। आपसे तो फिर भी मैं मुलाक़ात करूँगा।"

तारक ने अपने मन में कहा—न मुलाक़ात हो, तभी अच्छा। प्रकट में कहा—"जी हाँ, जी हाँ, सो तो कीजिएगा ही। अच्छा, तो फिर प्रणाम।"

मुकुंद को बिदा करके, दरवाज़े में ज़ंज़ीर चढ़ाकर तारक घर के भीतर गया, और घबराई हुई आवाज़ में स्त्री को पुकारा—"किधर हो जी ? कहाँ गईं ?"

तारक की स्त्री चौके में रोटी सेंक रही थी, माखती रोटी बेल-बेलकर दे रही थी। तारक के पाँच-छ कच्चे-बच्चे रोते-चिल्लाते हुए अपने उदर की ज्वाला प्रकट कर रहे थे। तारक की पुकार सुनकर, कान खड़े करके उसकी स्त्री बच्चों को धमकाने लगी—"अरे हरामज़ादो, चुप नहीं रहते ज़रा ! कुछ सुनाई ही नहीं पड़ता ! जान पड़ता है, वह पुकार रहे हैं।"

सब लड़के दम-भर के लिये चुप हो गए। तब फिर तारक का आह्वान सुनाई पड़ा—"अजी, सुनती हो?"

मालती ने कहा—"हाँ, तारक बाबू हा पुकार रहे हैं।"

एक छोटी लड़की माता की बग़ल में सिर डाले दूध पी रही थी। उसे हटा देते ही वह चिल्लाने और हाथ-पैर पटकने लगी। उसके उस सरव आंदोलन और आपत्ति को अग्राह्य करके तारक की गृहिणी चमचा हाथ में लिए हा चौके के बाहरी हिस्से में आकर खड़ी हो गई। उसके शरीर में धतो जनेऊ की तरह लिपटी हुई थी। आग के सामने बैठने के कारण गर्मी के मारे सब अंग ढके हुए नहीं थे। स्वामी के पुकारने से बाएँ हाथ से आँचल का एक खूँट ज़रा-सा मत्थे के ऊपर डाल दिया था; लेकिन उससे पीछे का जूड़ा खुल गया था। उसने स्वामी के सामने आकर कहा—"क्यों? क्या कहते हो?"

तारक—"यह जो विपिन के साथ आई हैं, इनके जेठ अभी आए थे। उन्होंने कहा कि इनका चाल-चलन अच्छा नहीं है, और इसीलिये उन लोगों ने इन्हें घर से निकाल दिया था। वह मुझसे भी कह गए हैं कि आज ही रात को इन लोगों को अपने घर से मैं निकाल दूँ। अगर मैं नहीं निकाल दूँगा, तो वह पुलिस लाकर मुझे भी बेइज़्ज़त करेंगे। मालती तो तुम्हारे पास ही होंगी। उनसे कह दो।"

तारक की स्त्री को मालती से कुछ नहीं कहना पड़ा; मालती सब सुन रही थी। एक अपरिचित पुरुष के मुख से नारी के इस चरम अपमान की बात सुनकर मालती की आँखों से जैसे आग की चिनगारियाँ बरसने लगीं। माघ महीने की रात को भी उसके सब अंगों से पसीना बह चला।

तारक की स्त्री गाल पर हाथ रखकर, गर्दन टेढ़ी करके स्वामी से

बोली—"बाप रे, यह क्या कह रहे हो ? अंत को क्या पराए लिये हम लोगों के हाथ में हथकड़ियाँ पड़ेंगी ? इतने कच्चे-बच्चे लेकर क्या हम राह-राह मारे-मारे फिरेंगे ?—अजी, ओ भले आदमी की बेटी, सुनती हो अपने गुन ! निकलो-निकलो, अभी, इसी दम मेरे घर से निकलो ! यहाँ रंडियों का अड्डा नहीं है !"

तारक की स्त्री बार-बार इसी तरह कहकर हाथ से मालती को दरवाज़े की राह दिखाने लगी। मालती तेजस्विनी स्त्री ठहरी, वह एकदम डरने या दबनेवाली नहीं। इतने दिन से मालती इस घर में थी; लेकिन तारक ने उसे एक बार भी नहीं देख पाया था। यहाँ तक कि उसकी आवाज़ भी तारक के कानों तक नहीं पहुँची थी। आज अपमान की कड़ी चोट खाकर बिगड़ खड़ी हुई नागिन की तरह मालती ने बाहर आकर कहा—"आप लोग डरें नहीं। विपिन बाबू के आते ही मैं चल दूँगी।"

तारक और उसकी स्त्री के कहने-सुनने की कुछ परवा न करके मालती कोठे पर चढ़ गई, और अपना तथा विपिन का सब सामान समेटकर बाँधने-बूधने लगी। तारक विपिन के आने की प्रतीक्षा में बाहर बेंच पर बैठकर जाड़े से काँपने लगा।

बहुत रात बीते विपिन ने आकर दरवाज़ा खटखटाया। तारक उठकर दरवाज़ा खोलते ही बिना भूमिका के एकाएक कह उठा—"यह तुम्हारा भारी अन्याय है !"

विपिन ने हँसकर कहा—"हाँ भाई, आज ज़रा देर हो गई। गुरुजी के साथ आज बहुत अच्छी-अच्छी बातें हुईं। खा-पीकर तुमसे सब कहूँगा।"

तारक ने विरक्ति-पूर्ण स्वर में कहा—"ना, ना, वक्तृता सुनने के लिये मैं उतना उतावला नहीं हूँ। मैं पूछता हूँ, तुम्हारा यह कैसा अनुचित व्यवहार है ?"

तारक का भाव देखकर, विस्मित होकर विपिन ने कहा—"तुम क्या बक रहे हो ? मैंने और क्या अन्याय किया है ?"

तारक—"तुमने मेरे घर में एक वेश्या लाकर रक्खी है !"

विपिन ने दाँत पीसकर, घूसा तानकर, गरजकर कहा—"देखो ताड़का राक्षसी, मैं अभी मूली-जैसे तुम्हारे सब दाँत एक ही घूसे में गिरा दूँगा। नहीं तो, अब ऐसी बात जबान पर न लाना ! भले आदमी से बात करना नहीं जानते स्टुपिड !"

तारक रुआसा हो आया। उसने कहा—"यह तो मैं अच्छी आफ़त में पड़ गया ! मालती का जेठ आकर कहे कि तुमको पुलिस के सिपुर्द कर दूँगा; और तुम आकर कहो कि घूसा मारूँगा !"

विपिन ने पूछा—"मालती का जेठ ?"

तारक ने कहा—"हाँ। वही तो आकर आज सब कह गया है।"

विपिन ने "क्या कह गया है ?" कहकर, तारक का हाथ पकड़कर ज़ोर से झिटका दिया। तारक कूक-भरे ग्रामोफ़ोन की तरह खड़े-खड़े सब बातें कह गया। विपिन चुपचाप सुनता रहा। विपिन चिंतित होकर सोच ही रहा था कि मालती ने वहीं आकर कहा—"विपिन बाबू, जल्दी एक गाड़ी बुला लाइए। खड़े-खड़े सोच क्या रहे हैं ? आप अभी तक इस घर में खड़े हैं ?"

विपिन भी यह बात अच्छी तरह समझ रहा था कि जिसे आत्मसम्मान का बोध है, उसे और एक घड़ी भी इस घर में रहना उचित नहीं। लेकिन वह इस जाड़े की रात में इस सुंदरी रमणी को साथ लेकर कहाँ जाय ? विपिन चिंता के महासमुद्र में पड़ गया; उसे पार नहीं दिखाई पड़ता ! कारण, वह संसार के मामलों में अत्यंत अनभिज्ञ, अत्यंत असहाय ठहरा ! विपिन कातर भाव से मालती की ओर ताकने लगा। मालती की दोनो बड़ी-बड़ी आँखें

हीरे की तरह चमक रही थीं। मालती ने जोश के साथ कहा—"चुप खड़े हुए सोच क्या रहे हैं आप ? चलिए।"

विपिन ने हताश भाव से कहा—"कहाँ जाऊँगा मालती ?"

मालती ने ज़ोर देकर कहा—"यह सोचने का मौक़ा इस समय नहीं है। एक किराए की गाड़ी बुला लाइए। घंटों के हिसाब से गाड़ी कीजिएगा। गाड़ी घूमती-फिरती रहेगी। उसी बीच में जो कुछ होगा, ठीक कर लिया जायगा।"

विपिन यंत्र-चालित काठ के पुतले की तरह आप ही गाड़ी लाने के लिये चल खड़ा हुआ। उसका पुराना नौकर घुरुआ पास ही कोठरी में निश्चिंत भाव से पड़ा ख़र्राटे ले रहा था, इसका ख़याल ही उसे न आया। घर से बाहर निकलकर विपिन का अजब हाल हुआ। उसे जान पड़ा, आज जैसे सारा कलकत्ता-शहर गैस के प्रकाश में धुएँ और कुहासे की चादर सिर से ओढ़े सो रहा है; अजगर-सी सड़कें जैसे राह भुलाने के लिये ही असंख्य ठेढ़ी-मेढ़ी शाखाओं को फैलाए हुए दूर तक चली गई हैं, घरों का जंगल जैसे किवाड़े-रूपी हृदय को ज़ंजीर-रूपी हाथों से पकड़े दो गृह-हीन नर-नारियों की दुर्दशा देखने ही के लिये स्तब्ध भाव से खड़ा है। विपिन एक सेकेंड क्लास की गाड़ी घंटों के हिसाब से भाड़ा करके ले आया। उसके बाद सब सामान तारक के ही घर की एक कोठरी में रखकर, केवल बिछौने और एक कपड़ों का टंक गाड़ी के ऊपर रखकर, विपिन और मालती, कुछ भोजन किए बिना ही, गाड़ी पर सवार हो गए। किसी ने एक बार यह भी नहीं कहा कि भूखे-प्यासे कैसे जाओगे ? कुछ खा लो।

इतनी रोटियाँ 'न देवाय न धर्माय' होकर नष्ट हुईं, यह ख़याल करके तारक की स्त्री कोयले की तरह सुलग उठी, और अंगारों की तरह लाल हो गई। लड़के के थप्पड़ मारकर, लड़की को

ढकेलकर उसने एक महाभारत का-सा कांड खड़ा कर दिया।

इस शोर-गुल में घुरुआ की आँख खुल गई थी। अपने मालिक को गाड़ी पर चढ़ते देखा, तो वह भी अपनी पोटली बग़ल में दबाकर चुपचाप गाड़ी के कोच-बक्स पर जा बैठा। तारक ने विपिन से पूछा—'तुम लोग कहाँ जाते हो?"

विपिन ने कहा—"यमराज के घर!"

तारक ने अपने मन में कहा—जगह तो अच्छी ढूँढ़ निकाली! वहाँ न तो पुलिस ही कुछ कर सकती है, और न मैं ही वहाँ की कोई ख़बर लाकर पुलिस को दे सकता हूँ। तारक बड़ी उलझन में पड़ गया; क्योंकि वह मालती के जेठ से विपिन की ख़बर देने का वादा कर चुका था।

गाड़ीवान ने गाड़ी का दरवाज़ा बंद करते-करते पूछा—"बाबूजी, कहाँ चलना होगा?"

विपिन ने कहा—"तुम्हारा जिधर जी चाहे, उधर ले चलो। सड़कों पर घुमाओ।"

गाड़ी पागल रोगी की तरह इधर-उधर उद्देश्य-हीन भाव से फिरने लगी। थोड़ी देर बाद धड़ाम-से साढ़े नव की तोप दगी, और तोप का शब्द सुनकर गृहस्थ लोग अपने-अपने घरों में सोकर आराम करने लगे।

गाड़ीवान ने पुकारकर कहा—"बाबूजी, और कब तक इस तरह सड़कों पर गाड़ी घुमाता रहूँ? साढ़े नव बज गए! घोड़ों के खुलने का वक़्त हो गया!"

विपिन और मालती, दोनो अब तक चिंता के सागर में डूबकर एकदम उसकी तह में पहुँच गए थे। तोप की आवाज़ और गाड़ीवान की पुकार से चौंककर अत्यंत निरुपाय भाव से विपिन ने कहा—"वही तो, अब कहाँ जायँ?"

मालती ने कहा—"मैंने सुना है, कलकत्ते में होटल बहुत हैं, जहाँ परदेशी लोग ठहरते हैं; वहीं चलिए न।"

विपिन ने विपन्न भाव से कहा—"होटल में ? मगर मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि ऐसे होटल किधर और कहाँ हैं।"

मालती—"गाड़ीवान से कहिए, वह पता लगाकर वहाँ ले चलेगा।"

विपिन—"किसी अपरिचित अज्ञात जगह में जाकर रहूँ, और अगर कोई आफ़त सिर पर आ पड़े ?"

मालती—"इतना सोचने से तो काम नहीं चल सकता। किसी एक जगह तो जाना ही होगा। रात-भर तो गाड़ी सड़कों पर फिर नहीं सकती।"

विपिन ने कुछ सोचकर कहा—"चाची-अम्मा के पास काशी जाना हो सकता था; लेकिन उनका भी ठिकाना मैं नहीं जानता। वहाँ भी इस तरह जाने से काशी के गुंडों का खटका है। मुझे तो सिर्फ़ एक उपाय सूझ पड़ता है। गुरुजी के आश्रम में हम दोनो आदमियों को स्थान मिल सकता है। तुम्हारी राय हो, तो वहीं चलूँ; वहाँ किसी तरह की तकलीफ़ नहीं हो सकती।"

मालती ने विस्मित होकर कहा—"गुरुजी ? आपके गुरुजी कौन हैं ? उनका आश्रम कहाँ है ?"

विपिन—"उनका आश्रम खड़दह में, गंगातट पर है। उनका नाम श्रीप्रेमानंद स्वामी है। वह संन्यासी हैं, एक महापुरुष हैं! असाधारण मनुष्य हैं!"

मालती ने कहा—"प्रेमानंद! वह प्रेमानंद और महापुरुष भले ही हों, लेकिन हम संन्यासी के आश्रम में जाकर क्यों रहेंगे ? ममल है कि जोगी-संन्यासी का साथ क्या ?"

इस प्रश्न से संकुचित होकर विपिन कहने लगा—"देखो मालती,

जान पड़ता है, ईश्वर की इच्छा नहीं है कि मेरा और तुम्हारा सांसारिक मिलन हो। ऐसा न होता, तो ऐसी सब अघटन-घटनाएँ क्यों होतीं, ऐसी अचिंतित रुकावटें क्यों सामने उपस्थित होतीं? गुरुजी भी कहते थे कि तुम्हारे साथ मेरा सांसारिक मिलन मंगलकर न होगा। चलो, हम दोनो जने संन्यास ग्रहण करें, कामना को त्यागकर आध्यात्मिक योग से सम्मिलित हों। दोनो जने पास रहकर, परस्पर प्रेम करके जगत् की सेवा करें। शरीर के मिलन की अपेक्षा इस तरह आत्मा का मिलन अवश्य ही अधिक सुखदायक होगा। मेरा मन आज कई दिन से यही बात कह रहा है। मैं वासना-विसर्जन में असमर्थ था, इसी से ईश्वर ने दया-पूर्वक मुझे आज अंतिम आश्रय से भी अलग कर दिया है। आज मेरे लिये सभी घरों के द्वार बंद हैं, केवल प्रेमिक भक्त स्वामीजी के आश्रम का द्वार खुला है। चलो, वहीं चलें। संन्यास ही हमारा चरम अवलंबन है। भगवान् का इशारा अनेक प्रकार से हमसे केवल यही बात कह रहा है कि प्रेम-संन्यास के अनुगामी बनो।"

विपिन की बातें मालती के हृदय में भाले की तरह जाकर लगीं। वह क्या इसी के लिये इतना अपमान, इतनी लांछना और इतनी विपत्ति अपने सिर पर लेकर इस तरह विपिन के साथ चली आई है? वह हिंदू के घर की विधवा ठहरी! वह विपिन को ऐसा ही प्यार करने लगी थी कि इतने बड़े-बड़े बूढ़ों के संस्कार का विरोध करके उसने विपिन से ब्याह करना स्वीकार कर लिया! उसकी अपनी धारणा विधवा-विवाह के अनुकूल होने पर भी उसके अभिभावकों की धारणा तो विधवा-विवाह के प्रतिकूल ही थी! विपिन क्या इतना बड़ा मूर्ख है कि वह मालती के प्रेम और आत्मत्याग की गंभीरता को नहीं समझ सका? मालती ने तो पहले ब्याह करने से इनकार ही कर दिया था, यद्यपि वह इनकार उसकी

हार्दिक इच्छा के विरुद्ध था। अंत को केवल यह देखकर कि विपिन उसी दुःख से मा-बाप और घर-बार छोड़े चला जाता है, मालती ने विवाह करना स्वीकार कर लिया। यह क्या कुछ कम स्वार्थ-त्याग है कि वह विपिन के लिये घर-भर की दृष्टि में निंदा और घृणा का पात्र बनी, सगी मौसी तक उसके ख़िलाफ़ हो गई! विपिन आज उसी मालती से ऐसी बातें कह रहा है! आज थोड़ी-सी असुविधा में पड़कर विपिन को संन्यास की सूझी! वह अनायास यह बात अपनी ज़बान पर ला सका कि मालती भी संन्यास ले ले! अगर संन्यास ही लेना था, तो मालती ब्रह्मचर्य ही का पालन क्यों न करती! विपिन ने एक बार भी यह सोचकर नहीं देखा कि मालती ने उसके लिये क्या नहीं सहा, क्या नहीं तज दिया!

मालती ने विनीत भाव से कहा—"आपकी जो इच्छा हो, सो कीजिएगा, मगर नवकिशोर बाबू जब तक लौटकर नहीं आते, तब तक ठहर जाइए। आज किसी होटल में ही चलकर ठहरिए।"

विपिन ने अपने मन में कहा—फिर उसी नवकिशोर का नाम! मालती उसके ऊपर भरोसा नहीं कर सकती? यही क्या उसका प्रेम है? नवकिशोर ही अगर उसका अधिक हितैषी है, तो वह नवकिशोर का ही आश्रय ग्रहण करे। उसके साथ उसका कुछ संबंध न रहना ही अच्छा। वह तो यही चाहता है। वह क्या यह नहीं समझता कि भगवान् का अलक्ष्य मंगलमय हाथ उसके सब बंधनों का एक-एक करके खोले दे रहा है? यह सब गुरुदेव ही की कृपा का फल है। अच्छी बात है, जो कुछ मालती चाहती है, वही हो। वह मालती को नवकिशोर के हाथ में सौंपकर एकदम बंधन-मुक्त हो जायगा।

इस तरह सोचकर विपिन ने गाड़ीवान से कहा—किसी होटल में ले चल। गाड़ीवान ने बहुत खोज करके उन्हें एक हिंदू-होटल

में पहुँचा दिया। बहुत पुकारने और कुंडी खटखटाने पर होटल के नौकर-चाकर उठे, और विपिन वग़ैरह को वहाँ आश्रय मिला। यथारीति झगड़ा होने के बाद गाड़ी का किराया चुकाकर चिंता-पूर्ण हृदय और ख़ाली पेट लिए हुए विपिन और मालती, दोनो होटल की दो कोठरियों में जाकर सो रहे। घुरुआ भी मालती की कोठरी के सामने अपना कंबल बिछाकर पड़ रहा।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

सबेरा होने से कुछ पहले ही कलकत्ते के सोए हुए लोगों को जगाने की उत्कट चेष्टा होने लगी। मिलों में भोंपू बजने लगे; मैला फेकनेवाली म्युनिसिपैलिटी की गाड़ियाँ विकट घरघराहट के साथ चलने लगीं; ट्रामें दौड़ने लगीं। साथ-ही-साथ कौओं का कलरव, फ़क़ीरों का खँजड़ी-करताल बजाकर गाना और भीख माँगना, और फेरीवालों का चीज़ों के नाम ले-लेकर चिल्लाना प्रबल हो उठा। इतने पर भी जिसको नींद न उचटे, उसको कुंभकर्ण का आधुनिक संस्करण ही कहना चाहिए। विपिन और मालती की भी कच्ची ही नींद उचट गई।

विपिन नवकिशोर की चिट्ठी पाने की आशा से तारक के घर गया। मालूम हुआ, कोई चिट्ठी नहीं आई। तारक ने कहा—"चलो, तुम्हारे ठहरने की जगह देख आऊँ। चिट्ठी आवेगी, तो मैं पहुँचा दूँगा।"

मुकुंद को विपिन के नए स्थान की ख़बर देने के लिये ही तारक को उसका नया स्थान देखने का इतना आग्रह था। होटल को लौटते समय विपिन को मालूम पड़ा कि उसने अपने सिर पर बड़ा भारी बखेड़ा लाद लिया है। वह बहुत ही ऊबने लगा।

माता का दुलारा विपिन सदा से पराए भरोसे रहने के कारण एकदम निकम्मा हो गया था। बड़ा होने पर जब वह माता की गोद से अलग होकर विदेश में रहने के लिये बाध्य हुआ, तब उसका परम और चरम आश्रय बलिष्ठ, सतेज नवकिशोर का बंधुत्व था। आज अपरिचित नवीन स्थान में सब सामग्री जुटाने का, सब काम करने का भार अकेले उसी के सिर पर आ पड़ा है! उसने तो कभी अपने या पराए लिये कुछ यत्न किया ही नहीं। मगर आज से एक नवीन असंगठित, असंपूर्ण गिरिस्ती का सब बोझ उसी को लादना पड़ेगा। आज से उसे दाल, चावल, तरकारी, तेल, नोन, लकड़ी, हाँडी, तवा, कराही, चमचा, थाली, बटलोई वग़ैरह सामान की चिंता करनी पड़ेगी।

वह ख़ुद कुछ खोजकर, सामान लाकर जुटानेवाला पात्र न ठहरा। परंतु आज वह ऐसी अवस्था में आकर पड़ा है कि सब काम उसी को करना पड़ेगा—शेक्सपियर, गेटे, बंकिम, रवींद्र वग़ैरह की रचनाओं को एक किनारे रखकर मजबूरन् गिरिस्ती के धंधे करने पड़ेंगे। यह सोचकर उसका मन क्लांत, भीत और भाराक्रांत हो उठने लगा। डेरे को लौटते समय उसके पैर जैसे आगे की ओर नहीं उठना चाहते थे। कभी-कभी वह यह सोचता था कि विलायत में जैसे कोई-कोई परिवार सारा जीवन होटल में, पराई देख-रेख में ही, बिता देते हैं, उन्हें अपना कोई बंदोबस्त आप नहीं करना पड़ता, वैसे ही वह भी अब होटल में ही रहेगा, गिरिस्ती का झंझट अपने सिर पर नहीं लादेगा। सबसे अधिक सुविधा तो इसी में है कि वह प्रेमानंद के आश्रम में जाकर उनके आश्रय में रह सके! वहाँ वह आराम से निश्चिंत होकर रह सकेगा।

जिस समय विपिन निश्चिंत होने के लिये इस तरह व्याकुल हो रहा था, उस समय निश्चिंत बैठे रहने का सुबीता पाकर भी माजती

को निश्चिंत होकर बैठे रहना अच्छा नहीं लगता था।

मालती आज इस अपरिचित, अस्थायी स्थान में पूर्ण रूप से घर की मालकिन है। इसी से इतने दुःख और कष्ट में भी उसे एक तरह का आनंद ही हो रहा था। उसने सबेरे ही स्नान करके घुरुआ से कहा—"घूरू दादा, होटल के इन मलिच्छ, गंदे आदमियों के हाथ का बना भोजन तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा। तुम होटल के मैनेजर से जाकर हुकुम ले आओ, मैं इसी कोठरी में रसोई बना लूँगी। तुम कह देना कि हम लोग इस कोठरी में चूना पुतवाने का ख़र्च बाबिक दे देंगे। और, तुम बाज़ार से एक लोहे का चूल्हा, लकड़ी, हाँड़ी, दाल, चावल, तरकारी, आटा, मसाला वग़ैरह सब सामान भी लेते आओ।"

घुरुआ चुपचाप जाकर सब सामान ले आया। मालती कमर में धोती लपेटकर और अधसूखे बाल, जूड़े की तरह, सिर में लपेटकर रसोई के धंधे में लग गई।

विपिन ने आकर देखा, उसके करने के लिये कुछ नहीं बाक़ी है, मालती ने ख़ुद सब मँगाकर रसोई का प्रबंध कर लिया है। विपिन की चिंता दूर हुई।

घर के काम-काज में ही रमणी का यथार्थ रमणीय रूप प्रकट होता है। विपिन मालती को इस तरह, अत्यंत सहज भाव से, इस अपरिचित स्थान में, असीम असुविधा के भीतर, उसी के आराम के लिये, गिरिस्ती के धंधे में लगे देखकर मुग्ध हो गया। विपिन को मालती की यह कल्याणी, अन्नपूर्णा की मूर्ति देखने का सुयोग कभी नहीं प्राप्त हुआ था। आज इस दुर्दिन में भी उसका प्रफुल्ल मुख और सुनिपुण तत्परता देखकर विपिन का मन एक नवीन रस के आवेश से आर्द्र हो उठा। प्रेमानंद का मोह या प्रभाव उसके और मालती के बीच में जिस व्यवधान की रचना कर रहा था, वह

आज मालती की यह मनोरम मूर्ति देखकर बहुत कुछ नष्ट हो गया।

इतने दिन से सारे संसार को भूलकर, सर्वस्व-रूप मूल्य देकर, विपिन ने जिसको पाने की कामना की थी, वह मालती आज उसे मिल गई है, उसके हाथ में आ गई है। आज दोनो के बीच में कोई बाधा नहीं, कोई रुकावट नहीं। आज दोनो के लिये बड़े आनंद का दिन होना चाहिए था। लेकिन आज कोई बाधा न होने से ही विपिन के मन में मिलन के लिये वैसी व्यग्रता नहीं है। आज विपिन आप ही अपने लिये बाधा हो उठा है।

होटल में बेकार बैठे-बैठे दो दिन बीत गए। मालती को अकेले छोड़कर विपिन कहीं जा भी नही सकता। साथ ही दोनो के बीच में एक ऐसा मानसिक व्यवधान उत्पन्न हो गया है कि एक को दूसरे का मिलना ही यथेष्ट नहीं जान पड़ता। विपिन बैठे-बैठे केवल गुरुजी की बातें करता और सोचता है। मालती भी अपने मन में सोचती है कि पुरुषों की जाति भी कैसी दुर्बोध्य पहेली है। उनमें ज़रा-सी भी स्थिरता नही, धैर्य नहीं, निष्ठा नहीं। वे केवल एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था के नशे का स्वाद ही चखना चाहते हैं! मालती को जान पड़ रहा था कि विपिन जो यह संन्यास लेने को कह रहा है, सो केवल उसे छोड़कर छुटकारा पाने के लिये एक छल-मात्र है। यह सच है कि ज़मीदार का लड़का विपिन लगातार आघात के ऊपर आघात पाने से हतोत्साह होकर अगर पीठ दिखाना चाहे, तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन क्या वही मालती के कारण दुःख-कष्ट पा रहा है? मालती ने क्या उसके लिये कोई दुःख नहीं स्वीकार किया? वह हिंदू के घर की औरत है, अच्छे और बड़े ख़ानदान की बहू और बेटी है। उसने जो विधवा होकर भी ब्याह करना मंज़ूर कर लिया, इसके लिये उसे

कितनी लज्जा, लांछना और धिक्कार स्वीकार करना पड़ा, यह क्या विपिन नहीं जानता ! उस लज्जा, लांछना और धिक्कार को सहना उसके लिये अग्नि-परीक्षा से भी बढ़कर भीषण था ? मालती का इतना सब सहकर भी अपनी बात पर अटल रहना क्या ऐसा ही तुच्छ है कि विपिन की दृष्टि में उसका कुछ मूल्य ही नहीं ? मालती को विपिन की इस उपेक्षा से जितना अपना अपमान जान पड़ा, उतना उस मिथ्या कलंक और निंदा में नहीं जान पड़ा था। मालती ने जिसके लिये ऐसी अग्नि-परीक्षा स्वीकार की, वही विपिन आज उसके सब आश्रयों को नष्ट करके, उसे कहीं का न रखकर, ऐसी निरुपाय-असहाय अवस्था में छोड़कर, संन्यासी होने के लिये तैयारी कर रहा है ! इससे बढ़कर स्त्री-जाति का और क्या अपमान हो सकता है ?

मालती होटल के कमरे में बैठे-बैठे देखती है, कितने ही वर रोशनी और गाजे-बाजे की धूम के साथ ब्याह करने जा रहे हैं ; कितनी ही नववधुएँ ब्याह की रंगीन पोशाक पहने, मलिन मुख लिए, अपरिचित स्वामी के साथ डोले पर बैठी, सुसराल जा रही हैं। देख-देखकर मालती लंबी साँस लेती है। अपने दुर्भाग्य को स्मरण करके लज्जा और अपमान से व्यथित उसका हृदय उसे सैकड़ों धिक्कार देने लगता है।

मालती ने अपने मन में सोचा, विपिन के साथ मुझे अपने बारे में आख़िरी फ़ैसला कर लेना चाहिए। विपिन अगर मेरे साथ ब्याह न करें, तो उनके पास मुझे एक घड़ी-भर भी रहना मुनासिब नहीं। राह-राह भीख माँगते फिरना भी इसकी अपेक्षा अधिक सम्मान की, अधिक सुख की बात है ! इस समय अगर नवकिशोर यहाँ रहता, तो अच्छा होता। ख़ैर, अगर कोई और मेरी सहायता करनेवाला नहीं है, तो मैं ख़ुद अपने भाग्य का फ़ैसला कर

लूँगी। स्त्री-जाति के लिये अवश्य यह बड़ी लज्जा की बात है; लेकिन किया क्या जाय, कोई उपाय नहीं।

मालती ऐसा इरादा करके साहस-संचय-पूर्वक विपिन के पास जब यह प्रसंग उठाने चली, उस समय वह रो दी।

सुंदर मुख का रोना जगत् में अतुलनीय सुंदर वस्तु है। विपिन बैठे-बैठे मुग्ध दृष्टि से उसे देखने लगा। अकस्मात् उसे ख़याल आया कि यह सब मोह है; यह कामदेव का फँसाने का फंदा है। तब वह हृदय में बल-संचय करके, वक्तृता के द्वारा, मालती को यह समझाने की चेष्टा करने लगा कि प्रवृत्ति के वशीभूत होने में कल्याण नहीं है। ऐसी ही या इससे भी अधिक विपत्ति का सामना करना पड़ेगा। असल आनंद आध्यात्मिक मिलन ही में है। गुरुजी की कृपा से उन दोनों का यथार्थ मिलन होगा, उन्हें कल्याण और आनंद प्राप्त होगा।

इसी समय तारक मुकुंद को लिए हुए होटल में आकर उपस्थित हुआ। मुकुंद विपिन और मालती को पुलिस-अदालत से हाईकोर्ट तक मुक़दमा चलाने की बात अलंकार की भाषा में, आडंबर के साथ, सुना गया।

विपिन ने कहा—"देखती हो मालती, भगवान् का कितने प्रकार का निषेध, कितनी बार, कितने प्रकार से आ रहा है? चलो, हम लोग गुरुजी के आश्रम में चलें।"

मालती ने प्रार्थना के स्वर में कहा—"और दो-एक दिन ठहर जाइए; नवकिशोर बाबू को आ लेने दीजिए।"

फिर उसी नवकिशोर का नाम! मालती अपने मन में सोच रही थी कि विपिन के मन की यह क्षणिक दुर्बलता नवकिशोर के बलिष्ठ मन का आश्रय पाते ही दूर हो जायगी। नवकिशोर में ऐसी एक शक्ति है, जिसके द्वारा वह अनायास हम दोनों को सब तूफ़ानों

से बचाकर बंदरगाह में पहुँचा देगा—हमारे जीवन के जहाज़ को गुप्त पर्वतों की टक्कर से बचाकर पार लगा देगा। मालती हरदम ईश्वर के निकट प्रार्थना करने लगी कि हे भगवन्, नवकिशोर को जल्द भेजो।

इधर नवकिशोर के प्रति मालती के अटल विश्वास और भरोसे के भाव को प्रणय का पक्षपात समझकर विपिन का मन क्रमशः अपने हितैषी मित्र की ओर से भी विमुख होता जाता था। वह समझने लगा कि यह सब काम नवकिशोर ही की सलाह से तो हुआ है! विपिन इसके भीतर आदि से अंत तक अपने मित्र का एक स्वार्थ साधने का कुचक्र देखने लगा। वह सोचने लगा, नवकिशोर मुझे फँसाकर सस्ते में समाज-संस्कार की नामवरी कमाना चाहता है। ओह! कैसी घोर प्रतारणा! मेरी सरलता का सुयोग पाकर उसने मेरा कैसा सर्वनाश कर डाला! पाठशाला का बहाना करके मेरे तीन-तीन गाँव अपने हाथ में कर लिए! मुझे उसी के कारण बाप की ज़मींदारी और माता के स्नेह से वंचित होना पड़ा! अंत को मालती का मन हरने के लिये भी उसने कोई चाल अवश्य चली है। उसकी चाल और षड्यंत्र क्या और कैसा है, यह अभी तक स्पष्ट न मालूम होने पर भी विपिन यह निश्चय कर बैठा कि अवश्य यह किशोर की सब चालबाज़ी और जालसाज़ी है। वह अपने मन में कहने लगा—अगर यह बात नहीं, तो मालती उसके लिये क्यों इतना व्याकुल हो रही है?

विपिन जितना किशोर के षड्यंत्र के बारे में कुछ निश्चय नहीं कर सकता था कि उसका रूप क्या है, उतना ही उसे वह षड्यंत्र निश्चित और भीषण जान पड़ता था। वह सोचने लगा—गुरुजी की कृपा से मेरे ज्ञान-नेत्र खुल गए हैं; मैं समझ गया हूँ कि यह संसार कामदेव की माया का चक्र है। अब मैं इस माया में भूल-भटक नहीं सकता!

इसी तरह और भी दो दिन बीत गए। तीसरे दिन अकस्मात् नवकिशोर आकर उपस्थित हो गया। कुछ-कुछ हाल वह तारक से ही सुन आया था। होटल में आते ही उसने विपिन से कहा—"तुम भी अच्छे आदमी हो जी! इतने दिन से होटल में पड़े हो, एक किराए का घर नहीं ले सके! ले उठो।"

विपिन का दुर्बल चित्त नवकिशोर के सरल, बलिष्ठ व्यवहार के आगे संकुचित हो पड़ा। उसने कुंठित भाव से पूछा—"क्यों? कहाँ चलूँ?"

नवकिशोर ने कहा—"मैं किराए का घर लेकर सब ठीक-ठाक कर आया हूँ! दरवाज़े पर गाड़ी खड़ी है; बस, हुज़ूर के चलने-भर की देर है। यहाँ 'जाने नहीं दूँगा' कहनेवाला कोई नहीं है; लेकिन 'रहने नहीं दूँगा' कहनेवाला बंदा हाज़िर है। उठो-उठो, बस चल दो।"

विपिन ने विस्मय और प्रशंसा के भाव से कहा—"तुम कब यहाँ आए, और कब मकान का ठीक किया?"

नवकिशोर—"सबेरे पंजाब-मेल से आया हूँ। तारक के मुँह से सब हाल सुनते ही दौड़कर गया, मकान ठीक किया, वहाँ का और सब प्रबंध किया, उसके बाद हुज़ूर के पास आया।"

विपिन ने यथासंभव गंभीर भाव धारण करके कहा—"तुमने सुना, अदालत में नालिश हुई है!"

नवकिशोर ने कहा—"ऊँ:! सब सुना है। उसके लिये तुम कुछ भी चिंता मत करो। मालती बालिग़ हैं। इनका जो जी चाहे, सो कर सकती हैं, चाहे जहाँ रह सकती हैं। इनके जेठ की मजाल नहीं है कि इनका ब्याह रोक दे, या इन्हें अपने साथ घर ले जाय।"

नवकिशोर की इस आश्वास-वाणी से विपिन के मुख पर वैसी प्रसन्नता नहीं देख पड़ी। विपिन ने जैसा सोचा था, वैसा नहीं होने

पाया। वह गुरुजी के आश्रम में जाकर रहना चाहता था; किशोर ने आकर उसके सब मनसूबे मिट्टी में मिला दिए। इसके ऊपर एक बात और देखकर विपिन का चित्त अधिक अप्रसन्न हो उठा। मालती इतने दिनों से उदास बनी रहती थी; किंतु आज वह उत्फुल्ल होकर नवकिशोर की बातों को जैसे सब इंद्रियों से पिए लेती थी। उसके सब अंगों से जैसे हँसी और आंतरिक आनंद बरसा पड़ता था।

किंतु नवकिशोर ने विपिन के इस भाव पर ध्यान न देकर घर के पुरखे की तरह कहना शुरू किया—"अदालत का झगड़ा मिटते ही चटपट तुम दोनों का ब्याह कर डालना होगा। लेकिन उसमें भी एक मुश्किल देख पड़ती है। मैं ख़ुद आज कई दिन से उसी बारे में सोच रहा हूँ।"

मालती उत्कंठित होकर, आँखें फाड़कर नवकिशोर के मुँह की ओर ताकने लगी। विपिन ने उत्सुक होकर पूछा—"वह क्या?"

नवकिशोर कहने लगा—"मैं यह सोच रहा था कि तुम्हारा ब्याह किस पद्धति से होगा? प्रचलित हिंदू-पद्धति से ब्याह होने में दो अड़चनें हैं। एक तो पुराने ढंग और ख़याल के पंडित विधवा का ब्याह कराना नहीं चाहेंगे, बल्कि जहाँ तक उनसे हो सकेगा, रुकावट डालेंगे; दूसरे, अगर कोई ऐसा उदार विचारवाला पंडित मिल भी गया, तो फिर अड़चन यह होगी कि शालग्राम-शिला और अग्नि को भगवान् मानकर उनके आगे विवाह-कृत्य संपन्न करना होगा। लेकिन जब यह बात हमारे विश्वास के प्रतिकूल है, तब वैसा करना हमारे लिये सर्वथा अनुचित है। उधर शालग्राम-शिला और अग्नि को साक्षी किए बिना जो ब्याह किया जायगा, वह हिंदू-पद्धति से ब्याह ही न माना जायगा। अगर ब्राह्म-समाज के अनुसार, क़ानून के माफ़िक रजिस्ट्री कराकर, ब्याह किया जाय, तो वह हो सकता है। लेकिन उसमें मुश्किल यह है कि स्वीकार करना

पड़ेगा—मैं हिंदू नहीं हूँ। किंतु हम लोग यह स्वीकार नहीं कर सकते। हम हिंदू हैं, हज़ार बार हिंदू हैं। हम अपने देश के इतने बड़े अतीत इतिहास को छोड़कर एकदम हिंदूपन को अस्वीकार करने के लिये किसी तरह राज़ी नहीं हो सकते। ख़ैर, ब्याह के लिये तुम कुछ चिंता न करो; मैं कुछ-न-कुछ उपाय ठीक ही करूँगा। अब उठो, चलो।

सब लोग उठकर गाड़ी पर सवार हुए। घुरुआ भी सब सामान लेकर गाड़ी की छत पर जा बैठा। मालती यह सोचकर कि नवकिशोर बाबू सोच-विचारकर कुछ-न-कुछ सुव्यवस्था करेंगे ही, आश्वस्त होकर सब चिंता भूल गई थी। केवल विपिन ही सोच रहा था कि नवकिशोर हर काम में बहुत बड़ाबड़ी करता है। जान पड़ता है, यह भी नवकिशोर की एक चाल है! वह यह रुकावट डालकर चाहता है कि मालती के साथ मेरा ब्याह न हो!

विपिन अब पहले की तरह हृदय से नवकिशोर पर विश्वास नहीं कर सकता था। उधर उसका दुर्बल मन नवकिशोर के ऊपर पूर्ण रूप से नाराज़ भी नहीं हो सकता था। विपिन यद्यपि मन-ही-मन नवकिशोर से कुछ विमुख हो रहा था, तो भी उसमें इतनी शक्ति या साहस नहीं था कि वह खुलकर अपने हृदय का भाव उसके आगे प्रकट कर सकता। इसी कारण उसका रुद्ध रोष पुटपाक की तरह उसके हृदय को भीतर-ही-भीतर जलाकर ख़ाक किए देता था; लेकिन बाहर उसका तनिक भी प्रकाश या गरमी न देख पड़ती थी।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

मुक़दमा ख़त्म हो गया। जीत विपिन ही की हुई। अब वह मालती से ख़ुलासा ख़ुशी के साथ ब्याह कर सकता है। लेकिन

विपिन का मन इस मुक़दमे के चक्कर में पड़कर संसार की ओर से और भी खीझ उठा ! रोज़-रोज़ अदालत में जाने-आने के कष्ट, स्त्री-संबंधी मुकदमे में सबके सामने खड़े होने की लज्जा, सब दर्शकों की कौतुक-पूर्ण दृष्टि के आघात, और सबसे बढ़कर विरुद्ध पक्ष के वकीलों की अभद्रोचित, विद्रूपात्मक प्रश्नावली ने विपिन को पागल-सा बना दिया था। वह इन सब बातों के भीतर भगवान् के मंगलमय हाथ को स्पष्ट रूप से मना करते देख रहा था। लेकिन मालती इतने दुःख और अपमान के बाद विपिन से प्रेम और सांत्वना पाने की आशा से ही डॉक्टर के द्वारा अवस्था की जाँच, वकील की वाहियात जिरह और व्यंग्य आदि को चुपचाप सहती रही।

जब तक मुक़दमा चलता रहा, तब तक बहुत कुछ सोच-विचारकर भी नवकिशोर ने विपिन और मालती के ब्याह की अपने मन के माफ़िक़ पद्धति खोजे नहीं पाई। किसी में क़ानून रुकावट डालता था, तो किसी में धर्म की ओर से बाधा पड़ती थी। नवकिशोर अपने मन में कहता था—कैसी मुश्किल है ! ब्राह्म-समाज के रजिस्टर्ड विवाह का क़ायदा ऐसा क्यों बनाया गया ? इतने दिनों से यह आईन जारी है, लेकिन किसी के मन में यह ख़याल नहीं पैदा हुआ कि इसके संस्कार का प्रयोजन है ! ख़ैर, जो कुछ अब तक नहीं हो सका, उसके लिये दुःख करना व्यर्थ ही है। अब क्या उपाय है ? बहुत सिर खपाकर भी नवकिशोर कोई उपाय न खोज सका। नवकिशोर अपने मन में कहने लगा—तो क्या फिर इतनी मेहनत और कोशिश बेकार ही जायगी ? क्या इनका विवाह नहीं ही होगा ? वही तो !

नवकिशोर किसी से समझौता करनेवाला, दबनेवाला, पात्र तो है नहीं। हिंदू-पद्धति के अनुसार, अपनी धारणा के विरुद्ध, वह शालग्राम-शिला और अग्नि को ईश्वर नहीं मान सकता।

नवकिशोर जिस समय विपिन का ब्याह कराने और उसकी गिरिस्ती बाँधने के उद्योग में व्यग्र होकर इधर-उधर घूम रहा था, उस समय विपिन अच्छी तरह सुयोग पाकर मज़े से निश्चित हो नित्य प्रेमानंद के आश्रम में जाता था; और प्रेमानंद का जादू उसके ऊपर पूर्ण रूप से अपना अधिकार जमा रहा था। नवकिशोर को इसकी कुछ ख़बर नहीं थी। लेकिन मालती को यह देखकर बड़ी चिंता हुई। डर भी हुआ। विपिन पीछे मालती को अधार्मिक, स्वार्थपर या और कुछ ऐसा ही समझकर उसके ऊपर नाराज़ न हो जाय, इस डर के मारे मालती विपिन से कुछ कह नहीं सकती थी, अथच उसे प्रेमानंद के प्रभाव से बचाना भी आवश्यक और कर्तव्य समझ रही थी। एक दिन वह बहुत ही डरकर नवकिशोर के शरणागत हुई। उस समय विपिन घर से चला गया था।

मालती ने किशोर से कहा—"आपको कुछ ख़बर है, आपके मित्र आजकल कहाँ आते-जाते हैं?"

मालती का मलिन मुख और हताश, करुण स्वर देख-सुनकर नवकिशोर चौंक पड़ा। उसने डरे हुए भाव से कहा—"नहीं। क्यों? वह कहाँ जाता है?"

मालती—"संन्यासी के अखाड़े में। वह संन्यासी होने का इरादा करते हैं—"

सुनते ही नवकिशोर 'हा-हा-हा-हा' हँसने लगा। उसका वह अट्टहास घर-भर में गूँज उठा। नवकिशोर ने कहा—"विपिन संन्यासी होगा! तो फिर उसका गेरुआ कपड़ा कचारने के लिये और आसन लगाने के लिये घूरू दादा को, और उससे नियम-पयम का पालन कराने के लिये साथ-ही-साथ मुझे भी संन्यासी होना पड़ेगा। शायद तुम्हारे भी संन्यासिनी होने की ज़रूरत हो सकती है!"

मालती नवकिशोर की हँसी और श्लेष-वाक्य से लज्जित और आश्वस्त होकर भी कहने लगी—"आप हँसते हैं, लेकिन मुझे बड़ा डर लग रहा है। वह रात-दिन मुँह लटकाए बैठे-बैठे केवल संन्यास के ही बारे में सोचा करते हैं। वह मुझसे भी संन्यासिनी होने के लिये कहते हैं। कहते हैं, हमारा मिलन ईश्वर को पसंद नहीं है। और, उनके गुरु ने उनको समझा दिया है कि इस तरह का मिलन धर्म-संगत न होगा।"

नवकिशोर ने गंभीर भाव धारण करके कहा—"गुरु! गुरु कौन है? वह बदर क्या अंत को एक गुरु भी कर बैठा? वह गुरु कौन है? कुछ जानती हो?"

मालती—"उनका नाम शायद प्रेमानंद है। खड़दह में उनका आश्रम है। यह उसी आश्रम में रोज़ जाते हैं। पहलेपहल इन्हें वहाँ तारक बाबू ले गए थे। यह वहाँ सदा रहने के लिये जाने को कहते हैं; बल्कि कहना चाहिए कि बहुत जल्द जाने को तैयार हैं।"

प्रमानंद का नाम सुनकर नवकिशोर चिंतित हो उठा। उसने भी एक दिन प्रेमानंद को देखा था। देखते ही समझ लिया था कि स्वामी की आकर्षणी शक्ति असाधारण है। नवकिशोर को यह भी मालूम था कि आजकल दल-के-दल नवयुवक अग्नि के अभिमुख पतंग की तरह उनके चेले हो रहे हैं। इसी फ़ैशन के वशवर्ती होकर विविध विक्षेपों से उद्भ्रांत-चित्त विपिन भी अगर उसी दल में सहज ही भिड़ जाय, तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं।

नवकिशोर मन में अति विचलित और चिंतित होकर भी वह प्रफुल्ल भाव धारण करके मालती से बोला—"तुम पागल हुई हो? विपिन संन्यासी होगा? तुम्हें कुछ डर नहीं है। मैं इस उड़ती फिरनेवाली चिड़िया को बहुत शीघ्र ब्याह की डोरी में बाँधकर तुम्हारे हाथ में सौंप दूँगा। तुम निश्चिंत रहो।"

नवकिशोर के ऊपर मालती को अगाध विश्वास है। वह सांत्वना पाकर प्रफुल्ल हो उठी। किंतु नवकिशोर के मन के भीतर अमंगल की आशंका का काला बादल उठकर चारो ओर फैलने लगा।

नवकिशोर ने अत्यंत चिंतित होकर ठीक किया कि अब इनके विवाह में ज़रा भी देर न होनी चाहिए।

दूसरे ही दिन नवकिशोर ने विपिन से कहा—"विपिन, मैं तो बहुत सोच-विचारकर भी यह ठीक नहीं कर सका कि किस पद्धति के अनुसार तुम्हारा ब्याह होना चाहिए। जिस पद्धति से तुम ब्याह करना चाहो, बताओ, मैं उसी का प्रबंध कर दूँ।"

विपिन ने सिर झुकाकर कहा—'मैं ब्याह नहीं करूँगा।"

नवकिशोर अगर ज़बरदस्ती ब्याह कर देता, तो शायद उसमें विपिन कुछ आपत्ति न भी कर सकता; लेकिन नवकिशोर के उसी पर सब बोझ डाल देने से उसे अवकाश मिल गया, और उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं ब्याह नहीं करूँगा।

यह उत्तर सुनकर, क्रुद्ध होकर, बिजली की तरह कड़ककर नवकिशोर ने कहा—"मूर्ख, मुँह से यह बात निकालते तुमको लज्जा नहीं आती? एक भले घर की लड़की को सबके आश्रय से वंचित करके, इतनी दूर ले आकर, अब उसे जवाब देना चाहते हो? कापुरुष! यही क्या भलमंसी है!"

नवकिशोर के गरम पड़ने पर विपिन को भी ताव आ गया। उसने कहा—"भले घर की लड़की को जो मैं इतनी दूर तक खींच लाया, उसके लिये मैं ज़िम्मेदार हूँ, या तुम? तुमने ही तो शुरू से अब तक मेरी प्रवृत्ति के इंधन में हवा दे-देकर यह दारुण अग्नि-कांड कराया है। अब मुझे चेत हुआ है। तुम ख़ुद मालती को प्यार करते हो; मालती भी तुमको मेरी अपेक्षा बहुत अधिक स्नेह और श्रद्धा करती है। तुम्हीं मालती से ब्याह कर लो।"

इतने दिन से जो संदेह-जनित विद्वेष की गरमी तिल-तिल करके विपिन के हृदय के भीतर, अज्ञात रूप मे, संचित हो रही थी, वह आज नवकिशोर के तिरस्कार से एकाएक, आग्नेय गिरि के फूट पड़ने की तरह, विपिन के मुँह से बाहर निकल पड़ी, और उसने उनके इतने दिन के सुख-सांत्वना के समस्त आयोजन को दम-भर में जलाकर ख़ाक कर दिया। इस आग को बुझाने में बहुत आँखों का पानी ख़र्च होगा; नष्ट ऐश्वर्य को फिर प्राप्त करने मे बहुत दिनों के काम और साधना की आवश्यकता होगी।

नवकिशोर विपिन के वाक्य-बाण की चोट और विष से एकदम स्तंभित हो गया। मालती के सामने इस तरह रूढ़ और गर्हित भाव से विपिन ऐसी बात कैसे कह सका! नवकिशोर सहसा यह धारणा ही नहीं कर सका कि ये शब्द विपिन के मुँह से निकले हैं! नवकिशोर अपनी आत्मा के निकट यह नही स्वीकार करता था कि वह मालती को रत्ती-भर भी प्यार करता है। किंतु जब विपिन ने उसी अति गुप्त ख़बर को उसके हृदय की अँधेरी कंदरा के भीतर से खींचकर प्रकाश में खोलकर रख दिया, तब उस बात के भीतर जो सरसों-बराबर सत्य का बीज था, वह अकस्मात् बाजीगर के माया-वृक्ष की तरह अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हो उठा। उसके प्रकाश के सौंदर्य का मोह फिर ढक रखकर अस्वीकार नहीं किया जा सका। किशोर ने चौंककर मन के भीतर पीछे फिरकर देख लिया कि उस हेमंत-ऋतु के स्निग्ध, शीतल तीसरे पहर के समय में मालती के साथ प्रथम साक्षात् होने के दिन ही उसका जड़ता-वर्जित सरल साहस देखकर वह मुग्ध हो गया था। उसके बाद हरि-विहारी राय चौधरी के घर में मालती के ऊपर अत्याचार होते देख-कर नवकिशोर का मन सहानुभूति के मारे उसकी ओर आकृष्ट हुआ था; मालती को आश्वास और भरोसा देकर उसने अपने को उसका

विश्वास-पात्र बना लिया था। सबके अंत में उस दिन का स्मरण हो आया, जिस दिन उसके पूज्य पिता ने मालती को अपनी पुत्र-वधू बनाने का प्रस्ताव करके उसके मन में क्षण-भर के लिये भी आशा और आनंद का मोह पैदा कर दिया था। आज भी इन सब घटनाओं की स्मृति नवकिशोर के मन में सजीव है। अब तक वह सिर्फ़ सोई हुई थी। विपिन का निर्दय आघात पाकर वह स्मृति वेदना से अति नाद करके दम-भर में जाग उठी। नवकिशोर ने अपने मन को टटोलकर देख लिया, उसके बाद मालती के मुँह की ओर आप ही उसकी दृष्टि चली गई। उसने देखा, वह विपिन के निर्लज्ज आघात से स्तंभित-सी होकर सिर झुकाए खड़ी है। लज्जा, अपमान और क्षोभ के मारे उसका चेहरा लाल हो उठा है। नवकिशोर ने अपने मन में सोचा, इस निर्लज्ज, कापुरुष के रूढ़ आघात से मालती को बचाने का अधिकार और उपाय उसके हाथ में है।

नवकिशोर ने उत्तेजना के मारे किसी तरह की दुविधा अपने मन में लाए बिना विपिन के मुँह की ओर ताककर, अवज्ञा की हँसी हँसकर कहा "मूर्ख! अगर तुम कापुरुष की तरह इन्हें त्याग कर दोगे, तो मैं नहीं त्याग कर सकूँगा। मालती अगर स्वीकार करें, तो मैं ही उन्हें ग्रहण करूँगा।"

विपिन ने वैसे ही उत्तेजित भाव से कहा—"बस! तो मैं आज से छुट्टी पा गया! अब मालती के बारे में मेरी कोई ज़िम्मेदारी नहीं रही! मैं छुटकारा पा गया!"

यों कहते-कहते विपिन तेज़ी के साथ घर से निकलकर बाहर चला गया। किंतु विपिन के मन में बार-बार यह ख़याल आने लगा कि यह निष्ठुर वाक्य शायद मालती के हृदय में तीर की तरह जाकर लगा होगा! मगर अब पछताने से क्या होगा? जो तीर कमान से छूट गया, वह फिर लौटाया नहीं जा सकता!

आज मालती का अपमान हद दर्जे को पहुँच गया। वह मन-ही-मन जिसे चाहकर इतना दुःख सह रही थी, वही आज उसे अनायास पराए हाथ में छोड़कर चल दिया! मालती नवकिशोर को अपना परम हितैषी बंधु समझकर मानती और श्रद्धा करती थी। आज उसी नवकिशोर का प्रच्छन्न प्रणय उसके आगे खुल गया, जिससे वह लज्जा के मारे जैसे कट गई। नवकिशोर के प्रति उसके मित्रता के निर्भर भाव को प्रणय की व्याकुलता मानकर, भूलकर उसके प्रति विपिन, और नवकिशोर ने भी, जो आचरण किया, उससे मालती के हृदय में कड़ी चोट पहुँची। अपने बारे में मर्दों के इस निर्लज्ज वार्तालाप ने उसे जैसे पागल बना दिया।

विपिन जब घर से चला गया, तब मालती जैसे एक प्रचंड आघात से दम-भर के लिये हत-चैतन्य और स्तंभित-सी होकर खड़ी रही, उसमें सोचने की शक्ति तक नहीं रही। गंभीर, निस्तब्ध नैश अंधकार से उसका हृदय जैसे आच्छन्न हो गया, बड़े-बड़े काले चक्र जैसे उसकी दृष्टि के सामने सनसनाहट के साथ घूमने लगे, और उनके भीतर से हरे रंग की चर्ख़ी की तरह हज़ारों-लाखों चिनगारियाँ, छूट मारने से उड़ रही ममाखियों की तरह, भन-भन करके उड़ने लगी। उसके बाद जब मालती को होश आया, तब उसे जान पड़ा, जैसे उसका स्वल्पावशेष सुख-सौभाग्य चिर काल के लिये नष्ट हो गया।

उस समय आँसुओं की भारी भीड़ मालती के हृदय को बार-बार ठेलकर उसके कंठ और आँखों को आकुल करने लगी। जगत्-संसार में उसे अपना कहने के लिये, स्नेह करने के लिये, उसके आश्रय के लिये, उसका मानसिक दुःख सुनने-सुनाने के लिये जैसे कहीं कोई नहीं रह गया। कल तक तो उसके मन का यह भाव नहीं था? आज यह क्या हुआ कि उसे केवल यही जान पड़ रहा है कि

विपिन उसके संपूर्ण रूप से निर्भर का स्थल नहीं है। लेकिन अब नवकिशोर का भी तो विश्वास नहीं रहा। क्यों यह जान पड़ता है कि यह विश्व ब्रह्मांड-भर अत्यंत बृहत् और कठोर है, और वह बालिका अत्यंत क्षुद्र, दुर्बल और असहाय है ?

देखते-देखते आँसुओं से उसकी छाती भीग गई। कैसा मर्म-भेदी वह अश्रु-जल है ! वह अपने मन में कहने लगी कि हे भगवन् ! मुझको ऐसी कोई जगह दो, जहाँ मैं अपने को इन सब मर्दों की दृष्टि से छिपाकर रख सकूँ। सब लज्जा, सब ग्लानि, सब दुःख तुम ढक लो, तुम मृत्यु-रूप से आकर मुझे अपनी गोद में ले लो।

मालती को इस तरह व्याकुल भाव से रोते देखकर नवकिशोर को ख़याल हुआ कि उसने उत्तेजना में अज्ञात रूप से मालती के हृदय को बड़ा भारी आघात पहुँचाया है। वह अपने को मालती और विपिन के निकट अत्यंत अपराधी समझने लगा। इस अपराध को मिटाने की क्षमता अत्यंत निर्मम भाव से उसके अधिकार के बाहर हो गई है। विपिन या मालती अपने व्यवहार से उसके इस आचरण को अगर ढक न दें, तो उसकी यह मूढ़ता सदा उसे धिक्कार देगी। यह निश्चित समझकर नवकिशोर अत्यंत लज्जित और व्याकुल हो उठा, वह अपनी निष्फलता से आप अपने हृदय को जलाने लगा। उसने भी जो विपिन के साथ ऐसे कदर्य अपमान से मालती को व्यथा पहुँचाई, इस मूढ़ता की वेदना से अभिभूत होकर वह चुपचाप बैठा रहा; विचारक के सामने अपराधी की तरह निरुपाय भाव से दंड के आदेश की अपेक्षा करने लगा। वह क्रंदन-कातर मालती के आगे एक सांत्वना की बात भी मुँह से नहीं निकाल सका।

कल्पना-प्रिय विपिन ने जब देखा कि कल्पना और असल में आकाश-पाताल का अंतर है, तब उसका स्वभाव से कमज़ोर मन

जैसे भग्न होकर गिर पड़ने लगा। विपिन ने इस समय संसार में अपने भरोसे अपने पैरों खड़े होने के लिये प्रस्तुत होकर देखा, वह बहुत बड़ा असहाय है, वह एकदम अक्षम है। उसने नदी के भीतर नाव का ललित नृत्य देखकर सोचा था कि शायद वहाँ केवल आनंद के हिलकोरे ही हैं, वह शायद केवल मधुर, मंद वायु के मुख में तरंग-रंग के साथ तैरते चले जाना ही है, वह शायद जल-केलि है। किंतु नाव के भीतर पैर रखते ही उसे देख पड़ा कि दूर ही से वह बहुत अच्छा है, पास जाने पर चंद्रमा में अमृत नहीं है। कल्पना और कर्तव्य में बहुत बड़ा अंतर है। यह तो केवल बैठे-बैठे झूलना नहीं है। इसमें तो हरदम सजग और सचेत रहने की ज़रूरत है, किसी समय तनिक भी अन्यमनस्क होना ग़ज़ब है! एक हाथ से नाव के भीतर का पानी भी उलीचना होगा, और दूसरे हाथ से प्राण-पण प्रयत्न के साथ डाँड भी चलाना होगा। दाहने-बाएँ ज़रा भी झुकने से एकदम पानी के भीतर गिर पड़ने की आशंका हर घड़ी हृदय के पास काँटे की तरह लगी हुई है। ज़रा-सी असावधानी, ज़रा-सी भूल होने से, तनिक भी हिलने-डुलने से एकदम सर्वनाश होने की संपूर्ण संभावना सामने है। आज उसका आश्रय-स्थान अत्यंत संकीर्ण है। वह स्थान उसका किसी समय ख़ूब विस्तृत नहीं था, किंतु निरापद, निश्चित और झंझट से ख़ाली अवश्य था। उसी अभ्यास और अभिज्ञता के फेर में पड़कर ही तो उसने सोचा था कि उसका जीवन एक सुकवि के गान की तरह सहज-कोमल स्वर में ही बीत जायगा। किंतु इस समय ठगाकर उसने देखा कि वह केवल मरीचिका है, उसके पीछे घूम-घूमकर मरने में सुख है, शांति या चैन नहीं है। सुख की अपेक्षा शांति अच्छी है। मालती को पाने के सुख के पीछे जो विषम उद्वेग मौजूद है, उसके वेग में वह भावमय सुख कितनी देर तक टिक सकेगा? प्रेमानंद स्वामी के

आश्रम में उसके लिये निश्चित आश्रय है। वहाँ बिना चेष्टा के प्राप्त थोड़ा-सा अन्न और साधारण वस्त्र मिल जाना ही विपिन के लिये यथेष्ट है। मालती को न देख पाने से उसके हृदय में आग-सी जलती रहेगी। सो जले, वह भी उस दुरंत, दारुण जीवन-संग्राम की अपेक्षा बहुत सहज और सहनीय है। और, मालती की विरह-वेदना के भीतर भी तो आनंद है। प्यार करने में ही हृदय की सार्थकता है, प्रेमास्पद की चिंता में ही तन्मयता प्राप्त होती है। मालती को छोड़कर वह संन्यासी के आश्रम में जायगा, तो मालती का प्रेम उसके निकट अखंड शाश्वत संपूर्ण ही बना रहेगा। उस प्रेम को संसार के संघर्ष में जीवन की जटिलता में पग-पग पर क्षुण्ण और क्षुब्ध नहीं देखना पड़ेगा।

सब तरह की रगड़-झगड़ में विपिन के हट बैठने में रुकावट केवल मालती ही थी। विपिन, उसे कहाँ ले जाकर रक्खे, यह ठीक नहीं कर पाता था। वह उसे गुरुजी के आश्रम में ले जा सकता था; लेकिन मालती उसके लिये नहीं राज़ी थी। इसी कारण विपिन गड़बड़ में पड़ गया था। लेकिन जब किशोर ने मालती का बोझ अपने सिर ले लिया, यहाँ तक कि उसने मालती से ब्याह करना भी स्वीकार कर लिया, तब विपिन मालती के संबंध में निश्चित अवश्य हो गया, परंतु उसके साथ ही नवकिशोर के इस सौभाग्य को देखकर उसका हृदय ईर्षा की आग से जलने लगा। मालती को ऐसी अवस्था में त्याग करने से विपिन ने अपने मन में यह नहीं सोचा कि वह उसके प्रति कुछ अविचार कर रहा है। वह सोचने लगा, मालती नवकिशोर को प्यार करती है, शायद उससे भी अधिक चाहती है; नवकिशोर से ब्याह करके ही वह सुखी हो सकेगी। एक स्त्री के विवाह-संबंध की बातचीत तो कितने ही लोगों के साथ होती है, अंत को जिसके साथ ब्याह होता है, वही उसके

हृदय का अधीश्वर होता है। अगर मालती विपिन को कुछ प्यार भी करती है, तो उसका वह भाव दुःस्वप्न की तरह दो ही दिन में जाता रहेगा।

मनुष्य को जब कोई काम करने की अत्यत इच्छा होती है, तब उसकी धर्म-बुद्धि को ठंडा करनेवाली युक्तियों की कमी नहीं रहती। जब कोई अशांति या असुख उपस्थित होता है, तब मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने को दोषी न मानकर सारा दोष दूसरे के ऊपर या भाग्य के ऊपर लादकर निश्चित होना चाहता है।

विपिन ने इधर अब तक हरएक बाधा के बीच भगवान् का स्पष्ट निषेध देखना शुरू किया था। इस समय सारा दोष नवकिशोर के ऊपर लादने का मौक़ा पाकर वह अपने को बहुत कुछ निश्चिन्त और ज़िम्मेदारी से बरी समझने लगा। उसने कुछ प्रफुल्ल भाव से ही गुरुजी के आश्रम में जाने की तैयारी शुरू कर दी। किंतु गठरी-मोटरी जितना ही रस्सी आदि बंधनों से कसी जाने लगीं, उतना ही जान पड़ने लगा, जैसे कोई उसके हृदय को ही कपकर बाँध रहा है। उसका हृदय वेदना से विह्वल हो उठा। जब उसको स्पष्ट रूप से जाने में कष्ट मालूम पडने लगा, तब रहने में भी लज्जा लगने लगी। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि नवकिशोर पहले की तरह तिरस्कार करके उसे जाने से क्यों नहीं रोकता, मालती उसी तरह आँखों में आँसू भरकर विनीत भाव से यही रहने के लिये आकर प्रार्थना क्यों नहीं करती। विपिन जान-बूझकर जाने में विलंब करने लगा। शायद देर होने पर ही कोई उसे मनाने आवे। विपिन क्रमशः विशेष भाव से ही इस बात का अनुभव करने लगा कि मालती को छोड़कर जाने से उसका जीवन कितना शून्य हो जायगा।

किंतु नवकिशोर और मालती वैसी प्रकृति के आदमी ही नहीं हैं कि जहाँ युक्ति हार मान गई है, जहाँ हृदय का अपमान हो चुका है,

वहाँ जाकर दया की भिक्षा करें। मालती के मन में आत्ममर्यादा का भाव और किशोर के चित्त में लज्जा इतनी तीक्ष्ण हो उठी थी कि वे विपिन के पास जाकर उससे और कोई अनुरोध नहीं कर सके।

विपिन ने जब देखा कि कोई उसे मनाने और रहने के लिये कहने नहीं आया, तब वह आहत अभिमान का प्रबल धक्का खाकर घर से बाहर निकला। किंतु उस समय भी वह आशा को एकदम नहीं छोड़ सका।

गाड़ी की छत पर सामान रखकर विपिन दम-भर स्तब्ध-सा, गाड़ी के बाहर ही, खड़ा रहा। उसे जान पड़ने लगा, मालती उसके हाथ से निकलकर सदा के लिये उससे दूर चली जा रही है, और वह चाहे, तो इस समय भी दोनो हाथ बढ़ाकर उसे प्राप्त कर सकता है। थोड़ी देर तक इधर-उधर करने के बाद एक दीर्घ निःश्वास से उस दुराशा को एकदम दूर करके विपिन ने जैसे गाड़ी पर चढ़ने के लिये पैर उठाया, वैसे ही मालती ने आकर उससे कहा—"ज़रा ठहरिए, मैं भी चलूँगी।"

आनंद से विपिन का मनोमयूर नृत्य कर उठा। मालती चाहे, तो नवकिशोर से ब्याह करके सुख-पूर्वक स्वच्छंदता के साथ रह सकती है। उस सुख को त्यागकर इस नई जवानी की उमर में अतृप्त आकांक्षा को हृदय के भीतर क़ैदी रखकर संन्यासिनी होना उसे उचित नहीं है। अभिमान ने मालती से ऐसी बात कहने के लिये विपिन के मन से कुछ इशारा भी किया; किंतु विपिन के प्रणय ने उसे ऐसी बातें नहीं कहने दीं। क्या जानें, अभिमानिनी मालती ऐसी बातें सुनकर शायद सचमुच रह ही जाय। मालती के साथ एक ही आश्रम में रहने से कम-से-कम उसे आँखों से देखने का सुख तो विपिन को प्राप्त होगा। उस सुख के आभास का अनुभव तो अभी से उसे अपने हृदय के भीतर स्पष्ट रूप से हो रहा है।

किंतु इस डर से कि उसका वह आनंद प्रकट हो पड़ने से उसके वैराग्य का माहात्म्य कम हो जायगा, विपिन यथासंभव गंभीर भाव धारण करके गाड़ी पर बैठा रहा।

मालती का मन किसी भी अवस्था में संपूर्ण रूप से हताश होकर उद्योग छोड़ना नहीं जानता। उसका तेजस्वी मन नैराश्य को स्वीकार ही नहीं करता, और आशा को भी पूर्ण रूप से पकड़कर एकदम उसकी पूर्ति के लिये व्याकुल नहीं हो उठता। मालती ने भी ठीक विपिन ही की तरह सोचा था कि विपिन इस समय तो उसे मिलता नहीं, लेकिन वह उस आँखों से देखने का सौभाग्य क्यों छोड़ दे। विपिन का प्रणय अनेक प्रतिकूल अवस्थाओं में पड़कर इस समय वेग-हीन हो पड़ा था। अगर मालती अपने प्रणय से विपिन के हृदय में नए सिरे से आग्रह का संचार कर दे सके, तो उसके प्रणय में फिर वैसा ही वेग उत्पन्न हो सकता है। रक्त-हीन रोगी जैसे दूसरे के ताज़े, सुस्थ रक्त को पाकर बच जाता है, वैसे ही विपिन का अवसन्न शिथिल प्रणय मालती के प्रणय से बल प्राप्त करके नया हो उठे, तो कुछ आश्चर्य नहीं। मालती ने अच्छी तरह विचार करके देखा कि इस राह के सिवा उसके जाने के लिये और राह नहीं है। वह स्पष्ट देख रही थी कि संग्राम चाहे जितना कठोर रूप धारण करे, और चाहे जितनी देर तक हो, उसके प्रणय की जय निश्चित है। किंतु अन्य किसी राह में चलने से उधर ध्रुव सर्वनाश ही है।

उसी समय अपना बक्स और बिछौना-ओढ़ना लेकर मालती गाड़ी पर सवार हो गई।

मालती ने जब अपनी इच्छा से नवकिशोर को छोड़कर विपिन का साथ पकड़ा, तब नवकिशोर की छाती पर से जैसे एक बड़ी भारी शिला हट गई, उसके जान में जान आई। फिर अपने स्वाभाविक

हृदय के बल को यथासंभव संचित करके, वैसी ही पवित्र तेजस्विता के साथ, विपिन और मालती के सामने आकर, नवकिशोर ने कहा—"तुम जाते हो, तो जाओ, मैं इसी घर में तुम्हारी राह देखूँगा ; जब इच्छा हो, लौटकर आना। तुम्हें लौटकर आना ही पड़ेगा, यह निश्चित है। विपिन, अपने और मेरे अपराध का प्रायश्चित्त अकेले तुमको ही करना पड़ेगा, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।"

अंत की बात नवकिशोर ने ज़ोर देकर कही। मालती और विपिन, दोनो जड़ काठ की तरह बैठे रहे। नवकिशोर की ओर किसी ने आँखें उठाकर देखा भी नहीं। वे परस्पर एक दूसरे की ओर भी नहीं देख सकते थे। दोनो आदमी दोनो ओर की खिड़कियों से, शून्य दृष्टि से, सड़क पर चल रहे जन-प्रवाह और इमारतों को देख रहे थे। और, नवकिशोर दीन अपराधी की तरह कुंठित, पराजित और स्तब्ध होकर उस क्रमशः दूर हो रही गाड़ी की ओर ताकता खड़ा रहा। उसके हृदय का सारा बल, तेज, दर्प, साहस, विश्वास और उत्साह जैसे एकदम एक ही धक्के मे चूर-चूर हो गया था। उसकी समझ में नहीं आता था कि इसका प्रायश्चित्त कैसे और किस तरह होगा।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

जब मालती और विपिन की डोंगी उन्हें लेकर गंगा के बीच में पहुँची, तब मालती का मन जैसे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। संसार को छोड़कर यह कैसी निरुद्देश यात्रा है! मालती डोंगी पर बैठे-बैठे देख रही थी कि गाँवों की बहुएँ रात के खर्च के लिये पानी भरने को घड़े बग़ल में दबाए घाट पर आई हैं। कोई धोती धोने के लिये पानी के भीतर उतरी है; कोई स्त्री पानी से निकलकर गीली

धोती पहने, घड़ा कमर पर रक्खे, सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते घूमकर घूँघट ज़रा-सा खोलकर जा रही डोंगी को कौतूहल-पूर्ण दृष्टि से देख रही है। उन सभी के घर हैं, काम-काज है, अपना कहनेवाले—प्यार करनेवाले आदमी हैं, मगर मालती के कुछ नहीं है, कोई नहीं है!

डोंगी जब खड़दह के आनंदाश्रम के संगमरमर के बने पक्के घाट पर आकर लगी, उस समय सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुँच चुके थे। नदी का जल सुनहली आभा पड़ने से, हास्य-पूर्ण नेत्र की तरह, चमक रहा था, उज्ज्वल हो रहा था। उस पार नदी से सटा हुआ कज्जल-रेखा के समान अंधकार देख पड़ रहा था। तट के ऊपर वृक्षों की पंक्ति भौंह के समान श्याम-वर्ण रेखा के रूप में दिखाई दे रही थी। उसके ऊपर आकाश-प्रांत में लाल सूर्य का मंडल किसी सुंदरी के मत्थे की बड़ी सुनहली टिकली के समान बहुत ही सुंदर मालूम पड़ रहा था। आश्रम के दरवाज़ों की झिलमिलियाँ अस्त हो रहे रवि की लाल किरणों में चमक रही थीं। श्वेत पत्थर के बने घाट की गोद में तरल जल पर सुनहला प्रकाश किसी सुंदरी रमणी के पान खाए हुए ओठों पर हँसी की झलक के समान शोभायमान था।

एक स्टीम-लंच अपने पीछे कई गधाबोट बाँधे हुश-हुश करता हुआ जल में सुनहली लहरें दौड़ाता हुआ चला गया। गधाबोट प्रवाह के ऊपर अपने को डाले हुए निश्चित भाव में स्थिर थे, जैसे कोई पुरानी चाल के रईस हों। उनमें जाने की जल्दी या चंचलपना बिलकुल ही नहीं था। किंतु उन्हें अपने पीछे बाँधकर घसीटते हुए ले जानेवाला स्टीम-लंच मानो यही बता गया कि संसार में जो लोग ख़ुद हाथ-पैर नहीं हिलाते-डुलाते, उन्हें संसार नाक में नकेल डालकर नचाता है।

आफ़िसों में काम करके लौटनेवाले बाबुओं के झुंड-के-झुंड किराए की नावों पर सवार अपने-अपने घर को जा रहे थे। कोई नाव डाँड़ के ज़ोर से, कोई नाव 'पाल' के ज़ोर से, कोई नाव खींचने-वाली डोरी के सहारे से, तेज़ी के साथ चली जा रही थी। कोई बाबू नारियल हाथ में लिए तमाखू पी रहा था, कोई सिगरेट फूँक रहा था, और कोई संध्या-काल की शोभा निहार रहा था। एक शौक़ीन बाबू, सिर से एक बढ़िया शाल लपेटे, निम्न-लिखित गान गा रहा था—

राम करैं कहूँ नैना न उरझैं।
इन नैनन की लाग बुरी है,
उरझे नैना सुरझाए न सुरझैं।

मालती को डोंगी पर देखते ही उसके गान का सुर सप्तम में चढ़ गया। और, एक बाबू चिल्लाकर विपिन को लक्ष्य करके पुकारने लगा—"ओ तिनकौड़ी, ओ हरेकृष्ण, पंचानन, हाराधन—कौन जा रहा है भैया, बोलो तो।" इसके बाद वह उठकर गान के ताल पर बंदर भाव से नृत्य करने लगा।

मालती डोंगी के भीतर से यह सब देख और अपने मन में सोच रही थी कि पुरुष सब क्या जानवर ही हैं? मालती को स्वयं स्त्री-जाति होने के कारण एक प्रकार का आनंद और संतोष आ। उसने कहा—"विधाता को धन्यवाद है कि उसने मुझे मर्द का चोला नहीं दिया।"

विपिन का ध्यान इन सब बातों की ओर बिलकुल नहीं था। एक ख़ाली नाव उसकी डोंगी के पीछे चली आ रही थी। उस पर का मल्लाह मौज में गाता चला आ रहा था—

डोलत जाय मोरी नैया रे खेवैया बिना।
गहरी नदिया अगम बहत है, सूझत वार न पार;

नाव हमारी निपट झाँझरी, खेवट है मतवार।
टूटे डाँड़, उठी अति आँधी, काँपत जियरा हमार ;
मूरुख मन, न हारिए हिम्मत, वही राम रखवार।

विपिन का मन इस गान के मीठे सुर के भीतर के रहस्यमय अर्थ में एकदम डूब गया था। उसके मन के भीतर हज़ारों भाव उठकर, गंगा की लहरें जैसे डोंगी को हिला-डुला रही थीं, वैसे ही उसके चित्त को आंदोलित कर रहे थे। उसे जान पड़ रहा था, यह गान जैसे उसी की अवस्था को लक्ष्य करके गाया जा रहा है, जैसे उसी के जीवन की विशद व्याख्या है।

विपिन की डोंगी आकर जब आनंदाश्रम के सफ़ेद घाट पर लगी, तब उसे होश हुआ। विपिन और मालती ने डोंगी से उतरते ही देखा, तारक उधर एक सीढ़ी के ऊपर विराजमान है। तारक ने भी दोनो को देखा। तारक को देखते ही विपिन और मालती का मुँह लाल हो उठा; तारक भी कुछ लज्जित-सा हो उठा। किंतु तुरंत लज्जा का झोंका सँभालकर, दाँत बाहर निकालकर, तारक ने कहा—'हें-हें-हें—विपिन बाबू हैं! एकदम जोड़े-का-जोड़ा देख पड़ता है! भैया, यह संन्यासी का आश्रम है, केलि-कुंज नहीं है।"

तारक के दाँत बाहर निकले ही रहे। उसके कुत्ते के-जैसे बड़े-बड़े दाँत सूर्य का प्रकाश पड़ने से चमकने लगे। उसका वह व्यंग्य-मिश्रित असभ्य भाव देखकर मालती का मुँह लाल हो उठा। उसने घूँघट खींचकर सिर झुका लिया। विपिन का जी चाहा कि उस असभ्य नराकृति वानर को गंगा के जल में ढकेल दे। किंतु उस भाव को दबाकर रूखी हँसी हँसकर विपिन ने कहा—"तुम डरो नहीं धर्मध्वज! हम दोनो जने संन्यास ग्रहण करने आए हैं!"

तारक ने वैसे ही दाँत बाहर निकालकर कहा—"ओः! ठीक है, सस्त्रीको धर्ममाचरेत् (स्त्री-सहित धर्माचरण करना चाहिए)।"

विपिन ख़ूब समझ रहा था कि मालती के बारे में तारक का यह व्यंग्य करना मालती के कानों में अमृत की वर्षा नहीं करता। लेकिन वह तो अब संन्यासी होने जा रहा है; क्रोध करना उसे शोभा नहीं देता। विपिन ने क्रोध को दबाकर, कुछ गंभीर भाव धारण करके कहा—"ना, ना, हम लोगों ने ब्याह नहीं किया, और करेंगे भी नहीं। तुमने कहा था कि मैं अगर संन्यासी होऊँगा, तो उसके लिये तुम ज़िम्मेदार होगे। अब तुम भी आओ, तुमको भी संन्यासी होना पड़ेगा।"

तारक बड़ी विपत्ति में पड़ गया। उसने गंभीर भाव धारण करके कहा—"तुम्हारा भाग्य अच्छा है, इसी से इतने सहज में गुरु की कृपा प्राप्त करके तुमने संसार के माया-मोह-पाश को तोड़ डाला। मैं इस जन्म में कुछ भी नहीं कर सका। मैं तुम्हारी इस डोंगी पर ही लौट जाऊँगा। मेरा छोटा लड़का बहुत बीमार हो गया है। उ-हू-हू! अब की कैसा जाड़ा पड़ रहा है! बाप रे! जाओ-जाओ, तुम लोग देर न करो, नहीं तो गुरुदेव आरती में चले जायँगे। अरे ओ डोंगीवाले, मुझे ले चलेगा?"

विपिन तारक से और कुछ न कहकर, मालती को लेकर, आश्रम के भीतर चला गया। तारक की जान बची। वह कहने लगा—विपिन सचमुच क्या संन्यासी होगा? उसकी तक़दीर अच्छी देख पड़ती है। मैंने इतने दिन गुरुदेव के चरणों की सेवा करके भी उनकी कृपा नहीं पाई, और विपिन दो ही दिन मे उनकी कृपा पाकर तर गया! चलूँ, रात अधिक हो जायगी, तो और भी जाड़ा सतावेगा—"ए मल्लाह!"

उनतालीसवाँ परिच्छेद

प्रेमानंद के सामने दो शमादान जल रहे थे, और वह अकेले बैठे भागवत का पाठ कर रहे थे। विपिन और मालती आकर, उन्हें प्रणाम करके, खड़े हो गए। प्रेमानंद ने जैसे सिर उठाकर देखा, वैसे ही मालती से उनकी चार आँखें हो गईं। मालती ने देखा, गुरुजी के दोनो नेत्र भीतर की एक उत्तापमय ज्योति से उज्ज्वल हैं! उनका शरीर लंबा और दुबला है; वह एक दृढ़ लाठी के समान है। जैसे एक सतेज पौधा सूर्य को छूने के लिये बड़े उत्साह से ऊपर को उठने का चेष्टा कर रहा है। उनके सब अंगों में एक आनंद की दीप्ति झलक रही है। गुरुजी देखने मे खूब नौजवान और सुकुमार हैं। जवानी की अवस्था में भी शैशव का अम्लान लावण्य उनके मुख की श्री में बना हुआ है। साथ ही उनके चारो ओर एक गांभीर्य का भाव, दीपक के आस-पास किरण-माला की तरह, विकीर्ण हो रहा है। यही प्रेमानंद हैं! यही गुरु हैं!

और प्रेमानंद ने देखा—दोनो मोमबत्तियों का प्रकाश मालती के चेहरे पर पड़ने से वह एक सौंदर्य की प्रतिमा-सी दिखाई पड़ रही है। यह कैसी सुरूप, सुंदर मूर्ति है! यह तो कल्पना के समान सुंदर है, मूर्च्छा के समान मनोहर है, दीप-शिखा के समान उज्ज्वल है, वासंती मंजरी के समान सुकुमार है, तितली की तरह आनंद से चंचल है! यह तो सौंदर्य-लक्ष्मी की चंद्रकांत-मणि के समान है, इंदिरा का मंदिर है! शायद इसी की कल्पना करके किसी कवि ने लिखा है—

बीजुरी बाँटिकै माँजे सबै अँग, चंद को काटि बनायो है आनन;
बोरि सुधा बिरचे दृग द्वै, सब सुंदरता सुचि राखी है अंगन।
आनँद-रासि रची रमनी रमनीय सबै बिधि सों चतुरानन;
मोह को आकर, माधुरी को घर, कामना-मंदिर, काम को कानन।

प्रेमानन्द की उस मुग्ध दृष्टि से मालती घबरा उठी। उसे जान पड़ा, वह दृष्टि केवल सौंदर्य-मुग्ध की प्रशंसा की दृष्टि नहीं है, उसमें लालसा भरी हुई है। फूलों की माला में काँटे की तरह वह दृष्टि मालती के मन को पीड़ा देने लगी।

मालती के संकोच-कुंठित भाव से चेतना प्राप्त करके प्रेमानंद ने विपिन की ओर फिरकर कहा —"यही मालती हैं? यह तो साक्षात् राधा-रानी की मूर्ति है! तुमको शिष्य-रूप में पाकर मैं धन्य होऊँगा। ईश्वर करें, तुम दोनो के प्रेम की चिनगारी मेरे हृदय में विश्व-प्रेम का ज्ञान-दीपक प्रज्वलित कर दे! चलो, आरती का समय हो गया। आरती हो जाने के बाद तुम लोगों के साथ बात-चीत होगी। विपिन, आज से तुम्हारा नाम स्वरूपानंद हुआ, और मालती का नाम राधा-रानी।"

इसके बाद प्रेमानंद ने ज़ोर से पुकारा —"शांति! योगानंद!"

एक संन्यासी और एक संन्यासिनी आकर उपस्थित हुई।

प्रेमानंद ने कहा—"शांति, यह राधा रानी हैं, तुम लोगों की नई बहन हैं। इन्हें ले जाओ। लाइब्रेरी के पासवाली कोठरी में इनके रहने का प्रबंध कर दो। और, योगानंद, यह तो तुम्हारे परिचित ही हैं। किंतु अब आज से यह विपिन बाबू नहीं हैं। यह भी आज से तुम्हारे गुरु-भाई स्वरूपानंद हैं! जाओ, तुम लोग हाथ-मुँह धोकर पवित्र होकर ठाकुरजी के दर्शन करने आओ।"

चालीसवाँ परिच्छेद

मालती ने शांति के साथ अपने लिये निर्दिष्ट कोठरी में जाकर देखा, वह कोठरी गंगाजी की ओर है। उसमें बैठे-बैठे गंगाजी के दर्शन किए जा सकते हैं। उस समय भी उस कोठरी में अस्त हो

रहे सूर्य की लाल आभा, संगमरमर के फ़र्श पर महावर के रंग की तरह, जगमगा रही थी। उसके ऊपर पैर रखते ही मालती को बड़ी हँसी मालूम पड़ी। यही उसका ब्याह है! संन्यासी प्रेमानंद इस ब्याह के पुरोहित हैं। विधवा संन्यासिनी शांति उसके इस ब्याह में 'सुहागिन' का काम करनेवाली है! और, अस्त हो रहे सूर्य गेरुए रंग की चादर ताने हुए मरण-रागिनी में उनकी शुभ दृष्टि की तैयारी कर रहे हैं! यमराज के भैंसे के सिर से भी काले कौओं का दल जैसे उसके विवाह-मंडप की बंदनवार है! बड़े-बड़े स्टीमर भारी-भरकम पुरखिनों की तरह, और छोटे-छोटे स्टीम-लंच चंचल किशोरियों की तरह, इधर-उधर दौड़कर सीटी क्या दे रहे हैं, मानो विवाहोत्सव में मंगल-शंख बजा रहे हैं! मालती ने अपने मन में कहा, यह उसके ब्याह की सोहाग-रात का घर नहीं, बल्कि मृत्यु-काल की गंगा-यात्रा का घर है। यहीं पर वह तीरस्थ की गई है।

उसकी इस चिंता में बाधा डालकर शांति ने दुःख-शिथिल, धीरे स्वर में कहा—"आप बैठें, मैं रोशनी लिए आती हूँ।"

मालती ने कहा—"अभी [रोशनी] की क्या ज़रूरत है बहन, अभी तो मुझे ठाकुरजी के दर्शन करने जाना होगा। क्या मुझे इस कोठरी में अकेले ही रहना होगा?"

मालती ने देखा, शांति की अवस्था तीस-पैंतीस वर्ष की होगी। चेहरा गोल और ख़ूबसूरत नहीं, तो बदसूरत भी नहीं है। उसमें कहीं पर कुछ भी चंचलता नहीं है। उसका मुँह किसी एक गहरी वेदना से मलिन है। कंठ का स्वर विषाद-पूर्ण और धीर है। शांति ने कहा—"हाँ बहन, यहाँ अकेले रहने का ही नियम है।"

मालती—"आप कहाँ पर रहती हैं?"

शांति—"मैं आपके पास की ही कोठरी में रहती हूँ।"

मालती—"यहाँ और कै संन्यासिनी हैं ?"

शांति—"अभी हाल में हम चार जनी थीं। आपके आने से पाँच हो गईं। कभी-कभी संख्या घटती-बढ़ती भी रहती है। जहाँ सेवा की ज़रूरत होती है, वहाँ हम लोगों को जाना पड़ता है।"

मालती—"आप यहाँ कितने दिन से हैं ?"

शांति—"छ साल के लगभग हुए।"

मालती—"आप कुछ बुरा न मानें, तो मैं और एक बात पूछूँ। आपने यह राह क्यों पकड़ी ?"

शांति की आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा—"मैं बड़ी ही दुखिया हूँ बहन। आँधी में नाव उलट जाने से मेरे स्वामी, पुत्र आदि सब माता गंगा की गोद में चले गए। गुरुदेव ने इस अभागिन को जल से निकालकर अपने चरणों में स्थान दिया है। अब मेरे स्वामी, पुत्र आदि सब श्रीराधाकांत भगवान् ही हैं। गुरुजी कहते हैं, जिस दिन मैं मेहतर के लड़के को भी अपनी गोद में ले सकूँगी, मुझे उससे तनिक भी घृणा न रहेगी, उसी दिन मैं अपने खोए हुए लड़के को पा जाऊँगी। लेकिन बहन, मैं क्या यह कर सकूँगी !"

मालती ने आँसू पोंछकर कहा—"दीदी, मैं आपकी छोटी बहन हूँ। मैंने बिन जाने आपको बड़ा कष्ट पहुँचाया, क्षमा कीजिएगा। मैं भी बड़ी दुखिया हूँ। आपने मुझसे तो कुछ पूछा ही नहीं कि मैं किस दुःख से यहाँ आई हूँ।"

शांति ने भी आँसू पोंछकर कहा—"हम किसी से कुछ पूछ नहीं सकती, ऐसा नियम है। संन्यासिनी को कोई बात जानने का कौतूहल न होना चाहिए। मैं जानती हूँ, तुमको भी दुःख ने सता रक्खा है, और वह दुःख ऐसा-वैसा नहीं, भारी दुःख होगा। बहन, दुःख पाए बिना कोई भगवान् की ओर मुँह फेरना नहीं चाहता।

सर्वस्व अर्पण कर देने पर ही भगवान् मिलते हैं। वह अमूल्य धन हैं, साधारण मूल्य देकर ख़रीदे नहीं जा सकते।"

शांति की बातें सुनकर, मुग्ध होकर, मालती ने कहा—"आप क्या समझती हैं कि संन्यासी हुए बिना कोई भगवान् का नहीं पा सकता?"

शांति—"ना, संन्यासी हुए बिना भगवान् नहीं मिल सकते। किंतु केवल गेरुए कपड़े पहन लेने से, संसार को भी छोड़ देने से, कोई यथार्थ संन्यासी नहीं हो सकता। संसार में निर्लिप्त मन को जो आदमी वैराग्य के गेरुए रंग से रँग सकता है, वही सच्चा संन्यासी है। गीता में भगवान् ने संन्यास का लक्षण बताया है—

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ;
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।

अर्थात सकाम कर्मों के न्यास (विसर्जन) को पंडित लोग संन्यास कहते हैं। और, सब कर्मों के फल का त्याग ही त्याग कहलाता है।"

शांति के मुँह पे विशुद्ध, स्पष्ट संस्कृत का उच्चारण सुनकर, उसकी ओर प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि से देखकर, मालती ने पूछा—"गुरुजी का भी क्या यही मत है?"

शांति—"हम मूर्ख स्त्रियाँ ठहरीं। हम स्वतंत्र मतामत कहाँ पावेंगी? हम तो गुरुजी की ही प्रतिध्वनि-मात्र हैं।"

मालती—"तो फिर गुरुजी संसार छोड़कर उसके बाहर क्यों आए हैं?"

शांति—"जैसे आँखों के बहुत निकट रहनेवाली चीज़ देख नहीं पड़ती, उसे देखने के लिये आँखों से कुछ फ़ासले पर रखना ज़रूरी होता है, वैसे ही संसार का रहस्य समझने के लिये, उसे प्यार करने के लिये, यह आवश्यक है कि निर्लिप्त भाव से उसके बाहर आकर खड़ा हुआ जाय। गुरुजी कहते हैं, वह घोर संसारी हैं;

वास्तव में उनका परिवार सारा संसार ही है। और, संसारी आदमी केवल अपने बाल-बच्चों में ही व्यस्त रहते हैं, लेकिन हमारे गुरुजी संपूर्ण विश्व की चिंता रखते हैं। जहाँ कोई पीड़ित, भूखा या विपत्ति-ग्रस्त मनुष्य देख पड़ता है, वहाँ गुरुजी का हृदय व्यथित होकर उसकी सेवा और सहायता में तत्पर देख पड़ता है।"

मालती—"व्यथित, विपन्न लोगों की सहायता तो आप लोग सब करते हैं, उसमें गुरुजी की बहादुरी क्या है?"

शांति—"सब बहादुरी उन्हीं की है। यह कहना कि काम तो हाथ-पैर ही करते हैं, और अदृश्य मस्तिष्क निश्चिन्त रहता है, और यह कहना कि काम तो हमीं लोग करते हैं, गुरुजी निश्चेष्ट बैठे रहते हैं; दोनो बातें एक ही हैं। मस्तिष्क की प्रेरणा से हाथ-पैर और गुरुजी की प्रेरणा से हम लोग काम करते हैं।"

मालती—"आप लोगों को क्या-क्या करना होता है?"

शांति—"बारी-बारी से ठाकुरजी की सेवा, पशु-सेवा, आश्रम की सफ़ाई और दीन-दुखियों की सेवा करनी पड़ती है। दिहातों में घर-घर जाकर असमर्थ गृहस्थों के लड़कों को—बहू-बेटियों को—पढ़ाना पड़ता है। सबेरे-शाम हम लोगों को भी पढ़ना पड़ता है।"

मालती—"आप लोग ख़ुद पढ़ती हैं, या कोई पढ़ाता है?"

शांति—"हम लोग ख़ुद भी पढ़ती हैं, कभी-कभी गुरुजी भी पढ़ाते हैं। अगर कोई विद्वान् शिष्य उपस्थित होता है, तो वह भी पढ़ाता है।"

मालती—"कौन-कौन पुस्तक या विषय पढ़ा जाता है?"

शांति—"सभी पुस्तकें और विषय पढ़े जाते हैं। उसमें कोई ख़ास विचार नहीं है। साहित्य, विज्ञान, दर्शन, इतिहास—हिंदी, संस्कृत, अँगरेज़ी, फ़ारसी, बँगला, मराठी, गुजराती—जो चाहो, पढ़ो।"

यह सुनकर, संतुष्ट होकर मालती ने पूछा—"यहाँ क्या बहुत पुस्तकें हैं ?"

शांति—"हाँ। यह पास ही तो लाइब्रेरी का कमरा है।"

मालती—"यहाँ मर्द कितने हैं ?"

शांति—"इस समय केवल तीन हैं। और सब प्रचार और सेवा करने के लिये बाहर गए हुए हैं।"

मालती—"और एक बात मैं आपसे पूछूँगी, कुछ ख़याल न कीजिएगा। यहाँ स्त्रियों और मर्दों के एक ही घर में रहने की जो यह व्यवस्था है, सो—"

शांति ने कुछ भी विचलित न होकर, वैसे ही शांत भाव से, कहा—"विपत्ति की आशंका नहीं है, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन कभी कुछ अन्याय होते नहीं देखा-सुना गया। सभी यहाँ ख़ूब गहरी वेदना या दुःख लेकर ही आते हैं। उसके बाद गुरुजी के उपदेश और नियम-पालन से वे ख़ूब शांत और संयत हो जाते हैं।"

मालती ने कुछ कुंठित भाव से कहा—"लेकिन स्वभाव क्या एकदम बदला जा सकता है ?"

शांति—"मालूम नहीं, बदला जा सकता है या नहीं। लेकिन गुरुजी कहते हैं कि बदला जा सकता है। योग के द्वारा आत्मशासन सहज हो जाता है।"

योग की दोहाई के बाद और कुछ कहा नहीं जा सका। एक संदेह को और एक अज्ञात विषय से दबा देना बड़ा सहज होता है। मालती चुप होकर अपने मन में इसी बारे में सोचने लगी। शांति ने कहा—'चलो, आरती का समय हो गया।"

चटपट हाथ-पैर-मुँह धोकर, पवित्र होकर, मालती जब ठाकुरद्वारे में पहुँची, उसी समय आरती समाप्त हो गई। उसके बाद गुरुजी ने भजन गाना शुरू किया—

सखी री, ये उरझौहैं नैन ;
उरझि परत, सुरझ्यो नहिं जानत, सोचत-समझत हैं न।
कोऊ नाहिं, बरजै जो इनको, बने मत्त जिमि गैन ;
'हरीचंद' इन बैरिन पाछे भए लैन के दैन।
सखी री ये अँखियाँ रिझवारि ;
देखत ही मोहन सों रीझी सब कुल-कानि बिसारि।
मिलीं जाइ जल दूध मिलै ज्यों, नेक न सकीं सँभारि ;
सुंदर रूप विलोकत रपटीं, काँचे घट जिमि वारि।
अब बिन मिले होत हैं व्याकुल, रोवत निलज पुकारि ;
अपने फल करि हमहि कनौड़ी और दिवावत गारि।
लोक-लाज कुल की मरजादा तृन-सम तजी विचारि ;
'हरीचंद' इनको को रोकै, बिगरीं जगहि बिगारि।

मालती को गुरुजी के मुँह से ये गान अच्छे नहीं लगे। उसके मन में बार-बार केवल यही प्रश्न उठने लगा कि यह क्या धर्म-संगीत है ?

इकतालीसवाँ परिच्छेद

गान समाप्त करके प्रेमानंद अपनी बैठक में आकर बैठे। सब चेले और चेलियों ने भी आकर प्रणाम किया, और बैठ गए। प्रेमानंद ने मालती से कहा—"क्या राधा-रानी, तुम्हें यह नवीन जीवन का आरंभ कैसा लगता है ? साधना करते-करते देखोगी कि त्याग ही में निमल शांति है ; भोग केवल उल्लास-मात्र है। ब्रह्मचर्य ही मनुष्य का एकमात्र धर्म है। निष्ठा के साथ उस धर्म का पालन कर सकने से जीवात्मा और परमात्मा का मिलन होता है। वह ऐसा ब्याह या गँठजोड़ा है कि उसके आनंद की थाह नहीं, हद नहीं।

जीवात्मा पत्नी है, परमात्मा स्वामी; वह श्रीकृष्ण है, हम गोपिका-गण—यह परम भाव हृदय में परिस्फुट होते ही मनुष्य की सब दुर्गति दूर हो जाती है। यह मार्ग अत्यंत दुर्गम या आनंद-हीन भी नहीं है। थोड़ी-सी चेष्टा करके अगर अपने हृदय को अनंत के सुर में मिला दे सको, तो देख पाओगी कि यह जीवन एकतान-लय-युक्त संगीत है। वह एक ओर जैसे स्वयं स्वतंत्र है, वैसे ही दूसरी तरफ़ विश्व के एकतान संगीत के साथ मिलता चला गया है। अगर तुम केवल अपने सुर को ही बजाओ, तो उससे एक परिपूर्ण संगीत नहीं होगा। तुम लोगों के हृदय में जो एक प्रेम का सुर बज रहा है, उसे अगर रागिनी के रूप में बजाया चाहो, तो विश्व के अन्य सुरों के साथ उसे अनुकूल भाव से मिला देना पड़ेगा। क्यों, बात ठीक समझ में आ रही है न ?"

मालती आघात-पर-आघात पाकर खीझ उठी थी। सबके अंत में जब उसकी सौभाग्य-नौका सात घाट का पानी पीकर, कितने ही तूफ़ानों से बचकर, बंदरगाह में आकर भिड़ रही थी, ठीक उसी समय इस एक न-जाने कहाँ के कौन संन्यासी ने, छिपे हुए शैल-शिखर की तरह, चोरा-बालू की तरह, अकस्मात् माया फैलाकर उसे चक्कर में डाल दिया, अटका दिया। शायद इस टक्कर से नौका में ऐसा छेद हो जायगा कि किनारे जाते-जाते बीच ही में वह डूब जायगी। इसी कारण मालती का मन पहले ही से प्रेमानंद के ऊपर विशेष प्रसन्न नहीं था। वह प्रेमानंद के उक्त प्रश्न के उत्तर में एक बहुत ढीठ प्रगल्भा प्रौढ़ा की तरह बोली—"मैं आपकी शिष्या होने के योग्य नहीं हूँ। ये सब बातें बिलकुल मेरी समझ में नहीं आतीं। मैं मूर्ख स्त्री ठहरी; मेरी ढिठाई माफ़ कीजिएगा। मुझे जान पड़ता है कि विश्व-प्रेम के एकतान संगीत में मिलाने के पहले अपने हृदय-यंत्र को अच्छी तरह ठीक सुर में बाँध लेना चाहिए।

इसके बिना बेसुरा सुर मिलाने से सारा संगीत ही बिगड़ जायगा, सब भरभंड हो जायगा। हम किसी चीज़ के अच्छे होने से ही उसे अच्छा नहीं कहते, या पसंद नहीं करते; उसे प्यार करने के कारण ही अच्छा कहते हैं। मतलब यह कि हम जिसे चाहते हैं, वह अच्छा न होने पर भी हमारी दृष्टि में अच्छा है। मनुष्य को अगर हम पहले प्यार करें, तभी वह हमारी दृष्टि में सुंदर होकर दिखाई देगा; उसकी सब त्रुटियों को क्षमा करना प्रेम से ही सहज हो उठेगा।"

प्रेमानंद मालती की निस्संकोच बातचीत सुनकर, खुश होकर बोले—"वही तो, वही बात तो मैं भी कह रहा हूँ। संयम-साधना के द्वारा अपने हृदय-यन्त्र को बाँध ले सकने से ही वह हृदय फिर विश्व-संगीत में बेसुरा नहीं बजेगा। तब वह सभी को खूब अच्छा लगेगा।"

मालती ने कहा—"वह खूब अच्छा लगना क्या संन्यास के सिवा नहीं हो सकता? उसका क्या एकमात्र उपाय संन्यास ही है? मनुष्य जब एक आदमी को प्यार करना सीखता है, तभी उसके निकट सब जगत् मधुमय हो उठता है।"

प्रेमानंद ने हँसकर कहा—"राधा-रानी, तुम प्रेम और संभोग को एक समझकर भूल कर रही हो। मैं तो तुम्हारे मिलन में रुकावट नहीं डालता; तुम्हारी संभोग-लालसा को दमन करके तुम्हें आध्यात्मिक मिलन में योग-युक्त होते देखना चाहता हूँ।"

मालती—"भगवान् को प्यार करके मनुष्य को प्यार करना सहज है, या मनुष्य को प्यार करके भगवान् को प्यार करना सहज है?"

प्रेमानंद—"दोनों ही समान हैं। एक दूसरे का नामांतर है। जहाँ जीव है, वहाँ शिव है। किंतु एक ही को पकड़े बैठे रहना मोह-मात्र है। उसके द्वारा कोई भगवान् को नहीं पा सकता।"

मालती—"तो क्या संसार-धर्म का पालन करना बुरा कर्म है? क्या संसार में रहकर कोई भगवान् को नहीं पा सकता?"

प्रेमानंद—"संसार में रहकर कोई भगवान् को नहीं पा सकता, यह बात तो नहीं कही जा सकती; लेकिन उस तरह भगवान् को पाना बड़ा कठिन है। जो लोग निस्पृह, उदासीन, अथच भगवदर्पित-हृदय संसारी हैं, वे भगवान् को पा सकते हैं। किंतु उस तरह के आदमी इस समय दुर्लभ हैं। सभी ऐसे कौशल को नहीं हस्तगत कर सकते कि पानी में ग़ोता लगावें, और शरीर में पानी भी न छू जाय। ऐसे आदमी करोड़ों में दो ही एक मिलेंगे।"

मालती—"तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि भगवान् सब जीवों को भोग भुगाने के लिये संसार में भेजकर आप छिपे-छिपे फिरते हैं? संसार का त्याग किए बिना उन्हें पाने का और उपाय नहीं है, यही तो आप कह रहे हैं? उन्हें पाना ही जब मनुष्य का प्रधान लक्ष्य है, तब सभी को संसार छोड़कर वनवासी हो जाना चाहिए। संसार को उजाड़ने ही के लिये क्या भगवान् ने संसार की सृष्टि रची है?"

प्रेमानंद ने हँसकर कहा—"संसार अगर जीव की परिणति का, अर्थात् ब्रह्म-प्राप्ति का प्रथम सोपान (Stage of development) है, तो ब्रह्म की प्राप्ति होने पर संसार तो नष्ट होगा ही। इस हिसाब से संसार को नष्ट करने के लिये ही ससार की सृष्टि कह सकती हो। इसके सिवा जीवन के सभी उच्चतम आदर्श संसार को नष्ट करने के अनुकूल हैं। बुद्ध, ईसा आदि का आदर्श अनुकरणीय है; किंतु सभी यदि उस आदर्श पर चलें, तो संसार के नष्ट होने में एक दिन भी नहीं लगे। किंतु वह भय करने की ज़रूरत नहीं है। सभी अगर वन में चले जायँगे, तो वन ही संसार हो उठेगा। संसार जिस तरह चल रहा है, उसी तरह चलता रहेगा। संसार तो मनुष्य के कर्म-फल-भोग का क्षेत्र है! हम लोग संसार को छोड़ आए हैं, इससे संसार से बच नहीं सकते। कर्म तो हमें करने ही पड़ेंगे, और वे

कर्म ही हमको संसार के भीतर खींचकर ले आयँगे । संसार में वैराग्य तो पूर्ण सौभाग्य नहीं है, वह आंशिक है। भगवान् को जब तक हम नहीं पावेंगे, तब तक हमारा पूर्ण रूप से छुटकारा नहीं होगा, मुक्ति नहीं होगी। उसी अंश को पूर्ण बनाने के लिये चेष्टा करनी होगी। भगवान् जब तुमको अपने पास आने के लिये पुकार रहे हैं, उस समय क्या तुम्हारा बिगड़कर, मुँह फेरकर बैठे रहना उचित होगा !"

मालती बहस से निवृत्त हो गई। तब प्रेमानंद स्वामी ने सांख्य, मीमांसा, वेदांत आदि दर्शन-शास्त्रों के मतों की आलोचना करके ऐसी एक प्रकांड पांडित्य की खिचड़ी पकाई कि वह मालती के लिये अत्यंत गुरु-पाक आहार थी। विपिन भी सदा से काव्य-साहित्य की सेवा करता आया है; दर्शन के कभी उसने दर्शन भी नहीं किए, और दर्शन उसकी दृष्टि में सुदर्शन-चक्र की तरह, नाम में चमत्कार होने पर भी, वास्तव में बड़ी ही भयानक चीज़ था। वह गुरुजी को पांडित्य की सफ़ाई दिखाकर मालती को चुप कर देने में समर्थ देखकर मन-ही-मन बहुत संतुष्ट हुआ। गुरुजी के प्रति उसके हृदय की भक्ति उसकी विस्मय-विस्फारित दृष्टि से बरसने लगी।

गुरुजी की बातें उसे जितनी ही दुर्बोध प्रतीत होती थीं, उतना ही उसके मन में यह विश्वास बद्ध-मूल हो रहा था कि ये सब युक्तियाँ एकदम अखंडनीय हैं। मालती निश्चय गुरुजी के पांडित्य से परास्त और मुग्ध हो गई है।

गुरुजी ने वक्तृता देकर मालती का मुँह अवश्य बंद कर दिया, किंतु मन-ही-मन उस पर संतुष्ट होकर प्रशंसा करने लगे। उनके साथ आज तक किसी ने इस तरह खुलकर बहस नहीं की थी। जो कोई उनके पास आया, वह उनके प्रभाव से मुग्ध होकर विनीत शिष्यों के दल में भिड़ गया। किंतु मालती संपूर्ण स्वतंत्र ढंग की

जी है। इसी कारण प्रेमानंद के मन में मालती ख़ूब बड़ी और स्पष्ट हो उठी।

बयालीसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन विपिन और मालती को प्रेमानंद स्वामी ने संन्यास की दीक्षा दी। वह उन्हें प्रेम-योग की शिक्षा देने लगे। वाणी और मन के संयम के लिये उन्हें हर रोज़ एक लाख कृष्ण-नाम जपने की आज्ञा हुई। वह जप एक दिन माला में और एक दिन काग़ज़ पर लिखकर करने का नियम हुआ।

गुरुजी प्रातःकाल और संध्या-काल शिष्यों के आगे शास्त्र पढ़कर उसकी व्याख्या सुनाते थे। व्याख्या के बाद भजन-कीर्तन होता था। इस अवसर में प्रतिदिन वह देखने लगे कि विपिन और मालती की व्याकुल दृष्टि बारंबार अभिसार करती हैं, और चटपट राह ही में मिलकर लज्जा-वश लौट आती हैं। वे कृष्ण-नाम लिखते-लिखते भूलकर अपने-अपने प्रेमपात्र का नाम लिख जाते हैं। गुरुजी के आगे यह ग़लती पकड़ी जाने पर वे ऐसे एक सलज्ज आनंद के भाव से परस्पर एक दूसरे की ओर चुराकर ताकते हैं कि वह भाव अनिर्वचनीय है।

इन दो व्याकुल हृदयों की शांत, नीरव प्रणय-लीला पहले गुरुजी के मन में एक अननुभूत-पूर्व आनंद-रस का संचार करने लगी, और इसी कारण वह विपिन और मालती की ओर अधिक ध्यान देने लगे।

उन्हें विशेष भाव से लक्ष्य करने में गुरुजी ने देखा कि इन दोनो आदमियों के निकट उनका आसन कम-से-कम एक आदमी के नीचे है। गुरुजी की अभिज्ञता में ऐसी घटना यह नई थी। ऐसा

आदमी उन्होंने पहलेपहल अभी देखा, जो उनके आश्रम में आया हो, और उसमें उनकी अपेक्षा अन्य किसी आदमी की ओर अधिक आकर्षण हो। उनके सब भक्त शिष्य उन्हीं को ईश्वर के आसन पर बिठाकर उन्हीं की पूजा करते आए हैं। किंतु आज विपिन और मालती के निकट वह सर्व-प्रधान और सर्वप्रथम व्यक्ति नहीं हैं। इससे उनका अहंकार चोट खाकर देखते ही-देखते क्रुद्ध हो उठा। संयम की साधना के लिये, जिसमें विपिन और मालती के बीच दृष्टि-विनिमय न होने पावे, ऐसी व्यवस्था गुरुजी ने कर दी।

गुरुजी ने अपने अज्ञात में मन के संपूर्ण अहंकार और लालसा को चुराकर अपने प्राण-प्रदीप को भर रक्खा था। अपेक्षा थी केवल एक ज़बरदस्त आग की चिनगारी की। उनके दुर्भाग्य से विपिन और मालती चकमक-पत्थर और इस्पात की तरह अपने प्रणय-संघर्षण से जो प्रदीप्त अग्नि-कण विकीर्ण कर रहे थे, उसने गुरुजी के प्राण-प्रदीप को प्रज्वलित कर दिया। गुरुजी की दृष्टि इस नवीन प्रकाश में चौंधिया गई, और वह विपिन और मालती की दृष्टि के बीच पर्दा डालने की चेष्टा करने लगे।

गुरुजी ने विपिन को समझा दिया कि साधना की प्रथम अवस्था में मालती से भेंट होना उन दोनो की आध्यात्मिक उन्नति की राह में विघ्न डाल रहा है। अतएव इस समय उन दोनो का परस्पर एक दूसरे को देखना उचित नहीं है। मन स्थिर हो जाने पर वे खुशी से एक दूसरे से मिल-जुल सकते हैं। विपिन गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके मालती की दृष्टि से बचकर चलने लगा। किंतु मालती विपिन की नज़र बचाने के लिये कुछ विशेष व्यस्त नहीं हुई। उसने ऐसा लक्षण बिलकुल नहीं दिखाया कि उसे आध्यात्मिक उन्नति की राह में शीघ्र अग्रसर होने की कुछ भी जल्दी है।

किंतु अब मालती चेष्टा करके भी विपिन को नहीं देख पाती। गुरुजी

ने इस समय स्त्री और पुरुष शिष्य-शिष्याओं को अलग-अलग शिक्षा देने की व्यवस्था कर दी है। और, अब यह बात वह जब-तब बराबर मुक्त कंठ से कहा करते हैं कि औरतों और मर्दों का बिना रोक-टोक के अबाध रूप से मिलना-जुलना आध्यात्मिक उन्नति में विघ्न डालनेवाला है।

मालती कम-से-कम विपिन को देख पाने के ही लालच से इस संन्यासी के आश्रम में आई है, वह आध्यात्मिक उन्नति की आकांक्षा में लुब्ध होकर नहीं आई। इस समय उस एकमात्र अवशिष्ट सुख से भी वंचित होकर इस आश्रम में रहना उसे कारावास से भी अधिक कष्ट का कारण हो उठा। वह अगर सुयोग खोजकर कभी विपिन के पास पहुँचती थी, तो गुरुजी के और आध्यात्मिक विघ्न के भय से विपिन खिसक जाता था, उससे मुलाक़ात ही नहीं करता था, बात करना तो दूर रहा। मालती अकस्मात् कभी विपिन के गेरुए दुपट्टे का चंचल आभास देख पाती थी, तो चौंक उठती थी। विपिन के दूर पर बोलने का शब्द घड़ी-घड़ी उसके हृदय में वज्र की नोक-सा गड़ता था। विपिन उसके निकट होने पर भी कितना दूर है! वह मालती के आर्त जीवन से कैसे निदारुण भाव से बिछुड़ा हुआ है! मालती के दिन एक के बाद एक बोझे की तरह उतरते जाते थे। उसे जान पड़ने लगा, समय जैसे एक भारी और अदृश्य सूत का गोला है, और दिन जैसे लंबे धूसर वर्ण के सूत हैं। उस गोले से जैसे लगातार सूत खुल-खुलकर आता है; उसका अंत नहीं है, समाप्ति नहीं है। जीवन के अंत तक ये धूसर, क्लांत दिन इसी तरह उदास, विषण्ण भाव से आवेंगे और जायँगे। उसे मरण-पर्यंत इसी आश्रम में गुरुजी का शुष्क, कठोर उपदेशामृत पीकर उसे हज़म करने की दुस्सह यंत्रणा भोगनी पड़ेगी।

मालती के मन में उसकी पूर्वावस्था के जो सब आनंद-मधुर भाव-रस संचित थे, उन सब भावों की स्मृति आज उसे अकेली पाकर

उसके मस्तिष्क के भीतर गूँजने लगी। उसकी कोई साथिन नहीं थी, जो दो घड़ी उससे बात करती, या जिसके आगे अपनी वेदना कहकर वह अपने हृदय का बोझ हलका करती। वे सब अतीत और अनागत भाव और कुहकिनी आशा, प्रकाश और अंधकार का जाल बुनकर, उसके चारो ओर फैलाने लगी। उस जाल का अंत नहीं है; वह घिर-घिरकर उसकी दृष्टि को धुँधला बनाने लगा। प्रकाश-अंधकार की कशमकश में जैसे उसका दम घुटने लगा। कभी-कभी उसकी चिंता जैसे अकूल, अपार सागर की तरह दिग्दिगंत में विस्तृत हो पड़ती थी। भीषण गर्जन के साथ काली-काली लहरें जैसे उसे लील लेने के लिये आती थीं। उस समय वह आँखें मूँदकर सोचती थी कि अपने को विच्छिन्न करके वह यहाँ से कहीं भाग जाय, दूर—दूर—बहुत दूर, जैसे उसकी मौसी संसार को लाँघकर चली गई हैं, वैसे ही—उससे भी बहुत दूर वह भाग जायगी। वह भागना चिर जन्म के लिये भागना होगा। उसमें फिर पीछे फिरना या लौटना नहीं होगा। इन धूसर दिनों में, इस दुस्सह, दुर्बोध्य अवस्था में वह फिर कभी लौटकर अपने को नहीं फँसावेगी।

जब मालती को अपनी यह निस्संग दारुण अवस्था दुरूह जान पड़ती थी, तब वह बीच-बीच में पुस्तक पढ़ने की चेष्टा करती थी। पढ़ते-पढ़ते उसे जान पड़ता था, वह जैसे इस संन्यासी के आश्रम की रहनेवाली नहीं है; वह जैसे किसी आनंदमय लोक की रहनेवाली है। किंतु पुस्तक बंद करते ही जान पड़ता था, जैसे उसे किसी ने आनंद-मंदिर की चोटी पर से एकदम दुःख के अँधेरे गढ़े में गिरा दिया। उस समय वह प्रायः भगवान् की उपासना करने बैठती थी। उपासना के अंत में उसे जान पड़ता था, जैसे तुषार-शीतल चंदन-सुवासित नारायण के चरणामृत से उसके हृदय की सब ज्वाला बुझ गई है, शांत हो गई है।

उधर विपिन के मन में गुरुजी के प्रति अचल भक्ति और संयम-अभ्यास के प्रति असाधारण आग्रह रहने पर भी उसकी अवस्था क्रमशः अत्यंत शोचनीय हुई जा रही थी। विपिन संसार की अवस्था-परंपरा के घात-प्रतिघात का आघात पा-पाकर, व्यतिव्यस्त हो-होकर, कहीं थोड़ा-सा निश्चित आश्रय पाने के लिये व्यग्र हो उठा था। यहाँ आकर विपिन ने निश्चित आश्रय पाया है, और इसी कारण इस समय उसका मन मालती के अभाव का अनुभव विशेष रूप से कर पाता है। आध्यात्मिक मिलन आदि बड़ी लंबी-चौड़ी बातें सुनने में जैसी भली लगती हैं, वैसी जीवन-क्षेत्र में नहीं। विपिन को कार्यतः साधारण मिलन की अपेक्षा आध्यात्मिक मिलन वैसा लोभनीय नहीं जान पड़ता था। जीवन के विरुद्ध घात-प्रतिघात से चंचल होकर विपिन ने अब तक अपने प्रणय की ओर फिरकर ध्यान से देखने का अवसर नहीं पाया था। इस समय विपिन को निश्चित देखकर, मालती के प्रति उसके हृदय में जो प्रेम था, वह आकार धारण करके, सजीव और जाग्रत् होकर मोहन-रूप से उसकी आँखों के सामने उपस्थित हुआ। विपिन ने काव्य-साहित्य में जो कुछ प्रेम की बातें पढ़ी थीं, वे सब उसे उसके हृदय की तुच्छ प्रतिध्वनि जान पड़ीं। मालती ने जिस समय उसके साथ आश्रम में आना स्वीकार किया था, उस समय विपिन का अंतःकरण पुलकित हो उठा था। किंतु इस समय वह देख रहा है कि मालती का यहाँ आना और न आना, दोनों ही समान हैं। मालती ऊपर की कोठरी में रहती है, और वह ठीक उसी के नीचे की कोठरी में रहता है। केवल एक छत का ही बीच है; किंतु वही कितना बड़ा फ़ासला है! मालती का उत्तर-मेरु में रहना और यहाँ अदर्शनीय होकर रहना एक-सा ही है। सिर के ऊपर, कोठरी के फ़र्श पर, किसी के पैरों की आहट सुन पड़ती है, चीज़-वस्तु उठाने-रखने का शब्द होता है, शायद कहीं खट

मालती के ही अस्तित्व का परिचय है। किंतु वह सब जैसे हृदय के बीच स्मृति का स्पंदन है; देखने की चीज़ नहीं है, केवल अनुभव से समझने की चीज़ है। मालती उसे जितना ही दुर्लभ जान पड़ने लगी, उतना ही उसका आवेगमय चित्त पागल-सा हो उठने लगा। उसे रह-रहकर ख़याल होने लगा कि सामने संपूर्ण जीवन यों ही पड़ा हुआ है—उसका अतृप्त उपवासी जीवन पड़ा हुआ है। वह उसे क्या यों ही, ऐसे ही दुश्छेद्य संकट-जाल से जड़ित कर रक्खेगा, या एक दिन बल-पूर्वक दोनो हाथ से सब जाल-जंजाल दूर करके अपनी भूख मिटावेगा? इस समय मालती को एकदम अपने हाथ से खोकर, उसके पैरों की चाप, उसकी खाँसी का शब्द, चाभी के गुच्छे या चूड़ियों की खनखनाहट और उसकी परछाँही आदि को, कृपण की तरह, चकित दृष्टि से बटोरते फिरना ही विपिन का काम हो उठा। मालती के अस्तित्व का परिचय पाने के लिये विपिन की सब इंद्रियाँ सदा सतर्क रहती थी। जब वह मालती के अस्तित्व का तनिक-सा चिह्न भी देख-सुन पाता था, तो उस समय उसका हृदय आनंद से गद्गद हो उठता था। इस एकांत गंगा-तट के मनोरम उद्यान में, विश्व-संगीत के बीच में वह अपनी आराध्य देवता की ध्यान-मूर्ति के आगे अपने हृदय को धूप की तरह जलाने लगा। एक तरफ़ इस तरह ध्यान लगाने से विपिन अन्य सब ओर अमनोयोगी और अन्य-मनस्क होता जा रहा था। वह नाम-जप करते-करते उदास भाव से चुप हो जाता था, और उसी अवस्था में घंटों बैठा रहता था; ज़रा-सा शब्द सुनते ही चौंक उठता था।

मालती की भी दशा विपिन की-जैसी ही हो उठी थी। मालती निश्चिंत होकर शय्या पर अधिक समय तक पड़ी नहीं रह सकती थी। रात को जब सब लोग सोए होते थे, सन्नाटा छाया होता था, तब वह अकेले उठकर, बरामदे में आकर, खड़ी होती और गंगा की ओर

ताकती हुई अपने मन में सोचती थी कि मेरा जीवन तो इसी धारा की तरह एक ही गति से बह जा सकता था ! विपिन को उसने कितना चाहा था, और अब भी कितना प्यार करती है ! किंतु आज ऐसी अवस्था आकर उपस्थित हुई है कि विपिन के विरह में वेदना-बोध उसके लिये लज्जा की बात हो उठी है। अथच वह विचारक की तरह विचार करके इसके लिये विपिन को अपराधी बनाना भी नहीं चाहती। क्यों वह दो दिन के लिये दैव-दुर्विपाक की तरह ज़मींदार-परिवार में पहुँची थी ? वह बवंडर की तरह विपिन को उसके जन्म के स्नेह-नीड़ से विच्छिन्न कर लाई है; किंतु उसे अपने से भी तो नहीं मिला सकी ! विपिन उसके हाथ से छूटकर एक संन्यासी के अधिकार में जा पड़ा है। इससे तो उसका अपने बाप-दादे के घर में पड़े रहकर मरना सौगुना अच्छा था। जिसका स्वाद उसने जीवन में कभी नहीं जाना था, और अब जानना एक प्रकार से उचित भी नहीं था, उस प्रणय का स्वाद अगर जाना था, तो जानकर ही क्यों न संतुष्ट रही ! वह इस लज्जा को किसी तरह ढक नहीं पाती थी कि उसने विपिन के आगे अपने हृदय को क्यों खोलकर रख दिया ! यह लज्जा अब भी ढकी जा सकती है, अगर विपिन उसे पत्नी-रूप से ग्रहण कर ले। मालती के हृदय की भीतरी तह में विपिन से मिलने की चेष्टा छटपटा रही थी, यद्यपि मालती उसे स्वयं स्पष्ट स्वीकार नहीं करती थी। इसी तरह मालती और विपिन का प्रणय 'बाँध' बाँधकर रोके गए नदी-स्रोत की तरह इधर-उधर से बढ़कर गरज-गरजकर उस बाधा को बहा देने के लिये ज़ोर मार रहा था। कभी-कभी उस बाँध को तोड़-फोड़कर अपने साथ ही सबको बहा देने का विद्रोह-भाव भी उनके हृदय में झलक जाता था।

किंतु गुरुजी सर्वदा इन नए शिष्यों की आध्यात्मिक उन्नति के लिये अत्यंत सतर्क और उत्कंठित होकर इनके ऊपर दृष्टि रखते थे;

बल्कि यों कहो कि पहरा दिया करते थे। इसी कारण शिष्यों की तनिक भी चंचल व्याकुलता या मिलन-चेष्टा उनकी नज़र से छिपी नहीं रहती थी। तब गुरु ने विपिन और मालती को नए-नए नियम-संयम के अनुष्ठान में बाँध रखना चाहा। वह उन्हें समझाने लगे कि यह सब चंचलता कोई नई बात नहीं है। सदा से धर्म के मार्ग में ऐसी ही चंचलता उपस्थित होकर विघ्न डालती आई है। इसी को ईसाई और मुसलमान शैतान कहते हैं। बुद्धदेव ने इसी को 'मार' (काम) कहा है। महादेव की तरह मदन को भस्म किए बिना गौरी नहीं मिलेंगी; शंकर की प्राप्ति के लिये गौरी को भी तपस्या करनी होगी।

विपिन गुरुजी के आदेश को शिरोधार्य करके फिर आत्मदमन की चेष्टा करने लगा। किंतु मालती वैसे आग्रह के साथ गुरुजी के उपदेश को नहीं मानती थी, और उनके बताए विविध नवीन अनुष्ठानों का पालन नहीं करती थी। इस बाग़ी औरत के मारे गुरुजी हैरान हो उठे। उसे शासन करो, तो वह बहस करती है, शास्त्र की दोहाई को आँख मूँदकर मान नहीं लेती, बताए हुए नियमित अनुष्ठानों का पालन नहीं करती। तात्पर्य यह कि अपने ही मन का काम करती है। इन्हीं सब कारणों से विवश होकर गुरुजी को इसकी ज़रूरत जान पड़ी कि वह इस क़ाबू में न आनेवाली शिष्या को अति अधिक मनोयोग के साथ ताकें।

गुरु जितना ही ध्यान देकर मालती के आचरण देखने लगे, उतना ही वह उस तेजस्विनी, तेज़ बुद्धिवाली, सुंदरी युवती का विपिन के प्रति अनुराग और प्रणय-व्याकुलता देखकर मुग्ध होने लगे। क्रमशः प्रेमानंद के मन में थोड़ी ईर्षा देख पड़ने लगी। वह कुश के अंकुर-सी क्षुद्र और न देख पड़नेवाली होने पर भी अत्यंत तीक्ष्ण हुआ करती है। ईर्षा की खटक बड़ी बुरी होती है।

अब गुरुजी के मन में यह भाव पैदा हुआ कि उनके लिये तो किसी का हृदय इस तरह व्याकुल होकर वेदना से स्पंदित नहीं होता! तो क्या विपिन उनसे अधिक असर रखता है? विपिन में क्या उनसे अधिक विशेषता है?

अब तक अखंड सम्मान-संभ्रम पा-पाकर गुरुजी का अहंकार अलक्ष्य रूप से परिपुष्ट हो उठा था। आज मालती ने उस सदा से अभ्यस्त जीवन-प्रवाह में व्यतिक्रम डालकर प्रेमानंद के मन में एक नवीन भाव पैदा कर दिया। उस भाव के प्रभाव से वह किसी तरह अपने को भूल नहीं सकते थे। उन्हें जान पड़ने लगा, मालती का अखंड मनोयोग उन्हीं को मिलना चाहिए; विपिन दग़ा और बेईमानी करके उसे हथियाए लेता है। उनके आगे विपिन की क्या बिसात है? सुंदरी मालती उन्हें छोड़कर विपिन में अपना मन लगाए हुए है, यह उसकी नादानी है। उसकी यह नादानी दूर करना गुरु ने अपना कर्तव्य समझा।

तब मालती का मन विपिन की ओर से एकदम विमुख करके उसे अपनी ही ओर नितांत निविष्ट कराने के लिये गुरुजी ने विपिन के वास्ते कठिनतर नियम की व्यवस्था कर दी, और आप प्रेम मालती के इर्द-गिर्द पहरा देते फिरने लगे। किंतु इस तरह जासूसी करने में गुरु का मन ही उन्हें धिक्कार देने लगा। वह आप ही अपनी नज़र में तुच्छ जँचने लगे। तब वह अनेक युक्तियों की अवतारणा करके अपने मन को प्रबोध देने लगे कि उनका यह काम अनुचित नहीं है; वह कुछ अन्याय नहीं कर रहे हैं, अपने कर्तव्य का पालन ही कर रहे हैं। शिष्य के इस लोक और परलोक के कल्याण के लिये गुरु को ऐसे ही सतर्क होकर उसकी देख-रेख करनी चाहिए। गुरु होना क्या कुछ दिल्लगी है? गुरु शिष्य के पाप-पुण्य का हिस्सेदार होता है! शिष्य को पाप से बचाना गुरु का कर्तव्य है!

इस तरह गुरु का यह काम जब ख़ूब न्याय-संगत प्रमाणित हो गया, तब वह ख़ूबख़ुशी और उत्साह के साथ मालती का पहरा देने लगे।

तैंतालीसवाँ परिच्छेद

गुरु उधर मालती के पीछे इस तरह व्यतिव्यस्त थे, इधर मालती भी अपने लिये अस्थिर हो उठी थी। पहलेपहल इस आश्रम में आने पर यह स्थान उसे अच्छा ही मालूम पड़ता था। गंगा के किनारे ऐसे बढ़िया बाग़ में विचित्र प्रकार के फूल, अपूर्व ढंग की क्यारी, कितने ही ज्ञात-अज्ञात वृक्षों का अद्भुत सौंदर्य, गंगा में प्रति-दिन आने-जानेवाला ज्वार-भाटा, विचित्र प्रकार की नौका और स्टीमर आदि की चाल, सबेरे-शाम गंगा के जल में प्रकाश और अंधकार की क्रीड़ा, मल्लाहों के गीत, हवा को चीरकर आकाश में पहुँचनेवाला स्टीमर का भोंपू देख-सुनकर उसका समय इसी में एक तरह बड़े आनंद से बीत जाता था। मालती मथुरापुर के बीच, विपिन के घर में, सबके छुआछूत के विचार के भय से अकेले बेकार बैठे रहते-रहते खीझ उठी थी। यहाँ आकर, रसोई करके सबको खिला-पिलाकर, सेवा-टहल करके, ठाकुरजी की आरती-पूजा आदि के कामों में सहायता करके उसके हृदय का बोझ बहुत कुछ हलका हो चला था। किंतु गुरु की कृपा से उसे इन सब कामों से अब एकदम छुटकारा मिल गया है। अब उसे हाथ नहीं हिलाना पड़ता, एक तिनका भी उठाना नहीं पड़ता। ऊपर से उतरकर नीचे जाने का भी हुक्म नहीं है।

किंतु मालती ऐसी अद्भुत प्रकृति की स्त्री है कि भूत की-जैसी मेहनत से छुटकारा पाने के इतने बड़े सौभाग्य को हँसते-हँसते प्रसन्नता-पूर्वक नहीं स्वीकार कर सकी। इसके लिये उसके मन में गुरु के प्रति

कृतज्ञता भी नहीं प्रकट हुई। अब वह अपनी कोठरी में बैठे-बैठे दिन-भर गंगा की ओर ताका करती है। उस पार के धुँधले पेड़ों के बीच-बीच परछाँहीं के समान दिखाई पड़ रहे घर किसी चित्र के समान सदा निश्चल, एक ही जगह पर स्थित दिखाई पड़ते हैं। किसी घर में तनिक भी प्राण का परिचय नहीं मिलता। जैसे वे सब घर मालती के ही समान जड़ीभूत और निष्कर्मा होकर बैठे हैं। अकस्मात् अगर किसी दिन मालती देखती है कि किसी घर की छत पर कोई बेटी-बहू खड़ी कपड़े सुखा रही है, या कोई रंगीन कनकैया किसी अदृश्य बालक के हाथ में रहकर उसके मोहन कर-स्पर्श से आनंद के मारे नृत्य-सा कर रही है, तो जैसे उसका सारा शरीर सजीव हो उठता है, मन सजग हो जाता है। किंतु उन दूरवर्ती भवनों के प्राणों का परिचय शीघ्र ही मालती की आँखों के आगे से ग़ायब हो जाता है। उस समय मालती देखती है, नदी के वक्षःस्थल में, अनंत सूत के समान, द्रौपदी के चीर के समान, जल का प्रवाह बहता चला जा रहा है। अंत नहीं है, विश्राम नहीं है, किसी की ओर ध्यान देने की फ़ुरसत नहीं है। जैसे विश्व के साथ उसका कोई संबंध नहीं है, उसे किसी की परवा नहीं है, किसी के सुख-दुःख से उसका कुछ आता-जाता नहीं है—बनता-बिगड़ता नहीं है। उस प्रवाह के ऊपर नावें काली-काली चिड़ियों की तरह, उजले 'पाल' के पखने फैलाकर चुपचाप उड़ती-सी चली जाती हैं; बड़े-बड़े स्टीमर राजहंसों की तरह तीक्ष्ण चीत्कार करते, जल को कँपाते, पंख झाड़ते, दौड़ते चले जाते हैं; ऑफ़िस जाने-आनेवाले बाबू लोग बजरों और डोंगियों पर बैठे तमाखू-सिगरेट पीते हैं, गाना गाते हैं। किंतु यह सब जैसे नित्य-कर्म की आवृत्ति-मात्र हैं, किसी में ज़रा भी सचेतन चेष्टा जगी हुई नहीं देख पड़ती, सब वही एक ही ढंग का 'कल' का-जैसा काम जान पड़ता है।

देखते-देखते शाम हो आती है। मलिन पड़ रहे अस्ताचल-चूड़ावलंबी सूर्य की आभा के स्वर्ण-शोणिताभ प्लावन के बीच चिड़ियों के झुंड-के-झुंड नदी के ऊपर होकर, तोरण-द्वार में पुष्प-पल्लव की मंगल-माला या बंदनवार की तरह, उड़ते चले जाते हैं। मालती यह सब देख-देखकर अपने मन में न-जाने क्या-क्या सोचा करती है। लंबे-लंबे ताड़-खजूर आदि पेड़ों की छाया उसके देखते-ही-देखते पश्चिम से आकर पूर्व की ओर क्रमशः लंबी—बहुत लंबी—होती चली जाती है। उस पार के काले-काले पेड़ों के ऊपर कृष्ण-वर्ण अंधकार धीरे-धीरे घना हो उठता है, सब दृश्य क्रमशः एकाकार और संकुचित हो जाता है, दूर पर दृष्टि काम नहीं करती। तब मालती को चुपचाप अकेले उसी कोठरी में बैठकर समय बिताना पड़ता है। परिणाम-विरस जाड़े के दिन जैसे किसी तरह बीतने ही नहीं आते।

जब मालती को कुछ भी नहीं अच्छा लगता, तब वह पुस्तक खोलकर बैठती है। अक्सर पुस्तक उसकी गोद में आँखों के सामने सिर्फ़ खुली पड़ी रहती है। उसका मन, बंद कमल के आस-पास फिरने-वाले भँवर की तरह, शीशे के पर्दे में बैठे हुए दीपक-देवता के आस-पास चक्कर काटनेवाले पतग की तरह, विपिन की स्मृति के इर्द-गिर्द मँडलाया करता है। कभी-कभी वह अपनी मनोवेदना को कविता का आकार देने की चेष्टा करती है; कभी-कभी बेहोशी की-सी हालत में कविता की जगह विपिन का नाम लिखती चली जाती है। उस नाम का शब्द और रूप जैसे उसके हृदय के ऊपर एक सुमधुर स्पर्श फेर देता है; जैसे अपरिमेय करुणा-रस से आर्द्र दो चंचल नयनों की दृष्टि उसकी गहरी वेदना के ऊपर सांत्वना की वर्षा कर देती है। जैसे तिपहला शीशा लगाकर देखने से बाहर का दृश्य, विचित्र वर्णों से सुशोभित, रंगीन देख पड़ता है, वैसे ही

मालती अतीत की स्मृति को सामने रखकर अपने इस भारू जीवन को रंगीन रूप में देखना चाहती थी।

मालती जो कुछ करती है, उसे गुरुजी चुपचाप दरवाज़े को ज़रा-सा खोलकर, छिपकर, देखा करते हैं। शिकारी बिलाव की तरह दबे पैरों आकर बिना ज़ंजीर के किवाड़ों को कुछ खोलकर मालती के हरएक काम को गुरुजी देखते हैं। बहुधा मालती को गुरु के इस आचरण का पता लग जाता है, आहट मिल जाती है; मगर वह उसकी परवा नहीं करती। प्रेमानंद ने जब खूब समझ लिया कि मालती उनकी इस जासूसी को जानकर भी उसे ग्राह्य नहीं करती, कुछ कहती-सुनती नहीं, तो उनका साहस धीरे-धीरे और भी बढ़ गया।

एक दिन मालती छाती के नीचे तकिया रक्खे, पट पड़ी हुई, कविता लिख रही थी। गंगा के ऊपर होकर आनेवाली ठंडी हवा उस कोठरी में आकर खुली हुई किताब के पन्नों को फर-फर करके नचा रही थी। मालती के अलक-गुच्छ उसकी आँखों के ऊपर आकर उड़ रहे थे। इसी समय प्रेमानंद चुपचाप उस कोठरी में घुस आए, और दबे पैरों एकदम मालती के पास जाकर खड़े हुए। अपने दोनों हाथ पीछे की ओर शृंखलित करके, शरीर का ऊपरी भाग झुकाकर, मालती के कंधों की फाँक से उन्होंने देखा कि मालती कविता लिख रही है। उसके बाद धीरे-धीरे और झुककर, हाथ बढ़ाकर, चील की तरह झपट्टा मारकर, प्रेमानंद ने वह काग़ज़ खींच लिया।

मालती कविता की रचना में तन्मय हो रही थी, इसी से वह प्रेमानंद के यों आने की कुछ भी आहट न पा सकी थी। उसने चौंककर देखा, पीछे प्रेमानंद खड़े हैं। सर्प से डरे या वज्र-पात से चौंके हुए आदमी की तरह वह झटपट उठ खड़ी हुई। अपने केश-पाश और वस्त्र को संयत करके मालती ने जब प्रेमानंद की ओर देखा, उस समय उसकी आँखों से जैसे आग बरस रही थी।

प्रेमानंद ने उस पर ध्यान न देकर हँसते-हँसते कहा —"संन्यासिनी के व्रत का पालन तो ख़ूब हो रहा है राधा-रानी ! संन्यासिनी लिखती हैं, प्रणय की कविता ! नाम जपती हैं, पर-पुरुष का !"

मालती गुरु के इस श्लेष-वाक्य म ऐसी मर्माहत हुई कि उसका जी चाहा वह अपने क्रोध से आप अपने को जलाकर ख़ाक कर डाले।

मालती ने आँख चढ़ाकर, त्योरी बदलकर, कहा—"आप गुरु हैं या चोर ?"

प्रेमानंद ने हंसकर कहा—"मैं गुरु हूँ ! किंतु शिष्य जब चुराकर चोरी करने लगता है, अकर्म में प्रवृत्त होता है, तब गुरु को भी लाचार होकर, चुराकर चोरी पकड़नी पड़ती है। तुम क्या संन्यासिनी के धर्म का पालन करती हो ?"

मालती से अब नहीं रहा गया। उसने चिल्लाकर कहा—"मैं संन्यासिनी नहीं हूँ ! मैं चिल्लाकर कहती हूँ, हज़ार बार कहती हूँ, मैं संन्यासिनी नहीं हूँ ! आप मुझको अपने आश्रम से निकाल बाहर कीजिए। इस तरह मेरा अपमान करने का आपको कोई अधिकार नहीं है।"

मालती दोनो हाथों से मुँह ढककर दुःख के मारे रोने लगी। यह देखकर प्रेमानंद कुछ लज्जित और दुःखित होकर बोले—"रोओ राधा-रानी, रोओ ! अश्रु-जल से सब ग्लानि धो डालो। धर्म की राह बहुत दुर्गम है। उसमें मन के सारे बोझ को पीछे फेककर हलके होकर ही चलना पड़ेगा, नहीं तो लक्ष्य स्थान में पहुँचना दुर्घट हो जायगा। हृदय जब व्याकुल हो, तब भागवत पढ़ो, धर्म-ग्रंथ पढ़ो। कविता लिखने की इच्छा हो, तो भगवान् के चरणों में आत्मनिवेदन करो। इस तरह अपने को वासना-प्रवाह के मुँह में न छोड़ देना।"

मालती मुँह फेरे खड़ी हुई इस माघ-मास के दारुण शीत में भी पसीने से तर हो रही थी। गुरु अधःपात के दुर्गंधमय गढ़े में

कितना गिर गए हैं, यह सोचने में भी उसको दुस्सह लज्जा मालूम पड़ रही थी।

मालती ने मुँह जब फिराया, उस समय उसका मुँह सेंदुरिए आम के रंग का हो उठा था। मालती ने दृढ़ स्वर में कहा—"आप मेरी कोठरी से अभी बाहर निकल जाइए! नहीं मैं अभी चिल्लाकर सब लोगों को जमा कर दूँगी!"

प्रेमानंद ने कुंठित होकर कहा—"अच्छा, तुम्हारा मन इस समय चढ़े-बँधे सितार की तरह हो रहा है, हवा लगने से भी झनक उठता है। तुम ठंडी हो लो। और समय पाकर मैं तुमको समझा दूँगा कि यह तुम्हारा अत्यंत अन्याय है।"

प्रेमानंद पीछे हटते-हटते उस कोठरी से निकल गए।

मालती अपने बिछौने पर गिरकर, तकिए में मुँह छुपेड़कर, उच्छ्वसित होकर रोने लगी।

चवालीसवाँ परिच्छेद

इस घटना के बाद मालती का मन अत्यंत शंकित हो उठा। न-जाने कब प्रेमानंद आकर उसके एकांत-वास में उपद्रव खड़ा कर दें। कोठरी में कहीं कोई ज़ंजीर या खटका नहीं है, जिसे लगाकर मालती निश्चिंत रह सके। मालती ने सोचा, किवाड़े उढ़काकर, संदूक़ वग़ैरह भारी चीज़ें अड़ाकर वह दरवाज़ा बंद रक्खेगी। किंतु उसने देखा, सब दरवाज़े बाहर की ओर ही खुलते हैं। इससे उसका मन ऐसा भय-चकित हो उठा कि उसे एक घड़ी रहना भी निरापद नहीं जान पड़ा। उसे जान पड़ने लगा कि प्रेमानंद की लुब्ध दृष्टि सब ओर से उसे डँसने के लिये तैयार है। कहीं ज़रा भी खटका होने से, ज़रा भी किसी के पैर की आहट सुन पड़ने से मालती डर उठती

है, चौंक पड़ती है। मालती का सोना और विश्राम करना एकदम बंद हो गया। अब वह निराले में ज़रा बैठकर, निश्चित होकर अपनी दशा पर ग़ौर भी नहीं कर सकती।

किंतु चार-पाँच दिन तक मालती को गुरु के दर्शन ही नहीं मिले। वह सर्वदा अपने स्थान में बैठे पूजा-पाठ में ही लगे रहते हैं।

एकाएक एक दिन प्रेमानंद ने विपिन और मालती को बुलवाया। गुरु का आह्वान सुनकर मालती मन में भय से अभिभूत हो उठी। उसने शांति से पूछा—"बहन, वहाँ और कौन-कौन है?"

शांति ने कहा—"योगानंद थे, और मैं थी। योगानंद स्वरूपानंद को बुलाने गए हैं; मैं तुमको बुलाने आई हूँ।"

मालती ने जब जाना कि विपिन भी बुलाया गया है, तब वह निर्भय होकर शांति के साथ गुरु-भवन की ओर चली।

प्रेमानंद कह रहे थे—"देखो विपिन बाबू, मैंने विचारकर देखा, तो मुझे मालूम पड़ा, तुम लोगों के इस आश्रम में रहने से कल्याण न होगा। तुम मालती को लेकर संसाराश्रम में लौट जाओ।"

प्रेमानंद का यह कथन मालती के कानों में पहुँचा। मालती ने आकर, कृतज्ञता से झुककर प्रेमानंद को प्रणाम किया, और उत्सुक होकर एक तरफ़ बैठ गई।

विपिन ने एक बार अपांग-दृष्टि से मालती की ओर ताककर गुरु से कहा—"मैंने कौन अपराध किया है, जो आप मुझे ऐसी कठोर आज्ञा दे रहे हैं? संसार में कहीं स्थान न पाकर ही मैंने आपके चरणों में आकर आश्रय लिया है। मुझे क्या कहीं भी आश्रय नहीं मिलेगा?"

निरुपाय, भाव-प्रवण विपिन की आँखों से आँसू बह चले।

प्रेमानंद स्तब्ध होकर बैठे रहे। फिर कोई बात उनके मुँह से नहीं निकली। बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहकर, मालती वहाँ से उठकर अपनी कोठरी में चली गई। विपिन भी गुरु को प्रणाम करके

उठ खड़ा हुआ। प्रेमानंद ने लंबी साँस लेकर कहा—"देखो विपिन, तुम्हारे मन में वैराग्य उत्पन्न होने पर भी मालती का मन बहुत ही चंचल है। उसका इस आश्रम में रहना कल्याण-प्रद नहीं है! तुम उसे और जगह रखने की व्यवस्था कर दो, तो अच्छा हो।"

विपिन का मन मालती के ऊपर खीझ उठा। मालती ने निश्चय आश्रम के नियमों के प्रतिकूल ऐसा कोई आचरण किया है, जिसके कारण शंकित होकर गुरु उसे आश्रम में रखना नहीं चाहते। विपिन वहाँ से उठकर तेज़ी से मालती की कोठरी के सामने पहुँचा। उसने क्रुद्ध स्वर में पुकारा—"मालती!"

आश्रम में आने के बाद से विपिन एक बार भी मालती के निकट नहीं आया, और न उससे कोई बात ही की। आज उसे पुकारते देखकर मालती का आनंद-सागर उमड़ पड़ा; हृदय-शत-दल विकसित हो उठा। तो शायद गुरुदेव के अनुरोध से संसाराश्रम में फिर जाने के लिये विपिन उसे पुकार रहा है! मालती चटपट बाहर आकर लज्जित, स्मित मुख से विपिन के मुँह की ओर ताकती हुई खड़ी हो गई।

विपिन के मन की सब उग्रता दम-भर में कपूर-सी उड़ गई। उसके हृदय में भी सुख का प्रलोभन दिखाई पड़ा। विपिन से वहाँ खड़े नहीं रहा गया; वह मालती से कुछ कहे-सुने बिना ही लौट चला।

मालती ने विस्मित होकर कहा—"आप मुझसे क्या कहना चाहते थे?"

कुंठित विपिन ने एक बार मालती की ओर फिरकर देखा। फिर ठिठककर उससे कहा—"तुम क्या आश्रम के नियमों का पालन नहीं करती हो?"

मालती को बड़ा क्रोध हो आया। प्रेमानंद ने निश्चय विपिन से

उसके बारे में झूठी-सच्ची बातें लगाई हैं। मालती ने उग्र स्वर में कहा—"नहीं।"

विपिन—"क्यों?"

मालती—"क्यों? मैं नहीं जानती—क्यों।"

इतना कहकर मालती अपनी कोठरी में चली गई।

विपिन ने देखा, मालती फ़र्श के ऊपर बैठकर, पलंग के बिछौने पर सिर रखकर, फूल-फूलकर रो रही है। विपिन बहुत देर तक चुपचाप खड़ा रहा; उसके बाद एक लंबी साँस लेकर चल दिया।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

विपिन ने नीचे उतरते ही देखा, दुर्ग्रह की तरह तारक खड़ा हुआ है। विपिन को देखते ही बड़े-बड़े दाँत निकालकर, हँसकर तारक ने कहा—"क्यों जी शौकीन संन्यासी भाई, अपि तपो वर्द्धते? किंवा—

अपि प्रसन्नेन महर्षिणा त्वं सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय;
कालो ह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षममाश्रमं ते।*

दूसरे आश्रम (गृहस्थाश्रम) में प्रवेश का सामान तो तुम्हारी गाँठ में ही बँधा हुआ पीछे-पीछे फिर रहा है। क्यों न?"

विपिन उसकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर, अपनी कोठरी में जाकर, योगवाशिष्ठ खोलकर पढ़ने लगा—

"ये जो चराचर-चेष्टा-संभूत भोग्य विषय हैं, सो सब अस्थिर हैं।

---

* महर्षि ने प्रसन्न होकर तुम्हें गृहस्थाश्रम में जाने की आज्ञा दी है न? यह तुम्हारी अवस्था इसी योग्य है कि तुम सबका उपकार करने में समर्थ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो। (रघुवंश)

ये आपत्ति की जड़ और पाप के कारण हैं। विषय-समूह का जो परस्पर संबंध है, वह अपने मन की कल्पना-मात्र है।

"शिरा-कंकाल-ग्रंथिशालिनी मांस-पुत्तलिका रमणी के यंत्रवत् चंचल अंग-समूह में, यथार्थ देखा जाय, तो, शोभा की सामग्री क्या है? पुरुष संसार-सरोवर का मत्स्य है, कीचड़ ही उसके विहार का क्षेत्र है। दुष्ट वासनाएँ उस मछली को फँसानेवाली बंसी (काँटा) हैं, और रमणी ही उस काँटे में लगनेवाली आटे की गोली है।

"हे राम, पंडित लोग वासना-क्षय को ही मुक्ति और विषय-वासना की अधिकता को ही बंधन कहते हैं।

"जिसके द्वारा परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है, और पुनर्जन्म की यंत्रणा से छुटकारा मिलता है, जो परम शांति की खान है, वही जीवन कहलाने योग्य है।"

किंतु शास्त्र चाहे जो कहे, रमणी के चित्र को चाहे जैसे कदर्य भाव से चित्रित करे, विपिन को मालती किसी तरह असुंदर नहीं जान पड़ती। मालती-रहित जीवन उसे जीवन कहलाने योग्य ही नहीं जान पड़ता। अभी वह मालती को रोते देख आया है। वे मालती के गरम आँसू एक-एक करके गिरकर विपिन के हृदय-पात्र में मुक्तामय वर-माल्य के आकार में संचित हो रहे थे।

छत की ओर नज़र लगाकर वह सोचने लगा, इस ऊपर की कोठरी में ही मालती है। इच्छा करने से वह उसे पा सकता था। अब भी पा सकता है। किंतु उसने यह सुख अपनी इच्छा से ही त्याग कर दिया है। इसी कारण इस वेदना के भीतर भी वह त्याग के एक गर्व का अनुभव कर रहा था।

तथापि शास्त्र के उपदेश, अनुशासन और वैराग्य के गर्व को अग्राह्य करके उसका चित्त केवल मालती की ही ओर दौड़ लगा रहा था कभी-कभी उसके मन में यह प्रयास ज़ोर पकड़ता था कि यहाँ से

तरह रहने की अपेक्षा मालती से ब्याह करके कहीं छुकी काके पेट पालना भी अच्छा था। निस्संग भाव से अकेले बैठकर योगवाशिष्ठ आदि वैराग्य के ग्रंथ के पढ़ने लायक विपिन के मन की अवस्था न कभी थी, और न कभी होगी।

विपिन सोचने लगा—मालती मेरे इस तरह एक साधारण प्रश्न करने ही से क्यों रोने लगी? क्या मालती अब भी मुझे प्यार करती है? अभी तक क्या उसका मन मेरे ऊपर उसी तरह अनुरक्त है? मैंने जो उसके साथ अन्याय का व्यवहार किया है, उसे क्या वह क्षमा कर सकी है? मैं जैसे उसके बिना रह रहा हूँ, वैसे ही क्या उसके हृदय में भी प्रणय की आग जल रही है? हाय अभागिन! तू क्यों नवकिशोर से ब्याह करके उसके पास नहीं रही? उससे तू अगर ब्याह कर लेती, तो तेरी चिंता इस तरह मेरी साधना में विघ्न न डालती—मुझे घेरे न रहती। पहले मैंने सोचा था कि मालती मेरे पास रहेगी, तो मैं निश्चित मन से धर्म-साधना कर सकूँगा। किंतु कार्य-क्षेत्र में उतरकर देखता हूँ, वह मेरा भ्रम था। परम प्रलोभन की सामग्री पास रखकर तपस्या में मन लगाने के लायक दृढ़ता मुझमें नहीं है, यह स्वीकार करने में कोई लज्जा नहीं। बल्कि इसकी अपेक्षा मालती अगर नवकिशोर से ब्याह कर लेती, तो उसे, अप्राप्य समझकर, मैं शायद भूल भी जाता, निश्चित भी हो सकता। किंतु क्या सचमुच ही मैं उसे भूलकर निश्चित हो सकता? वह तो और भी असह्य होता! दूर हो यह संन्यास। संन्यास ग्रहण करके धर्म-साधना करना मेरा काम नहीं है। मैं आज ही जाकर गुरुजी से कहता हूँ कि मालती को पाए बिना मेरा यह लोक और परलोक, दोनो नष्ट हो जायँगे।

इस तरह सोचते-सोचते विपिन का हृदय मालती के अनुराग से भर गया। वह एक लंबी साँस लेकर गुरुजी की खोज में चला

उसने गुरुजी के स्थान में जाकर देखा, वह आसन पर स्तब्ध होकर आँखें मूँदे बैठे है।

विपिन जो इरादा पक्का करके आया था, वह गुरु के सामने पहुँचते ही शिथिल हो गया। वह इस मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य से कैसे कहे कि अब वह संन्यास-साधना नहीं कर सकता, उसे पत्नी-रूप से मालती मिलनी ही चाहिए। विपिन का मुख लज्जा से लाल हो उठा। वह अप्रतिभ भाव से, वहाँ से, लौटकर धीरे-धीरे अपनी कोठरी में पहुँचा, और गीता खोलकर पढ़ने लगा—

असशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्;
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते।
यतो यतो निश्चलति मनो निश्चलमस्थिरम्;
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।*

विपिन ने अवश चित्त को वश में लाने के लिये आगामी माघी पूर्णिमा से निजन-निवास का इरादा कर लिया। जो संन्यासी निर्जन में जप-आराधना आदि करना चाहे, उसके लिये आश्रम-वाटिका के चारो कोनों में चार गुहा-गृह बने हुए है। वह उन्ही में से एक घर में बंद रहता है। आश्रम का एक कोई निर्दिष्ट संन्यासी उसे कुछ आहार और जल दे आता है। शीघ्र ही आश्रम में यह ख़बर फैल गई कि विपिन निर्जन गुहा में रहकर तप करना चाहता है। विपिन के निर्जन-वास की ख़बर सुनकर मालती बहुत ही डरी और घबराई।

---

* हे महाबाहु अर्जुन, यह चंचल मन अवश्य ही दुर्निग्रह है, इसका निग्रह कष्ट-साध्य है। अभ्यास और वैराग्य से ही इसका दमन हो सकता है। अस्थिर, चंचल मन जहाँ-जहाँ जाय, वहाँ-वहाँ से खींचकर, आत्मा में लगाकर इसे वश करना चाहिए।

छियालीसवाँ परिच्छेद

आश्रम के सब चेली-चेले लक्ष्य कर रहे थे कि कई दिन से गुरु का मन अत्यंत क्षुब्ध और चंचल हो रहा है। वह सदा चिंताकुल रहते हैं। दिन-रात के बीच अधिकांश समय वह स्तब्ध भाव से आँखें मूँदे बैठे रहकर बिताते हैं। रह-रहकर ठाकुरद्वारे में जाकर पूजा करने लगते हैं। पहले की तरह अब उनके मुख पर हर घड़ी वह मनोहर, मंद मुसकान नहीं दिखाई पड़ती। वह अब समवेत शिष्य-मंडली को पहले की तरह मीठी बातों के द्वारा उपदेश नहीं देते। चेली-चेले नियम और अभ्यास के अनुसार नित्य सबेरे-शाम आकर उनके आसन पर जमा होते हैं, तो गुरुजी जैसे व्यस्त और व्यग्र-से हो उठते हैं। कोई कुछ प्रश्न करता है, तो नीरस भाव से उत्तर देते-देते एकाएक बीच में रुककर अनमने-से हो जाते हैं, अथवा चंचल भाव से उठकर अन्यत्र चले जाते हैं।

यह देखकर चेली-चेले अब उनके पास अधिक नहीं जाते; सभी भय के मारे दूर-ही-दूर रहते हैं। दो-चार दिन के बाद, एक दिन एकाएक प्रेमानंद अपने सब चेली-चेलों को बुलवाकर उन्हें शास्त्र सुनाने लगे। उस दिन से यही नियम हो गया। किसी दिन वैष्णव-भक्तों के पद सुनाते थे। किसी दिन गीता, किसी दिन योगवाशिष्ठ, किसी दिन भागवत सुनाते और समझाते थे। किंतु किसी दिन मालती को नहीं बुलवाते थे। मालती भी गुरु के श्री मुख से वैराग्य का उपदेश सुनने के लिये उतना व्यग्र नहीं थी।

मालती समझ गई थी कि गुरु उसे बराकर, उससे अलग रहकर चलना चाहते हैं। प्रेमानंद की कोठरी से ठाकुरद्वारे में या नीचे जाते समय मालती की कोठरी के सामने से ही जाना सहज था। मालती देखती थी, प्रेमानंद अभ्यास-वश उधर से निकलकर एका-

एक ठहर जाते थे, और लौटकर दूसरी तरफ़ के बरामदे से घूमकर ठाकुरद्वारे में या नीचे जाते थे। मालती समझती थी कि वह गुरु होकर उस दिन जो मालती के घर में गुप्त रूप से जासूसी करने गए थे, उसी लज्जा के मारे अब उसके सामने नहीं जा सकते। मालती जब तक उनके उस व्यवहार को क्षमा करके ख़ुद जाकर उनके मन की ग्लानि को धो न देगी, तब तक वह उसके आगे पहले की तरह सहज भाव से उपस्थित न हो सकेंगे। किंतु प्रेमानंद की यह लज्जा की दीनता दूर करने के लिये मालती के मन में कुछ विशेष आग्रह नहीं होता था। प्रेमानंद जिस समय शास्त्र सुनाते हैं, उस समय उनके पास उपस्थित होने से विपिन के दर्शन मिल सकने का प्रलोभन प्रबल होने पर भी वह वहाँ नहीं जाती थी। प्रेमानंद की दृष्टि के सामने विपिन से चार आँखें होना भी उसे वांछनीय नहीं जान पड़ता था।

विपिन भी उधर मालती के दर्शन का सुयोग समझकर सबसे पहले ही उस पाठ-सभा में आकर उपस्थित होता था, और मालती को वहाँ न देखकर, लंबी साँस छोड़कर, सबके पीछे उठकर चला जाता था। उसके दिन एक-एक करके बहुत शीघ्र बीते जा रहे थे। उसे माघी पूर्णिमा से फाल्गुन की पूर्णिमा तक निर्जन-निवास करना होगा। वह कौन-सा पाथेय या अवलंबन साथ लेकर यह एक महीने का समय वहाँ बितावेगा? वहाँ कंदरा में बंद होने के पहले अगर केवल एक बार भी वह मालती को अच्छी तरह देख ले सकता, तो उसके हृदय में बल आ जाता, उसे संतोष हो जाता!

आज माघी पूर्णिमा का दिन है। आज चंद्रोदय के साथ-साथ विपिन को उस कंदरा में जाकर बंद होना पड़ेगा। युद्ध-यात्री भीरु सैनिक की तरह उसका मन किसी तरह जाना नहीं चाहता था किंतु अब वहाँ गए बिना भी नहीं बनता। उसका यह दुराव



वह चित्र लेने के लिये हाथ बढ़ाया।

निष्प्रभ हो पड़े थे। वह आज जैसे अपराधी हैं। उन्होंने विचारकों के सामने अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये विपिन का चित्र सबको दिखाकर कहा—"संन्यासिनी इस चित्र को छाती से लगाए बैठी रो रही थीं! चोर कौन है?"

कैसी लज्जा की बात है! मालती ने प्रेमानंद को इतना बड़ा नीच और कायर कभी नहीं समझा था कि वह इतने आदमियों के सामने इस तरह एक स्त्री का अपमान कर सकते हैं! कैसी शर्म की बात है! एक संन्यासिनी एक संन्यासी की तसवीर छाती से लगाकर उसके लिये रो रही थी! इस आश्रम में ऐसी अघटन घटना होते तो जमा हुए सन्यासी-संन्यासिनियों में से किसी ने कभी नहीं देखी! वे सब मालती की ओर घृणा-पूर्ण वज्र-दृष्टि डालकर, अवाक् होकर, चुपचाप चल दिए। मालती धूप में मुरझाई हुई लता की तरह विवर्ण होकर उसी जगह दोनों हाथों से मुँह ढककर बैठ गई। खड़ा रहना भी उसके लिये कठिन हो गया। प्रेमानंद विपिन का चित्र लेकर अपनी कोठरी में जा छिपे।

उधर विपिन गंगा में स्नान करके, नवीन गेरुआ वस्त्र पहनकर, एक हाथ में कमंडलु और दूसरे हाथ में योगवाशिष्ठ लिए, कंदरा में बंद होने जा रहा था। इसी समय संध्या के वायु को विदीर्ण करके मालती का आर्त स्वर उसके कानों में पहुँचा—"चोर!"

विपिन का ख़ून जोश से गरम हो उठा; चरण चंचल हो उठे। जी चाहा, दौड़कर, मालती को दोनों हाथों से हृदय से लगाकर कहे—तुम डरो नहीं, मैं यहाँ मौजूद हूँ!

योगानंद भी उसके साथ था। उसने कहा—"भाई, इस समय तुम्हारा चित्त-विक्षेप न होना चाहिए। तुम कंदरा में चलो।"

विपिन ने एक बार पीछे फिरकर देखा। उसके बाद एक लंबी साँस छोड़कर वह कंदरा की ओर आगे बढ़ने लगा।

इसी समय दौड़ती हुई मालती वहाँ पहुँची, और विपिन की राह रोककर, चिल्लाकर कहने लगी—"मुझे असहाय अवस्था में छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं? आप गुरु मानकर जिसकी पूजा कर रहे हैं, वह एक लंपट, चोर है!"

विपिन का मुँह सूखकर फीका पड़ गया। उसने शून्य, भीत दृष्टि से मालती की ओर देखकर कंपित, अस्फुट स्वर में पूछा—"हुआ क्या?"

प्रमानंद आकर कहने लगा—"संन्यासिनी एक परपुरुष का चित्र छाती से लगाए रो रही थी, मैंने वह इनसे ले लिया है।"

विपिन जैसे बहुत दिन पहले ही मर चुका था, इस समय जो कुछ था, सो उसका शव-मात्र था।

मालती ने तीव्र स्वर में विपिन से कहा—"आप अपने गुरु से कहिए कि मेरी चीज़ मुझे फेर दे।"

विपिन की सूखी हुई जिह्वा से बड़े कष्ट से निकला—'किसका चित्र है?"

मालती का चेहरा लज्जा और रोष से तमतमा उठा। उसके ऊपर अस्त सूर्य की अरुण आभा और उदय हो रहे चंद्रमा की कांति आकर पड़ी! मालती ने सिर झुकाकर कुंठित स्वर में कहा—"यह मैं नहीं जानती। आप दिला दीजिए।"

विपिन लंबी साँस छोड़कर धीरे-धीरे बढ़ा, और गुहा-गृह के भीतर चला गया।

मालती ने वहीं राह की धूल पर लोटकर धूल से भी अधिक धिक्कृत, उपेक्षित अपने अस्तित्व को विलीन कर देना चाहा। ऐसी ही लज्जा के मारे जानकी धरती में समा गई थी। जो अपमान स्त्री का चरमतम आवरण हरकर उसे सारे संसार की निष्ठुर, कौतूहल-दृष्टि के बीच खड़ा कर देता है, यह वही अपमान था। उसी दारुण अप-

मान की लज्जा से व्यथित मालती अपने आँसुओं से राह की रज को भिगोने लगी।

किसी ने दो स्नेह-कोमल हाथों से उसे उठाकर करुण-स्निग्ध-स्वर में कहा—"बहन, तुम उठ आओ।"

मालती ने चटपट उठकर, शांति की छाती में मुँह छिपाकर अपनी लज्जा को ढका। शांति उसको पुरुषों की परुष दृष्टि से हटा ले गई। माघी पूर्णिमा का चंद्र उस समय सारे आश्रम को अपनी उज्ज्वल कांति से श्री-संपन्न बनाए हुए था।

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

विपिन मालती के प्रति उपेक्षा दिखाकर गुहा के भीतर चला तो गया, लेकिन अपनी हृदय की ज्वाला को कंदरा के बाहर न छोड़ आ सका। गुहा के भीतर का गहरा अंधकार उसकी छाती के ऊपर, एक बहुत बड़ी, काले पत्थर की शिला के समान, अपना बोझ डालने लगा। कंदरा के भीतर वह अकेला था, इसी से हज़ारों तरह की चिंताएँ उसके अंतःकरण को उन्मथित करने लगीं। मालती किसका चित्र छाती से लगाए रो रही थी? मालती के लिये ही विपिन मा-बाप के स्नेह-स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ है। निराश्रय संन्यासी होकर भी वह तो मालती की चिंता को नहीं छोड़ सका। वह निर्जन कंदरा में तपस्या और मन का निग्रह करने के लिये आकर भी केवल मालती का ही ध्यान कर रहा है। और मालती? वह किसके ऊपर अनुरक्त है, किसके विरह की व्यथा में उसकी इतनी आकुलता है? वह अश्रु-जल से किसकी स्मृति का तर्पण करती है? विपिन का मन अनेक प्रकार के संदेहों और आशंकाओं से पीड़ित होने लगा। क्यों न वह जान आया कि वह चित्र किसका है? विपिन बिच्छू के डसे हुए

बंदी की तरह छटपटाने लगा। इतना कष्ट, ऐसा कष्ट, उसने जीवन-भर में कभी नहीं पाया। विपिन ने गीता-पाठ में मन लगाया—

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमाँश्चरति निःस्पृहः ;
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति। *

मालती के हृदय को भी इस घटना से बड़ी व्यथा पहुँची। विपिन उसे अपमान के मुख में, इस तरह असहाय अवस्था में, छोड़कर अनायास चल दिया! उसे मालती का कुछ भी ख़याल नहीं हुआ—दया भी नहीं आई! पुरुष-मात्र ही क्या ऐसे निर्मम, ऐसे निष्ठुर, ऐसे हृदय-हीन हैं! किसी पुरुष ने उसके प्रति कुछ भी करुणा नहीं दिखाई। शांति अगर न होती, तो इस समय उसकी लज्जा को कौन ढकता? वह बड़ा विश्वास करके विपिन के साथ आई थी। नवकिशोर अगर होता, तो वह उसका इतना अपमान कभी चुपचाप न देख सकता। मालती को नवकिशोर के ऊपर बड़ा क्रोध हुआ—क्यों उसने ज़बरदस्ती विपिन को रोक नहीं रक्खा! क्यों उसने विपिन को इस तरह बह जाने दिया!

गुरु प्रेमानंद की दशा और भी शोचनीय हो उठी। वह आप अपने ऊपर शंका करने लगे। उन्हें अपना विश्वास नहीं रहा, इसलिये आप अपने ही आगे संकुचित, दुर्बल और कुंठित हो गए। गुरु ने इरादा किया कि वह तीर्थ-पर्यटन करने जायँगे। विलंब नहीं, शीघ्र ही।

गुरु के बहुत समय के लिये तीर्थ-दर्शनार्थ जाने की ख़बर से सब चेली-चेले उदास हो उठे। शांति हर घड़ी गुरु के पास ही रहकर उनकी सेवा करती है। मालती फिर अकेली रह गई। किंतु इस समय गुरु के बाहर जाने की ख़बर पाकर मालती का चित्त कुछ ठिकाने था; एक तरह का छुटकारे का आनंद उसको प्रसन्न बनाए हुए

* जो पुरुष ममताहीन, अहंकारशून्य, निःस्पृह होकर सब कामनाओं को छोड़ देता है, वह शांति को पाता है।

था। कम-से-कम कुछ दिन के लिये प्रेमानंद आश्रम में नहीं रहेंगे, विपिन कुछ दिन के लिये भी प्रेमानंद के प्रभाव से छूट जायगा, इसी सभावना मे मालती का मन प्रफुल्ल हो उठा था।

कल सबेरे प्रेमानंद आश्रम से यात्रा करेंगे। वह दिन-भर ठाकुर-द्वारे में बठे ध्यान-पूजा करते रहे। शिष्यों ने सब यात्रा की तैयारी कर दी। दिन-भर गरु ने कुछ भोजन नहीं किया। सायंकाल को भोजनोपरांत सब चेलों-चेलों को आशीर्वाद देकर, उनसे बिदा होकर, गुरु अपने आसन में आ बैठे। केवल मालती आशीर्वाद लेने या गुरु को बिदा करने नही आई। विपिन उस गुहा-गृह में ही बंद था। न-जाने काहे की एक उत्तेजना गुरु के चित्त को मथे डाल रही थी—उसके घात-प्रतिघात से उनका मुख-मडल प्रदीप्त और अवस्था विशेष चचल हो उठी थी। प्रेमानंद दोनो हाथ शृंखलित भाव से छाती पर रखकर बरामदे में इधर-उधर टहलने लगे।

रात अधिक बीत गई; मगर वह टहलते ही रहे। अपनी दालान से लाइब्रेरी की कोठरी तक और उस कोठरी से अपनी दालान तक उनका आना-जाना जारी था। उनका मुख गंभीर, दृष्टि उदासीन, लक्ष्य-हीन और गति मंथर थी।

स्तब्ध गहरी रात थी, सन्नाटा छाया हुआ था। दालान में एक घड़ी खट-खट करके सेकेंडों की शीघ्र गति की सूचना दे रही थी। पास की कोठरी मे सो रही मालती के साँस लेने का शब्द भी सुन पड़ रहा था। उधर संगमरमर की सीढ़ियों पर गंगा-जल के छलकने का मृदु शब्द, प्रणयिनी के कान में प्रेम-गुंजन की तरह, हिम-पूर्ण ठंडी हवा के द्वारा वहाँ तक पहुँच रहा था। गंगा के उस पार एक कुत्ते के भूकने का शब्द भी इस पार सुनाई दे रहा था। और कहीं कोई शब्द नहीं था। प्रेमानंद टहलते-टहलते स्थिर होकर बार-बार यही सुन रहे थे।

एकाएक मालती की कोठरी के शृंखला-हीन किवाड़े खुल गए। लाइब्रेरी की कोठरी के लैंप की रोशनी की स्वर्ण-वर्ण किरणें, सुनहले तारों से बुने हुए जाल की तरह, किवाड़ों की दर्ज से मालती की कोठरी में जाकर, मालती के मुँह पर पड़ी!

प्रेमानंद ने ठिठककर मुग्ध दृष्टि से देखा, मालती सो रही है। मुलायम तकिए में उसका सिर धँस गया है, छोटी-छोटी अलकें मुख-पद्म के चारो ओर भ्रमर-राशि के समान हवा से उड़ रही हैं। उस मुख-मंडल पर लैंप की सुनहली आभा जैसे मूर्च्छित हो पड़ी है। जैसे जल के ऊपर एक कमल का फूल अरुण-प्रकाश से पूर्ण होकर विकसित हो उठा है। छाती के ऊपर शिथिल वस्त्र श्वास के आने-जाने से लहरा रहा है। जान पड़ता है, जैसे उषा-रानी कुसुम-वन में निद्रा-मग्न हैं।

प्रेमानंद सतृष्ण दृष्टि से उस परम सुंदर रूप को निहारने लगे। जितना ही वह मुख उनके हृदय के भीतर अंकित और परिस्फुट हो उठने लगा, उतना ही उनका सारा शरीर और मन जैसे क्रमशः अवश होकर चारो ओर की हलकी हवा में मिल जाने लगा। विश्व-जगत् के बीच जैसे और कुछ भी नहीं रह गया, रही केवल उनकी स्थिर दृष्टि और वह निद्रा-मग्न सुंदर मुख। उसकी ओर ताकते-ताकते प्रेमानंद के मन से विपिन, गुरु-भाव, आश्रम, शिष्य-शिष्या, यहाँ तक कि सारा विश्व-ब्रह्मांड लुप्त हो गया। उन्हें जान पड़ने लगा कि अनंत देश-काल के असीम सौंदर्य के शत-दल के बीच में केवल वही भक्त उपासक मधु-लुब्ध भ्रमर की तरह अकेले खड़े हैं, विश्व-सौंदर्य की सुरा का सार, चुन्नी की प्याली के समान मालती के अधर-पुट में, उन्हीं के लिये संचित है। प्रेमानंद का जी चाहने लगा कि वह आजन्म की उन्मत्त पिपासा को मिटाकर मतवाले हो उठें। कौन कहता है कि इस प्रदीप्त सौंदर्य के भीतर रहनेवाला प्रणय-

कोमल हृदय इस गहरी बात में चुंबन-चिनगारी पाकर, दियासलाई से बिजली की बत्ती या कपूर की तरह, प्रज्वलित न हो उठेगा? प्रेमानंद का हृदय ज़ोर से धड़कने लगा, मन आग्रह और अपेक्षा के बीच झोंके खाने लगा। जी चाहने लगा कि उस मोम के समान नरम, नमनीय, कमनीय, सुंदर, रमणीय रमणी को दोनो हाथों से एकदम अपने हृदय से लगा ले—इस नीरव, निस्तब्ध निशा में सौंदर्य के चरणों में, अपने को संपूर्ण रूप से अर्पण कर दें।

इसी समय, नींद की ही हालत में, प्रमानंद की प्रतप्त वासना के सगत आक्रमण का अनुभव करके, अप्रसन्न भाव से मुँह फेरकर, मालती ने करवट बदली। आँखों में रोशनी की झलक लगने से वैसे ही वह गड़बड़ाकर बिछौने पर उठ बैठी। सामने प्रेमानंद को देखते ही वह एकदम पलँग से फाँदकर कोठरी के एक कोने में खड़ी हो गई। आँखों में रोशनी लगने से, अचानक आँखें खुल जाने से, उठकर, सामने ही प्रेमानंद को स्तब्ध, लुब्ध भाव से खड़े देखकर, मालती का सिर चकराने लगा—वह मूर्च्छितप्राय अवस्था में खड़ी-खड़ी थर-थर काँपने लगी।

उसे जान पड़ रहा था, अंधे के घर में आग लगने से वह जैसे उस जल रहे घर से, निराश्रय होने के दुःख और मुक्ति के आनंद के मारे नई विपत्ति की आशंका न करके, पागल की तरह दिग्विदिक्-ज्ञान-शून्य होकर, चिल्लाते-चिल्लाते भागता है, वैसे ही वह भी उस आश्रय को छोड़कर भाग सके, तो उसकी जान बचे।

प्रेमानंद ने मालती की ओर देखा, उसकी दोनो आँखें राजसं के चाकू की धार की तरह चमक रही हैं, और मानो उनकी छाती का ख़ून चूसने के लिये उद्यत हैं। प्रेमानंद वहाँ नहीं ठहर सके; सीधे अपनी दालान को भाग गए।

अपनी दालान में बहुत देर तक स्तब्ध भाव से खड़े रहकर फिर

बरामदे में आकर प्रेमानंद ने पुकारा—"योगानंद, शांति, मेरी तीर्थ-यात्रा की तैयारी करो।"

उस समय बाहर उषा के गुलाबी दुपट्टे के किनारे में सुनहली पाड़ बुनी जा रही थी। तालाब के जल में पेड़ों की हरी छाया पड़ने से वह तरल पन्ने के फ़र्श का तरह झलक रहा था। छोटे-छोटे श्वेत मेघ-खंड आकाश-भर में फैले थे। उनके ऊपर जिस समय प्रभातारुण का चुंबन-राग फूट उठ रहा था, उस समय जान पड़ता था, जैसे आकाश के विस्मय और आनंद से रोमांच हो रहा है। क्रमशः प्रभात के आने का संवाद विश्व-भर में फैलने लगा। पेड़-लता आदि ने जैसे अपने हाथ-पैर फैलाए, पत्ते कांप उठे। कितने ही नाम-गोत्र-हीन फूल सूर्य के लिये अर्घ्य-सा सजाकर खिल उठे। वायु को न-जाने कितनी विचित्र, मिश्र सुगंधियों ने सुवासित कर दिया। बड़ी-बड़ी, नीले-पीले रंग की तितलियाँ, आकाश से बरस रहे आनंद की तरह, फूलों पर नाचती हुई फिरने लगीं। तोते झुंड-के-झुंड उड़ते हुए जाने लगे। जान पड़ता था, जैसे हरा दूब के फ़र्श आकाश में उड़ रहे हैं। पल्लवों का मर्मर-शब्द, वायु के झर्राटे, गंगा का कल-नाद, कौओं का कलरव, सबके मिलने से जान पड़ रहा था, जैसे एकतान संगीत में प्रभाती नौबत बज रही है।

प्रेमानंद की दृष्टि इस परिपूर्ण सौंदर्य की ओर नहीं थी। वह तीर्थ-यात्रा के लिये जाने का उद्योग करने में व्यग्र थे।

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

प्रेमानंद मालती के घर से चले गए, तब भी कुछ देर तक वह अपमान और लज्जा से स्तंभित, स्पंद-हीन होकर खड़ी रही। उसके बाद दावानल में जल रहे वन से मृगी जैसे भाग खड़ी होती है, वैसे ही

मालती भी त्रास-चंचल हृदय को दोनो हाथों से थामे कोठरी से निकलकर उस भवन से बाहर हो गई। फुर्ती और तेज़ी के साथ दबे-पैरों चलते-चलते विपिन की कोठरी के सामने पहुँचकर वह दम-भर के लिये ठिठक गई। मगर वैसे ही उसे ख़याल आया कि विपिन तो गुहा-गृह में बंद है, कोठरी में नहीं है। और, वह कोठरी में होता ही, तो क्या था? अभी दो दिन हुए, जब वह मालती के पास जाकर भी उसके दुःख-निवेदन को अग्राह्य करके चला गया। जो उस दिन ऐसी अवहेला करके चला गया, वह आज ही क्यों सुनता? जो उपेक्षा करता है, उसके आगे भिक्षा की दीनता स्वीकार करना ठीक नहीं। किंतु जगत् में मालती का आश्रय भी तो और कोई नहीं है! न हो, गंगा-माता की गोद तो है। गंगा में डूब मरना क़बूल है, लेकिन विपिन से दया की भिक्षा माँगना नहीं!

यही सोचकर मालती झपटी हुई बाग़ में पहुँची। अँधेरी, जाड़े की रात थी—आकाश कुहासे से ढका था; बर्फ़ पड़ने की-सी ठिठरानेवाली ठंडक थी। बाग़ की झाड़ियाँ और छोटे पौदे अंधकार में, काले-काले दानवों की तरह, खड़े हुए थे। मालती ने एक बार आकाश की ओर देखा। एक तारा पूर्व-आकाश में, बड़े भारी अंगारे की तरह, दमक रहा था। संपूर्ण चराचर विश्व, शीत के भय से कुहासे की चादर सिर से ओढ़े, आकाश के असंख्य दीपकों को बुझाकर, निश्चिंत भाव से चुपचाप सो रहा था। कहीं भी ज़रा-सी जीवन की आहट नहीं पाई जाती थी। गंगा का जल नक्षत्रों के क्षीण प्रकाश में, अजगर की चिकनी, काली केंचुल की तरह, जगह-जगह चमक उठता था। तालाब का काला जल, भारी दानव के एक बड़े नेत्र की तरह, सजल दृष्टि से मालती की ओर ताक रहा था, जैसे उसे आँख के इशारे से बुला रहा था। मालती ने सोचा, ऐसी सजीव गंगा के रहते तालाब में डूबकर क्यों मरूँ? जीवन दूँ, तो जीवन-

स्रोत में ही। वह चटपट फुर्ती के साथ गंगा की ओर चलने लगी। किंतु एकाएक ठिठककर खड़ी हो गई, और उधर से लौटकर भागी। उसने देखा, इतने सबेरे कोई आदमी गंगा-स्नान करके सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ ऊपर की ओर आ रहा है। मालती एक दौड़ में एकदम बाग़ से निकलकर सड़क पर पहुँच गई।

गाँव की राह निर्जन और नीरव थी। बीच-बीच में राह के कुत्ते भूक उठते थे। अकेले उस राह में चलते-चलते मालती के रोंगटे खड़े हो आए। पग-पग पर विपत्ति की आशंका उसे चौंका देने लगी। किंतु वह जो प्रेमानंद के आश्रम से मुक्ति पा गई थी, उस सुख के आगे उसे नई विपत्ति की संभावना और भय भी तुच्छ मालूम पड़ रहा था। वह नहीं जानती कि कहाँ जा रही है, या कहाँ जाना चाहती है। तथापि वह जो सबसे छिपकर आश्रम के बाहर निकल आई, इससे उसे बड़ा आनंद था। बाहर की हवा लगने से उसके हृदय का बोझ बहुत कुछ हलका हो गया। माघ-महीने की, सबेरे की ठंडी हवा का हिम-तीव्र निष्ठुर स्पर्श भी उसे आराम देनेवाले पलँग की नींद से बढ़कर सुखदायक जान पड़ रहा था। वह जैसे ज़मीन पर उड़ती चली जा रही थी।

वह नहीं जानती कि किधर जाना चाहिए। अज्ञात विपत्ति न-जाने उसे कहाँ ले पटकेगी। तथापि वह शुक्र-तारे को सामने रखकर बराबर चली जा रही थी। वह जानती थी कि शुक्र-तारे की सीध पर चलने से वह, चाहे जहाँ पहुँचे, आश्रम से दूर पहुँच जायगी। मालती साँस रोके चली जा रही थी; कभी-कभी फिरकर पीछे भी देख लेती थी कि कोई आ तो नहीं रहा है, कोई उसका पीछा तो नहीं कर रहा है। उसे जान पड़ रहा था, शायद इस समय आश्रम में उसकी खोज हो रही होगी; लोग लालटेनें लिए उसको खोजने के लिये इधर-उधर दौड़ रहे होंगे। वे लोग आते ही होंगे; वह

उनके हाथ में पड़ना ही चाहती है ! हरएक झाड़ी उसे चौंका देती थी। राह के किनारे कोई साधारण शब्द सुन पड़ने से भी उसके मन में आतंक छा जाता था। जितनी ही देर होने लगी, उतना ही उसे जान पड़ने लगा कि उसे खोजनेवाले लोग शायद उसके पास तक पहुँच गए, अभी वे आकर उसे पकड़ लेंगे, लांछना करके खींचते हुए आश्रम में ले जाकर बंद कर देंगे, फिर प्रेमानंद की गर्जना और अवन्य व्यवहार उसे सहना पड़ेगा। यह ख़याल जितना ही ज़ोर पकड़ता था, उतना ही वह तेज़ी के साथ पैर बढ़ाती चली जाती थी। चलने का अभ्यास न रखनेवाले उसके पैर थककर दर्द करने लगे, राह के कंकड़ों से उसके कोमल पैर क्षत-विक्षत हो गए, तो भी उसका चलना बंद नहीं था।

धीरे-धीरे आकाश साफ़ हो चला, पौ फट गई। क्रमशः अंधकार का पर्दा पूर्व-आकाश से उठने लगा। कोयल जगकर आम्र-कुंज में तंद्रा-विजड़ित कंठ से कूक उठी। दोयल, श्यामा, बुलबुल आदि पक्षी प्रभात-समय जगदीश की वंदना का गीत गाने लगे। राह के किनारे घास के ऊपर ओस की बूँदें अरुण-चुंबन से हँस उठीं। किंतु उस समय भी राह के किनारे के पेड़ शीत की जड़ता से अपने पल्लवों के आवरण में सिकुड़े हुए सबेरे की हवा से काँप रहे थे। गाँवों के छप्परों पर उस समय कुहासा कुंडली मारे जमा हुआ था; जैसे बड़ी-बड़ी बत्तकें बैठी अपने अंडे से रही थीं। उस समय भी किसी घर में जगहग के लक्षण प्रकट नहीं थे।

क्रमशः राह में दो-एक आदमी दिखाई पड़ने लगे। वे ऐसी सुंदरी युवती को इस तरह अकेले जाते देखकर कौतूहल-पूर्ण दृष्टि से माधवी की ओर बार-बार ताकते थे। माधवी यथासंभव अपने को ढककर, किसी तरफ़ ध्यान न देकर, चलने लगी। किंतु उसका कलेजा डर के मारे हाथों उछल रहा था। धीरे-धीरे घाम निकल आया। राह के

किनारे-किनारे अनेक नर-नारी बैठे धमाने लगे थे। वे उस साल के कड़े जाड़े और आम की अच्छी फ़सल होने की संभावना आदि के बारे में आलोचना करते जाते थे। किंतु मालती के आविर्भाव से उनकी बातचीत बीच ही में रुक जाती थी, सब अवाक् होकर मालती को ताकने लगते थे, और मालती उन्हें लाँघकर कुछ दूर जाने भी न पाती थी कि वे आपस में उसके बारे में कल्पना-जल्पना और अनुमान करना शुरू कर देते थे। मालती इन सब बातों का अनुभव कर रही थी, और इसी कारण अपने को लोगों की नज़र से छिपाने के लिये व्याकुल हो उठी थी।

कुछ दूर आगे बढ़कर मालती ने देखा, सामने ही रेल-लाइन है। तब वह सड़क छोड़कर लाइन-ही-लाइन स्टेशन की ओर बढ़ी। उस समय भी उसके मन में यह ख़याल नहीं पैदा हुआ था कि उसके पास पैसा-रुपया तो कुछ है ही नहीं, वह स्टेशन पर जाकर क्या करेगी। वह सिर्फ़ यही सोच रही थी कि रेल-गाड़ी पर सवार हो लेते ही वह शीघ्र प्रेमानंद के हाथ से छुटकारा पा जायगी। सामने दूर तक फैली हुई रेल-गाड़ी की पटरी जैसे उस अज्ञात प्रदेश की ओर जाने के लिये इशारे से बुला रही थी। ओस से भीगी हुई पटरी के ऊपर सबेरे की धूप पड़कर चमचमा रही थी। सिगनल के खंभे पर लगी हुई लालटेन के हरे-लाल शीशों पर धूप पड़ने से सूर्य की हरी-लाल मूर्ति आँखों में चकाचौंध पैदा कर देती थी।

यह सब देखती हुई मालती स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर दाख़िल हुई। वैसे ही उसकी दृष्टि शिष्य-मंडली से घिरे हुए प्रेमानंद के ऊपर पड़ी। मालती उन्हें देखते ही भय के मारे चिल्ला उठी। वह शिकारी से घिरी हुई मृगी की तरह यह न निश्चय कर सकी कि किधर किस राह में जान लेकर भागे।

प्रेमानंद उसे देखते ही चटपट आगे बढ़कर, उसके पास आकर

कहने लगे— 'राधा-रानी, मैं तीथ-यात्रा को जाता हूँ। कब लौटूँगा या नही लौटूँगा, इसका कुछ ठीक नहीं है। बोलो, तुम कहाँ जाओगी, योगानंद टिकट लेकर तुमको उसी गाड़ी में सवार करा देगा!"

मालती क्षण-भर अवाक् होकर प्रेमानंद के मुँह की ओर ताकती रही। उसके बाद बोली—"मैं—काशी – नही—कलकत्ते जाऊँगी।"

प्रेमानंद ने कहा—'अच्छी बात है।"

मालती के आविर्भाव से प्लेटफ़ार्म पर उपस्थित यात्री बाबुओं के दल में हलचल-सी पड़ गई। जैसे गंगा के बीच में स्टीमर के चले जाने से उसका आंदोलन दोनो किनारों को स्पर्श करता है, वैसे ही मालती जिस समय बाबुओं की भीड़ के बीच स होकर निकली, उस समय दोनो किनारों के लोगों के हृदय आंदोलित हो उठे। मालती द्रुत, अटल गति से लेडियों के वेटिंग-रूम में घुस गई।

कलकत्ते जाने की ट्रेन आने पर योगानंद मालती को ज़नाने दर्जे में सवार कराकर टिकट दे गया। मालती खिड़की के पास बैठकर देखने लगी—रेल-लाइन के किनारे-किनारे रेलवे-कर्मचारियों के, कुलियों क और स्थानीय निवासियों के क्वार्टर और घर बने हैं। किसी घर की खिड़की में कोई बहू खड़ी है, कही लड़के गुल्ली-डंडा खेल रहे हैं, कही खजूर, नारियल सहजन आदि पेड़ों से घिरे हुए तालाबों में औरतें नहा रही हैं। कोई बरतन माँज रही है। कोई बातचीत कर रही है, कोई लड़-झगड़ रही है। रेल की सड़क में किनारे-किनारे कुली लोग काम कर रहे हैं। गाड़ी हुश-हुश करती हुई, इतने प्राणियों का बोझ लादे, किसी बड़े अजगर की तरह दौड़ी चली जा रही है; किंतु नित्य की बात होने के कारण अभ्यास-वश कोई उधर ध्यान तक नहीं देता। दिगंत-विस्तृत मैदान में बैंगन, गोबी, मटर और रबी की फ़सल के खेत दूर तक दिखाई पड़ रहे हैं। गऊ-बकरियों के झुंड-के-झुंड चर रहे हैं।

चरवाहे लड़के गीत गाते-गाते रुककर चलती हुई गाड़ी के मुसाफ़िरों को हाथ के इशारे से बुलाते हैं, और इस अर्थ-हीन आचरण से ही उनके मुख पर अपर्याप्त कौतुक झलक रहा है। मालती यह सब देखती हुई सोच रही थी, सभी के आश्रय है, काम-काज है, आनंद है; केवल वही निराश्रय, भारू और जगत् के लिये जंजाल है!

गाड़ी के दोनो तरफ़ कितने ही गाँव, घर, बाग़, खेत, कल-कारख़ाने, बायस्कोप की तसवीरों की तरह, दम-भर के लिये दर्शन देकर सन-सन करके दूर चले जाते थे। गाड़ी यथासमय सियालदह-स्टेशन पहुँची। दम-भर में सारा प्लेटफ़ार्म आदमियों की भीड़ से भर गया। देखते-ही-देखते पाँच-चार मिनट में भीड़ छँट भी गई। मालती बाहर आकर किराया बिना चुकाए ही जिसने पहले पुकारा, उसी की गाड़ी पर बैठ गई। गाड़ीवान ने दरवाज़ा बंद करके पूछा—"माजी, कहाँ जाना होगा?"

मालती ने कहा—"चोरबागान।"

गाड़ीवान दोनो हाथों से घोड़ों की पीठ पर रास पटककर, "हट जाओ-बचो!" कहता हुआ, पावदान पर पैर पटक-पटककर दोनो अश्विनी-कुमारों को चलने के लिये उत्साहित करता रवाना हुआ।

गाड़ी नवकिशोर के घर के सामने आकर खड़ी हुई। मालती ने गाड़ीवान से दरवाज़े की कुंडी खटखटाने के लिये कहा। गाड़ीवान ने वैसा ही किया। नवकिशोर दरवाज़ा खोलते ही, गाड़ी पर अकेले मालती को देखकर, विस्मय के साथ कह उठा—"मालती! तुम अकेली?"

मालती ने नवकिशोर की ओर उदास, करुण दृष्टि से देखकर कहा—"हाँ, मैं चली आई।"

नवकिशोर—"क्यों? हुआ क्या?"

मालती आँचल से आँखें ढककर रो दी।

नवकिशोर अवाक् होकर मालती का रोना देखने लगा। क्या हुआ, यह कुछ न समझने के कारण वह एक सांत्वना की बात भी मुँह से नहीं निकाल सका।

ऊपर से गाड़ीवान ने चिल्लाकर कहा—"अजी बाबू, सवारी उतार लीजिए न! मैं क्या दिन-भर यहीं खड़ा रहूँगा?"

नवकिशोर ने चटपट गाड़ी की खिड़की खोलकर मालती से कहा—"तुम तो भीतर चलो।"

मालती उतर गई। नवकिशोर ने गाड़ीवान से पूछा—"कितना किराया हुआ?"

गाड़ीवान ने कहा—"किराया कितना हुआ? आप क्या दो-चार रुपए दे देंगे, या मैं माँगूँगा? सियालदह से चोरबागान के बारह आने तो बँधे ही हुए हैं बाबू!"

नवकिशोर ने चुपचाप बारह आने पैसे देकर गाड़ीवान को विदा किया।

इसी बीच में मालती अपने को सँभालकर, मुँह धो-पोंछकर बैठ चुकी थी। नवकिशोर ने लौटकर देखा, पानी बरस जाने के बाद जैसे संध्या-काल की शोभा होती है, वैसी ही शोभा उसके मुख की देख पड़ रही है। वह दीप्त विषाद की प्रतिमूर्ति-सी बैठी हुई है। उसने संभ्रम और आदर के साथ पूछा—'मालती, विपिन अच्छा तो है न?"

मालती ने सिर हिलाकर सूचित किया कि विपिन की तबियत अच्छी है। नवकिशोर अधिकतर विस्मित हुआ। उसने पूछा—"फिर तुम अकेले कैसे आईं?"

मालती ने गंभीर भाव से कहा—"मैं किसी से कहकर नहीं आई।"

इस उत्तर से नवकिशोर के निकट समस्या का समाधान नहीं हुआ;

बल्कि वह और भी जटिल हो उठी। वह कुछ भी ठीक न कर सका। उसने फिर पूछा—"तुम किसी से कुछ न कहकर अकेली चली आई हो? मामला क्या है?"

मालती—"गुरुजी के अत्याचार से मेरा वहाँ रहना असंभव हो उठा था!"

मालती ने एक-एक करके संक्षेप में सब बातें नवकिशोर से कहीं। नवकिशोर सुनकर दम-भर चुप रहकर बोला—'तुमने विपिन से यह सब हाल क्यों नहीं कहा?"

मालती—"कहने की चेष्टा की थी, पर उन्होंने सुना ही नहीं। उसके बाद गुरुजी का अत्याचार असह्य हो उठने के कारण कल रात को गंगा में डूब मरने गई, तो उसमें भी बाधा पड़ी। मैं मौसी के पास ही जाती, लेकिन उधर प्रेमानंद जा रहे थे। उनके साथ उधर जाने की हिम्मत नहीं पड़ी; जी भी नहीं चाहा। इसी से आपके पास भाग आई हूँ। आप मुझे मौसी के पास पहुँचा आइए।"

नवकिशोर ने गंभीर भाव से कहा—"भाग आकर तुमने अच्छा काम नहीं किया मालती—तुमको फिर उसी आश्रम में लौट जाना होगा। मनुष्य के मन में स्वभावतः एक आराम की चाह होती है, जो सहज में शांति को नष्ट करके कष्ट उठाना नहीं चाहती। इसी कारण मनुष्य जान-बूझकर मिथ्या को भी सहज में अविश्वास करना नहीं चाहता। विपिन में उस स्पृहा की मात्रा बहुत अधिक है। विपिन का यह विश्वास तुम्हें मिटाना होगा—उसे गुरु के फंदे से निकालना होगा।'

मालती रुआंसी होकर बोली—"आप भी मुझे त्याग कर देंगे? मृत्यु के सिवा मेरे लिये और गति नहीं है?"

नवकिशोर की हृदय-वीणा के प्रणय-तार के कोमल पर्दे पर

आघात करके मालती के इन शब्दों ने एक करुण रागिनी बजा दी। नवकिशोर ने कहा—"विपिन को छोड़कर चले जाने से विपिन के साथ तुम्हारा मिलन दुर्घट हो उठेगा।"

निराशा की करुण रागिनी बजाकर मालती ने कहा—"वह आशा, वह आकांक्षा अब मेरे मन में नहीं है। कहीं निरुपद्रव स्थान में रहना-भर चाहती हूँ। आप मुझे मौसी के पास, काशी में, छोड़ आइए।"

नवकिशोर ने ज़ोर देकर कहा—'आशा-आकांक्षा न होने की बात मिथ्या है। आशा-आकांक्षा होने से ही अभिमान तुम्हारे मन से ऐसी छलना कर रहा है। इस उपद्रव के भीतर ही तुम्हारे निरुपद्रव होकर रहने की सूचना छिपी हुई है। एक-न-एक दिन इसी से विपिन का मोह अवश्य दूर होगा। तुमको उस दिन तक धैर्य-धारण-पूर्वक विपिन के पास रहना पड़ेगा। तुम भाग नहीं सकोगी, भाग नहीं सकोगी। इस समय तुम्हारा प्रधान कर्तव्य यही है कि सब अत्याचारों से अपने को बचाकर उन्हीं अत्याचारों के आघात से विपिन को सचेत करो। तुम मेरे पास जो चली आईं, इससे यह काम बहुत-कुछ पिछड़ गया। तुमने बड़ी भारी भूल की। मेरे पास न आकर अगर तुम विपिन को ही और झिलाती-डुलाती, तो अब तक उसका सब मोह दूर हो जाता; तुम दोनों एक साथ मेरे पास आकर, हँसकर कह सकते कि मित्र, बहुत बड़ा तूफ़ान काटकर हम आज एक दूसरे से मिल सके हैं। वह दिन आवेगा, शीघ्र ही आवेगा, तुम कुछ चिंता न करो। अब चलो, तुमको मैं विपिन के पास पहुँचा आऊँ; देर मत करो। तुमने नहाया-खाया नहीं है, क्यों? अच्छा, तुम चटपट नहा-खा लो; मैं गाड़ी बुलाने जाता हूँ।"

उंचासवाँ परिच्छेद

मालती गंगा में डूबने जाकर जिसे देखकर लौट आई थी, वह विपिन ही था। अपने मन के द्वंद्व को दबाकर उस गुहा-गृह में अकेले बंद रहना असह्य हो उठने के कारण वह उस दिन वहाँ से बाहर निकल पड़ा था, और गंगा में स्नान करके आश्रम को लौट रहा था। उसने दूर से देखा, मालती उतने तड़के गंगा के घाट में जाते-जाते उसे देखकर पिछले पैरों बड़े ज़ोर से भाग खड़ी हुई। उसकी समझ में कुछ न आया कि मालती गंगा के घाट पर क्यों जा रही थी, और उसे देखकर इस तरह क्यों भाग खड़ी हुई।

आश्रम में आते ही विपिन ने सुना, गुरु तीर्थ-दर्शन के लिये यात्रा कर रहे हैं। विपिन तपस्या का नियम तोड़कर गुहा-गृह से निर्दिष्ट समय के पहले ही निकल आया था। इसी लज्जा के मारे वह गुरु से भेंट नहीं कर सका। गुरु ने तीर्थ-यात्रा के लिये प्रस्थान किया – बेलर घोड़ों की जोड़ी उनकी फ़िटन को खींचती हुई आश्रम के फाटक के पार निकल गई।

सूर्य निकले; दिन चढ़ आया। विपिन उस समय भी स्तब्ध भाव से अपनी पहले की कोठरी में बैठा था। इसी समय शांति दौड़ती हुई घबराई-सी आई, और बोली—"आश्रम में राधा-रानी नहीं देख पड़तीं! आप चटपट स्टेशन पर जाकर गुरुदेव को ख़बर दीजिए!"

विपिन के दिमाग़ के भीतर ख़ून चक्कर मारने लगा; आँखों के आगे सारा विश्व-ब्रह्मांड जैसे महातांडव-नृत्य करने लगा; कानों में हज़ारों झींगुर जैसे कर्कश शब्द करने लगे। इस मानसिक गड़बड़ में उसे केवल यही ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी कि मालती आश्रम में नहीं है! नहीं है, नहीं है, वह आश्रम में नहीं है! शायद वह अब इस विश्व-भर में कहीं नहीं है!

विपिन के मन में आत्मग्लानि का भाव उठकर, उसे कोटि-कोटि धिक्कार देकर कह रहा था—क्यों उस दिन मालती का वक्तव्य नहीं सुना ! क्यों उसने पग-पग पर मालती के हृदय में चोट ही पहुँचाई ? मालती कहाँ गई, क्यों गई, इस समस्या की मीमांसा कौन कर देगा ? कौन बता सकता है कि अब इस जीवन में उससे फिर भेंट होगी या नहीं ? मालती ज़िंदा है या नहीं, इसी का ठीक क्या है ? इस तरह पानी से लबालब भरा, गहरा तालाब सामने है। ऐसी अथाह बह रही गहरी गंगा सामने हैं। इनके लोलुप ग्रास से मालती के उपेक्षित, कोमल जीवन को बचानेवाला कौन बैठा था ? शायद एक सेकेंड-भर में सब समाप्त हो गया होगा ! विपिन को जान पड़ने लगा, जैसे उसने सैकड़ों वर्षों से मालती को नहीं देखा। उसके हृदय में जैसे युग-युगांतर से संचित विरह-व्यथा आज अकस्मात् उसके हृदय को फाड़कर आँसुओं के रूप में बाहर निकलने के लिये हाथ-पैर पटकने लगी।

आज के इस दुःख के दारुण दुर्दिन में उसको आबाल्य-बंधु, परम निर्भर-स्थल नवकिशोर का स्मरण हो आया। साथ ही स्नेहमयी माता की याद भी उसके हृदय को उत्कंठित, उन्मथित करने लगी। आज उसका निराश्रय हृदय उन दोनों स्नेह-पूर्ण आश्रयों को पाकर निश्चिंत होने के लिये व्याकुल हो उठा। जिन सब आचरणों से उसने मित्र और माता के स्नेहमय कोमल हृदय को चोट पहुँचाई थी, वे आचरण आज सुई की तरह तीक्ष्ण अपनी स्मृति से उसके हृदय को बार-बार छेदने लगे। आज वह अच्छी तरह समझ गया कि उसके हृदय की सांत्वना गुरु के चरणों में नहीं है ; शास्त्रों की दुर्बोध्य, जटिल पुस्तकों में भी नहीं है। वह केवल उसके बंधु के स्नेह-पूर्ण, उदार हृदय और माता की स्नेह-शीतल गोद में ही है ! जो कृत्रिम गुरु-भक्ति की उत्तेजना भीतर की आत्मा को बंदी करके

उसके सामने धर्म की संगीन चढ़ाए पहरा दे रही थी. उसके हटते ही भीतर की आत्मा विपिन को दंड देने के लिये उद्यत हो उठी। ढेर-के-ढेर शास्त्र के वचन विपिन के हृदय पर लदे हुए थे; आज चरम दुःख के आघात से उनके अलग गिर पड़ते ही उसका मुक्त हृदय अपने चिर काल के सकल संताप-हारी स्नेहमय आश्रय की ओर दौड़ा। तब उसे गुरु की लाल आँखों का या आश्रमवासियों की कौतूहली दृष्टि का ख़याल नहीं रहा। वह दोनो हाथों से मुँह ढककर बैठा रहा।

इसी समय तारक अपने बड़े-बड़े दाँत बाहर निकाले वहाँ आकर उपस्थित हुआ। विपिन ने उसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। किंतु तारक इस तरह हटनेवाला आदमी न ठहरा। वह उपेक्षा-अवहेला को माननेवाला नहीं। वह पान चबाते-चबाते कहने लगा—"क्यों जी भैया, हमने तो समझा था, तुम्हारे मा-बाप ने तुमको वन-वास दिया है, तो बस, इतनी ही लीला होगी, लेकिन देख पड़ता है, इतना ही नहीं, कोई भी लीला नहीं छूटेगी। लक्ष्मण-त्याग तो पहले ही हो चुका था, अब सीता-हरण भी हो गया! इसके बाद अब क्या होगा?"

विपिन एक छलाँग में तारक के पास जाकर, उसकी शिखा पकड़-कर, ज़ोर से हिलाता हुआ, दाँत-से-दाँत रगड़कर बोला—'उसके बाद ताड़का-राक्षसी का वध और हनुमान् का मुँह जलाना-भर बाक़ी है। निकल, दूर हो बंदर, नहीं तो बाक़ी लीला तेरे ही ऊपर बीतेगी।"

विपिन ने एक धक्का देकर तारक को कोठरी के बाहर दालान में गिरा दिया। विपिन की यह लीला देखकर तारक के होश-हवास जाते रहे। वह चटपट उठकर भागने के लिये तैयार हुआ।

विपिन ने देखा, तारक के हाथ से बरामदे के फ़र्श पर उसी

का एक फ़ोटो गिर पड़ा। वह चित्र उसके मथुरापुर के घर में लगा हुआ था। वह यहाँ कैसे आया, यह सोचकर, विस्मित होकर विपिन ने चटपट उसे उठा लिया, और तारक से पूछा—"यह तुमने कहाँ पाया?"

तारक ने रुआंसी आवाज़ में कहा—"तुमको यही देने तो मैं आया ही था। गुरुदेव तीर्थ-यात्रा को जा रहे है, यह सुनकर उनको प्रणाम करने आया था। आकर देखा, गुरुदेव चले गए। उनकी कोठरी में यह फ़ोटो पड़ा था। सुना, यही चित्र छाती से लगाए मालती रो रही थी। उसी के लिये गुरुदेव ने उसका तिरस्कार किया, और वह इसी से चिढ़कर आज सबेरे कहीं चली गई!"

विपिन की आँखों के आगे से सारा जगत लुप्त-सा हो गया। आँखों के सामने काले अंधकार में जैसे विचित्र रंग के चक्र चक्कर मारने लगे। उसके मन के भीतर ऐसा एक विरुद्ध विप्लव जमा हो उठा कि वह शून्य दृष्टि से तारक की ओर ताकता हुआ पत्थर की मूर्ति या पागल की तरह चुपचाप खड़ा रह गया।

पचासवाँ परिच्छेद

दम-भर के बाद सचेत होकर विपिन स्टेशन की ओर दौड़ा। जाकर देखा, स्टेशन पर प्रेमानंद नहीं हैं, मालती भी नहीं है; सिर्फ़ ऑफ़िस जानेवाले डेली-पैसेंजर बाबुओं की भीड़ है।

विपिन नवकिशोर के पास जाने के लिये टिकट ख़रीदकर गाड़ी के आने की प्रतीक्षा में अधीर भाव से प्लेटफ़ार्म के ऊपर टहलने लगा।

बहुत देर बाद गाड़ी आई। विपिन गाड़ी पर चढ़ने लगा। इसी समय पास के कमरे से उतरकर योगानंद ने उसके कंधे पर हाथ रक्खा। विपिन पीछे फिरकर, योगानंद को देखकर स्तंभित, कुंठित

हो गया। वह असमय में गुहा-गृह छोड़कर आश्रम से अन्यत्र शांति की खोज में जा रहा है! योगानंद ने इस बारे में उससे कुछ प्रश्न न करके कहा—"गुरुदेव तीर्थ-यात्रा को गए; मैं उन्हें दो-तीन स्टेशन तक पहुँचा आया हूँ। राधा-रानी कलकत्ते चली गई हैं; तुम जाओ, उनको लौटा लाओ।"

मालती कलकत्ते नवकिशोर के पास गई है! विपिन ने गाड़ी के पावदान से पैर उतार लिया। गाड़ी सीटी देकर चल दी।

योगानंद ने और कुछ नहीं कहा; वह विपिन का हाथ पकड़कर आश्रम को ले चला। विपिन उदास, गंभीर और चुप था। वह अपनी कोठरी में जाकर स्तब्ध होकर बैठ रहा।

बहुत देर बाद जब उसने सिर उठाया, तो देखा, कोठरी के दरवाज़े पर नवकिशोर और उसके पीछे कुंठित भाव से मालती खड़ी है। विपिन के हृदय में आनंद और अभिमान की हलचल मच गई। अपने बंधु और मालती को इस तरह अप्रत्याशित रूप से पास पाकर उसका जी चाहा कि वह उन्हें दोनो हाथ से खींचकर छाती से लगा ले, किंतु दारुण और स्वाभाविक अभिमान ने ऐसा नहीं करने दिया। वह स्थिर भाव से बैठा रहा। मालती उससे कहे बिना नवकिशोर के पास गई थी!

नवकिशोर ही पहले बोला। उसने कहा—"मालती का इस आश्रम में रहना विपत्ति-पूर्ण हो उठा है। इसी से वह मौसी के पास पहुँचा देने के लिये कहने मेरे पास गई थी। तुम उस समय कंदरा में बैठे तपस्या कर रहे थे। किंतु उसे इस आश्रम में तुम्हीं लाए हो, इसलिये तुमसे बिना कहे उसका जाना उचित नहीं था। यही सोचकर मालती को मैं फिर यहीं ले आया हूँ। तुम अब कंदरा से बाहर निकल आए हो। अपने गुरु के अत्याचार से मालती की रक्षा न कर सको, तो उसे मौसी के पास छोड़ आओ।"

नवकिशोर इतना कहकर, विपिन के उत्तर की राह न देखकर तेज़ी के साथ वहाँ से चल दिया। मालती सिर झुकाए असहाय अवस्था में वहीं खड़ी रही। वह न वहाँ से कहीं जा सकती थी, और न वहाँ उस तरह खड़ी ही रह सकती थी। विपिन मुग्ध दृष्टि से मालती के मुँह की ओर ताकता हुआ अपने मन में सोच रहा था—यह अनुपम सुंदरी उस पर अनुरक्त होने के कारण ही गुरु के द्वारा इस तरह अपमानित और लांछित हुई है! विपिन ने आनंद-गद्गद स्वर में कहा—"मालती, तुम खड़ी रहो; मैं शांति को बुलाए देता हूँ।"

मालती के लौट आने की ख़बर पाते ही शांति ख़ुद चटपट उधर ही आ रही थी। विपिन ने कोठरी से बाहर निकलते ही देखा, शांति ने चटपट आकर, मालती के दोनो हाथ पकड़कर, स्नेह-पूर्ण स्वर में कहा—"आओ बहन, आओ। मैं अब कभी तुमको आँखों की ओट नहीं होने दूँगी। आओ।"

मालती ने झुककर शांति को प्रणाम किया, उसके चरणों की रज मस्तक से लगाई। ऐसा स्नेह तो उसने माता के सिवा और किसी के निकट नहीं पाया। मालती की आँखों से आँसू बहने लगे।

शांति मालती के आँसू पोंछकर, उसे लेकर ऊपर चली गई। मुग्ध विपिन प्रसन्न दृष्टि से उसी ओर ताकता रहा।

मालती के मन में जल-तरंग के सुरों में विपिन के संभाषण का स्नेह और करुणा बज रही थी। तो जिसके लिये वह इतना सह रही है, वह उसकी ओर से एकदम उदासीन नहीं है—इस आश्वास से मालती के हृदय में प्रणय-प्लावन दूने वेग से बह चला। गुरुदेव आश्रम में नहीं हैं, इसलिये बहुत निश्चिंत मन से मालती ने शांति के साथ-साथ ठाकुरजी और आश्रमवासियों की सेवा-टहल में अपने को लगा दिया।

विपिन भी उस सेवा से वंचित नहीं रहा। मालती अनेक काम करती-करती विपिन के निकट उपस्थित होती थी। मालती की चंचल गति, काम-काज में व्यस्तता, उसके बैठने का एक ख़ास ढंग, उसके कपोलों के ऊपर उड़नेवाली अलकावली आदि, जो कुछ विपिन को देख पड़ता था, उसी से उसके हृदय में प्रेम का तूफ़ान उठ खड़ा होता था। किंतु विपिन ने अपने हाथ से मालती के और अपने बीच में जो एक मज़बूत दीवार खड़ी कर ली थी, उसके मारे वे दोनो परस्पर एक दूसरे के निकटवर्ती नहीं हो सकते थे। जैसे एक बड़ा स्टीमर यात्रियों को लिए घाट के पास आकर भी स्थल-भूमि से न भिड़ पाने के कारण हृदय-भरा आग्रह लिए व्याकुल दृष्टि से तट-भूमि की ओर ताकता खड़ा रहता है, वैसे ही विपिन भी दूर से मालती की ओर ताका करता था। वह सेतु, वह डोंगी कौन है, कहाँ है, जो इन दोनो के मिलने का उपाय कर दे! इस समय दिन-रात में अनेक बार मालती से विपिन की भेंट होती है; लेकिन उनकी आँखें चार होते ही झुक जाती हैं, आँसू छलक आते हैं!

मालती ने आश्रम की परिचर्या का भार अपने हाथ में ले लिया था। किंतु सारे आश्रम का काम करके भी उसका समय बीतने नहीं आता था। वह सोचती थी, इस आश्रम में उसके रहने की ज़रूरत ही क्या है? वह जिनकी सेवा करती थी, वे उसकी सेवा के भूखे नहीं थे। जिस देव-मूर्ति की वह सेवा करती थी, उस पर असल में उसे ईश्वर-विश्वास नहीं था। तब उसके यहाँ रहने की सार्थकता क्या है? मालती अपने मन में सोचती थी, इसकी अपेक्षा वह किसी दीन, हीन, आतुर रोगी की सेवा करती, तो उसका भी उपकार होता, और अपना जीवन भी कुछ सार्थक होता। यह सब सोचते-सोचते उसकी कल्पना-दृष्टि के आगे एक ऐसे गृहस्थाश्रम की मोहिनी तसवीर खिंचने लगती थी, जिसमें वह विपिन और उसके बच्चों

की हृदय, मन और देह से सेवा कर सकती है। ऐसे ही एक प्रणय-पवित्र, स्नेह-सरस गृह में स्थान पाने का प्रलोभन उसके हृदय से एक लंबी साँस खींचकर बाहर निकाला करता था।

इक्यावनवाँ परिच्छेद

इसी तरह सुख, दुःख, कल्पना और निराशा में ही विपिन और मालती के और भी कुछ दिन बीत सकते थे; किंतु एकाएक फाग के उत्सव ने आकर सब चिंता भुला दी। आज होली की पूर्णिमा है। उस पर गुरुजी अकस्मात् तीर्थ-यात्रा से लौटकर आश्रम में आ गए हैं। इसी से आज दिन-भर आश्रम में उत्सव मनाया गया है। गुलाल-अबीर की झोलियों ने उड़-उड़कर आज सब आश्रम और उसकी राहें लाल-लाल कर दी हैं। सफ़ेद पत्थर के फ़र्श पर गुलाल गिरने से जान पड़ता है, वह उषा-काल का सुंदर आकाश है। आज सब संन्यासी-संन्यासिनियों के गेरुए कपड़ों पर गुलाल की लालिमा, सूर्योदय के समय की लोहित-पीत शोभा-सी, छाई हुई है। सबसे अधिक सौंदर्य आज मालती के ऊपर बरस रहा था। रक्त-चंदन-लिप्त श्वेत पद्म-कोरक की तरह, नए निकले हुए पल्लवों से शोभित वासंती लता के समान, कंदर्पदेव के कुसुम-चाप की तरह वह कृश-मध्यमा रमणी आज रमणीय दिखाई पड़ रही थी। उसकी लज्जा की लजाई से मुख पर पड़ा हुआ गुलाल जैसे और भी लाल हो उठा था। आज उसकी और विपिन की दृष्टि गुलाल और रंग से भरे कुमकुमे की तरह अनेक बार जाकर गले लग रही थी। उनके हृदयों के भीतर आज व्यग्र वासना जाग उठी थी। जिस रंग से लोग प्रिय जन को रँग देते हैं, वह रंग आज दोनो के हृदय की पिचकारियों में भरा हुआ था। केवल लज्जा ही उस पिचकारी से एक को दूसरे पर वह

रंग नहीं छोड़ने देती थी। विपिन और माधवी आज अपने हृदय के रंग से शराबोर हो रहे थे।

इसी तरह सारा दिन बीत गया। शाम हुई। पश्चिम-आकाश में गुलाल उड़ाकर सूर्य भी होली-सी खेलने लगे।

उसके बाद जब चंद्रमा की चटकीली चाँदनी पृथ्वी और आकाश में चाँदनी-सी बिछ गई, कोयल-पपीहा आदि पक्षी गा-गाकर स्निग्ध-स्पर्श दक्षिण-पवन को उन्मथित करने लगे, बकुल-चंपा आदि फूल आप अपनी खुशबू से मस्त होकर झूमने लगे, उस समय कुंज-वन के पास, घास पर, गुलाल के रंग से रंगीन फुहारे की शोभा के निकट, बैठकर शिष्य-मंडली-सहित प्रेमानंद होली गाने लगे। वह गान पहले प्रकृति के सौंदर्य से चित्त को उद्बोधित करके प्रकृति की भाषा की तरह सुनाई पड़ने लगा—

कुसुम-भरे नव पल्लव डोले ;
मधु पीवे मधुकरी, मधुकर बोले।
नव कोकिल धुनि पंचम गावे,
मलय-पवन मृदु मंद सुहावे,
जुगुल दंपती अति मन-भावे,
पूनो रात अमोले।

उसके बाद बाहर से आकर आनंद के हिलकोरों ने हृदय को स्पर्श किया। तब हृदय के भाव में विभोर होकर गुरु गाने लगे—

होरी खेलत छैल छली, लली, दोउ खोलि हिए ;
सखा-सखी मिलि गारी गावत, माचत रंग-रली, लली कर रंग लिए।
बजत मृदंग, बेनु, डफ सुंदर, गावत राग भली, लली गल-बाहिं दिए ;
'रसिक किशोरि' पगी नव नेहनि, मानो कुंद-कली, लली मद-मोद पिए।
सखी सब लाज लई नँदलाल ;
भोरहि जात रही मैं पनिघट, संग नहीं कोउ बाल।

औचक आइ, लगाइ हिए, हँसि बेदरदी गोपाल ;
अंचल झटकि कंचुकी मसकी, ऐसो निलज कुचाल ।
बड़ो ढीठ होरी को रसिया, वैसेई सब ग्वाल ;
'रसिक किशोरी' या होरी में भलो बन्यो घर-घाल ।
(किशोरीलाल गोस्वामी)

गान की उत्तेजना से भाव जब आकार पाने के लिये व्यग्र हो उठा, तब गुरुजी वैष्णव-कवि के शब्दों में अपने हृदय का भाव भरकर गाने लगे—

खेलत फाग वृंदावन-चंद ;
ऋतुपति मन्मथ मन-मथ-छंद ।
आगु-फागु दै नागरि नैनन ,
अवसर नागर चूमत आनन ,
मिलत मनोहर आनँद-कंद ।

इसी तरह मानव-हृदय की सुप्त लालसा की पीठ पर गान की चाबुक मार-मारकर गुरुजी का उत्सव-रथ ख़ूब विजय-गर्व के साथ, बहुत रात बीते तक, अप्रतिहत भाव से चलता रहा ।

गुरुजी थककर जब रुक जाते थे, तब शिष्य-गण गाते थे, और जब शिष्य थम जाते थे, तब गुरु गाने लगते थे । गाना बंद नहीं होने पाता था । सभी जैसे आज मधु-मत्त हो रहे थे ।

मालती वहाँ स्थिर होकर बैठ नहीं सकती थी । जिस समय सब लोग फाग गाने में तन्मय हो रहे थे, उसी समय वह वहाँ से धीरे-धीरे उठकर एकांत में आई । इसकी किसी को ख़बर नहीं हुई । उसने एक बार सिर उठाकर आकाश की ओर देखा । उसे जान पड़ा, आकाश जैसे एक बड़ी भारी मुक्ता-जननी सीपी की तरह गुलाबी नशे में मस्त हो रहा है । आकाश में जैसे ठंडी आग लगी हुई है । तरु-लता आदि भी आज मूँगे की-सी आभावाले पल्लवों से

सुसज्जित होकर, भ्रमर-गुंजन-रूप प्रलाप बककर, दक्षिण-पवन में झूम-झूमकर फाग खेलने में मस्त-से हो रहे हैं।

आज की उज्ज्वल ज्योत्स्ना, आम के बौरों की नशीली महक व्याकुल और उत्कंठित बना देनेवाला दक्षिण-पवन, जैसे उसके हृदय के भीतर घुसकर, उसके भीतर-बाहर सर्वत्र एक प्रकार का आवेश भरे देते थे। आज की यह रात जैसे उसके संपूर्ण जीवन की आनंद-घन-मूर्ति रखकर अमृत-सार की तरह दिखाई दी है। आज की रात व्यर्थ जाना जैसे उसके सारे जीवन का व्यर्थ जाना है। उसे जान पड़ रहा था, आज की यह मधु-निशा नशे की तरह प्रेम में डूब जाने की रात है; यह रात केवल हृदय खोलकर प्यार करने की और प्यार पाने की रात है। यह निःशब्द शुभ रात्रि जैसे कमख़ाब का फ़र्श बिछाकर उसी की तरह विरहिणी-वेश से जागती हुई किसी की अपेक्षा कर रही है। वासकसज्जा-सी माधवी निशा की इस परिपूर्णता के बीच जब काठ के भी हृदय को फाड़कर रक्त-रंजित पल्लवों का रोमांच फूट उठा है, फूल भी गंध से पागल-से हो उठे हैं, तब मनुष्य के हृदय को भेदकर प्रेम की आकांक्षा का फूट उठना तो अत्यंत स्वाभाविक ठहरा। मालती से अब अपने को सँभाला नहीं जाता था। उसके हृदय में उमड़े हुए आँसू बाहर निकलने के लिये हलचल मचाए हुए थे। वह धीरे-धीरे गंगा के घाट पर गई। वहाँ भी सफ़ेद पत्थर पर चाँदनी का चौका लगा हुआ था, उस पार की अदृश्य नाव पर सुनहले प्रकाश-बिंदु का स्पंदन दिखाई पड़ रहा था, जिसने उसके हृदय के सौंदर्य-रस को उद्बोधित कर दिया! उसकी व्यर्थ यौवन-श्री आज परिपूर्ण सौंदर्य के साथ उसके ललित अधर में, उसके भ्रमर-कृष्ण नेत्रों में, उसकी शांत दृष्टि में जैसे फूट उठी। मालती हृदय के भीतर पूर्ण रूप से उसके इस आकस्मिक आविर्भाव का अनुभव करने लगी। मालती सफ़ेद पत्थर की सीढ़ियों पर गुलाब से

रँगे हुए पैरों के चिह्न बनाती हुई बिलकुल जल के पास पहुँचकर स्तब्ध भाव से बैठ गई।

आज विपिन का चित्त भी निश्चित नहीं था। किसी कल्प के वृंदावन के कल्पित नर-नारियों के रस-संभोग के बीच वह अपनी ही यथार्थ चरितार्थता की संभावना का अनुभव कर रहा था। हृदय का उन्मत्त भाव जब परा काष्ठा को पहुँच गया, तब वह अपने मन में कहने लगा—बस, अब नहीं, ऐसा व्यर्थ-व्याकुल जीवन अब नहीं रह सकता। आज वह गुरु से अपनी असमर्थता बताकर इस संन्यास की राह को सदा के लिये छोड़ देगा—मालती को आज पत्नी-रूप से ग्रहण करके, हृदय में स्थान देकर सुखी बनेगा। जिस रमणी को प्रथम दर्शन में ही उसने पत्नी-रूप से वरण किया था, जिसे जब उसने ग्रहण करना चाहा, तभी वह चिर-वांछित नारी, विचित्र घटनाएँ घटित होने के कारण, दुष्प्राप्य हो उठी, उसी सुदुर्लभ प्रेयसी नारी को आज इस सौंदर्य-पूर्ण रात्रि के समय अपनी बनाने का आनंद उसके हृदय में इस महोत्सव ही की तरह परिपूर्ण हो उठा। वह इस चिंता के सुख और आशा से अस्थिर हो उठा। विपिन सिर झुकाए अब तक अपने मन में यही सब सोच रहा था। गाना बंद होते ही उसने पुलक-पूर्ण दृष्टि से मालती की ओर देखना चाहा। लेकिन देखा, वहाँ मालती नहीं है। मालती के बदले उसे देख पड़ा कि नवकिशोर, विनोद और बिनी का हाथ पकड़े, उस गीत-सभा के पास ही खड़ा है।

विपिन गुरु को भूल गया, गीत-सभा को भूल गया, आश्रम को भूल गया। उसने एकदम जाकर विनोद और बिनी को एक साथ गोद में उठा लिया, और बार-बार उनके मुख पर चुंबन के ऊपर चुंबन अंकित करने लगा। उसके हृदय में संचित जो भाव-राशि प्रकट होने के लिये व्याकुल हो रही थी, वह बहुत दिन के बाद आज

भाई-बहन को देखकर उमड़ पड़ी। आँसुओं की झड़ी लग गई। नवकिशोर ने विपिन के कंधे पर हाथ रखकर अश्रु-पूर्ण गद्गद स्वर में कहा—"तुम्हारे बाबूजी की तबीयत बहुत ख़राब है। मा तुमको बुलाने आई हैं, बाग़ के बाहर गाड़ी पर बैठी हैं।"

विनोद और बिनी को गोद में लिए विपिन दौड़ता हुआ इतने दिन के बाद माता की गोद में अपने को समर्पण करने के लिये चला। विपिन गाड़ी की खिड़की खोलकर माता के पैरों पर गिर पड़ा। माता ने, दोनो हाथों से परित्यक्त पुत्र को गोद में लेकर, अश्रु-धौत चुंबन से इतने दिनों की सब ग्लानि धो डाली।

दम-भर चुपचाप रोने के बाद पुरखिन ने कहा—"विपिन, जान पड़ता है, अब की वह बचेंगे नहीं। वह तुझे देखने के लिये बहुत ही व्यग्र हो उठे हैं। जा, बहू को बुला ला। मैं इसी गाड़ी में तुम दोनो को साथ लेकर जाऊँगी।"

विपिन के आनंद की सीमा नहीं रही। उसकी माता माधवी को अपनी पुत्र-वधू स्वीकार करके घर ले जाने के लिये आई हैं। विपिन माता की आज्ञा से प्रसन्न-प्रफुल्ल होकर माधवी को बुलाने के लिये, बालक की तरह दौड़ता हुआ, आश्रम की ओर चला। किंतु गीत-सभा के पास पहुँचते ही उसे अत्यंत लज्जा मालूम पड़ने लगी। वह किस तरह, क्या कहकर गुरु से जाने की आज्ञा माँगेगा? अन्य संन्यासियों की घृणा और धिक्कार से पूर्ण दृष्टि को वह किस तरह सह सकेगा? विपिन जितना ही आश्रम के भीतर पहुँचने लगा, उतना ही उसकी चाल धीमी और मन कुंठित होने लगा।

बहुत कुछ घूम-फिरकर, इधर-उधर करके विपिन जब गीत-सभा में पहुँचा, तो उसने देखा, वहाँ न माधवी है, न गुरु हैं। विपिन आनंदित हो उठा। वह एकांत में गुरु से विदा होकर चुपके से माधवी को बुलाकर, माता के पास चल देगा।

विपिन ने आश्रम-वाटिका के हर घर में खोजा; कहीं गुरु या मालती नहीं देख पड़ी। ताली-वन, लता-वितान आदि सब देखकर अंत को वह गंगा-तट की ओर चला। उसने दूर से देखा, गुरुजी धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतर रहे हैं। विपिन लज्जित, कुंठित हृदय से गुरु से अनुमति लेने के लिये आगे बढ़ा।

घाट के ऊपर पहुँचकर, खड़े होकर विपिन ने देखा, मालती दोनो पैर जल में डाले एक सीढ़ी पर बैठी हुई, दोनो हाथों से मुँह ढके, रो रही है। रोने के आवेग से उसका शरीर रूप की लहर के समान आंदोलित हो रहा है। चाँदनी में बैठी सुंदरी का रोना देखते-देखते भावोन्मत्त प्रेमानंद एक-एक करके धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरने लगे। उतरते-उतरते वह एकदम मालती के पास जाकर खड़े हो गए। गंगा के कल-नाद और अपने रोने के शब्द के मारे मालती को प्रेमानंद के पैरों की आहट नहीं मिली।

प्रेमानंद ने झुककर धीरे-धीरे दोनो हाथ मालती के कंधे पर रक्खे! मालती चौंक पड़ी, उसने झटपट दोनो हाथों से आँखों के आँसू हटाकर देखा—प्रेमानंद एकदम उसके मुँह के पास झुके हुए हैं! मालती ने चिल्लाकर दोनो हाथों से उन्हें ज़ोर से ठेल दिया, और आप गंगा के जल में सीधी होकर खड़ी हो गई। वैसे ही मालती को देख पड़ा, घाट के ऊपर चित्र-लिखित-सा विपिन खड़ा है।

मालती का मुख आनंद की दीप्ति से उज्ज्वल हो उठा—देखे, विपिन अपने गुरु के आचरण देखे! किंतु वैसे ही उसका चेहरा फीका पड़ गया! विपिन अगर और कुछ समझ बैठे! इस आशंका से उसकी इतने दिन की सब आशा और भरोसा, कल्पना का आनंद, एक ही आघात से काँच के बरतन की तरह, चूर-चूर हो गया। उसके हृदय के भीतर श्मशान का-सा हाहाकार उठकर उसे व्याकुल-विह्वल करने लगा। उसकी दृष्टि में सब चाँदनी काले अंधकार से भी

अधिक भयावनी हो उठी। गंगा का जल धारदार तरवार की तरह उसकी आँखों के आगे चमकने लगा। इतने दिन की अपेक्षा आकांक्षा, साधना, सब आज निष्फल हो गई! वह अखंड व्यर्थता के बीच मरण-पर्यंत डूबी रहेगी! और, निर्मम विचारक विपिन और भी उससे दूर हट जायगा! मालती की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। वह इतने दिनों से हृदय के ऊपर से जिस निराशा के पत्थर को प्राण-पण से हटाने की चेष्टा कर रही थी, वह आज और भी ज़ोर से उसके हृदय को दबा बैठा! ओह, कैसी भयानक व्यर्थता है! कैसा भयानक परिणाम है! उसने इतने दिन तक क्या केवल व्यर्थता और निराशा पाने के लिये ही आशा की जड़ को अपने हृदय के रक्त से सींचा था! हाय-हाय, यह कैसी लज्जा, कैसा दुःख, कैसी निष्ठुर नियति है।

प्रेमानंद ने मालती की दृष्टि का अनुसरण करके जब देखा, विपिन स्तंभित होकर घाट के ऊपर अवाक् खड़ा है, तब वह भी मर्म-भेदी लज्जा से अभिभूत होकर जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गए। एक दफ़े उनका जी चाहा कि गंगा की गोद में गिरकर अपनी नीचता की लज्जा और ग्लानि को डुबा दें। किंतु उनके आगे और पीछे जो दो विचारक खड़े थे, उनका चरम दंड-विधान सुने बिना मरने की भी तो हिम्मत नहीं होती थी। वह वज्राहत की तरह सिर झुकाए खड़े रहे।

विपिन ने गुरु को ग्राह्य न करके शांत, स्नेहार्द्र स्वर में कहा—"मालती, आओ, अम्मा हम लोगों को बुलाने के लिये आई हैं। आज तुम्हारे विवाह की रात्रि है!"

विपिन की यह बात मालती के सब अंगों में मूर्च्छा का संचार करने लगी। यह स्वप्न है, या मोह, या मति-भ्रम! यह तो विश्वास के लिये भी अविश्वास्य जान पड़ता है! उसका क्या ऐसा

ो सौभाग्य हो सकता है ! 'बहता हुआ फूल' क्या इतने दिन के बाद किनारे लग गया !

मालती को जान पड़ने लगा, जैसे चंद्र-लोक मे गंधर्व लोग अमृत-धारा ढालकर उसकी विवाह-रात्रि में अभिनंदन के गीत गा रहे हैं। उसे जान पड़ा—आज जल, स्थल, आकाश, सब मधुमय है। पृथ्वी की धूल तक आज मधुमय है। भगवान् क्या सुख का इस तरह परिपूर्ण संभोग कराने ही के लिये दुःख को हद तक पहुँचा देते हैं ! मालती ने मन-ही-मन सब भयों के भय, सब प्राणियों की एक-मात्र गति, अंतःकरण के देवता, अंतर्यामी, जगत्पिता जगदीश्वर को एकसाथ दुःख-दाता और सुख-विधाता जानकर भक्ति-भाव से प्रणाम किया। वह आनंद की अधिकता से विह्वल होकर विपिन की ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकती थी। उसका हृदय आनंद से परिपूर्ण हो उठा; आँखों में दुःख के आँसू आनंद के आँसुओं में बदल गए।

इतनी देर के बाद प्रेमानंद ने प्रकृतिस्थ होकर कहा—"विपिन बाबू, मालती, मैंने तुम लोगों के निकट आज यह शिक्षा पाई कि गुरु बनना मनुष्य को नहीं सोहता। मेरा गुरुपना आज से समाप्त हुआ ! मैं अभी मरण-पर्यंत तीर्थ-पर्यटन के लिये जाता हूँ। ईश्वर तुम्हारा मंगल करे।"
